हिन्दी-उपन्यास : पृष्ठभूमि और परम्परा

[भागलपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० बदरीदास

● मूल्य

२५.००

● प्रकाशक

ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर-१२

● प्रकाशन-काल

अक्टूबर, १९६६

● आवरण-मुद्रक

मनोहर प्रिण्टिंग प्रेस, कानपुर

● ग्रन्थ-मुद्रक

मानक प्रिण्टर्स, आनन्दबाग, कानपुर-१

आभार-प्रकाशन

मेरा शोध-कार्य स्वर्गीय डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री की सम्मति से आरम्भ होकर लगभग पाँच वर्षों बाद १९६२ मे भागलपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष प्रो० श्री वीरेन्द्र श्रीवास्तव, एम० ए०, डी० लिट्०, विद्यावाचस्पति के प्रेरणादायक निदेशन मे सम्पन्न हुआ। १९६३ के मार्च मे भागलपुर विश्वविद्यालय ने इस पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। मैं अपने विद्वान निदेशक का आजीवन आभारी रहूंगा।

सर्वश्री शिवपूजन सहाय, ब्रजरत्नदास, दुर्गाप्रसाद खत्री और रामचन्द्र वर्मा से कुछ आवश्यक सूचनाए मिली। मैं इनका अनुग्रहीत हू।

खोज के सिलसिले मे सहायता तो अनेक पुस्तकालयों से मिली पर सहायता के साथ सुविधा केवल नागरी प्रचारिणी सभा (वाराणसी) और चैतण्य पुस्तकालय (पटना सिटी) मे प्राप्त हो सकी, इसलिए उनके पदाधिकारी मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

जिन स्वर्गीय और जीवित लेखको के रचनात्मक या आलोचनात्मक साहित्य के आधार पर मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध को रूप प्रदान किया उनके प्रति सम्मान प्रकट किए बिना रहा नही जा सकता।

शोध-कार्य मे श्रीमती मणिमाला दास का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है। उन्हे किन शब्दों मे धन्यवाद दूं ?

शोध-ग्रथों के सुरुचि-सम्पन्न प्रकाशक "ग्रंथम्" ने प्रबन्ध के प्रकाशन का भार लेकर मुझे उपकृत किया है।

बदरी दास

उपनिदेशक,
राजभाषा-विभाग
सचिवालय, पटना।

प्रस्तावना

विवेच्य विषय

हिन्दी-उपन्यास का इतिहास एक प्रकार से आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास है। वर्तमान काल गद्य-काल है और गद्य की विधाओ मे उपन्यास अत्यधिक सम्पन्न एवं लोकप्रिय होने का दावा कर सकता है। उसने परम्परागत तथा नूतन साहित्य की अनेक प्रवृत्तियां आत्मसात् कर ली हैं और लेखकों—पाठको का विशाल परिवार बसाया है। उससे भाषा को व्यंजना-शक्ति, स्वच्छन्द गति और तरल नमनीयता मिली है। उसमे इतनी शक्ति और सम्भावना है कि उसने नाटककार, कवि, आलोचक एव पडित की प्रतिभा को भी आकृष्ट कर लिया है।[1] उसके प्रति समीक्षकों की जैसी रुचि और दृष्टि रहनी चाहिए वैसा नहीं रही है बल्कि वे उसकी, विशेषतः उसकी पूर्व परम्परा की, उपेक्षा करते रहे हैं।

उपन्यास व्यक्ति की रचना होते हुए भी जनता का साहित्य है और व्यक्तिगत प्रतिभा के साथ ही सामाजिक जीवन की देन है। उसे उचित परि-प्रेक्ष्य में देखने के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस पृष्ठभूमि मे लिखा गया उस पर ध्यान रखते हुए उसके विकास की पूरी प्रक्रिया का निरूपण किया जाय। प्रस्तुत प्रबन्ध इस दिशा मे एक मौलिक प्रयास है। सुविधा एव संगति के लिए इसकी परिधि हिन्दी-उपन्यास के प्रथम चरण तक सीमित रखी गई है।

सीमांकन का आधार पृष्ठभूमि और प्रवृत्ति की समानता है। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के समानान्तर ही हिन्दी-उपन्यास का विकास हुआ है। दोनों के विकास की प्रथम स्थिति मे एकरूपता है। सामयिक परिवेश मे परि-वर्तन होने से लोकरुचि मे परिवर्तन होता है और रुचि-परिवर्तन साहित्य के

स्वरूप में परिवर्तन उपस्थित करता है। प्रथम महायुद्ध तक उपन्यास-लेखन रुचि-विशेष के अनुसार हुआ पर उसके बाद नई राष्ट्रीयता के उदय के साथ ही लोकरुचि मे परिवर्तन हुआ, जिसका प्रतिबिम्ब साहित्य मे दिखाई पडा। उस समय प्राय. सभी भारतीय भाषाओ के उपन्यास मे नवयुग का आविर्भाव हुआ। उसके पूर्व लिखे गये हिन्दी-उपन्यास विषय की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी शिल्प और सवेदना की दृष्टि से एक है। कतिपय वरिष्ठ उपन्यासकार उन्नीसवी सदी से लिखना आरम्भ कर बीसवी सदी तक लिखते रहे। १९१८ मे 'सेवासदन' का प्रकाशन एक काल के अन्त और दूसरे के आरम्भ का स्पष्ट सकेत है। अतः प्रथम मौलिक उपन्यास 'मालती' के प्रकाशन-काल से 'सेवासदन' के प्रकाशन-काल तक अर्थात् १८७५ से १९१७ तक हिन्दी-उपन्यास का प्रथम चरण माना जा सकता है।[2]

'सेवासदन' के पूर्व प्रेमचन्द का एक उपन्यास 'प्रेमा' (१९०७) हिन्दी मे प्रकाशित हो चुका था[3] किन्तु वह पाठको और आलोचको का ध्यान आकृष्ट कर ऐतिहासिक महत्व प्राप्त नही कर सका। कथाशिल्प की दृष्टि से 'सेवासदन' और 'प्रेमा' मे लगभग उतना ही अन्तर है जितना सेवासदन' और उसके पूर्ववर्ती उपन्यासो मे। उसका आरम्भ और अन्त पुराने ढग का है। आरम्भ मे वातावरण का वर्णन इस प्रकार किया गया है: "सन्ध्या का समय है। डूबने वाले सूर्य की सुनहरी किरणे रगीन शीशो की आड से एक अगरेजी ढग पर सजे हुए कमरे मे झाँक रही है · · ·।" अन्त मे प्रेमचन्द ने चार विधवाओ का विवाह क्या कराया, एक बला मोल ली। 'हिन्दी प्रदीप' मे बालकृष्ण भट्ट ने 'प्रेमा' का स्वागत इन शब्दो मे किया .

लिखने वाले ने तो अपनी समझ मे विधवा विवाह की प्रथा के अनुमोदन मे इसे लिखा है पर सो नही विधवा विवाह की जीट इसमे भले ही उड़ती है। इडियन प्रेस के मालिक को चाहिए कि ऐसी पुस्तक न छापा करें।[4]

बालकृष्ण भट्ट जैसे स्वतन्त्र विचार के लेखक 'प्रेमा' के विद्रोही स्वर को पहचान नही सके। वह प्रेमचन्द की प्रथम कृति है जिसमे 'सेवासदन' की दिशा का निर्देश है। प्रेमा सुमन को प्रत्याशित करती है। दोनों उपन्यास की समस्या नारी-पराधीनता की समस्या है, यद्यपि 'प्रेमा' मे वह विधवा-विवाह की समस्या का अंग है और 'सेवासदन' मे वेश्या-समस्या का। 'प्रेमा' मे प्रेमचन्द की रचनात्मक प्रतिभा विशेषतः चरित्र-निर्माण, वर्णन-

शक्ति और कहानी–कला मे प्रस्फुटित हुई है। फिर भी, उन्हे स्वय कुछ अपूर्णता का अनुभव हुआ[5] और उन्होने उसका पूर्ण सशोधित रूप 'प्रतिज्ञा' नाम से प्रकाशित किया। इस तरह वह युगान्तरकारी उपन्यास सिद्ध नही हो सका।

जब १९१८ मे 'सेवासदन' का प्रकाशन हुआ, हिन्दी–ससार मे धूम मच गई। हिन्दी-उपन्यास का मानो दूसरा जन्म हुआ और वह यूरोपीय उपन्यास के तुल्य[6] माना गया। प्रेमचन्द का प्रथम प्रौढ उपन्यास हिन्दी का सर्वोत्तम समस्यामूलक उपन्यास बन गया। डा० श्यामसुन्दर दास के कथनानुसार "हिन्दी-उपन्यास–क्षेत्र मे प्रेमचन्द की रचनाओ ने युगान्तर उपस्थित किया। हिन्दी वालो ने उनके पहले मौलिक उपन्यास 'सेवासदन' का उतावली के साथ स्वागत किया और 'प्रेमाश्रम' निकलते ही वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार कहलाने लगे।"[7] युगान्तर उपस्थित करने का श्रेय 'प्रेमा' को नही, 'सेवासदन' को है, अतः हिन्दी-उपन्यास के काल–विभाजन की रेखा उसमे निहित है। यदि प्रेमचन्द को मध्यबिन्दु मानकर काल–विभाजन किया जाता है तो प्रेमचन्द–काल का आरम्भ 'प्रेमा' से माना जाना चाहिए।

'सेवासदन' के प्रकाशन के साथ युगान्तर क्यो और कैसे हुआ, इसे समझने के लिए उसके ऐतिहासिक एव साहित्यिक महत्व का आकलन आवश्यक है। उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशक मे तिलिस्मी–ऐयारी और जासूसी उपन्यासो की जो धाराएँ फूटी वे बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक मे विशाल बन गई। 'सेवासदन' ने उनका बल और वेग फीका कर दिया। जो उपन्यास वक्त काटने के लिए पढते थे वे लोकप्रिय उपन्यास के शौकीन तो थे ही, साहित्यिक उपन्यास मे भी मनोरजन की सामग्री ढूँढ़ते थे। कुछ लोग शिक्षा ग्रहण करने के लिए उपन्यास का अध्ययन करते थे और उसमे सामयिक विचार का दर्शन करना चाहते थे। 'सेवासदन' ने दोनो की माँग पूरी की। उसमे पुराने और नये कथा–तत्वो का समन्वय इस कौशल से किया गया था कि भिन्न रुचि के पाठक उससे प्रभावित हुए बिना नही रह सके। उसने हिन्दी–उपन्यास की परम्परा का व्यापक प्रतिनिधित्व किया। देवकीनदन खत्री ने पाठको की संख्या बढाई थी। प्रेमचद ने सख्या के साथ-साथ श्रेणी बढ़ाकर लोकरुचि का सस्कार किया। जहाँ तक अनूदित उपन्यासो का प्रश्न है, भारतेन्दु–काल में उनका स्तर जैसा ऊँचा था वैसा द्विवेदी–काल में नही रहा। 'सेवासदन' के कुँअर साहब ने कहा था कि "अनुवादो से

हिन्दी का अपकार हो रहा है। मौलिकता को पनपने का अवसर नही मिलता।" प्रेमचंद ने अपनी अनुपम मौलिक सृष्टि से हिन्दी–उपन्यास को बंगला की गलदश्रु भावुकता एव कृत्रिम समास-पदावली से मुक्त कर अपने पात्र की चिन्ता दूर कर दी।

उन्होने डार्विन और मार्क्स की भाँति देश-विदेश के कथासाहित्य का रसास्वादन किया था। पुराण से लेकर 'तिलिस्म होशरुबा' तक वे चाट गए थे।[8] जो सभी ढग के कथासाहित्य का अध्ययन करता है उससे अच्छे-बुरे की परख मे भूल हो सकती है। पर प्रेमचद ने 'तिलिस्म होशरुबा' के आदर्श का अनुसरण नही किया। उन्नीसवी सदी के महान यूरोपीय उपन्यास-कार तथा सरशार, रवीन्द्र, देवकीनंदन खत्री आदि भारतीय उपन्यासकार उनके प्रिय लेखक थे। पर उन्होंने उनमे से किसी का कुछ अनुकरण या अपहरण नही किया। वे उपन्यास और उसकी आलोचना का अध्ययन-मनन करने से उसकी कला से परिचित हो चुके थे। उनके गहरे अध्ययन में उनके जीवन का व्यापक अनुभव मिल गया था। उनमे जन्मजात उपन्यास-कार की प्रतिभा थी। फलतः हिन्दी को 'सेवासदन' की विभूति मिली।

वे सजग कलाकार थे। उन्होने हेनरी जेम्स, कोनराड, फ्लाबेय और ज्वायस के समान उपन्यास को कला के रूप में ग्रहण किया और उसे कला का चरम रूप प्रदान किया, यद्यपि उनकी कला कला के लिए नही थी।

'सेवासदन' का आरम्भ ही उसकी विशिष्टता का द्योतन करता है। "पश्चाताप के कड़ुए फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते है, लेकिन और लोग बुराइयो पर पछताते है, दारोगा कृष्णचन्द्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे।" यह आरम्भ 'प्रेमा' के आरम्भ से सर्वथा भिन्न है। यहाँ पुराने उपन्यास की भाँति न तो प्रकृति की पृष्ठभूमि सजाई गई है और न पात्र को अनाम एव अपरिचित रखा गया है, न ही वस्तु और पात्र का वास्तविक परिचय कई पृष्ठों के बाद दिया गया है। यहाँ पात्र की शारीरिक रूपरेखा के बदले मानसिक दशा का वर्णन किया गया है। दारोगा कृष्ण-चन्द्र आरम्भ मे ही पछताते दिखाई पड़ते हैं और वह भी बुराई पर नही, भलाई पर; जबकि उनके पूर्वज अन्त में पछताते थे और बुराई पर पछताते थे। 'सेवासदन' के पन्ने उलटने पर आगे क्या होगा यह जिज्ञासा न होकर ऐसा क्यों हुआ यह विचार मन में उत्पन्न होता है। पाठक जैसे-जैसे आगे

बढ़ता है, महसूस करता है कि वह परम्परागत उपन्यास को पीछे छोड रहा है।

'सेवासदन' के युगान्तरकारी होने का अर्थ यह नही है कि उसके पूर्व उपन्यास मे जड़ता थी और प्रेमचन्द के आगमन के साथ ही उसका कायाकल्प हो गया। वस्तुतः 'सेवासदन' के पूर्व ही परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई थी। १९१४-१८ के बीच प्रकाशित होने वाले कुछ उपन्यासों मे नवीनता की आभा फूटने लगी थी। १९१३ मे देवकीनन्दन खत्री का स्वर्गवास हो चुका था। किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी अपने पथ पर अटल थे। उनसे अलग होकर कुछ उपन्यासकार नई भूमि गोड रहे थे। इन्हे आधुनिकता का अग्रदूत कहना प्रेमचन्द के ऐतिहासिक महत्व को अस्वीकार करना नही है। परिवर्तन का प्रथम चिह्न मन्नन द्विवेदी के 'रामलाल' (१९१४) मे स्पष्ट है। उसमे पहली बार ग्राम्य जीवन का यथार्थ और पूर्ण चित्र अंकित किया गया। लाला भगवानदीन की 'अघट-घटना' (१९१४) देशी रजवाड़ो का वास्तविक रूप दिखाने वाला पहला उपन्यास है। छबीलेलाल गोस्वामी की 'जावित्री' (१९१६) शिल्प की दृष्टि से नया प्रयोग है। अवधनारायण ने 'विमाता' (१९१५) मे सर्वप्रथम साहित्यिक एवं लोकप्रिय उपन्यास की विशेषताओ का सफलतापूर्वक सन्निवेश किया। यह अनुमान करना गलत होगा कि प्रेमचन्द के बिना हिन्दी-उपन्यास का इतिहास दूसरा होता। वे 'सेवासदन' लेकर नही आते तो भी परिवंतन अवश्य होता, हाँ, उसमे विलम्ब हो सकता था या उसकी दिशा बदल सकती थी। हिन्दी–उपन्यास का यह सौभाग्य है कि प्रेमचन्द परिवर्तन के माध्यम एव प्रतीक बने और न केवल हिन्दी के बल्कि भारत के मूर्धन्य उपन्यासकार बने।

वे परम्परा से अलग होकर किसी दूसरी दिशा मे नही मुड़े थे बल्कि उसे ही नया मोड़ देने मे सफल हुए थे। दूसरे शब्दो में, 'सेवासदन' पुराने भवन की ही एक नई मजिल थी। नूतन में पुरातन किस रूप मे विद्यमान है यह 'सेवासदन' और देवकीनन्दन खत्री की 'काजर की कोठड़ी' पर तुलनात्मक दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है।[9] इस उपपत्ति से प्रेमचन्द की कला एव व्यक्तित्व की अवमानना नही होती है, स्वाभाविक विकास-क्रम का परिचय मिलता है। उनकी अमर कृति हिन्दी-उपन्यास के इतिहास की एक विशिष्ट अवस्था सूचित करती है, उसकी अगति या अनस्तित्व नहीं। इस

सत्य पर इस तरह परदा डाल दिया गया है[10] कि लगभग अर्ध शताब्दी का उपन्यास-साहित्य अन्धकार मे पडा हुआ है। उस पर गम्भीरता और विस्तार से विचार करने का प्रयत्न नही किया गया है। उसके सम्बन्ध मे चलते-चलते कुछ[11] कह दिया गया है या कही हुई बात को दुहराया[12] गया है। इस प्रकार की भ्रामक धारणाओ, मिथ्या आरोपों और निराधार कथनो का निराकरण होना चाहिए।

दृष्टिकोण

अनेक पुराने उपन्यास पुस्तकाकार प्रकाशित न होकर समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं की जिल्दो मे दबे पड़े है। कुछ उपन्यासों की मौलिकता और रचना-काल सदिग्ध तथा अनिश्चित है तो कुछ अपूर्ण ही हैं। उपलब्ध सामग्री के निरीक्षण-परीक्षण तथा दुर्लभ सामग्री के अन्वेषण के उपरान्त चौदह अध्यायों मे अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक अध्याय का विवरण दिया जाता है।

किसी भी साहित्य-रूप की उत्पत्ति आकस्मिक घटना नही होती है बल्कि उसके लिए पहले से ही भूमि तैयार होती है। उपन्यास के विकासात्मक विवेचन के लिए उसके पूर्ववर्ती कथासाहित्य का परिचय अपेक्षित है। सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्र श के गद्य-पद्यमय कथासाहित्य की भूमिका देना अनावश्यक ही नही आपत्तिजनक भी है क्योकि उपन्यास आधुनिक सभ्यता का साहित्य-रूप है जो उसके समान ही पश्चिम से आया है। अत: प्रथम अध्याय मे प्राचीन भारतीय कथा-परम्परा का परिचय नही दिया गया है। उपन्यास गद्यकथा है। इसके अध्ययन के लिए यह जानना आवश्यक है कि इसके पूर्व गद्य मे कैसी कथाएँ लिखी गई और यह उनका माध्यम कैसे बना। अत: हिन्दी की पुरानी गद्यकथा के विकास और स्वरूप पर विचार किया गया है। उसके आलोक में उपन्यास की प्रवृत्तियो को समझने मे सहायता मिलेगी और यह ज्ञात हो सकेगा कि यह उससे कहाँ तक भिन्न और कहां तक प्रभावित है।

दूसरे अध्याय मे देश-विदेश मे उपन्यास के उदय और उसके कलात्मक वैशिष्ट्य का निरूपण है। आलोचको ने पुराने उपन्यास की सोद्देश्यता पर सबसे अधिक और कला-पक्ष पर सबसे कम ध्यान दिया है। इस अध्याय में पुरानी कथा-परम्परा से उपन्यास की तुलना करते हुए उसका तात्विक विवेचन किया गया है। इससे उसकी कला का सामान्य ज्ञान होता है और

यह भ्रात धारणा दूर होती है कि प्रारम्भिक उपन्यासकार शिल्प के प्रति सजग नही थे। इसमे उपन्यास की परिभाषा और उसके सम्बन्ध मे उसके रचयिताओ के दृष्टिकोण पर भी प्रकाश डाला गया है।

जिन परिस्थितियो मे उपन्यास की रचना हुई उनकी रूपरेखा तीसरे अध्याय मे दी गई है। साहित्यिक इतिहासो और शोध-ग्रन्थो मे ऐतिहासिक पीठिका प्राय: निरपेक्ष रूप से दी जाती है, जो बहुधा इतिहास की वस्तु बन जाती है। प्रबन्ध मे बाह्य प्रभाव के स्रोत और स्वरूप का विवेचन करते हुए यह दिखाया गया है कि उपन्यास सामयिक सत्य को कहा तक प्रतिबिम्बित कर सका है।

प्रथम आधुनिक उपन्यास के दो दशक पूर्व अनुवादो और मौलिक प्रयोगो के रूप मे उपन्यास की रचना होने लगी थी। इस तथ्य का अन्वेषण नही किया गया है। चौथे अध्याय मे कई पूर्ण-अपूर्ण, ज्ञात-अज्ञात रचनाओं का परिचय दिया गया है, जो हिन्दी-उपन्यास का विकास-क्रम, खासकर प्रारम्भिक उपन्यास का विकास-क्रम, जानने के लिए उपयोगी है।

हिन्दी-उपन्यास का प्रारम्भिक दशक भारतेंदु-काल के अन्तर्गत आता है उसकी अपनी विशेषता और अपनी देन है। उसके ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए उसके लिए पाँचवा अध्याय सुरक्षित कर दिया गया है। काल-सीमा 'परीक्षागुरु' (१८८१) और 'चन्द्रकाता' (१८९१) के आधार पर निर्धारित की गई है क्योंकि प्रथम से हिन्दी-उपन्यास की परम्परा आरम्भ होती है और द्वितीय के प्रकाशन से उसमे नव परिवर्तन होता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा निर्धारित प्रथम उत्थान का काल (१८८६–९३) भी लगभग यही है।

किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी एक पैर उन्नीसवी सदी मे और दूसरा पैर बीसवी सदी मे रखकर खडे हैं। ये आलोच्यकाल के श्रेष्ठ और सामान्य लेखक है। हिन्दी-उपन्यास के इतिहास मे इनका स्थान चतुरसेन शास्त्री, भगवतीचरण वर्मा और इलाचन्द्र जोशी जैसे लेखकों से अधिक ऊचा है। ये विशिष्ट काल के ही नही, प्रमुख धाराओ के भी प्रतिनिधि हैं। इन्होने हिन्दी-उपन्यास को नया स्तर और आयाम प्रदान किया है, उसी प्रकार जिस प्रकार प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और यशपाल ने किया है। ये अपने-अपने क्षेत्र और अपने युग की अद्वितीय प्रतिभाएँ हैं। इनमे से प्रत्येक ने उपन्यास की जिस परम्परा का प्रवर्तन, प्रतिनिधित्व और घोषणा किया है वह उनके बाद भी जीवित रही और उसमे कई यशस्वी लेखक हुए।

व्यक्ति परम्परा का वाहक होता है और परम्परा व्यक्ति में जीवित रहती है। इसलिए विशिष्ट लेखक का अध्ययन प्रकारान्तर से परम्परा का अध्ययन है। गोस्वामी, खत्री और गहमरी के कृतित्व और कला की मीमांसा के बिना हिन्दी-उपन्यास की उपलब्धि का सही मूल्यांकन संभव नही है। छठे, सातवें और आठवें अध्यायों मे इनका विशेष अध्ययन किया गया है। इनके जीवन-वृत्त का उपयोग उसी सीमा तक किया गया है जहाँ तक वह इनकी रचनाओ की व्याख्या मे सहायक होता है। इनके पारिवारिक, सामाजिक और साहित्यिक परिवेश में इनके जीवन और रचनाओं में सम्बन्ध स्थापित किया गया है। जीवनी पर ज्यादा जोर देने से आलोचना दब जाती है।

अनेक महान लेखको के बावजूद हिन्दी-उपन्यास के इतिहास में व्यक्ति की अपेक्षा प्रवृत्ति का अधिक महत्व है। यह बात आलोच्यकाल के सम्बन्ध में विशेष रूप से सत्य है। साधारणत: यह धारणा प्रचलित रही है कि इस काल में मूलधन के नाम पर केवल तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास है अन्यथा जो कुछ है वह बगला और अग्रेजी का उधार या जूठन है। प्रबन्ध में मौलिक और अनूदित रचनाओ पर समान रूप से विचार किया गया है ताकि सत्य पर प्रकाश पडे और हिन्दी-उपन्यास के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का उद्घाटन हो। मौलिक उपन्यास की विविध धाराओं का विकास दिखाने मे उनके उद्गम तक जाने का प्रयास किया गया है और सामान्य विशेषताओ एव प्रतिनिधि रचनाओं पर विशेष दृष्टि रखी गई है। सामाजिक उपन्यास की धारा की प्रधानता ध्यान में रखकर उसका पृथक विवेचन नवें अध्याय में किया गया है। और उसमें उपन्यास-लेखिकाओ के अशदान का आकलन विशेष रूप से किया गया है।

अन्य धाराओं का भी अपना महत्व है और लोकप्रियता की दृष्टि से तो वे अतिरिक्त सहानुभूति की अपेक्षा रखती हैं। उनकी समीक्षा दसवें अध्याय में की गई है।

ग्यारहवा अध्याय हिन्दी और अन्य भाषाओ के उपन्यास का सम्बन्ध दिखाते हुए समकालीन भारतीय उपन्यास की एकता तथा हिन्दी और बगला उपन्यासो की विभिन्नता स्पष्ट करता है।

बारहवें अध्याय में यह दिखाया गया है कि उपन्यास के रूप-विधान में लिखित और अलिखित साहित्य का क्या योगदान रहा है। यह अध्याय

प्रबन्ध का प्रमुख साहित्यिक पृष्ठाधार है।

उपन्यास के वास्तविक पाठक साधारण जन होते हैं। नये लेखक लेखको के लेखक हैं, पुराने लेखक पाठको के लेखक थे। विवेच्य काल मे लेखको और पाठको मे जो सम्पर्क था वह आज नही है। इस काल के उपन्यास का कोई भी अध्ययन तब तक पूर्ण नही कहा जा सकता जब तक जिनके लिए वह लिखा गया उन्हे ध्यान में न रखा जाय। तेरहवें अध्याय में इस तथ्य पर ध्यान दिया गया है।

अतिम अध्याय मे विवेच्य उपन्यास का मूल्याकन विश्व-उपन्यास के सदर्भ मे किया गया है।

विषय के प्रतिपादन मे पृष्ठभूमि और परम्परा पर विशेष ध्यान दिया गया है तथापि यह चेष्टा की गई है कि उसका कोई पक्ष अछूता न रहे। शास्त्रीय, ऐतिहासिक, व्याख्यात्मक एव समाज-शास्त्रीय आलोचनादर्शो का आश्रय लेते हुए प्रवृत्ति, लेखक और रचना पर समान दृष्टि रखी गई है। प्रयास यह रहा है कि अनुशीलन मे तथ्य और तत्त्व का समन्वय हो।

इस विवेचन-पद्धति से ज्ञान-क्षितिज का विस्तार कहाँ तक होता है इसका आभास अध्यायो के उक्त विवरण से मिलता है। यदि इससे हमारे साहित्य और सस्कृति के सजीव अग उपन्यास का अध्ययन कुछ भी आगे बढ सका तो सतोष की बात होगी। हिन्दी मे अभी तक उसके सिद्धातो का स्थिरीकरण नही हुआ है, न ही उसकी समीक्षा समृद्ध हुई है। विवेच्य काल पर विशेष ध्यान रखकर उपन्यास के आलोचनात्मक साहित्य का सर्वेक्षण कर लेना अनावश्यक नही होगा।

उपन्यास-विषयक आलोचना

उपन्यास साहित्य की नई उपज होते हुए भी काव्य और नाटक का रंग फीका कर चुका है पर काव्य और नाटक की आलोचना से उसकी आलोचना का स्तर ऊँचा नही है। इसका एक कारण तो यह है कि वह अपेक्षया नया है। दूसरे, वह बहुत दिनो तक साहित्य-जगत मे उपेक्षित रहा। फिर उसे मनोविनोद की वस्तु मानने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि उसे गभीर अध्ययन का विषय नही बनाया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि काव्य और नाटक की भारतीय परम्परा हिन्दी मे अक्षुण्ण है किन्तु उपन्यास पश्चिम की देन है। अतः उसके लिए भारतीय साहित्य-शास्त्र उपयोगी नही

हो सका । पाश्चात्य साहित्य की परख के लिए पाश्चात्य आलोचना का मानदड उपयुक्त है, यद्यपि उसकी भी कुछ सीमाएँ हैं । उपन्यास का रूप इतना नमनशील है कि उसे सुनिश्चित और सुदृढ नियमो के बधन मे आबद्ध करना कठिन है ।

पत्र-पत्रिकाओं का अशदान

उपन्यास-विषयक आलोचना का सूत्रपात पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित निवधो से हुआ । 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और माहनचन्द्रिका' (जुलाई १८८१) का 'नाटक वा उपन्यास' शीर्षक लघु लेख उपन्यास पर विचार करने का प्रथम प्रयास है प० बालकृष्ण भट्ट का 'उपन्यास' ('हिन्दी प्रदीप', जनवरी १८८२) एक उपन्यासकार द्वारा उपन्यास पर लिखित पहला आलोचनात्मक निबन्ध है, जिसमे विचार की निष्पक्षता और विवेचन की मौलिकता है। भट्टजी की मान्यता है कि उपन्यास 'अग्रेजी ही भापा का एक अग है' ।

उपन्यास पर सामान्यत. लिखित ऐसे निबधो के बाद वर्तमान शताब्दी के आरम्भ मे बम्बई, कलकत्ता और काशी के कुछ प्रान्तो मे कुछ विशिष्ट उपन्यासो को लेकर साहित्यिक विवाद हुआ, जो अनजान मे समालोचना का रूप धारण करने लगा । 'बेन्कटेश्वर समाचार' और 'भारतमित्र' ने देवकी-नदन खत्री की कथावस्तु की असंभवता और अश्लीलता पर निर्मम आक्षेप किया । 'समालोचक' ने खत्रीजी की ऐयारी के साथ-साथ किशोरीलाल गोस्वामी की रसिकता का उपहास किया । 'सुदर्शन'-सपादक माधव प्रसाद मिश्र ने खत्रीजी के आलोचको का प्रबल प्रतिवाद करते हुए उनके पक्ष मे जो कुछ लिखा उससे उपन्यास के अनेक अंगो पर प्रकाश पडा । उनके विचार से उप-न्यास का मुख्य गुण विचित्र घटना है ।

उपन्यास के साथ ही उसकी आलोचना का विकास होता गया । महावीर प्रसाद द्विवेदी के सपादन-काल के उपरान्त 'सरस्वती' मे उपन्यास-विषयक उत्कृष्ट निवध बराबर निकलते रहे । द्विवेदीजी ने स्वयं 'उपन्यास-रहस्य' ('सरस्वती',१९२२) मे उपन्यासकार के सामाजिक दायित्व पर बल देकर लिखा कि 'उपन्यास जातीय जीवन का मुकुर होना चाहिये ।'प्रेम-चन्द के दो निबन्ध 'उपन्यास-रचना' ('माधुरी', २७अक्टूबर १९२२) और 'उपन्यास' ('साहित्य-समालोचक', १९२५) किसी पुस्तक में सग्रहीत नही

हुए है। प्रथम निबन्ध उपन्यास का विशद तात्त्विक विवेचन और दूसरे मे हिन्दी-उपन्यास विकास की सक्षिप्त रूप रेखा है।

पात्रो मे पुस्तक-परिचय के रूप मे भी उपन्यास की समीक्षा की जाती थी। समीक्षक प्रायः सम्पादक होते थे। वे किसी कृति के गुण-दोष का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते थे और घटनाओ की अस्वाभाविकता और भाषा की अशुद्धि पर पैनी दृष्टि रखते थे। उपन्यास को कला की अपेक्षा उपयोगिता की कसौटी पर परखना उन्हे प्रिय था।

जब साहित्य-जगत मे उपन्यास की महत्ता प्रतिष्ठित हुई, पत्र-पत्रिकाओ मे उसकी चर्चा विशेष रूप से होने लगी। 'साहित्य-सन्देश' और 'आलोचना' के उपन्यास-विशेषांक क्रमश. १९४० और १९५४ मे निकले। प्रथम विशेषाक मे देवकीनदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी के सक्षिप्त परिचय के अतिरिक्त कुछ उपन्यास-लेखको के पत्र भी है। 'आलोचना' के विशेषाक मे नन्ददुलारे वाजपेयी, विजयशकर मल्ल, विश्वम्भर 'मानव', बच्चन सिह और नरोत्तम नागर के निबधो को छोड़कर शेष जितने निबध हैं उन्हे दुबारा पढने की जरूरत नही। आचार्य वाजपेयी ने प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यास पर एक सूक्ष्म दृष्टि डाली है और प्रो० मल्ल ने उसका साहित्यिक मूल्यांकन सामाजिक परिपार्श्व मे किया है। बच्चनजी ने उपन्यास और मध्यवर्ग के विकास मे सम्बन्ध दिखाकर नवीन स्थापना की है। नागरजी के 'फुटपाथ के उपन्यास' मे तिलिस्मी, ऐयारी, जासूसी और साहसिक उपन्यासो की विकास-रेखा है।

निबन्ध-संग्रह

आलोच्यकाल के अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की लेखमाला मे सकलित गोपालराम गहमरी का 'नाटक और उपन्यास' (प्रथम हि० सा० स०, कार्य विवरण, दूसरा भाग) और लक्ष्मण गोविन्द आठले का 'हिन्दी भाषा में उपन्यास' (सप्तम हि० सा० स० लेखमाला, १९१७) उल्लेखनीय हैं। गहमरीजी ने सैद्धातिक और आठलेजी ने ऐतिहासिक पक्ष पर प्रकाश डाला है। डा० नगेन्द्र ने अपने छोटे किन्तु सुन्दर निबन्ध 'हिन्दी उपन्यास '('विचार और अनुभूति') मे स्वप्न के माध्यम से प्रतिनिधि उपन्यासकारो द्वारा अपनी कृतियो पर विचार प्रकट करवाया है। आधुनिक साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'आधुनिक साहित्य' (१९५०)

और 'नया साहित्य : नये प्रश्न' (१९५५) मे आधुनिक उपन्यास की अनेक समस्याओ का विवेचन कर उसकी आलोचना को नया आयाम प्रदान किया। विशिष्ट कृतियो एवं कृतिकारों के अनुशीलन में उनके स्वतत्र चिन्तन एव व्यापक दृष्टिकोण की छाप है। आचार्य नलिनविलोचन शर्मा के 'हिन्दी उपन्यास' ('हिन्दी गद्य की प्रवृत्तिया') से उसकी प्रवृत्तियों को समझने मे जो सहायता मिलती है वह इस विषय पर लिखित किसी एक पुस्तक से कदाचित ही मिलेगी।

साहित्येतिहास

आलोच्यकालीन उपन्यास के मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, अयोध्यासिह उपाध्याय, रामशकर शुक्ल, कृष्णशकर शुक्ल, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, श्रीकृष्ण लाल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के इतिहास उपादेय है। 'मिश्रबन्धु विनोद' अमूल्य आकर-ग्रथ है। रचनात्मक समीक्षा के पिता आचार्य शुक्ल की अभि-रुचि या सहानुभूति उपन्यास की ओर नही थी पर उसके सम्बन्ध मे उन्होने जो कुछ लिखा है उसका एक-एक शब्द अर्थपूर्ण है। स्वय उपन्यास-लेखक होकर भी हरिऔध जी उसका विस्तृत विवेचन नही कर सके तथापि उनके प्रतिपादन मे मौलिकता है। डा० 'रसाल' ने अपने ढग से उपन्यास-लेखकों का परिचय दिया है। प० कृष्णशकर शुक्ल की मीमासा मे सूक्ष्मता के साथ-साथ स्पष्टता है। डा० वार्ष्णेय ने उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्ध के उपन्यास के विषय और रूप-विधान का अध्ययन प्रस्तुत किया है। डा० लाल ने १९००-२५ के उपन्यास के कला-रूप, कथा-शैली और कोटि-क्रम का विकास विल-क्षण रीति से दिखाया है। डा० वार्ष्णेय मे वैज्ञानिक तटस्थता है, डा० लाल मे विश्लेषणात्मक आग्रह ; शोध मे दोनो का समान महत्त्व है। आधुनिक उप-न्यास के सम्बन्ध मे जो कुछ कहना आवश्यक था वह डा० द्विवेदी ने अपनी निर्मल शैली मे कह दिया है। डा० रामविलास शर्मा का 'भारतेन्दु-युग' भी इतिहास है, जिसमे न केवल भारतेंदुयुगीन उपन्यास की विशेषताओं का उद्घाटन हुआ है बल्कि उपन्यास के अध्ययन को नई दिशा मिली है।

वैशिष्ट आलोचना

उपन्यास पर विशेष रूप से लिखे गए आलोचना-ग्रथो के नाम अंगु-ों पर गिने जा सकते हैं। रघुवीर सिंह का 'सप्तदीप' (१९३८) इस ् का प्रमुख ग्रंथ है, जो प्रभावाभिव्यजक होने के कारण आलोचनात्मक

मूल्य नहीं रखता। तारा शंकरपाठक ने 'हिन्दी के सामाजिक उपन्यास' (१९३९) मे आलोच्य काल के बाद के कुछ प्रतिनिधि उपन्यासकारो का परिचय दिया है। शिवनारायण लाल श्रीवास्तव ने 'हिन्दी उपन्यास' (१९४०) लिखकर सर्वप्रथम ऐतिहासिक और व्याख्यात्मक आलोचना-पद्धतियो का समन्वय किया और एक महान अभाव की पूर्ति की। विनोदशंकर व्यास की 'उपन्यास-कला' (१९४१) विदेशी और भारतीय उपन्यास का परिचय देती है। गगा प्रसाद पाण्डेय का 'हिन्दी कथा-साहित्य' (१९५१) कतिपय कथाकारो के साहित्य की निर्णयात्मक आलोचना है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कथा-साहित्य के प्रथम आधुनिक समालोचक हैं। 'आधुनिक कथासाहित्य' (१९५४) उनके पुराने-नये निबधों का संकलन है, जिसमे व्यक्तिगत रुचि से गम्भीर समीक्षा मिल गई है। व्रजरत्न दास ने 'हिन्दी-उपन्यास-साहित्य' (१९५६) मे उपन्यास-कला और प्राचीन कथा-परम्परा पर विस्तार से विचार करते हुए हिन्दी-उपन्यास का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया है और प्रारम्भिक उपन्यासकारों को अपेक्षित पृष्ठ दिए है। त्रिभुवन सिंह का 'हिन्दी-उपन्यास और यथार्थवाद' (१९५५) एक अभिनव प्रयास है।

सिद्धान्त

उपन्यास के सैद्धान्तिक प्रश्न पर पहली पुस्तक प० अम्बिकादत्त व्यास की 'गद्यकाव्य मीमासा' (१८९७) है। विद्वान लेखक ने नई दृष्टि से पुरानी वस्तु को देखा इसलिए उन्हे सस्कृत गद्यकाव्य मे कथारस नही मिला और पुरानी दृष्टि से नई वस्तु को देखा इसलिए उनके अनुसार उपन्यास के कुल भेद 'उनचास अर्बुद, छः करोड़, एकतालीस लाख, अठानवे हजार, चार सौ' हुए। पं० जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' को 'काव्य प्रभाकर' (१९०९) मे गद्यकाव्य की कोटि मे उपन्यास को रखना अनुचित लगा क्योकि उसमे 'नीति एवं उपदेशजनक हितवार्ता' नहीं थी। डा० श्यामसुन्दर दास ने 'साहित्यालोचन' (१९२२) मे उपन्यास का वर्गीकरण और विवेचन हडसन के 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ लिटरेचर' के अनुसार किया पर कही-कहीं मौलिक एवं विचारोत्तेजक व्याख्या प्रस्तुत की। उनकी परिभाषा सारगर्भित है, 'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है'। डा० रामकुमार वर्मा की 'साहित्य-समालोचना' (१९३८) अपने विषय पर अपने ढग की रचना है। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का 'वाङ्मय विमर्श' (१९४२) समीक्षा-शास्त्र मे एक नूतन अध्याय जोड़ता है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों का

समन्वय किया है और बताया है कि हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासो का ढर्रा भारतीय था। प० गुलाबराय के 'काव्य के रूप' (१९४७) मे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो दृष्टियो से उपन्यास का जैसा सागोपाग विवेचन किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी दृष्टि मे 'उपन्यास जीवन का चित्र है, प्रतिबिम्ब नही, प्रेमचन्द ने उपन्यास के साथ ही उसकी आलोचना लिखना आरम्भ किया और दोनो को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। 'कुछ विचार' (१९३९) और उसके परिवर्धित सस्करण 'साहित्य का उद्देश्य' (१९५४) मे सकलित एतद्विषयक निबन्ध लोकप्रिय साहित्य पर गभीरतापूर्वक विचार करने के फल हैं।

उपन्यास-सम्बन्धी आलोचना की उपलब्धि उसके अभाव से ढँक गई है। पत्र-पत्रिकाओ की समीक्षा उपन्यास के कुछ अंगो तक सीमित रही है। निबन्धो मे उसकी अनेक महत्वपूर्ण समस्याएँ अछूती रह गई है। साहित्येतिहासो मे उसे समुचित स्थान नही मिला है। विद्वान आलोचको ने उसे अपना क्षेत्र नही बनाया है। सैद्धान्तिक दृष्टि से मौलिक उद्भावनाएँ कम हुई है, पुरानी और नई सामग्री को एकत्र कर देने की प्रवृत्ति प्रबल रही है। अग्रेजी मे लुब्बोक, लिविस और लिडेल ने उपन्यास के मूल्याकन के लिए क्रमशः कथा कहने की पद्धति, शब्दो के प्रयोग और विशिष्ट अवतरणो के उद्धरण को आधार माना है।[13] हिन्दी मे न तो ऐसे प्रतिमानो की स्थापना हुई है और न उसके आधार पर विश्लेषण और निरूपण किया गया है। परिणाम और गुण दोनो की दृष्टि से उसकी उपन्यास-विषयक आलोचना मे न्यूनता है।

यह अभाव गर्व का विषय नही है तो लज्जा और निराशा का कारण भी नही है। अब जिस गति से शोध और समीक्षा की अभिवृद्धि हो रही है वह आशा दिलाती है। उपन्यास की विशिष्ट प्रवृत्ति, लेखक और शिल्प-विधान के सम्बन्ध मे कुछ प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके है। इनके जो अश प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रतिपाद्य से सम्बद्ध है वे अपेक्षित ज्ञान की वृद्धि मे सहायक नही होते। उदाहरण के लिए डा० राजेश्वर गुरु 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' मे प्रेमचन्द की रचनाओ की सही तिथि भी नही दे सके। डा० देवराज उपाध्याय ने उपन्यास की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे राल्फ फाक्स के मत को ज्यो का त्यो उद्धृत कर दिया है पर आधार का सकेत या उल्लेख नही किया है।[14]

जब प्रस्तुत प्रबन्ध का टकन समाप्तप्राय था, डा० कैलाशप्रकाश का 'प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास' प्रकाश मे आया। उसके सम्बन्ध मे यहाँ केवल

यह कहने का अवकाश है कि उसमें विषय पर गम्भीरता से विचार किया गया है पर सीमित काल के अध्ययन मे जो व्यापकता होनी चाहिए वह नही है। डा० प्रकाश ने 'केवल प्रवृत्ति-विशेष की प्रतिनिधि रचनाओ तक अपने अध्ययन को सीमित रखा है'। उन्होने अनुवादो को, जो प्रेमचन्द–पूर्व उपन्यास के अभिन्न अग हैं, जानबूझ कर छोड़ दिया है। परन्तु कुछ अनूदित रचनाओं (मिश्रबन्धु : 'वीरमणि', गोपालराम गहमरी 'खूनी का भेद') को मौलिक समझ कर स्थान दिया है। भावात्मक उपन्यास की धारा—जो किसी भी दृष्टि से हिन्दी-उपन्यास की कम महत्वपूर्ण धारा नही है—उनके विवेचन का विषय नही बनी। 'घराऊ घटना', 'सौदर्योपासक', 'प्रेमा', 'विमाता' और 'भोजपुर की ठगी' हिन्दी के श्रेण्य उपन्यास है। उनके बिना उनके युग का कोई भी अध्ययन पूर्ण नही कहा जा सकता है। किन्तु डा० प्रकाश ने उनका नामोल्लेख भी नही किया। उन्होने प्रतिनिधि रचनाओ के नाम पर निबन्धो (रुद्रदत्त शर्मा : 'स्वर्ग में महासभा', भारतेंदु : 'स्वर्ग मे महासभा (?) का अधिवेशन') और कहानियो ('पुरानी ढढ्ढो का चरित्र', 'खौफनाक खून') को भी उपन्यास मे खपा देने की कोशिश की है। वह अपने विवेच्य काल की उल्लेखनीय रचनाओ की उपेक्षा कर बाद की अनेक रचनाओ (मडन द्विवेदी · 'कल्याणी', दुर्गाप्रसाद खत्री : 'रक्त मडल', 'प्रतिशोध', 'लाल पजा' आदि) को यो ही कई पृष्ठ देने का लोभ मवरण नही कर सको। इस प्रकार एक उपेक्षित काल के प्रति न्याय नही किया गया।

टिप्पणियां

१– 'प्रसाद', सियारामशरण गुप्त, हजारीप्रसाद द्विवेदी और राहुल साकृत्यायन उल्लेखनीय है ।

२– इतिहासो और आलोचना–ग्रथों मे उसके प्रकाशन–काल का बहुधा उल्लेख नही किया है और यदि किया गया है तो प्रामाणिक रूप से नही । डा० इन्द्रनाथ मदान के 'प्रेमचन्द : एक विवेचन' मे १९१४, डा० राजेश्वर गुरु के 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' मे १९१६ और ब्रजरत्नदास के 'हिन्दी-उपन्यास-साहित्य' मे १९१९ है ।

३– शिवनारायणलाल श्रीवास्तव ने 'हिन्दी-उपन्यास' मे 'प्रेमा' का प्रकाशन-काल १९०५ तथा डा० राजेश्वर गुरु ने 'प्रेमचद : एक अध्ययन' मे १९०२ बताया है पर उसकी रचना १९०५ मे हुई और प्रकाशन १९०७ मे । रचना-काल के लिए 'आजकल' (फरवरी १९५२) मे रघुवीर सिंह को लिखे गये प्रेमचद के पत्र का उद्धरण दृष्टव्य है ।

४– जुलाई, १९०७, पृ० २०

५– "मैंने विधवा का विवाह करा के हिन्दू नारी को आदर्श से गिरा दिया था। उस वक्त जवानी की उम्र थी और सुधार की प्रवृत्ति जोरों पर थी । उस रूप मे उस पुस्तक को नही देखना चाहता था । इसलिए मैंने कथा मे उलट-फेर करके लिख डाला ।"

—रघुवीर सिंह को लिखा गया उक्त पत्र

६– "सेवासदन के निकलते न निकलते प्रेमचन्द जी एकदम विक्टर ह्यूगो, हार्डी, और रोला आदि की कक्ष मे रखे जाने लगे ।"

—शिलीमुख : 'प्रेमचंद की कला', सरस्वती, फरवरी १९२९, पृ० १३८

७– 'हिन्दी-साहित्य', पृ० ३२४

८– देखिये 'मेरी पहली रचना' ('कफन')

९– सातवे अध्याय मे तुलनात्मक विवेचन किया गया है ।

१०–"प्रेमचंद को कोई परम्परा विरासत मे नही मिली ।"

—डा० इन्द्रनाथ मदान : 'प्रेमचद : एक विवेचन', पृ० १२१

"वस्तुतः आधुनिक हिन्दी–उपन्यास की परम्परा का सूत्रपात प्रेमचंद से ही होता है ।"

—शिवदान सिंह चौहान : 'हिन्दी–गद्य–साहित्य', पृ० ६४

११–"प्रेमचंद के पूर्व जितने उपन्यास है वे मूक हैं, उनके पात्र शायद ही कही वार्तालाप करते दिखलाये गये हो।"

—डा० देवराज उपाध्याय : 'आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान', पृ० ८९

डा० उपाध्याय को मनोवैज्ञानिक उपन्यास के सम्बन्ध मे जो कहना चाहिए था वह उन्होने प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासो के सम्बन्ध मे कह दिया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास वास्तव मे मूक होते है क्योकि उनके पात्र या तो आप ही आप बाते करते है या चुपचाप सोचते है। प्रेमचंद-पूर्व उपन्यासो मे केवल छबीलेलाल गोस्वामी की 'जावित्री' मे वार्तालाप का जितना अश है उतना शायद ही किसी हिन्दी-उपन्यास मे हो, देखिये अध्याय १२।

१२–यज्ञदत्त शर्मा ने 'हिन्दी के उपन्यासकार' (१९५१) मे किस तरह शिव-नारायणलाल श्रीवास्तव के 'हिन्दी-उपन्यास' (१९५०) की प्रतिलिपि कर दी है, यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। श्रीवास्तव जी ने गहमरीजी की समीक्षा करते हुए लिखा है, "फिलिप ओपेनहम, शरलाक होम्स, एडगर वेलेस आदि उपन्यासकारो ने इन विषयो पर बड़ी मनो-रजक रचनाये की। ब्लेक सीरीज, सिक्स पेंस सीरीज, फोर पेंस सीरीज आदि कई पुस्तक-मालाएँ जासूसी उपन्यासो के लिए ही निकाली गई।", (पृ० ७३)। शर्मा जी लिखते है, "फिलिप ओपेनहम, शरलाक होम्स, एडगर वेलेस आदि उपन्यासकारो ने जासूसी विषयो पर जैसी मनोरजक रचनाएँ की थी गहमरीजी ने भी उसी प्रणाली को अपनाया......। जिस प्रकार अग्रेजी मे ब्लेक सीरीज, सिक्स पेंस सीरीज, फोर पेंस सीरीज इत्यादि प्रकाशित हुई उसी प्रकार हिन्दी मे भी रचनाएँ प्रकाशित की जाने लगी, (पृ० ८)। शरलाक होम्स उपन्यासकार नही, उपन्यास का नाम है, जिसका लेखक कानन डायल है; इस विश्वविदित बात को लिखने मे एक आलोचक से भूल हो गई तो क्या दूसरा आलोचक उसे दुहराये बिना नही रह सकता ?

१३–'क्राफ्ट आफ फिक्सन', 'द फिक्शन एण्ड द रीडिंग पब्लिक' तथा 'ए ट्रिटाइज आन द नोवेल' दृष्टव्य है।

14– "True its roots go back very far, to Trimalchio's Banquet,

to Duphnis and Chole, perhaps to further, to Herodotus"

—'द नोवेल एण्ड द पीपुल', पृ० ६१

"उसकी जड़ बहुत पुरानी और गहरी है। यूरोपीय साहित्य मे इसकी जडे ट्रिमालचियो के बान्केट, डाफनिस क्लाफ तथा हिरोडटस तक खीचकर लाई जा सकती है।"

—'आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान', पृ० १६

———

१

पूर्व का कथासाहित्य

क—शिष्ट कथाएँ

कथा-कहानी साहित्य का अत्यन्त व्यापक और लोकरंजक अंग है। वीरगाथा, महाकाव्य, आख्यानक काव्य सभी प्रारम्भिक कथा के पद्यबद्ध नमूने हैं। मध्यकालीन आख्यानक काव्य और रोमानी—ऐतिहासिक उपन्यासो के वस्तु-विन्यास मे बहुत समानता है। जायसी को एक ऐसा उपन्यासकार कहा जा सकता है जो पद्य मे लिखता हो। समय और सुविधा के अनुसार कथासाहित्य पद्य या गद्य का वसन धारण करता रहा है। आलोचकों के मत से भले ही उसका स्वाभाविक वसन गद्य हो, कथाप्रेमियो को तो कथारस चाहिए, वह पद्य से छनकर आए या गद्य से। हिन्दी-साहित्य के आदि-मध्य-काल में कविता का साम्राज्य था। गद्यकथा के अभाव मे 'मधुमालती', 'मृगावती' आदि पढ़कर कथा-कहानी पढने की पिपासा शात कर ली जाती थी।[1] वस्तुन. प्रेमाख्यानक काव्य मे काव्य-तत्त्व की अपेक्षा कथा-तत्व का प्राधान्य था।

प्राचीन गद्य

कविता के युग मे भी दक्खिनी, ब्रजभाषा और राजस्थानी मे गद्य की स्वतत्र सत्ता थी।[2] उसका व्यवहार उपयोगी साहित्य के अतिरिक्त ललित साहित्य के लिए होता था। दक्खिनी गद्य की परम्परा चौदहवी सदी से आरम्भ होती है।[3] उसमें खड़ी बोली गद्यकथा का प्राचीनतम रूप उपलब्ध है, यद्यपि वह फारसी लिपि मे है। अरबी-फारसी से अनूदित सूफी-साहित्य में

दार्शनिक और नैतिक सिद्धान्तो के प्रचार के लिए कथाओं का उपयोग किया गया है। फारसी के आधार पर लिखा गया वजही का 'सबरस' (१६२५) अपूर्व रूपक कथा है। उसमे 'अक्ल' के लडके 'दिल' और 'इश्क' की लडकी 'हुस्न' का प्रेम वर्णित है। पात्र सूक्ष्म होकर भी व्यक्तिगत नही है। भाषा की सादगी और मुहावरों की मिठास ने शैली मे जान डाल दी है। छोटे-छोटे तुकान्त वाक्य नायक को तीर की तरह हृदय मे चुभ जाते हैं। कहानी और उसकी कला पर मुग्ध होना पडता है :

एक शहर था, शहर का नाउँ सीस्तान। इस सीस्तान के बादशाह का नाउँ अक्ल। दीन व दुनिया का तमाम काम उससे चलता, उसके हुक्म बाज जर्रा कईं-नईं हिलता। इसके फरमाये पर जिनो चले, हर दो जहान मे वे भले। दुनिया मे खूब कहवाये, चार लोकों मे इज्जत पाये।[4]

ब्रजभाषा काव्यभाषा है तथापि उसमे सोलहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध तक गद्य का धारावाहिक अस्तित्व दो रूपो मे है : कथा-वार्ता और टीका। वार्ता-साहित्य ब्रजभाषा गद्यकथा का प्रारम्भिक रूप है। उसमे भक्तो और संतो की निजंधरी कथाएँ हैं। श्री गोकुलनाथ कथित 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (सत्रहवी शताब्दी) का उद्देश्य श्री विट्ठलनाथ गोसाई की महिमा और उनके सेवको के चरित्र पर प्रकाश डालना है पर उसमे ऐहिकतापरक कथा के अनेक तत्व है। हर वार्ता चरित्रनायक के जीवन का एक खंड-चित्र है, जिसमे उसके व्यक्तित्व का मानवीय रूप झलकता है और वार्ताओ के अनुरूप ही पात्रो में विविधता है। कुछ समाज के उच्च स्तर से आए है, कुछ निम्न स्तर से; कुछ भले है, कुछ बुरे; कुछ सामान्य है, कुछ विशिष्ट। 'वैष्णव की बेटी' और 'वेश्या की बेटी', 'दो विरक्त' और 'दो ठग', 'जीवनदास ब्राह्मण' और 'माधुरीदास माली' सभी सजीव, मुखर और विश्वसनीय हैं। कथासाहित्य मे सामाजिक जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्ध में ही मिल सका। जब पतितो को सत्पथ पर लाया जाता है, यथार्थ आदर्श की ओर झुक जाता है। बोलचाल की भाषा मे कोमलता, स्वाभाविकता और कौशल के साथ कहने का ढग रुचिकर है। वार्ता संख्या ६३ उदाहरणार्थ उद्धृत है :

सो वे साहुकार के वेटा की बहू सूरत गाम मे रहेती हती वाको रूप बहोत सुन्दर हतो और वे सती हती एक दिन अपने घर मे कवाड लगाय के नहाती हती सो एक म्लेच्छ पादशाह को नौकर घोड़ा पर बैठके जातो हतो

सो वा की नजर वा स्त्री के ऊपर गई और देख के कामातुर भयो तब घोड़ा कुदाय के वाके घर के भीतर जाय पडयो सो वे स्त्री नग्न नहाती हती वाको हाथ पकर लियो जब वह स्त्री बोली इतनी तसती काहेकु लेहो मैं तुमारी चाकर हु तुम कहो जैसे करूँगी अबी मोकु वस्त्र पेहेरे लेवे देवो ये सुनके वह म्लेच्छ प्रसन्न भयो और कही जो तुम कपड़ा पेहेर के हमारे मग चलो ये कहेके वा स्त्री को हाथ छोड दियो वा स्त्री नें कपड़ा पेहेर के और वा म्लेच्छ के मुख मे एक तमाचो मार के एक कोठा मे कवाड़ देके चली गई तब म्लेच्छ सरमाय के घर गयो

अठारहवी शताब्दी से सस्कृत के कथा-आख्यान के अनुवाद उपलब्ध होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किसी अज्ञात लेखक के 'नासिकेतोपाख्यान' (सवत् १७६० के उपरात) का उल्लेख किया है।[5] लल्लूलाल ने 'हितोपदेश' का आशय लेकर 'राजनीति' (१८०२) और 'पद्मपुराण' के आधार पर 'माधव विलास' (१८१७) की रचना की। 'माधव विलास' का कथा-भाग गद्य मे और वर्णन-भाग पद्य मे है लेकिन गद्य मे भी पद्य की छटा है। राजकुमार माधव और राजकुमारी सुलोचना के प्रेम और विवाह, मिलन, और विरह की कहानी रस से भरी है।

राजस्थानी गद्य की प्राचीनता और सपन्नता हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु है। उसके दो प्रमुख प्रकार हैं : 'ख्यात' और 'बात'। ख्यात का प्रयोग इतिहास के लिए, बात का कथा के लिए होता है। कुछ बातें गद्यपद्यमय हैं, कुछ गद्यमय। गद्यपद्यमय बात का पुराना नमूना 'गोरा बादल री बात' (१६२४) है। उसका विषय इतिहास-प्रसिद्ध है। मारवाड़ के कविराजा बाकीदास की बातो की सख्या २८०० बताई जाती है।[6] बात-साहित्य लोक-साहित्य की विशेषताओ से पूर्ण है। कथावस्तु की दृष्टि से उसके चार भेद किये जा सकते है : ऐतिहासिक, पौराणिक, प्रेमाख्यानक और कल्पित। अनूदित रचनाओ मे फतहराम वैरागी का 'पचाख्यान' (१८४७) उल्लेख योग्य है, जो विश्व-प्रसिद्ध सस्कृत कथा 'पचतत्र' का रूपान्तर है।

इस प्रकार मध्यकाल मे पद्य मे ही नही, गद्य मे भी कथाएँ लिखी गईं। पद्य प्रमुख साहित्यिक माध्यम था, इसलिए कथाओ के लिए गद्य अपेक्षाकृत कम प्रयोग तो हुआ ही, गद्यबद्ध कथाएँ भी पद्य मे रूपायित की गईं।[7] जब काव्य ही साहित्य का पर्याय था, यह स्वाभाविक था कि जो पद्यबद्ध हो वही साहित्य मे परिगणित किया जाय। पटियाला दरबार के कथावाचक

रामप्रसाद निरजनी खडीबोली के 'प्रथम प्रौढ गद्य-लेखक' माने जाते है। अत: अठारहवी शताब्दी मे मौखिक कथा-वार्ता के लिए खडी बोली गद्य का व्यवहार अवश्य होता होगा। कथावाचको ने कथालेखको के लिए जमीन तैयार की, यद्यपि वह जमीन कुछ समय के लिए खाली रही।

नवीन गद्य

नई हिन्दी मे कविता गाने से पहले कहानी सुनाने की शक्ति आई। उन्नीसवी सदी के आरम्भ मे जिन चार प्रथम पुरुषो ने खडी बोली गद्य के आधुनिक रूप का उद्घाटन किया उनमे तीन कथा-साहित्य के रचयिता थे। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि 'आधुनिक गद्य-परम्परा का प्रवर्त्तन नाटको से हुआ'।[8] वास्तविकता यह है कि उसका प्रवर्तन कथासाहित्य से हुआ। इशा की 'रानी केतकी की कहानी' (१८००–१८०८), सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' (१८०३) और लल्लूलाल के 'प्रेमसागर' (१८१०) नवीन गद्य मे लिखित पुराने ढग की अमर कथाएँ है। 'रानी केतकी की कहानी' मौलिक कृति होने के कारण कथासाहित्य के विकासात्मक अध्ययन मे विशेष उपादेय है। सभवत: यह खडी बोली गद्य की पहली मौलिक कहानी ही नही, पहली मौलिक प्रेम-कहानी भी है। यह भी सभव है कि पहले पहल गद्यसाहित्य मे 'कहानी' शब्द का प्रयोग इशा ने किया हो। उनका ऐतिहासिक महत्व इसलिए और बढ़ जाता है कि जहाँ सदल मिश्र और लल्लूलाल ने 'सर्वविद्यानिधान, ज्ञानवान, महाप्रधान श्री महाराज जान गिलकस्त साहब' के आदेशानुसार अनुवाद किया वहाँ उन्होने आत्म-प्रेरणा से मौलिक प्रयास किया, जैसा कि उन्होंने आरम्भ मे ही लिखा है, "एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान मे चढी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले'। अस्तु, वे ठेठ हिन्दी में सचेतन होकर मौलिक कहानी लिखने वाले प्रथम लेखक हैं।

कहानी आदि से अन्त तक लोककथा के रस मे डूबी हुई है। एक दिन कुँवर उदयभान हरिनी के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ शाम को एक अमराई मे पहुँचता है। वहाँ रानी केतकी अपनी सहेलियों के साथ झूले पर सावन गा रही है। रानी के जी मे कुँवर की चाह घर कर लेती है। कुँवर को 'अमराइयो का आसरा' मिल जाता है। रात मे मिलन की बेला आती है, दोनो मे परिचय होता है, शादी के वादे होते हैं और अँगूठियों के हेरफेर के बाद बिछुड़न होता है। उदयभान के पिता सूरजभान केतकी के पिता

जगतपरकाश के पास विवाह का प्रस्ताव भेजते है, जो मजूर नही होता। दोनो मे लडाई छिड जाती है। जगतपरकास के गुरू महेन्दरगिर कैलाश पहाड से आकर कुँवर और उसके माँ–बाप को हरिन–हरिनी बना देते हैं और जगतपरकास को एक बघम्बर और भभूत दे जाते हैं। बघम्बर की करामात ऐसी है कि उसका एक रोगटा आग पर रखा गया और योगी महेन्दर गिर आ धमके। रहा भभूत, सो इसलिए है जो कोई इसे अजन करे, वह सबको देखै और उसे कोई न देखै, जो चाहे सो करै। सो, रानी केतकी आँख मिचौवल खेलने के बहाने माँ से भभूत माँग लेती है और आँखो मे लगाकर कुँवर की खोज मे निकल पडती है। महेन्दर गिर आकर उसका पता लगाते हैं और राजा इन्दर की सहायता से कुँवर और उसके माँ–बाप को भी खोज निकालते है और उनका रूप पूर्ववत् बना देते हैं। कुँवर और केतकी की शादी बड़े धूमधाम से होती है।

यह कहानी पढ़ना क्या है चाँदनी रात मे फूलो के देश मे घूमना है। इशा शुरू मे ही कह देते है, "देखिये, किस ढब से बढ चलता हूँ और अपने फूल की पखड़ी जैसे होठो से किस-किस रूप मे फूल उगलता हूँ।" फिर तो उनकी वाणी से फूल झड़ते जाते हैं। विवाह का प्रस्ताव लाने वाले ब्राह्मण पर 'फूल की चगेर' फेंकी जाती है। महेन्दर गिर पर 'सोने रूपे के फूल' निछावर किये जाते है। कुँवर की चिट्ठी रानी के पास कागज के नीले लिफाफे मे नही, 'फूल की पखड़ी' मे लिपटी आती है। शादी की खुशियाली मे झीलो मे 'कुसुम और टेसू और हरसिंगार' सज जाते है और नदियो मे इतने फूल बहा दिये जाते है कि "नदियाँ जैसे फूल की बहियाँ हैं यह समझा जाय।" नायक–नायिका 'केवडा' और 'केतकी' है तो नायिका की सहेली का नाम 'मदनबान' और मालिन का नाम 'फूलकली' होना ही चाहिए। उदयभान और केतकी की यह कोमल कहानी फूल की भाषा मे लिखी गई फूलो की कहानी तो नही है ?

'नासिकेतोपाख्यान' का मूलाधार कठोपनिषद् है। इसमे राजकुमारी चन्द्रावती की नाक से नासिकेत की उत्पत्ति और यमलोक–यात्रा का रोचक वर्णन है। 'प्रेमसागर' चतुर्भुज मिश्र की ब्रजभाषा पद्यरचना का अनुवाद है। इसमे भागवत के दशम स्कध की कथा है। इनका विषय धार्मिक है, 'रानी केतकी की कहानी' का लौकिक। अलौकिक और अति प्राकृत तत्व तीनो मे है। 'प्रेमसागर' मे शुकदेव जी राजा परीक्षित को कथा सुनाते है,

'नासिकेतोपाख्यान' मे वेशपायन मुनि राजा जनमेजय को । दोनो मे वक्ता और श्रोता है। यह पौराणिक कथा–शैली का उदाहरण है। इंशा की कथा-शैली मसनवी और दास्तान का अनुकरण करती है। मसनवी की तरह कहानी के आरम्भ मे इशा अपने बनाने वाले के सामने सिर झुकाकर नाक रगड़ते है। दास्तान की तरह कहानी के बीच-बीच मे कथा भाग–सूचक उपशीर्षक है। 'प्रेमसागर' मे उपशीर्षक नही, अध्याय है। 'नासिकेतोपाख्यान' मे एक ही साँम मे कहानी कही गई है। नासिकेतोपाख्यान जो ठहरा।

लल्लूलाल की भाषा मे ब्रजभाषा का और सदल मिश्र की भाषा मे पूर्वी बोली का पुट है। इशा की भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है। उनका भाषा के सम्बन्ध मे अपना निश्चित मत है। उन्होने गद्य–लेखन को कला के रूप मे ग्रहण किया है। सदल मिश्र की शैली मे गम्भीरता, लल्लूलाल की शैली में शिथिलता और इशा की शैली मे चपलता है। पहले का गद्य व्यावहारिक, दूसरे का काव्यात्मक, तीसरे का कथात्मक है।

'प्रेमसागर' कृष्णकथा को लेकर सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। 'नासिकेतोपाख्यान' परिमार्जित गद्य क कारण विद्वानो द्वारा समादृत रहा है। शिवनन्दनसहाय ने लल्लूलाल को 'प्राततारा' और सदल मिश्र को 'सुप्रभात' की अभिधा प्रदान की है।[8] "कहानी के जोवन का उभार और बोलचाल की दुलहिन का सिंगार" दिखाने वाली रचना अपनी नायिका की तरह ही सजीव और सुन्दर है। वह साहित्य की कोटि मे आती है। 'प्रेमसागर' और 'नासिकेतोपाख्यान' तो पौराणिक कथाएँ है। नवीन गद्य-कथा की प्रथम त्रयी मे इशा का स्थान प्रथम है।

उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्ध के दो और ग्रन्थ उल्लेखनीय है। महाकवि विद्यापति द्वारा सस्कृत मे विरचित 'पुरुष परीक्षा' का अनुवाद १८१३ मे तारिणीचरण मिश्र ने प्रस्तुत किया। यह अत्यन्त रोचक और ज्ञानवर्धक लघु कथाओ का सग्रह है, जिसमे एक राजकुमारी के सुयोग्य वर के लिए श्रेष्ठ पुरुष की आवश्यकता दिखाकर विभिन्न प्रकार के पुरुषो के लक्षण और उदाहरण दिये गये है। फारसी भागवत के आधार पर राय मक्खनलाल ने 'सुखसागर' (१८४६) की रचना की। मुन्शी सदासुखलाल ने लगभग अर्ध-शताब्दी पूर्व इसी नाम की पुस्तक विष्णुपुराण के आधार पर प्राजल और प्रवाहमयी भाषा मे लिखी थी। उसमे ऐसी कथात्मकता नही थी। 'प्रेमसागर' और 'सुखसागर' साधारण साक्षर नर-नारी के हृदयहार रहे है।

उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्ध मे पाठ्य पुस्तको के रूप मे कथाएँ लिखी गई। आचार्य शुक्ल के अनुसार १८५२ और १८६२ के बीच अनेक शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें निकली।[10] वस्तुत: यह दशक पाठ्य पुस्तको का काल है। पं० श्रीलाल, प० बद्रीलाल, पं० वंशीधर, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, नवीनचन्द्रराय, प० कृष्णदत्त, प० गौरीदत्त और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र शिक्षोपयोगी कथासाहित्य के प्रमुख रचयिता और अनुवादक है। सितारेहिन्द की देन अमूल्य है। उन्होने स्वय लिखा, दूसरो से लिखाया और शिक्षा-विभाग मे हिन्दी के प्रवेश के लिए प्रयत्न किया। गद्य और गद्यकथा के विकास मे योगदान देकर उन्होने भावी कथाकारो को तैयार किया। पाठ्य-ग्रन्थों के रूप मे लिखित कथाएँ छोटी-छोटी है। उनका प्रकाशन प्राय: आगरे से स्वतन्त्र पुस्तक या सकलन के रूप मे हुआ है। उनमे अनुवादो और रूपान्तरो की बहुलता है। विषय और शैली दोनो की दृष्टि से वे रुचिकर हैं। नीति कहानी को गम्भीर और कहानी नीति को मनोरम बनाती है।

प० श्रीलाल द्वारा अनूदित 'धरमसिह का वृत्तान्त' और 'सूरजपुर की कहानी' का प्रकाशन १८५१ मे हुआ। दोनो मे गाँव की दैनिक घटनाओ का वर्णन है। दोनो मे नवीनता का आभास है। धरमसिह धर्मराज परगने के चैनपुर जिले के रयोवशपुर गाँव का जमीदार है। उसका नाम उसके गुण का बोधक है। वह अपनी बडी बेटी की शादी मे फिजूल खर्च करने से कर्जदार हो जाता है। उसे अनुभव से और पाठको को उसके जीवन से शिक्षा मिलती है। प० कृष्णदत्त मिश्र द्वारा रूपान्तरित 'बुद्धि फलोदय' (१८६९) के पात्रो के नाम भी गुणवाचक है। आरम्भ पुरानी रीति से हुआ है—"मध्यदेश मे मथुरा बहुत पुरानी पुरी है।" पहले सुबुद्धि, फिर कुबुद्धि की कथा है। अन्विति का अभाव है। सुबुद्धि पढ-लिखकर उन्नति करता है, कुबुद्धि कुसगति में पडकर बिगड जाता है। एक को प्रतिष्ठा मिलती है, दूसरे को जेल जाना पडता है। कर्म का फल दिखाकर उपदेश दिया गया है।

इन सामाजिक कथाओ के अतिरिक्त नीति और धर्म की कथाएँ लिखी गईं और उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्ध से ही निकलने लगी, जैसे, १८४६ में आगरा स्कूल बुक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित 'नीतिकथा' और कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी द्वारा प्रकाशित 'शिष्य बोधक', जो ईसप की सुप्रसिद्ध पशु-कथाओं के अनुवाद है। प० बद्रीलाल का 'हितोपदेश' (१८५१) और प० वंशीधर की 'पुष्पवाटिका' (१८५२) क्रमशः सस्कृत के इसी नाम के

ग्रन्थ और फारसी 'गुलिस्ता' के भावानुवाद है। इनकी नीति कथाएँ प्रसिद्ध है। बाबू नवीनचन्द्र राय का 'लक्ष्मी सरस्वती सम्वाद' (१८६९) भी दो बहनो के सम्वाद के रूप में मनोहर नीतिकथाओ का सग्रह है। अगरेजी मे प्रचलित कथाऍ भारतीय साँचे में ढाल दी गई है। बादशाह लियर को उज्जैन नगर का धनपति बनिया बना दिया गया है। कहने का ढग सीधा-सादा है। पहली कहानी इस तरह शुरू होती है. "किसी गाँव में जयपाल नामक एक खत्री रहता था। उसके घर मे एक लडका और दो लडकियाँ थी।" बाबू नवीनचन्द्र राय की भाँति स्त्रियो के उपयोग के लिए भारतेन्दु ने 'मदालसोपाख्यान' (१८७६) लिखकर बालिकाओ में मुफ्त बाँट दिया। यह प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान है। उसकी भाषा साफ-सुथरी है।

माँ बाप का बहू बेटे को देखकर ऐसा कलेजा ठडा हुआ जैसे किसी को कोई सम्पत्ति मिले। राजा के सारे राज्य मे आनन्द फैल गया और घर-घर बधाइयाँ होने लगी।

सितारेहिन्द ने 'राजा भोज का सपना' (१८५८), 'बामा मनरजन' (१८५९), 'वीरसिह का वृत्तात' (?) और 'लडको की कहानी' (१८७६) की रचना की। आचार्य शुक्ल ने उनकी कहानियो मे 'आलसियो का कोडा' का भी उल्लेख किया है. पर वह कहानी नही है। मौलिक रचना के रूप मे प्रसिद्ध 'राजा भोज का सपना' मुखपृष्ठ पर मिस सी० एम० टकर के 'राजाज ड्रीम' का अनुवाद बताया गया है। भारतेंदु-युग की स्वप्न-कथा की परम्परा शायद इसी से आरम्भ होती है। अनूदित होकर भी भाषा की दृष्टि से यह बहुत महत्व रखता है। यह ठेठ हिन्दी का सुन्दर नमूना प्रस्तुत करता है, यद्यपि इसके तुकान्त वाक्य फारसी ढग के हैं और 'रानी केतकी की कहानी' की याद दिलाते है, जैसे, "सेना उसकी समुद्र की तरग का नमूना और खजाना उसका सोने चादी और रत्नों के खान से भी दूना।" शेष रचनाएँ मौलिक जान पडती है। 'बामा मनरजन' मे स्त्रियो के लिए देश-विदेश की आदर्श महिलाओ की सत्रह कथाएँ सकलित हैं। उसकी भाषा सरल संस्कृतनिष्ठ है. "विदर्भ नगर के राजा भीमसेन की कन्या भुवनमोहिनी दमयन्ती का रूप और गुण सारे भारतवर्ष मे प्रख्यात हो रहा था।" 'वीरसिह का वृत्तात' 'गुटका' (तीसरा खड, १८८६) मे सकलित है। इसमे एक कल्पित कथा के माध्यम से शिक्षा दी गयी है। 'लडको की कहानी' छोटी-छोटी तेरह रोचक बालोपयोगी कहामियों का सग्रह है। उसका नन्हा आकार और सुबोध

भाषा मन मोहने के लिए काफी है। राजा साहब ने जिस भाषा की वकालत 'इतिहास तिमिरनाशक' मे आगे चल कर की उससे उनकी कहानियाँ अछूती है। हिन्दी गद्य-शैली के विकास मे इनका स्थान ऐतिहासिक महत्व का है।

जैसे नई शिक्षा के प्रचार के लिए बाल-कथा साहित्य की रचना हुई, वैसे ही ईसाई धर्म के प्रचार के लिए ईसाई कथा साहित्य की। इलाहाबाद से प्रकाशित 'पुष्पमालिका' (१८६८), 'कथामाला' (१८७७), 'उपमा रत्नावाली' (१८७९) दृष्टात कथाओ के सग्रह है। पात्र भारतीय भी है और विदेशी भी। भाषा परिनिष्ठित है। इस प्रकार के साहित्य का भारतीय जनता के बीच प्रचार अवश्य हुआ पर इसे लोकप्रियता कदाचित ही मिली होगी। ईसाइयो का उद्देश्य स्पष्ट था, कथा-कहानी तो एक बहाना था। उन्होने बडी चतुरता से अपने धार्मिक साहित्य का भारतीय रूप प्रदान कर भारतीय पाठक के मनोनुकूल बनाया था।

शिष्ट कथायें और उपन्यास

उपन्यास के पूर्व के शिष्ट कथासाहित्य से उपन्यास की कई आवश्यकताओ की पूर्ति हुई। उससे कहानी कहने की कला का विकास हुआ। फलतः उपन्यास की एक सरल पर मौलिक समस्या हल हो गई। उपन्यास का उद्देश्य मनोरजन भी है और शिक्षा भी। उससे इस दुहरे कार्य की सिद्धि हुई। इशा, सदलमिश्र, सितारेहिन्द, नवीनचन्द्र राय आदि की रचनाओ ने सरल निराडबर गद्य मे कथालेखन की सभावना उत्पन्न की। 'रानी केतकी की कहानी' का यह स्थल किसी भी श्रेष्ठ उपन्यास के स्थल से कम मार्मिक नही है :

जब रात साँयँ-साँयँ बोलने लगी और साथवालियाँ सब सो रही, रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगाकर यो कहा—अरी ओ, तूने कुछ सुना है ? मेरा जी उस पर आ गया है, और किसी डौल से थम नही सकता। तू सब मेरे भेदों को जानती है। अब होनी जो हो सो हो; सिर रहता रहे, जाता जाय। मैं उसके पास जाती हूँ। तू मेरे साथ चल। तेरे पाँव पड़ती हूँ, कोई सुनने न पाए।

दैनिक जीवन की भाषा मे कही गई रानी केतकी की बातें उसकी मुद्रा, भाव, स्वर आदि को मिलाकर एक पूर्ण जीवन्त चित्र उपस्थित कर देती हैं। 'नासिकेतोपाख्यान' आत्मचरित-शैली मे लिखित पहली कथा है। उसमें व्यक्ति

और वातावरण का यथार्थ चित्रण है। गर्भवती का यह रूप कितना मोहक है

पहिले मास मे तो उस कन्या को कुछ अधिक सा देह मे रूप उपजा और दूसरे मे गर्भ का लक्षण जानने मे आया। तीसरे पियरा मुँह हो गया। चौथे में रोएँ अलग-अलग होने लगे, पाँचवें मे कुच व नितब ऐसे भारी हुए कि जिनके भार से अलसाकर किसी से कुछ बातचीत न कर सकती।

इसी प्रकार यमलोक और नरक का स्पष्ट वर्णन किया गया है। पूर्ववर्ती लेखको ने गद्य मे अभिव्यक्ति की क्षमता भरकर उपन्यासकारो का काम आसान कर दिया।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' की उक्त वार्ता में साहूकार की बहू मधुर प्रलोभन से मार्गभ्रष्ट नही होती है बल्कि अपने सतीत्व की रक्षा चतुरता के साथ करती है। हरिऔधजी लिखित 'अधखिला फूल' में देवहूती और किशोरीलाल गोस्वामी की 'चपला' मे सौदामिनी पर इसी तरह बलात्कार किया जाता है और वे ऐसी ही चतुरता से बचने का उपाय करती है। 'हरिऔध' जी और किशोरीलाल गोस्वामी गोकुलनाथ जी से प्रभावित हुए या नही, यह प्रश्न निरर्थक है। ध्यान देने की यह बात है कि देवहूती और सौदामिनी साहूकार की बहू की परम्परा मे है। ये सकारात्मक (पोजिटिव) चरित्र भारत की एक ही मिट्टी से बने है। देवहूती और सौदामिनी के पीछे युगों का सास्कृतिक इतिहास है। 'बुद्धि फलोदय' में शिक्षा और अशिक्षा का परिणाम दिखाने के लिए भले-बुरे लड़को में भिन्नता दिखाई गई है। शील-भिन्नता आरम्भिक उपन्यासों के चरित्र-चित्रण की एक विशिष्टता रही है। बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है कि उपन्यास 'बुरे और भले पात्रो के चरित्र का बराबर से मुकाबिला करके अन्त में भले पात्र को उपन्यास के किस्से का मुख्य नायक' बनाकर शिक्षा देता है।[11]

आधुनिक युग के आरम्भ में ही कथासाहित्य की प्रभावशीलता और महत्ता स्वीकृत हुई और उसे शिक्षा, नीति और धर्म का माध्यम बनाया गया। यदि ऐसा नहीं होता तो उपन्यास की ओर लोग स्वभावत: आकर्षित नही होते और उसके आविर्भाव में विलंब होता। शिक्षोपयोगी और धार्मिक कथा-ग्रथों की भाँति आदि उपन्यास उपदेश के भार से दबे हुए हैं।

खडी बोली गद्यकथा की भाषा एक प्रकार से अनुवादों की भाषा है पर उसमें हिन्दी का आदर्श और शक्तिशाली रूप छिपा हुआ है। ब्रजभाषा और राजस्थानी में नवीन विषय और विचार को व्यक्त करने की सामर्थ्य

नही थी। उनके पद पर खड़ी बोली का प्रतिष्ठित होना स्वाभाविक था। अनुवादको और मौलिक लेखको ने उसे कथासाहित्य के उपयुक्त बनाने में योग दिया।

उपन्यास नवल गद्यकथा है इसलिये जब तक गद्यकथा का माध्यम नही बनता तब तक उसका उदय नही होता। कथासाहित्य मे पद्य को निर्वासित कर गद्य की प्रतिष्ठा करना एक दिन की बात नही थी। 'रानी केतकी की कहानी' 'नासिकेतोपाख्यान' और 'प्रेमसागर' मे पद्य के लिए स्थान सुरक्षित रहा। परवर्ती रचनाओ मे भी कही न कही पद्य के दर्शन हो ही जाते है। विलक्षणता की बात यह है कि उसका अश अधिक नही है और जो है वह अवसरानुकूल उपदेश और भाव विशेष की अभिव्यक्ति तथा किसी घटना की सूचना के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा कभी-कभी जो गद्य मे कहा गया है उसे ही कविता में दुहरा दिया गया है। कथा का अश गद्य मे ही है। दूसरे शब्दो मे, गद्य का प्रयोग सामान्यत: और पद्य का विशेषत हुआ है। उन्नीसवी सदी के मध्य तक आते-आते कहानी पद्य का सहारा लिये बिना चलने लगी और गद्य उसका वाहन स्वीकार कर लिया गया। सितारेहिंद तक गद्य मे काव्य का आभास था किन्तु उसमे सहज सरल ढग से कथा सुनाने की क्षमता आ गई थी और काव्य-तत्व के ह्रास से जो कमी होने लगी उसकी पूर्ति वर्णन-शैली करने लगी। उस समय प्राचीन गद्यकथा का अधिकांश प्रकाश मे नही आया था, अत: उसके प्रभाव का क्षेत्र सीमित रहा होगा। जो साहित्य जितना ही लोकप्रसिद्ध होता है वह उतना ही प्रभावशाली होता है। इस दृष्टि से लोकप्रिय कथायें शिष्ट कथाओ की अपेक्षा अधिक मूल्य रखती हैं।

ख-- लोकप्रिय कथायें

उपन्यास के उदय के समय और उसके पहले संस्कृत और फारसी की मनोरजक कथायें लोगो मे प्रिय और प्रचलित थी। उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ से उनके हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित होने लगे थे। 'सिहासन बतीसी', 'बैताल पचीसी', हातिमताई', 'चहारदरवेश' आदि लोकप्रिय किस्से छोटे-बडे उपन्यासो का काम करते थे। इनसे हमारे आदि उपन्यासकार परिचित थे।[12] फारसी की जो पुस्तकें नागरी मे नही आई थी उनकी जानकारी भी उन्हे थी। फारसी-उर्दू उन दिनों हिन्दू शिक्षित समाज मे प्रचलित थी। सदियो से हिन्दू-मुसलमान के बीच सास्कृतिक आदान-प्रदान हो रहा था।[13] उन्होने

एक दूसरे की कथा-कहानी को अपना लिया था और दो भिन्न कहानियो से नई कहानी भी गढ़ ली थी। शायद इस कथासाहित्य का व्यापक प्रचार देख-कर फोर्ट विलिएम कालेज के अंग्रेज अधिकारियो ने इसका रूपान्तर और प्रकाशन करवाना आरम्भ किया और इसके महत्व एव प्रभाव को बढ़ा दिया। मध्यकाल मे गद्यकथा पद्य मे बाँध दी गई थी। छपाई की सुविधा होने पर पद्यकथा का गद्य रूपान्तर होने लगा। लोक-परम्परा में जीवित कथायें भी मुद्रित होकर धीरे-धीरे पाठकों के सामने आने लगी। मुद्रण-यन्त्र ने लेखको और पाठको के लिए मनोरञ्जन की सामग्री सुलभ कर दी और लोकरुचि मे परिवर्तन उपस्थित किया। उन्नीसवी सदी से फिर कथासाहित्य का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

लोकप्रिय कथाओ को दो कोटियो में रखा जा सकता है : भारतीय और अभारतीय। यह भेद अध्ययन की सुविधा के लिये प्रेरणा और प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर किया गया है। भारतीय कथाये मुख्यत. सस्कृत से निःसृत है। फारसी कथायें भारत में भी लिखी गईं पर उनका वातावरण अभारतीय है और उनमें भारतीय कथाओं की रूढ़ियाँ नही है इसलिए उन्हे अभारतीय कहा गया है। दोनो का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

भारतीय कथायें

'सिंहासन बत्तीसी'— सस्कृत 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' का पद्यानुवाद सुन्दर-दास ने ब्रजभाषा में किया था। ब्रजभाषा से लल्लूलाल की सहायता से जवा ने १८०१ में हिन्दुस्तानी मे अनुवाद किया। उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध तक इसके चार सस्करण निकल चुके थे और इसकी शैली हिन्दी के निकट आ चुकी थी। यह बत्तीस कहानियो का सग्रह है, जो राजा विक्रम के सिंहासन की बत्तीस पुतलियाँ राजा भोज को सुनाती है। राजा भोज विक्रम के सिंहा-सन पर बैठना चाहते हैं पर पुतलियाँ विक्रम को ही सिंहासन पर बैठने योग्य सिद्ध करने के लिए उनकी महानता का वर्णन करती है। आदर्श राजा के नाम पर गढ़ी गई कल्पित कहानियो का यह उत्कृष्ट निदर्शन है। कथायें अनहोनी और पात्र अपरिचित है, फिर भी उनमें वास्तविकता का आभास है।

'बैताल पचीसी' सस्कृत 'बैतालपचविंशतिका' का पद्यानुवाद सूरति मिश्र ने ब्रजभाषा में किया था। लल्लूलाल की सहायता से विला ने

हिन्दुस्तानी में १८०१ में अनुवाद किया। उन्नीसवी शताब्दी तक इसके छः सस्करण निकल चुके थे और भाषा मे परिवर्तन हो चुका था। एक संस्करण 'विक्रम विलास' के नाम से भी निकला। यह पचीस कहानियो का सग्रह है। एक योगी के कहने पर राजा विक्रम पेड पर एक लटकते हुए वैताल को लाने जाता है और लाने के समय राह में बोल देता है इसलिये वैताल फिर पेड पर जा लटकता है। पचीस बार के विफल प्रयास के बाद राजा वैताल को योगी के निकट लाकर पाता है कि योगी उसका शत्रु है। हर बार वैताल राह मे राजा को एक कहानी सुनाता है। 'कहानी मे कहानी' सजाने का यह अच्छा उदाहरण है। आरम्भ सवाद और विकास वर्णन से होता है। कल्पना और बुद्धि दोनो को उत्तेजित करने वाली वस्तु मिलती है। पुरुष प्रगल्भ प्रणय-निवेदन करते है, स्त्रियाँ अवैध यौन-सम्बन्ध स्थापित करती है और उनका विदग्ध निर्माता सूक्तियाँ सुनाता चलता है। राजा और राजकुमारी, साधु और चोर, सेठ और साहूकार सभी मानवीय और जीवन के प्रति आस्थावान हैं।

'शुक बहत्तरी– सस्कृत 'शुक सप्तति' का अनुवाद फारसी मे कादिरी ने 'तूतीनामा' (१७९४) नाम से और हैदरी ने उर्दू मे 'तोता कहानी' (१८२८) नाम से किया था। एक अज्ञात लेखक ने हिन्दी मे १८६० मे 'शुक बहत्तरी' नाम से अनुवाद किया किन्तु मूल सस्कृत से किया या फारसी-उर्दू से, यह नही कहा जा सकता। इसमे विदग्ध चूडामणि नामक तोते द्वारा कही हुई बहत्तर कहानियाँ है। सौदागर मदन के परदेश चले जाने पर उसकी रूपवती पत्नी प्रभावती प्रतिदिन परपुरुष के साथ रमण करने के लिए जाना चाहती है कि तोता उसे कथा सुनाकर रोक लेता है। बहत्तर दिन तक सुनाई गई इन कहानियो मे यह खोलकर बता दिया गया है कि परपुरुष से प्रेम करने के लिए विवाहित स्त्रियाँ किस तरह छलछद से काम लेती है। स्त्री और सर्पिणी को एक ही श्रेणी मे रखा गया है। इसकी नायिका प्रभावती जितनी ही सुन्दर है उतनी ही बेवफा है। नारी के प्रति ऐसा दृष्टिकोण उर्दू 'गुल्जारे दानिश' मे भी मिलता है। जहाँ तक भौतिक जीवन के यथार्थ चित्रण का सम्बन्ध है, 'शुक बहत्तरी' बोकैशियो के 'डेकामेरन' की समकक्ष है। इसकी विशिष्टता यह है कि इसमे नीतिश्लोक भी जोड दिये गये है।

सस्कृत के घटना-प्रधान कथा-संग्रह के अतिरिक्त कई भाव-प्रधान आख्यान भी लिखे गये। प्रथम कोटि की रचनाओं मे मूलकथा गौड़ हो जाती

है, प्रासंगिक कथाओं का स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहता है और वे सूक्ष्म सूत्र मे सबद्ध रहती हैं तथा घटनाओ का प्रवाह अखड गति से आगे बढ़ता है। दूसरे प्रकार की रचनाओ मे आदि से अंत तक एक कथा की प्रधानता रहती है और बीच-बीच मे मार्मिक परिस्थितियो एव मनोहर दृश्यो का वर्णन रहता है। स्थापत्य की दृष्टि से ये उपन्यास के निकट है। इनमे न तो नैतिक आशय का आरोप है, न लोकचातुरी सिखाने की चेष्टा ही अपितु मानवीय मनोविकारो का सरल, स्पष्ट स्वरूप है। पात्र आदर्श वीर और प्रेमी होते हुए भी दुर्बलताओ के शिकार है। उनका रागात्मक सम्बन्ध अतिप्राकृत शक्तियो से न होकर प्राकृतिक रमणीयता से है। भाव-प्रधान आख्यान मे लौकिक प्रेमाख्यान की विशेषताएँ निहित है, जैसा कि निम्नलिखित पुस्तको के अध्ययन से ज्ञात होता है।

'माधोनल कामकदला' (१८०१)—इसकी रचना विला ने लल्लूलाल की सहायता से मोतीराम कवीश्वर के ब्रजभाषा ग्रन्थ के आधार पर हिन्दुस्तानी मे की। पूर्व मे पद्य प्रेमाख्यान के रूप मे कई कवियो ने इसकी रचना की थी। इसका मूलाधार सभवत' 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' की इक्कीसवी कथा है। इसमे सुन्दरी कामकदला के प्रति माधवानल के प्रगल्भ प्रेम का चित्ताकर्षक वर्णन है। माधवानल विशिष्टता-सम्पन्न व्यक्ति है। वह स्वय सुन्दर है और सौन्दर्य का उपासक है। उसका गुण उसके लिए अभिशाप बन जाता है। अनेक कष्ट झेलने के बाद वह प्रेयसी को पत्नी बनाने मे सफल होता है।

'नल प्रसग' (१८६०), 'गोपीचन्द भरथरी' (१८६७), 'गोपीचन्द' (१८६८), 'किस्सा मृगावती' (१८७६) और 'कहानी कला कामी' (१८७९) —पहली पुस्तक 'अनेक पुराण और महाभारत का सार' लेकर रची गई है और दाऊजी अग्निहोत्री के यन्त्रालय (बनारस) मे छपी है। यह नल-दमयन्ती के अमर प्रेम की छोटी-सी कहानी है। दूसरी और तीसरी पुस्तको के लेखक क्रमश. कुँवर लक्ष्मण सिंह और प० जयदत्त हैं। इनकी कथावस्तु प्रसिद्ध है और सभवत. मौखिक परम्परा से ली गई है। यामिनी भान लिखित 'किस्सा मृगावती' कुतबन की इसी नाम की प्रेमगाथा का गद्य-रूपान्तर प्रतीत होता है। श्यामलाल चक्रवर्ती लिखित अन्तिम पुस्तक का मूलाधार सभवत. दक्खिनी कवि तहसीनुद्दीन की मसनवी है। इसमे कुँवर कामरूप और कलाकाम की प्रेमकथा है। आजिमगंज और पटने से क्रमश. प्रकाशित 'कहानी कला काम' (१९०८ द्वि० स०) और 'किस्सा कलाकाम' (१९०७) पद्यबद्ध हैं।

प्रेम और साहसिकता से भरी अन्तिम दो कहानियों के मूल रचयिता मुसलमान है और इनमे फारसी कथा की रूढियाँ है तथापि इनका स्वरूप भारतीय है।

'छबीली भठियारी'—इसका प्रकाशन १८८६ मे आगरे से हुआ। यह पहले प्रकाशित हुआ या नही, यह कहना कठिन है। लेखक का नाम भी नही दिया गया है। सभव है इसका श्रोत भी मौखिक लोककथा हो। दिल्ली का शाहजादा रमनशाह शिकार मे जाते समय एक कुएँ पर छबीली भठियारी को देखकर प्रेमासक्त हो जाता है। वह अपनी स्त्री विचित्र कुँवरि के पास आँख पर पट्टी बाँधे रहता है, बाहर निकलने पर पट्टी खोल देता है और छबीली से मिलता है। विचित्र कुँवरि एक दिन गूजरी के भेष मे उसकी प्रेमलीला देखने जाती है तो वह उस पर भी फिदा हो जाता है। धीरे-धीरे वह सही रास्ते पर आता है और छबीली को मार डालता है। कहानी प्रतीकात्मक है। पट्टी बँधे रहने और खुलने का अर्थ बेसुध होना और होश मे आना है। नैतिकता को प्रतीक मे प्रकट करने की रीति स्तुत्य है।

'सालिगा सदाव्रज का वृत्तान्त'—राजकुमारी सालिगा और कुँवर सदाव्रज की प्रेमकथा उत्तर भारत मे अमर है। इसको आश्रय करके आख्यानक काव्य भी लिखे गए हैं। गणेशीलाल का एक गद्यपद्यमय रूपान्तर आगरे से १८८९ मे प्रकाशित हुआ। गद्य खडी बोली मे और पद्य ब्रजभाषा में हैं। पद्यमय सवाद सरस और स्पर्शी है। कहानी का साराश यह है कि प्रेमिका के विवाहित होने पर भी प्रेमी उसे भूल नही पाता है और उससे मिलने के लिए कठिनाइयो का सामना करता है। 'सारगा सदावृक्ष' नाम से प्रचलित कथा मे कुछ नवीनता है। प्रेमी को मालूम होता है कि उसकी प्रेमिका कल ससुराल जाएगी। वह प्रेमिका के कहने पर एक रात में उसकी राह मे झोपड़ी छाकर साधु बन बैठता है। प्रेमिका ससुराल जाते समय साधु का दर्शन कर लेती है। इस प्रकार के मधुर प्रसग पुस्तक मे भरे हुए है।

लोकप्रिय कथाएँ विशुद्ध कथाएँ है। इन्हे पढने से मालूम हो जाता है कि किस्से-कहानियो से कितना मजा मिलता है। इनमे कल्पना और सत्य, मानव और अमानव इस तरह मिले हुए है कि उन्हे अलग करना कठिन है। ये वास्तविक जीवन से बिल्कुल दूर नही हैं और इनमे घटना-वैचित्र्य रहते हुए भी भाव-विभूति है, अतः ये रोमाचक होने के साथ-साथ मनोरजक हैं। यहाँ प्रेम साहस से अभिन्न है। यही कारण है कि वह रुग्ण अनुभूति न होकर

प्रेरक शक्ति है और उसमे कुंठा न होकर प्रगल्भता है। 'वैताल पचीसी' की छठी कहानी मे एक धोबी देवी से प्रार्थना करता है कि सुन्दरी धोबिन से उसका विवाह हो जाय तो वह अपना सिर अर्पित कर देगा। नायक-नायिका नाना प्रकार की बाधाओ और व्यवधानो का सामना करते हुए मिलते है। उनका परिचय बहुधा प्रथम दर्शन से होता है और विवाह मे परिणत होकर पूर्ण होता है। फलतः कथाएँ सुखान्त होती है। इनमे मनुष्य की आदिम और सार्वभौमिक प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक रूप मे व्यक्त हुई है, अतः पात्र मानवीय और सजीव है। यहाँ सामाजिक मान्यता और नैतिक बन्धन के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है। परपुरुष या परस्त्री से प्रेम या अतिप्राकृत तथा मानवीय पात्रो मे यौन-सम्बन्ध सामान्य सामाजिक आचरण के उल्लघन का उदाहरण है। इस प्रकार के पात्रो से पाठक अनजान मे तादात्म्य स्थापित कर लेते है। उनमे वे अपने व्यक्तित्व के प्रच्छन्न रूप की छाया पाते है। इन कथाओ की लोकप्रियता का यह भी एक कारण है।

अभारतीय कथाएँ

भारतीय कथासाहित्य की परम्परा बहुत पुरानी है। उसका प्रवर्तन ईसा के पूर्व हो चुका था।[14] भारत मे मुसलमानो के आगमन से उसका प्रवाह मन्द पड गया और अरबी-फारसी कथाओं का प्रचार होने लगा। शहरजाद ने विष्णु शर्मा की जगह अपना सिक्का जमा लिया। विदेशी कथाओ के प्रचार-प्रसार मे मध्यकालीन किस्सागो, फोर्ट विलियम कालेज और नवलकिशोर प्रेस ने विशेष सहायता पहुँचाई। किस्सागो का काम निकम्मे और विलासी बादशाहो, राजाओ और नवाबों को किस्से सुनाना था। मुगल दरबार मे किस्सागोई खूब चमकी। जहाँ गग कवि को एक छप्पय पर छत्तीस लाख रुपये न्योछावर किये गये वहाँ कथाकौशल के बिना कोई किस्सागो वाहवाही नही लूट सकता था। इसलिए कहानी एक कला बनी। फिर, कला ने पेशे का रूप धारण किया। पेशेवर किस्सागो एक साथ ही कथाकार और अभिनेता की भूमिका अदा करते थे। हाथ के संचालन से, स्वर के चढ़ाव-उतार से, चेहरे के हाव-भाव से वे अपने आश्रयदाताओं के हृदय मे हर्ष-विस्मय, भय-विश्वास उत्पन्न कर उनका मन बहलाते थे। उनकी कहानियो मे नाटकीयता और मनोरंजकता सहज ही आ गई। प्रस्तुत अध्याय मे एक किस्सागो द्वारा लिखित 'रानी केतकी की कहानी' की उद्धृत

पक्तियो मे यही गुण है ।

मुगल दरबार का देखादेखी राजपूत दरबारों मे भी किस्सागोई का साहित्य बनता रहा ।[15] और जब दिल्ली मे पतझड़ के दिन आये तब किस्सागो नवाबो के दरबारो मे घोसला बनाने लगे । फलत: सामत्री समाज मे अरबी फारसी कथाओ का खूब चलन हुआ । इन कथाओ के केन्द्रबिन्दु राजा-रानी थे । नवाबो और नरेशो ने इनमे अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देखा और इनका हार्दिक स्वागत किया । हिन्दू–मुसलमान दोनो मे इनका प्रचलन देखकर इन्हे सुबोध भाषा मे प्रकाशित करने का प्रयत्न स्वाभाविक था । फोर्ट विलियम कालेज और नवलकिशोर प्रेस ने सरल उर्दू मे इनका अनुवाद और प्रकाशन करवाया । कलकत्ता और लखनऊ उर्दू कहानी के जन्म-स्थान हुए । लखनऊ की देखादेखी बम्बई, मथुरा, पटना सिटी और काशी के प्रकाशको ने भी फारसी-उर्दू किस्से-कहानियो के भाषान्तर प्रकाशित किये । अभारतीय कथाएँ फारसा से उर्दू मे, फारसी-उर्दू से हिन्दी मे आईं । ऐसी शायद ही कोई मनोरजक कथा हो जो उन्नीसवी सदी के अत तक नागरी मे नही निकली हो । विशेष लोकप्रिय रचनाओ का परिचय नीचे दिया जाता है ।

'बागोबहार' या 'चहारदरवेश'– यह उन किस्सों का सग्रह बताया जाता है जो अमीरखुसरो ने अपने गुरु निजामुद्दीन औलिया की बीमारी मे मन-बहलाव के लिए सुनाये थे । इसका अनुवाद मीर अम्मन ने उर्दू मे किया, जो १८०१ मे प्रकाशित हुआ । १८८३ मे प्रकाशित अपने हिन्दी अनुवाद मे श्रीधर भट्ट ने बताया है कि उनके पूर्व भी नागरी मे पुस्तक निकली थी । नागरी में प्रथम प्रकाशन का काल ज्ञात नही हो सका है । इसमे चार योगी अपने देशाटन की वार्ता बादशाह आजादबख्त को सुनाते है । कही कोई शाहजादी किसी गरीब जवान लडके पर फिदा हो जाती है, कही परी शाह-जादे को प्यार करने के लिए आसमान से उतर आती है । आपबीती–शैली मे कही गई साहसिकता और प्रेम की कहानियाँ मनोरजन के साथ-साथ लौकिक रीति की शिक्षा प्रदान करती है ।

'हातिमताई'– मूल फारसी से हैदरी ने उर्दू मे 'आराइशे महफिल' (१८०२) नाम से अनुवाद किया । मीर मुंशी लक्ष्मणदास की 'हातिमताई' (१८५१) फारसी का हिन्दी अनुवाद है । दानवीर हातिम को आलम्बन बनाकर लिखी गई यह कथा प्रहेलिका–कथा का अच्छा नमूना है । एक

शाहजादा एक सौदागर की बेटी से शादी करना चाहता है। वह कहती है कि यदि शाहजादा उसके सात प्रश्नो का जवाब दे तो वह शादी कर सकती है। हातिम उस शाहजादे के लिए उन प्रश्नो का जवाब ढूँढने के सिलसिले मे दूर-दूर की यात्रा करता है। उसकी यात्रा का वर्णन सात कहानियों के रूप मे किया गया है, जिनमे प्रेम, तिलस्म और जादू की घटनाएँ भरी हुई है। रीछ की बेटी और मत्स्यकन्या हातिम से प्रेम करना चाहती है। जिन्न साँप बनकर आसमान से उतरता है और मनुष्य का रूप धारण कर सुन्दरियो मे किसी को अपने लिए चुन लेता है। हरिण और सियार मनुष्य के समान बोलते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों का वेश धारण करती हैं और नेवला भी मनुष्य बन जाता है। हातिम का सौ मन मेवे गटक जाना, अशर्फियो से भरे कुएँ का दिखलाई पडना, कटे हुए सिरो का खिलखिला कर हँसना मामूली बातें है। हर किस्से का शीर्षक दे दिया गया है, जैसे, "पहला किस्सा हातम के जाने का और पहली शर्त बजा लाने का।"

'गुल सनोवर'— यह 'हातिमताई' से बहुत मिलता-जुलता है। शाहजादी मेहर अंग्रेज के पास एक प्रश्न है 'गुल ने सनोवर को क्या किया'। जो इसका उत्तर देगा शाहजादी उससे विवाह करेगी। एक राजकुमार इस भेद का पता लगाने के लिए एक दूर शहर मे जाता है, जहाँ उसे गुल और उसकी बेवफा स्त्री की कहानी मालूम होती है। जीवराम जाट ने इस रहस्य-मूलक कथा का हिन्दी रूपातर किया, जिसका तीसरा सस्करण १८९२ मे निकला।

'किस्सा लैला मजनू' —हैदरी ने उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्ध मे खुसरो की मसनवी के आधार पर उर्दू मे यह पुस्तक लिखी। उत्तरार्ध मे देवकीनदन खत्री ने हिन्दी मे लिखकर हरिप्रकाश यत्रालय से प्रकाशित कराया। अन्य लोकप्रचलित प्रेमाख्यानो की तरह इसमे भी दो विरहाकुल हृदयों का सुकुमार प्रेम वर्णित है पर इसकी अपनी विशेषताएँ है। प्रेमी-प्रेमिका परस्पर-विरोधी परिवारो से आए है। उनका प्रेमससर्ग से अकुरित हुआ है और विवाह मे परिणत होते-होते रह गया है। अश्रु मे धुलकर प्रेम का आदर्श रूप निखर उठा है। खत्रीजी की अलकारहीन भाषा-शैली भाव को सहज सवेद्य बनाने में सफल हुई है।

'मजहबे इश्क' या 'किस्साए गुलबकावली'— उर्दू मे इस नाम से

फारसी 'किस्सए ताजुलमुलुक व गुलबकावली' का अनुवाद १८१३ मे निहाल-चन्द लाहौरी ने किया। 'गुलबकावली' नाम से हिन्दी अनुवाद १८६९ मे बनारस लाइट प्रेस से प्रकाशित हुआ। इसमे ताजुलमुलुक के निर्वासन और गुलबकावली से उसके प्रेम का वर्णन है। इस कथा का एक रूप ऐसा है जिस पर भारतीय रग चढा हुआ है। एक परम रूपवती राजकुमारी थी। एक दिन अपनी सहेलियो के साथ उसे आते देखकर रानी ने कहा कि बकावली (हसी का झुन्ड) आ रही है। उस दिन से उस राजकुमारी का नाम बकावली पड गया। शोणभद्र नामक एक राजा ने योगी के वेश मे आकर बकावली की फुलवारी मे एक अपूर्व फूल लगाकर बदले मे उसे माग लिया। जब उसका विवाह दूसरे से होने लगा तब योगी ने उसे शाप देकर नदी बना दिया और स्वय नद बन गया।

'दास्तान अमीर हमजा'– कहते है, फैजी ने अकबर के मनोविनोद के लिए फारसी मे इस बडे पोथे की रचना की थी। इसमे लगभग सत्तरह हजार पन्ने और आठ दफ्तर है। पहला दफ्तर 'नौशेरवा नामा' उर्दू १८०१ में अनूदित हुआ। पाँचवा दफ्तर 'तिलिस्म होशरुबा' है, जो सात जिल्दो मे है। 'तिलिस्म होशरुबा' की पहली जिल्द उर्दू मे १८८४ मे प्रकाशित हुई। हिन्दी मे उसका अनुवाद 'विचित्र चरित्र' नाम से १८९३ मे नवलकिशोर प्रेस से निकला। एक जिल्द मे ही १८४७ पृष्ठ है। अनुवादक रामरत्न वाजपेयी है। 'दास्तान अमीर हमजा' के आठो दफ्तर हिन्दी मे अनूदित हुए या नही, उसका पता नही चला है। इसी नाम से कालीचरण शर्मा और महेशदत्त शर्मा का जो अनुवाद नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित हुआ वह एक ही पुस्तक के रूप मे है।

अमीर हमजा को केन्द्रीय पात्र बनाकर कही गई इस कल्पित कथा मे प्रेम, साहसिकता, तिलिस्म, ऐयारी और जादू के एक से एक बढकर खेल है। असभव घटनाओ, अतिनाटकीय दृश्यो और अद्भुत परिस्थितियो की योजना मे रचयिता की कल्पना का चमत्कार देखकर दग रह जाना पडता है। वह न तो मन मे विश्वास बढाता है, न हृदय को स्पर्श करता है, केवल कल्पना को उकसाता रहता है। उसकी कथा उसके नायक को थोडी देर के लिए भी छिपा नही पाती है। अमीर मानव होकर भी अतिमानवीय शक्ति से सपन्न है। उसे देखकर इसका अनुमान होता है कि छोटा-सा मनुष्य कितना महान होता है। अमरू ऐयार उसका साथी है, पैगम्बर उसके सहायक है, सुन्दरियाँ

उसे देखकर बेहोश हो जाती है और परियाँ उस पर मरती है। सभी पात्र, सभी घटनाएँ उसके चारो ओर घूमती है। महाकाव्य के नायक से वह कम आकर्षक नही है। मनुष्य या देवता किसी से उसका युद्ध करना विजय प्राप्त करना है। सफलता उसकी चेरी है क्योकि उसके पास ऐसी कमली है जिसे ओढकर वह सबको देख सकता है पर उसको कोई नही देख सकता। वह आँखें बन्द करने पर कही से कही पहुँच सकता है और करामाती बाजू बद बाँध लेने पर किसी से हार नही सकता है। वह उस युग का वीर है जब जादू-टोना, प्रेत-परी देवी-देवता मे विश्वास किया जाता था। उसकी मलका सामती समाज की याद दिलाती है, बगल मे सहेलियाँ, सामने मदिरा का प्याला पास मे कपूरी शमादान। और वह जब मलका को गोद मे बिठाकर शराब पिलाता है और मलका उसे पिलाकर उसके होठ से होठ मिलाती है तब मुस्लिम सस्कृति सजीव हो उठती है।

'बोस्तान ख्याल'—इसमे नौ जिल्दे और चार हजार पृष्ठ है। इसकी रचना राजा के लिए नही बल्कि अपनी प्रेमिका के मनोरजन के लिए मीर तकी ख्याल ने की थी। इसका उर्दू अनुवाद अमान देहलवी और छाटे आगा ने किया। साधारण फारसी-उर्दू जानने वाले हिन्दू भी इसे बडे चाव से पढते थे। रूप-रग मे यह 'दास्तान अमीर हमजा' का छोटा भाई है।

इन कहानियो का मूल आकर्षण रूप और प्रेम है। जादू, तिलस्म, ऐयारी आदि प्रेम के हथकण्डे है। अलौकिक और अद्‌भुत घटनाओ के घटाटोप मे शाहजादे-शाहजादियाँ, जिन-परियाँ, देवी-देवता भटकते फिरते है। कहानी की चौहद्दी पर आकर अतिप्राकृत और प्राकृत तत्त्व मिल जाते है। जिनों का मनुष्य बनना उतना ही आसान है जितना मनुष्यों का पशु बनना। वीरता और साहस पुरुषो मे है, चालाकी और सुन्दरता स्त्रियो मे। कथावस्तु की एकरसता और चरित्र-चित्रण की स्थूलता बहुत खटकती है। यहाँ दैनिक जीवन के मार्मिक प्रसगों के लिए स्थान नहीं है। यह परियों का संसार है जो कल्पना की उड़ान के लिए बना है। लोक-रीति के सम्बन्ध मे दी गई शि का कोई प्रभाव नही पडता। उद्देश्य गम्भीर भावो का संचार करना नही, बाल-कौतूहल को जगाना है। कथा-कौशल समस्त अभावो को छिपा देता है। भ्रमण-वृत्तान्त के रूप मे वर्णित कथाएँ फारसी साहित्य की विशिष्ट देन है। उनसे उनके रचयिताओ के भौगोलिक ज्ञान और वर्णन-शक्ति का परिचय मिलता है।

लोकप्रिय कथाएँ और उपन्यास

भारतीय और अभारतीय लोकप्रिय कथाओ से उपन्यास को प्रेरणा और आदर्श नही मिले। उसका विकास उनकी परम्परा मे नही हुआ, न ही उसकी केन्द्रीय धारा पर उनका प्रभाव पडा। जिस तरह कथा सरित्सागर से सस्कृत गद्यकारो को सामग्री मिली उस तरह उनसे हिन्दी-उपन्यासकारों को नही मिल सकी बल्कि उन्होने मौखिक लोककथा से बहुत कुछ ग्रहण किया। लोकप्रिय कथाओ के देवी-देवता, भूतप्रेत आदि अप्राकृत पात्र मानव-लोक मे आकर मानवीय सुख-दुख, भाव-आवेग से आन्दोलित नही होते थे। मानवता और ऐहिकता के प्रेमी उपन्यासकार उनसे प्रभावित नही हुए, खासकर फारसी कथाओ के अजनबी पात्र और अपरिचित वातावरण उन्हे आकृष्ट नही कर सके। जहाँ भारतीय कथाकारो ने पशु-पक्षी मे भी मानवीय गुणो का समावेश किया वहाँ फारसी कथाकार मानवेतर शक्तियो का चमत्कार विशेष रूप से दिखाते रहे। उनकी कथाओ मे उसे वर्ग के जीवन का आदर्श चित्र था जिसके मनो-विनोद के लिए वे गढी गई थी। इनसे मध्यवर्ग के वस्तुवादी उपन्यास-लेखको की सहानुभूति नही हो सकती थी। भारतेंदु-युग के उपन्यासकार इनसे अत्यन्त निकट रहकर भी दूर रहे।

लोकप्रिय कथाओं ने प्रेमकथात्मक उपन्यासो को प्रत्याशित किया। दोनो मे प्रेमभाव की प्रधानता है। कथानक का ढाँचा भी लगभग एक-सा है। उसमे तीन स्थितियाँ रहती है: दर्शन या सम्पर्क से प्रेम, मिलन मे बाधा, अन्त मे विवाह। पात्रो मे तीन मुख्य है: प्रेमी, प्रेमिका और मध्यस्थ। कथाओ मे नायक-नायिका के सहायक और बाधक अमानवीय तत्त्व हो सकते हैं, उपन्यासो मे मानव-तत्त्व, खासकर नायक-नायिका के मित्र, होते हैं। 'माधवानल कामकदला', 'सालिंगा सदाबृज' की तरह कुछ उपन्यासो के नाम नायक-नायिका सूचक हैं, जैसे, 'चतुर चचला', 'सुन्दर सरोजिनी'। सामाजिक उपन्यास की प्रेमभावना परम्परागत नही है। पुरानी कथाओ मे प्रेम के आदर्श या यथार्थ का अतिवादी रूप है और प्रेमी-प्रेमिका उच्च या निम्न वर्ग के हैं। उपन्यास में प्रेम को मर्यादित रूप मिला, प्रेमी-प्रेमिका मध्यवर्ग से आए और रोमानी वातावरण मे पारिवारिक यथार्थ का रग उभर आया। पुरानी कथापरम्परा मे प्रेमी की विघ्न-बाधा और प्रेमिका के हर्ष-विषाद की जितनी चर्चा की गई है उतनी उनके प्रेम-सम्बन्ध की नही। उपन्यास मे प्रेम सामाजिक सम्बन्ध

का आधार और मानवीय सम्बन्ध का मूल प्रेरक है। पुरानी कथाओ की भाँति कुछ उपन्यासो मे अवैध प्रेम और निम्न कोटि की वासना का वर्णन है किन्तु जहाँ एक मे अश्लीलता की गंध है वहाँ दूसरे मे कला का स्पर्श है।

तिलिस्म, ऐयारी और जादू के उपन्यासो पर फारसी प्रभाव स्पष्ट है। उनकी विशिष्टता यह है कि वे इस प्रकार की लोकप्रिय कथाओ के साहित्यिक रूप है। वे कौतूहल तृप्त करके नही रह जाते, विविध भावो का सचार भी करते है। देवकीनन्दन खत्री ने 'चन्द्रकान्ता' की कथा का बीज 'तिलिस्म होशरुबा' से लिया था।[16] 'चहारदर्वेश' की भाँति 'चन्द्रकान्ता सतति' मे पात्रो की आपबीती से कथा का उद्घाटन हुआ।

वक्ता-श्रोता की प्रणाली मुख्य कथा मे उपकथाओ को निबद्ध करने का कौशल और कलात्मक रचनाविधान भारतीय एव अभारतीय कथाओ के अद्भुत कथा-शिल्प के परिचायक है। इस शिल्प का प्रयोग कुछ विशेष रचनाओ— जैसे, श्रद्धाराम फिल्लौरी की 'भाग्यवती', लाला श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु', विश्वेश्वरानन्द की 'चतुरा की चतुराई'— मे किया गया है परन्तु समष्टित· उसे उपन्यासो मे नही अपनाया गया। फारसी की मसनवी और दास्तान की शैली का भी चलन नही हुआ। कथामाला–शैली का उपयोग विशेषतया किसी कृति का कलेवर बढाने के लिए किया जाता था ताकि अवकाशभोगी वर्ग की रुचि का प्रसादन हो सके। नवयुग के पाठक उस राजा के समान नही थे जिसे कभी अन्त नही होने वाली कथा सुनने का शौक चर्राया था। उपन्यासकारो को नई वस्तु के लिए नये शिल्प का प्रयोग करना पडा।

लोकप्रिय कथासाहित्य का रस कथात्मक अश मे है। उसके रचयिता कथक्कड या किस्सागो थे, जिनका मुख्य उद्देश्य कथ्य को रमणीय और विश्वसनीय बनाकर मनोरजन करना था। प्रारम्भिक उपन्यास-लेखक उनके उत्तराधिकारी होने के कारण कहानी सुनाने की कला जानते थे। देवकीनंदन खत्री और प्रेमचद जैसे प्रतिभाशाली कलाकारो ने उनसे कहानी कहना सीखा था। जिसमे कहानी कहने की सहज शक्ति होती है। वह भी कहानी सुनने या पढने के बाद लिखने मे समर्थ होता है। अत कथाकार किसी न किसी रूप मे पूर्व कथासाहित्य और उसकी कला से प्रभावित होता है। अपने पूर्वजों की भाँति उपन्यासकार भी कथा को रुचिकर बनाने के लिए घटना को प्रधानता देते थे, वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करते थे और उपदेश की छौंक देते थे।

पुराने किस्से-कहानियों की सबसे बडी विशेषता मनोरंजकता थी, जो उपन्यासों को अनायास मिल गई।

इसमें सन्देह नहीं कि नये लेखकों और पाठकों मे उनका प्रचार बहुत दिनों तक रहा और उन्हे पढ़कर वे कहानी पढने का शौक पूरा करते रहे। जैसे-जैसे उपन्यास का विकास होता गया उनसे शिष्ट समाज का सम्पर्क घटता गया। प्रेमचद के उदय के बाद उनकी प्रभावशीलता जाती रही और वे फुटपाथ की शोभा बनकर रह गई। कथासाहित्य के अभाव के दिनो मे जनता का उनसे मनोविनोद हुआ और उगती हुई पीढी की रुचि आक्रान्त हुई। 'चन्द्रकान्ता' की लोकप्रियता के मूल मे वह लोकरुचि थी जो लोकप्रिय कथाओं से बनी थी। लोग जिस ढग की कथा पढने के अभ्यस्त थे उस ढग के उपन्यास के लिए उत्सुक और अधीर हुए।

ग—उद्‌गम और स्वरूप

उपन्यास के पूर्ववर्ती कथासाहित्य के उद्‌गम और स्वरूप पर सामान्य रूप से विचार करना आवश्यक है। उसके चार स्रोत दिखाई पडते हैं: सस्कृत साहित्य, फारसी साहित्य, लोकसाहित्य और अँग्रेजी साहित्य। सस्कृत से प्राप्त सामग्री प्राचीन और मध्यकालीन भारत की सामग्री है जो सम-कालीन समाज और संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत करती है। पौराणिक, नीति-परक और मनोरजन-प्रधान कथाओं का अनुवाद उन्नीसवी शताब्दी के पूर्व से ही आरम्भ हो गया था। उनमे उद्देश्यगत एकता है, यद्यपि उनका विषय धार्मिक भी है और लौकिक भी। पौराणिक कथाओ मे भौतिकता का और लोकप्रिय कथाओ मे धार्मिकता का रग है। वे जीवन के प्रति सन्तुलित दृष्टि-कोण व्यक्त करती हैं और उसे जीने योग्य बनाने का सन्देश देती हैं। फारसी-साहित्य का सम्पर्क दक्खिनी गद्य के माध्यम से आरम्भ हुआ। दक्खिनी गद्यकथा दार्शनिकता-प्रधान होने के कारण विशिष्टता-सम्पन्न है। मुस्लिम जगत के निजंधरी वीर, दानी, बादशाह, प्रेमी आदि को केन्द्र बनाकर लिखी गई कथाएँ स्थितियों, कथानक-रूढियो और शैलियो मे एक-सी हैं। 'रानी केतकी की कहानी' को छोड़कर प्राय सबका वातावरण विदेशी है। ये प्राकृत और अप्राकृत के सयोग से मन पर जादू का असर डालती हैं। लोकसाहित्य से प्रेम और वीरता की रोमानी कथाएँ ली गई, जो मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक सम्पदा थी। इनके नायक-नायिका विशेषतया उच्चवर्गीय समाज

के है पर उनका चित्रण मानवीय यथार्थ और भारतीय आदर्श के धरातल पर हुआ है अतः वे जन-मन का प्रभावित करते रहे है। राजा भोज, विक्रम, नल, भरथरी आदि से सम्बन्धित कथाएँ वास्तव मे जनता की वस्तु है। शायद इनकी जनप्रियता को देखकर ही मुस्लिम लेखको ने इनके अनुरूप अमीर हमजा जैसे निजधरी नायक की कल्पना की थी। अनेक फारसी कथाएँ मध्य-कालीन भारत मे ही रची गई।

भारतीय कथासाहित्य की प्राचीन परम्परा मे नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता है, मध्यकालीन परम्परा मे ऐहिक और मानवीय दृष्टिकोण की पाप-पुण्य, त्याग-विराग के स्थान मे प्रेम-सम्मान, ईर्ष्या-द्वेष का वर्णन आदर्श से यथार्थ की ओर प्रयाण है, जो उपन्यास के लिए शुभ लक्षण है।

सस्कृत, फारसी और लोकप्रिय कथाओ का वर्ण्य विषय पुराना है। महाकाव्य, पुराण, दतकथा, इतिहास आदि से उनके कथानक लिए गए है। पाठ्य पुस्तको के रूप मे लिखित कहानियो मे नवीन वस्तु और विचार की झलक मिलती है। उनके पात्र राजा-रानी न होकर साधारण पुरुष-नारी हैं। वे आधुनिक भारत की आवश्यकता और भावना के अनुकूल है। वे मुख्यतः अग्रेजी साहित्य से ली गई है। इनसे हिन्दी उपन्यास का सीधा सम्बन्ध है। कुल मिलाकर प्रस्तुत अध्याय के कथासाहित्य मे अलौकिकता से लौकिकता का पक्ष प्रबल है। स्वच्छद प्रेम उसका प्राण-रस है। यह प्रवृत्ति उपन्यास की मौलिक प्रवृत्ति रही है।

उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्ध मे उपन्यास की दो प्रमुख धाराएँ फूटी। एक धारा वास्तविक जीवन की पृष्ठभूमि मे मानव-चरित्र का अध्ययन करने लगी और दूसरी चरित्रचित्रण की अपेक्षा अद्भुत घटनाओं को प्रधानता देकर मनोरम कहानी सुनाने मे लग गई। चरित्र-प्रधान उपन्यास ने शिष्ट कथा-साहित्य का और घटना-प्रधान उपन्यास ने लोकप्रिय कथासाहित्य का स्थान ले लिया। पूर्वार्ध में उपन्यास का आगमन नहीं हुआ लेकिन उसका मार्ग बन गया। वह हिन्दी कथासाहित्य के इतिहास का निर्णयात्मक काल है। उस समय नवीन गद्य और मुद्रण यंत्र का प्रचार हुआ[17], जिनसे उपन्यास को जीवनाधार मिला। ग्रियर्सन ने इस काल को 'नवजागरण का काल'[18] ठीक ही कहा है।

टिप्पणियाँ

१– तब घर मे बैठे रहे, नाहिंन हाट-बजार ।
मधुमालती, मृगावती, पोथी दोय उचार ।।

—रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृ० ९९ मे उद्धृत

२– ब्रजभाषा, राजस्थानी, अवधी, खडी बोली और मैथिली का साहित्य हिन्दी का साहित्य माना जाता है । अवधी मे गद्यकथा उपलब्ध नही है । मैथिली हिन्दी से भिन्न स्वतन्त्र भाषा है, जिसकी अपनी लिपि और अपना साहित्य है । अत इन पर विचार नही किया गया है ।

३– डा० बाबूराम सक्सेना : 'दक्खिनी हिन्दी' (१९५२), पृ० ८५

४– श्रीराम शर्मा : 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' (१९५४), पृ० ४०६

५– 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृ० ४०५

६– मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा', पृ० १८०

७– उदाहरण के लिए, सूरति मिश्र ने 'वैतालपचविशतिका' का ब्रजभाषा मे पद्यानुवाद किया ।

८– 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृ० ४५३

९– देखिए रामलोचन शरण द्वारा सपादित 'बिहार का साहित्य' (१९२६)

१०–'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृ० ४३६

११–'उपन्यास', 'हिन्दी प्रदीप', जनवरी १८८२, पृ० १९

१२–उपन्यास-लेखको ने अपनी रचनाओ मे लोकप्रिय कथा-ग्रथों का विशेष स्थलो पर निर्देश किया है और अपने पात्रो को उनका अध्ययन करते हुए दिखाया है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे लेखको और पाठको के बीच प्रचलित थे । उदाहरण के लिए राधाचरण गोस्वामी की 'बालविधवा' मे 'चहारदर्वेश' का उल्लेख (भारतेदु', जनवरी–फरवरी–मार्च, १८८५, पृ० १५३) है । लाला श्रीनिवासदास का नायक 'अलिफलैला' का 'सोते जागते का किस्सा' पढता है ('परीक्षागुरू', पृ० ३८) ।

१३–'अनेक शताब्दी के मुसलमानो के साथ ससर्ग से जहाँ बकावली, मीरहसन, चेहारदुर्वेश, हातिमताई ऐसे ग्रंथो का जन साधारण मे आदर था… …'

—शिवनन्दन सहाय : 'हरिश्चन्द्र', पृ० १२०

१४–'छोटी-छोटी कथाओ की पद्धति भारत मे बहुत प्राचीन काल से चली आती थी। बौद्धो और जैनों के धर्म-ग्रंथों के निर्माण-काल तक इस पद्धति का पूर्ण विकास हो चुका था। ६०० ई० से पूर्व बहुत सी कथाएँ बन चुकी थी, जिनका महाभारत और पुराणों आदि में समावेश है।

—गौरीशकर हीराचन्द ओझा . 'मध्यकालीन भारतीय सस्कृति', पृ० ६१

१५–हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी-साहित्य', पृ० ३६७

१६–प्रेमचन्द : 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० ६१

१७–आधुनिक गद्य के प्रवर्तक लल्लूलाल मुद्रणयन्त्र के भी सस्थापक थे। इस कार्य मे उन्हें एक ऐसे अग्रेज से सहायता मिली थी जिसे उन्होने गंगा मे डूबने से बचाया था।

18– "It was the period of renaissance, of the practical introduction of the printing press into Northern India and of the foundation of the modern school which now shows such commendable activity".

—'द मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्थान', पृ० १०७

———

२

उपन्यास : एक नई कला

पूँजीवादी युग की देन

सभ्यता के विकास के समानान्तर ही साहित्य की विधाओं का विकास हुआ है। कहानी कहना और सुनना मनुष्य का स्वभाव है, इसलिए उसका जन्म भाषा के जन्म के साथ हुआ होगा। लिपि के आविष्कार के पूर्व आदिम मानव-समाज मे उसका प्रचलन रहा होगा। उसका इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानवता का इतिहास। सभ्य-असभ्य सभी जातियो मे उसकी परम्परा अक्षुण्ण रही है। संसार के प्राचीनतम ग्रथो मे उसके बीज विद्यमान है। पुराण, जातक, कुरान, बाइबिल आदि धर्मग्रथो मे उसके द्वारा नीति और रीति की शिक्षा सरल, मार्मिक ढग से दी गई है। यद्यपि कल्पना-प्रसूत साहित्य मे कथासाहित्य सर्वाधिक प्राचीन, समावेशी और सपन्न है तथापि उसका स्वतंत्र अस्तित्व काव्य और नाटक के बाद मिलता है और उसका जो रूप अग्रेजी मे 'नोवेल' तथा हिन्दी मे 'उपन्यास' के नाम से अभि-हित है, वह तो आधुनिक सभ्यता की उपज है।

जैसे-जैसे सभ्यता भौतिकता का आवरण ग्रहण करती गई, कथा प्रस्तुत करने की रीति बदलती गई। प्रथम अलिखित कथा से प्रथम मुद्रित उपन्यास तक कथासाहित्य को विकास की अनेक अवस्थाएँ पार करनी पडी। उनमे वे अवस्थाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं जब उसने लिखित रूप धारण किया, जब उसने स्वतंत्र सत्ता प्राप्त की और जब उसके पद्य का राजमार्ग छोड़कर गद्य का जनपथ ग्रहण किया। इस विकास-क्रम के बाद विशिष्ट

कला के रूप मे उपन्यास का जन्म हुआ। साहित्यिक इतिहासकार इसके मूल की खोज संस्कृत, ग्रीक या लैटिन के रोमास[1] मे कर सकते है पर उससे इसका सीधा सम्बध नही दीखता। ग्यारहवी शताब्दी मे जापानी लेखिका मुरासाकी शिकाबू लिखित 'गेंजी मोनोगतरी'ससार का सबसे पुराना उपन्यास माना जाता है।[2] सामती समाज का यथार्थ चित्रण करने वाला यह उपन्यास सामंती युग की कलाकृति है पर उपन्यास का वास्तविक विकास पूँजीवादी युग मे ही संभव हो सका।

जैसे कलात्मक विनोद का प्राचीनतम साधन महाकाव्य है वैसे ही उसका नवीनतम साधन उपन्यास है। उपन्यास ने मानवीय अनुभव को सपूर्णता के साथ प्रस्तुत करने मे महाकाव्य का स्थान ले लिया है और इस अर्थ मे उसे महाकाव्य का उत्तराधिकारी मानना उचित ही है।[3] प्रकृत महाकाव्य मे सभ्यता की उस अवस्था का दिग्दर्शन है जब जीवन में सामजस्य, सरलता और संपन्नता थी। पूँजीवादी सभ्यता की विषमता, संघर्ष, जटिलता और विविधता की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास सर्वथा सक्षम और योग्य था। पूँजीवाद ने उसे उचित उपादान, उपयुक्त माध्यम, और प्रचारात्मक साधन प्रदान कर विश्व-साहित्य का अंग बना दिया। उत्पादन के साधन मे परिवर्तन होने से व्यक्ति और समाज की समस्याएँ बढी, सामाजिक विषमता ने व्यक्तिगत विशेषता को जन्म दिया, मुद्रण-यत्र का प्रचार हुआ और अवकाश की वृद्धि हुई। फलत: उपन्यासकारो को नई कथा-सामग्री, विभिन्न प्रकार के पात्र और पाठक मिले। काडवेल के अनुसार उपन्यास के विकास का आधार श्रम-विभाजन है।[4] वास्तव मे वह आर्थिक परिवर्तन से उद्भूत नये मनुष्य का नया साहित्य है।

यूरोप मे चौदहवीं-सोलहवी शताब्दियों के बीच नवजागरण के फलस्वरूप समाज और साहित्य मे अपूर्व क्राति हुई। सामतवाद के ध्वंस-शेष पर पूँजीवाद का आविर्भाव हुआ और उसके साथ ही साहित्य में मध्ययुग का अन्त और नवयुग का आरम्भ हुआ। उपन्यास इस नवयुग की सर्वोत्तम सृष्टि है। जिस तरह नवजागरण की लहर इटली से उठकर यूरोप के अन्य देशो मे फैली, उसी तरह उपन्यास का प्रचार इटली से धीरे-धीरे स्पेन, फ्रास, इंगलैन्ड आदि देशों मे हुआ।[5] इटली यूरोप का पहला पूँजीवादी देश था। वहाँ उपन्यास की उद्भावना स्वाभाविक और सार्थक थी। उस देश के प्रसिद्ध लेखक बोकैशियो का 'डेकामेरन'(१३५३) उपन्यास का प्रारूप था।

लगभग दो सदियों तक वहाँ बोकैशियो का अनुकरण किया गया। इस साहित्यिक परिपार्श्व में फ्रास मे रैबेले, स्पेन मे सरवाते और इगलैंड मे फीलिंडग ने क्रमशः 'गरगतुआ' (१५३२), 'डोन क्विग्जोट' (१६०५) और 'टोम जोन्स' (१७४९) लिखकर महान प्रारम्भिक प्रयोग किए।

इस प्रकार उपन्यास का पुराना नमूना पूर्व मे मिलता है किन्तु वर्तमान रूप मे वह पश्चिम मे उत्पन्न हुआ। भारत मे उसका आयात अंग्रेजो के साथ हुआ। भारतवासियो ने अग्रेजी फैशन की तरह अंग्रेजी-उपन्यास को अपना लिया। यूरोप की भाँति भारत मे भी उपन्यास नवजागरण की विशिष्ट देन है। इस प्राचीन देश के लिए कथा-कहानी बहुत पुरानी वस्तु है परन्तु उपन्यास नवलेखन है, यद्यपि कुछ विद्वान उसे कथासाहित्य की भारतीय परम्परा मे मानते हैं।

पुरानी कथा-परम्परा और उपन्यास

पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने अमर कोषकार की परिभाषा ('उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्') के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया[6] कि 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग पहले किया गया है इसलिए प्राचीन भारत मे उपन्यास का प्रचलन था। पर अमरकोष मे 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग उपन्यास के आधुनिक अर्थ मे नही किया गया है। वहाँ 'वाङ्मुखम्' का अर्थ है 'प्रस्तावना'। फिर, गोस्वामी जी ने 'दशकुमारचरित्', 'वासवदत्ता', 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' को उपन्यास मानते हुए कहा है कि "जिस प्रकार साहित्य के प्रधान अंगों मे नाटक का प्रचार प्रथम यहाँ ही हुआ था, उसी तरह उपन्यास की सृष्टि भी प्रथम यही हुई थी।"[7]

वास्तविकता तो यह है कि पश्चिमी सम्पर्क के पूर्व हमारे देश मे आधुनिक ढग के उपन्यास और कहानी नाम से दो भिन्न साहित्याग नही थे। दडी ने कथा-आख्यायिका मे जो अन्तर बताया वह तात्त्विक अन्तर नही था। उन्होने स्वयं यह कहकर उसका निराकरण कर दिया,— "तत् कथाऽख्यायिकेत्येक जातिः"।[8] अग्निपुराण में गद्यकाव्य के पाँच प्रकार माने गये हैं,[9] जिनमे अन्तिम तीन कथा में अन्तर्मुक्त हो जाते है। कथा-आख्यायिका मे शास्त्रीय दृष्टि से भेद स्पष्ट नही किया गया है तथापि बाण ने कल्पित 'कादम्बरी' और ऐतिहासिक 'हर्षचरित' लिखकर और उन्हे क्रमशः कथा और आख्यायिका मानकर व्यावहारिक दृष्टि से भेद किया है। किन्तु यह

भेद भी शैलीगत न होकर विषयगत है। साहित्य-शास्त्र मे कथा-आख्यायिका की न तो विस्तृत व्याख्या या कलागत विवेचना की गई है और न उनके लिए उपन्यास शब्द का प्रयोग हुआ है बल्कि उन्हे काव्य के अन्तर्गत रख दिया गया है।

हिन्दी को उत्तराधिकार में संस्कृत से तीन प्रकार की कथाएँ मिली : उपदेश–प्रधान ('पञ्चतन्त्र'), मनोरजन–प्रधान ('कथासरित्सागर'), और भाव-प्रधान ('कादम्बरी')। इनमे प्रथम गद्यपद्यमय हैं, द्वितीय पद्यमय और तृतीय गद्यमय। सस्कृत के अति समृद्ध कथासाहित्य मे 'दशकुमारचरित', 'कादम्बरी' और 'वासवदत्ता' जैसी गिनी-चुनी बड़ी गद्यकथाएँ ही उपन्यास के निकट लाई जा सकती है। इन्हे गद्यकथा न कहकर गद्यकाव्य कहना अधिक उचित है क्योंकि ये गद्य मे लिखी गई है पर इनकी शैली में काव्यकला क दर्शन होते है। दडी ने समास को गद्य का जीवन कहा था,[10] वाण ने 'विकटाक्षरबन्ध' को कथा का आवश्यक गुण माना था[11] और सुबन्धु ने अपनी कृति के अक्षर-अक्षर मे श्लेष की छटा दिखाने का प्रण कर लिया था।[12] सिद्धान्ततः वाण ने कथा की सरलता और स्वाभाविकता को महत्त्व दिया था और उसकी उपमा पति के पास प्रेम से स्वय आने वाली वधू[13] से दी भी पर अपनी कलाकृतियों में वे अपनी उपमा को सार्थक नही कर सके। विद्वानो द्वारा विद्वानों के लिए रचित सस्कृत गद्यकाव्य का रस चमत्कार में है। उसमे कथा का अंश गौण और वर्णन का अश मुख्य है। जितना ध्यान रस-सचार और अलकरण-सज्जा की ओर दिया गया है उतना शील-निरूपण की ओर नही। जिन विशेषताओं के कारण उसे साहित्य के उच्चासन पर प्रतिष्ठित किया जाता है वे उपन्यास मे दुर्लभ हैं। उसे उपन्यास की धूल-भरी चौहद्दी पर खीचकर लाना उसका अपमान करना है। एक 'दशकुमारचरित' ही अपने सुगठित कथानक, सजीव चरित्र-चित्रण, निराडम्बर शैली और यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण आधुनिक उपन्यास की कुछ आवश्यकताओ की पूर्ति करता है लेकिन वह भी अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वो से पूर्ण है। उसे अधिक से अधिक पश्चिमी ढग का 'पिकारेस्क रोमास' कहा जा सकता है। शास्त्रीय और व्यावहारिक दोनो दृष्टियो से सस्कृत गद्यकाव्य आधुनिक उपन्यास की कोटि मे नही आते। कीथ ने अपने इतिहास मे इनका विवेचन 'महान रोमांस' के रूप मे किया है।

गोस्वामीजी की भाँति गहमरीजी भी उपन्यास को पश्चिम की देन

नही मानते । उनके अनुसार 'नाटक और उपन्यास विदेशी वस्तु नही है और न हमारे देश मे विलायत की नकल से चले हैं ।'[14] उन्होने यह स्पष्ट नही किया कि उपन्यास विदेश से नही आया तो कहाँ से आया ? यदि उनका अभिप्राय यह हो कि हिन्दी मे उपन्यास सीधे अंग्रेजी से न आकर बगला के माध्यम से आया तो उनका कथन कुछ अशो तक ठीक है और यदि यह हो कि सस्कृत से आया तो निराधार है क्योकि सस्कृत कथासाहित्य और हिन्दी-उपन्यास के आदर्शो मे मेल नही है। गोस्वामीजी और गहमरीजी के उपन्यास भी सस्कृत शैली के गद्यकाव्य न होकर अग्रेजी शैली के उपन्यास है। वे सस्कृत गद्यकाव्य की भाँति भाव-प्रधान नही है बल्कि अग्रेजी उपन्यास के समान घटना-प्रधान या चरित्र-प्रधान है। उन्होने ऊपर जो कुछ कहा है वह प्रत्येक वस्तु को भारतीय सिद्ध करने की समकालीन प्रवृत्ति का द्योतक है।

भारत कविता, कहानी और नाटक का जन्मस्थान माना जा सकता है, सस्कृत गद्य प्रबन्धको को उपन्यास का प्राचीन प्रतिरूप कहा जा सकता है, किन्तु उपन्यास यत्र-युग की उपज है और आधुनिक यूरोप मे विकसित हुआ है। सस्कृत-हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान और अनन्य प्रेमी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट कहा है .

यह सस्कृत भाषा के प्राचीन ग्रथ साहित्य मे भी पाया जाता है। पर अकुर रूप मे ही उसके दर्शन होते है। प्रकृत उपन्यास-साहित्य के जनन, उन्नयन और प्रचलन का श्रेय पश्चिमी देशो ही के लेखको को है।[15]

'कादम्बरी', 'वासवदत्ता' आदि उपन्यास हो या गद्यकाव्य, उपन्यास विदेशी वस्तु हो या भारतीय, मूल प्रश्न तो यह है कि हिन्दी मे उपन्यास-लेखन संस्कृत कथा-आख्यायिका के नमूने पर आरम्भ हुआ या अग्रेजी उपन्यास के नमूने पर ? इस सम्बन्ध मे गोस्वामीजी और गहमरीजी से भी पहले उपन्यास और उसकी आलोचना लिखने वाले पं० बालकृष्ण भट्ट के मत से अधिक ठोस और प्रामाणिक मत क्या हो सकता है ?

हम लोग जैसा और बातों मे अग्रेजी की नकल करते जाते है उपन्यास का लिखना भी उन्ही के दृष्टांत पर सीख रहे हैं।[16]

अस्तु, हिन्दी-उपन्यास का जन्म संस्कृत गद्यकाव्य का पुनर्जन्म नहीं था। हमारे उपन्यासकारो ने अंग्रेजी उपन्यास या उस पर आधारित बंगला उपन्यास के ढग पर उपन्यासों की रचना की। 'रहस्यकथा' (१८७९) से

लेकर 'अपने-अपने अजनबी' (१९६१) तक की परम्परा पश्चिमी ढग के उपन्यासो की परम्परा है। हमारे मूर्धन्य आलोचक भी एक स्वर से स्वीकार करते है[17] कि उपन्यास की कला पश्चिम से आई है। इसमे सदेह नही कि प्रारम्भिक उपन्यासकार सस्कृत गद्यकाव्य से परिचित थे और उन पर उसका सीधा या बगला माध्यम से कुछ प्रभाव पडा किन्तु यह प्रभाव उस समय परिलक्षित हुआ जब पश्चिमी आदर्श पर उपन्यास की रचना आरम्भ हो चुकी थी। संस्कृत गद्यकाव्य का अनुवाद भी अग्रेजी उपन्यास के प्रचलन के उपरान्त हुआ था। सामान्यतया रूप-गुण के अतिरंजित वर्णन और विशेषतया नारी और प्रकृति के अलंकरण में उपन्यासकार वाण और सुबन्धु के अनुगामी जान पडते है। उनकी वर्णन-शैली अग्रेजी प्रभाव की सूचना नही देती क्योकि अग्रेजी उपन्यासकारो ने शैली के प्रति विशेष मोह प्रदर्शित नही किया है।

कुछ आलोचक हिन्दी-उपन्यास की परम्परा का मध्यकाल से मानते है। मिश्रबन्धु की सम्मति मे 'उपन्यास-विभाग चलता तो पहले से था और प्रौढ तथा अलकृत काल वाले कुछ ग्रथ ऐसे ही थे, तथापि इसका प्रचार भारतेंदु के समय से ही माना जा सकता है'।[18] डा० श्यामसुन्दरदास के कथन में भी यह अर्तविरोध है, 'हिन्दी के उपन्यास आधुनिक समय की उत्पत्ति है। परन्तु ध्यान से देखने पर इनकी परम्परा प्रेमाख्यानक कवियों के पद्यो से ही आरम्भ होती दिखाई देती है'।[19] डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' मे उपन्यास की सूची देते हुए 'पद्मावत', 'चित्रावली' आदि को 'प्राचीन उपन्यास' के अन्तर्गत रखा है। श्री कृष्णशंकर शुक्ल तथा श्री शिवनारायण लाल श्रीवास्तव 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते है।[20]

मिश्रबन्धु के कथन से यह स्पष्ट नही होता कि प्रौढ माध्यमिक कला तथा अलकृतकाल के किन ग्रथो को वे उपन्यास मानते हैं। यदि उनका अभिप्राय उक्त कालों के महाकाव्य, कथाकाव्य और वर्णनात्मक काव्य से हो तो वे उपन्यास नही कहे जा सकते और यदि गद्य रचनाओं से हो तो अब तक ऐसी कोई रचना नही मिली है जिसे उपन्यास की कोटि में रखा जा सके। जिस तरह कतिपय अग्रेज आलोचक उपन्यास और रोमांस का सम्बन्ध जोड़ते हैं उसी तरह डा० श्यामसुन्दरदास ने प्रेमाख्यानक काव्य को 'रोमास काव्य' के निकट लाकर उसका सम्बन्ध उपन्यास के साथ जोड़ दिया है, जो उचित प्रतीत नही होता। उपन्यास गद्यकथा है जब कि प्रेमाख्यानक काव्य पद्यकथा

है । पद्य मे नाटक तो कई लिखे गये हैं, अब तक उपन्यास एक भी नही लिखा गया है । पद्यबद्ध उपन्यास जैसी कोई साहित्यिक वस्तु नही है । गद्यकथा को गति, विस्तार और आधार प्रदान करता है इसलिए उपन्यासकार उसके माध्यम से कहानी सुनाने के साथ ही व्यक्ति और वातावरण का चित्रण कर पाता है । पद्य मे ऐसी सम्भावना नही है । कथाकाव्य और उपन्यास मे न केवल माध्यम का बल्कि उपादान और दृष्टिकोण का भी अन्तर है ।

गद्य का आवरण ग्रहण करने से भी कोई रचना उपन्यास नही बन जाती । यदि गद्यकहानी होने से 'रानी केतकी की कहानी' उपन्यास हो सकती है तो 'नासिकेतोपाख्यान' भी उपन्यास कहलाने का दावा कर सकता है । 'रानी केतकी की कहानी' को उपन्यास मानने का एक कारण यह भी हो सकता है कि वह एक बडी कहानी है । किन्तु वह आकार मे उपन्यास को भले ही छू ले प्रकार मे उससे दूर है । माध्यम, आकार और गठन उपन्यास के प्रत्यक्ष परिचायक अवश्य होते है पर केवल उनके आधार पर उसका स्वरूप सुनिश्चित करना भ्रामक है । कई बडी कहानियाँ लघु उपन्यास से बडी होती हैं और कई लघु उपन्यास बडी कहानी से बडे होते है । उनकी विभिन्नता का मूलाधार आकार नही है । फार्स्टर के मत से '५०००० शब्दो से अधिक की कोई कल्पित गद्य रचना उपन्यास है' ।[21] इस परिभाषा के अनुसार बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' लगभग १०००० शब्दो की गद्य रचना होने के कारण उपन्यास की पंक्ति मे नही आ सकता है । यह एक कामचलाऊ परिभाषा है । इसे आधार मानने पर आलोच्यकाल के अनेक छोटे उपन्यास लम्बी कहानियो मे गिने जाएँगे । हिन्दी-उपन्यास के आरम्भिक काल मे उपन्यास और कहानी के बीच रेखा खीचना कभी-कभी अत्यन्त कठिन हो जाता है । उनका भेद स्वरूप मे उतना नही जितना विषय मे है । जैसे-जैसे उपन्यास का विकास होता गया, यह भेद स्पष्ट होता गया और कहानी तथा उपन्यास भिन्न साहित्य-रूप बन गए । कहानी जीवन का खण्डचित्र है । उपन्यास मे जीवन की विविधता, विराटता और पूर्णता रहती है ।

उपन्यास का रूपविधान

उपन्यास के लिए प्रयुक्त अग्रेजी शब्द 'नोवेल' उसकी विशेषता का बोधक है । इस शब्द का अर्थ होता है नवीन । उपन्यास साहित्य का प्राचीन नही, नवीन रूप है । नवीनता उसका मूल आकर्षण है । हिन्दी-उपन्यास तीन

पीढियाँ देख चुका है। हर पीढ़ी के लेखको ने अपने पूर्ववर्ती लेखको को पुरानपथी मानने का साहस किया है। प० अविकादत्त व्यास को सस्कृत कथा-आख्यायिका इतनी नीरस प्रतीत हुई कि उन्होने 'वासवदत्ता' के सम्बन्ध मे लिखा कि 'कवि को कहानी बाँधना भी न आया'।[22] प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' मे एक मौजी पात्र से कहवाया था कि अनुवादो को निकाल दिया जाय तो हिन्दी मे 'चन्द्रकान्तासतति' के सिवा और कुछ रहता ही नही। और आज कुछ नये लेखको की दृष्टि मे प्रेमचन्द की रचनाएँ भी पुरानी पड़ गई है। अपने पूर्वजो की आलोचना, उपहास और निंदा करना अपने को श्रेष्ठतर घोषित करने का प्रयास तो है ही, नवीनता के प्रति आग्रह व्यक्त करना भी है।

वास्तव मे उपन्यास जीवन के समान ही गतिशील और परिवर्तनशील है। उसमे जीवन की परिवर्तित परिस्थितियो के प्रति अपने को अनुकूल बनाने की अपूर्व क्षमता है। उसका रूपविधान सामयिक परिवेश और साहित्यिक प्रयोग से हुआ है। पूंजीवादी समाज की अवस्थाओं के अनुरूप ही उसके स्वरूप मे परिवर्तन होता गया है। उन्नीसवी सदी मे पूजीवाद प्रारम्भिक अवस्था मे था, अत. उपन्यास की रूपरेखा सुनिश्चित नही हुई थी। प्राचीन शास्त्रीय नियमो के बन्धन से मुक्त होने के कारण वह स्वय अपने नियमों का निर्माण और उल्लघन करता आया है। उसमे स्वतन्त्रता और नमनशीलता है, इसलिए नये-नये प्रयोगो के लिए गुजाइश है। उसमें कुछ ऐसी शिल्पगत विशेषताएँ है जो उसे संस्कृत गद्यकाव्य, मध्यकालीन हिन्दी कथाकाव्य और पूर्व की गद्यकथाओं से अलग करती है। इन विशेषताओं के आधार पर उसके व्यक्तित्व की भलीभाँति परख की जा सकती है।

उसके छः अग है : कथावस्तु, पात्र, वर्तालाप, वातावरण, उद्देश्य और शैली। ये अग परस्पर इतने सम्बद्ध हैं कि एक दूसरे से अलग नही किए जा सकते। अलग कर देखने से जो अवयव नगण्य और प्रभावहीन प्रतीत होते हैं उनसे निर्मित होने पर एक रचना अपनी संपूर्णता मे सार्थक, सुन्दर और सजीव हो जाती है, जैसे दूब पर ओसकण। हेनरी जेम्स की मान्यता है कि उपन्यास एक जीवित वस्तु है और उसके एक अग में दूसरा निहित रहता है।[23] विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए भिन्न-भिन्न अगों या तत्त्वों का विवेचन करना आवश्यक हो जाता है।

कथानक

कथानक उपन्यास का मेरुदण्ड है। उसकी नवीनता उपन्यास की प्रमुख

विशेषता है और उसे पुरानी कथा-परम्परा से पृथक करती है। सस्कृत गद्य-काव्य का कथानक प्रख्यात है। उपन्यास के पूर्व हिन्दी मे लिखित गद्यकथाओं का विषय परम्परागत है। 'रानी केतकी की कहानी' भी प्रेमाख्यान परम्परा की एक कड़ी है। वह या तो साहित्यिक परिधान मे लिपटी हुई लोककथा है या लोककथा के सादृश्य पर गढ़ी हुई कथा है। उपन्यास की कथावस्तु जीवन की पुस्तक से ली गई, जिसमे नित नए पृष्ठ जुडते रहते है। इसलिए उसमे नवीनता का अभाव नही हुआ। असभव, असत्य, सभव, सत्य मे वह सभव और सत्य को लेकर पुरानी कथाओ से अलग हो गया। दोनो मे उतनी ही भिन्नता है जितनी सत्य और कल्पना मे। उपन्यास केवल कथा नही है, जीवन की कथा है। उसमे अद्भुत और अपरिचित घटनाओ के बदले साधारण और परिचित घटनाओ का वर्णन रहता है।

अमरीकी आलोचक एडमंड विलसन के कथनानुसार "कला वह है जो अनुभव को अर्थ प्रदान करे।"[24] उपन्यास-कला जीवनानुभव को वाणी प्रदान करने मे है। स्मृति और कल्पना अनुभव के ही अग हैं, जिनकी सहायता से शब्दों का ससार बसाया जाता है। आदि उपन्यासकारों ने परम्परागत कथावस्तु को छोडकर व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कथावस्तु का निर्माण किया। लाला श्रीनिवास दास सेठो के सम्पर्क मे रह चुके थे इसलिए 'परीक्षागुरू' मे उन्होने व्यापारी वर्ग का चित्र क्या अकित किया निजी अनुभव को ही व्यक्त किया। देवकीनदन खत्री ने 'चन्द्रकाता' मे 'अपने गयाजी की जवानी के तजुर्बे और काशी मे आने पर अपनी आँखें देखी हुई जगलों की बहार का वर्णन किया है'।[25] किशोरीलाल गोस्वामी 'दूसरों से बोल कर लिखाते रहते थे। लिखाते समय उसी तरह ओजमय शब्दों मे बोलते थे और कहते थे कि यह प्लाट स्वयं मेरा देखा है और उसका मैंने अनुभव किया है'।[26] कुछ लेखकों ने आत्मानुभव को इतना महत्त्व दिया कि उपन्यासों के रूप मे आत्मचरित्र लिख दिया। ठाकुर जगमोहन सिंह ने 'श्यामास्वप्न' के समर्पण में उसे अपने जीवनचरित्र की सरिता का हंस कहा है और ब्रजनन्दन सहाय ने अपने 'सौदर्योपासक' को अपनी 'जीवनी का एक पृष्ठ'। राधाकृष्णदास ने 'नि:सहाय हिन्दू' के मदनमोहन और बालकृष्ण भट्ट ने 'सौ अजान एक सुजान' के चन्द्रशेखर से तादात्म्य स्थापित किया है। मेहता लज्जाराम शर्मा ने अपने उपन्यासों की भूमिकाओं मे लिखा है कि उनके उपन्यास किसी पुस्तक के आधार पर नही लिखे गए हैं, वे कल्पना

की उपज है।

कुछ लेखको ने अपनी कच्ची सामग्री जीवन से नही बल्कि इतिहास, पुराण और कथासाहित्य से ली। पर यह स्मरणीय है कि आरम्भ मे समकालीन सामाजिक जीवन को ही प्रमुखता मिली तथा अतीत का प्रत्यक्षीकरण और पुनर्निर्माण भी वर्तमान की दृष्टि से किया गया। इससे ऐतिहासिक उपन्यासो मे भी सामयिकता का समावेश हो गया और उनका सम्बन्ध सुदूर अतीत से न होकर मुख्यत· मुगलकाल से रहा। उनमे इतिहास से अधिक कल्पना और सत्य से अधिक सम्भावना को स्थान मिला है। वे जातीय गौरव की गाथा या शौर्याश्रित प्रेम का आख्यान है। और इसलिए विशुद्ध ऐतिहासिक न होकर राजनीतिक और रोमांटिक हैं। तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास मे भी नवीनता की ओर रुझान है, जैसा कि 'चन्द्रकान्ता' की भूमिका से मालूम होता है।

साहित्य मे मौलिकता का महत्त्व सर्वमान्य है। उपन्यास की उत्कृष्टता कथानक की मौलिकता पर निर्भर करती है। जिम उपन्यासकार के अनुभव का आयाम जितना ही बडा होता है उसकी कथावस्तु मे उतनी ही विविधता और नवीनता होती है। आलोच्यकाल के उपन्यासकारो ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रो से वस्तु ग्रहण की और इसलिए उनकी रचनाओ मे सहज सजीवता है। उनमे अधिकाश ऐसे है जिनके अनुभव मे व्यापकता तो है, गहराई नहीं है। उन्होने मानवीय मनोभावो और शाश्वत समस्याओं की ओर विशेष ध्यान नही दिया है। अनुभव की समृद्धि के साथ कल्पना की शक्ति भी अपेक्षित है। इसके अभाव मे अनेक उपन्यासकार परिचित परिस्थितियों और दृश्यो का मार्मिक चित्रण नही कर सके, अज्ञात परिस्थितियों और दृश्यो की बात तो दूर रही। बहुत-से गौण लेखको ने लोकप्रिय लेखको के वस्तुतत्त्व का अनुकरण या अपहरण किया है।

इन दोषों के बावजूद एक गुण प्रायः सभी उपन्यासकारो मे पाया जाता है और वह किसी भी साहित्यकार का प्रथम आवश्यक गुण है। वे अपने और अपने पाठको के प्रति ईमानदार हैं। उनकी रचनाओ मे साहित्यिक सौदर्य चाहे न हो, अनुभूति की सच्चाई अवश्य है। वे देखी, सुनी और जानी हुई बातों को ही प्रस्तुत करते हैं। कहते हैं, फ्रेंच प्रकृतवादी फ्लाबेय ने अपने उपन्यास की पृष्ठभूमि की प्रामाणिकता के लिए मिश्र की यात्रा की थी। रामजीदास वैश्य ने 'फूल मे काँटा' नामक उपन्यास मे इंगलैन्ड के

दृश्य का वर्णन करने के लिए इंगलैन्ड की यात्रा तो नही की पर एक अग्रेजी पुस्तक पढकर आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लिया। यह कोई आवश्यक नही है कि महान उपन्यासकार के अनुभव का क्षितिज विस्तृत हो। यदि उसमे रचनात्मक प्रतिभा है तो अपने सीमित ज्ञान के सहारे वह उच्चकोटि के उपन्यास की सृष्टि कर सकता है। अग्रेजी उपन्यास-लेखिका जेन आस्टेन ने उस दृश्य का वर्णन नही किया है जिसमे केवल पुरुष हो। सच्चाई के प्रति इतनी निष्ठा नही भी हो तो उपन्यासकार मानव-जीवन की उन घटनाओं और क्रियाओ को आधार बनाकर सफल हो सकता है जो लोगो का मर्म स्पर्श कर सहानुभूति उत्पन्न कर सकें। किसी रचना का स्थायी मूल्य इसमें निहित है कि उसमे किस प्रकार के उपादान का उपयोग किया गया है।

उपन्यास को कला वस्तु के चयन और विन्यास से आरम्भ होती है। उपन्यासकारो ने पुराने विषय को कल्पना मे रंगकर नवीन बना दिया है। देवकीनन्दन खत्री ने 'दास्तान अमीर हमजा' के कुछ दृश्यो को नया और अनोखा रूप प्रदान किया है। किशोरीलाल गोस्वामी ने कई ऐतिहासिक उपन्यास प्रसिद्ध घटनाओ के आधार पर लिखे फिर भी उनमे मौलिकता और रोचकता है। प्रख्यात या परम्परागत कथानक मे भी रस होता है लेकिन उसका सचार करने के लिए कल्पना और कला का विशेष उपयोग करना पडता है। प्रेमचद का कहना था कि "नये कथानक मे वह रस, वह आकर्षण नही होता जो पुराने कथानको मे पाया जाता है। हाँ, उसका कलेवर नवीन होना चाहिए। 'शकुन्तला' पर यदि कोई उपन्यास लिखा जाय, तो वह कितना मर्मस्पर्शी होगा, यह बताने की जरूरत नही।"[27] प्राचीन कथा नवीन कलेवर धारण कर मौलिक कथा से अधिक नहो तो उसके समान आकर्षक हो सकती है क्योकि वह सनातन सत्य से पूर्ण होने के कारण अक्षय सौन्दर्य और सतत आनन्द की वस्तु होती है। सच तो यह है कि कोई कथानक पूर्णतः मौलिक कहा नही जा सकता। कहते है, विश्व के कथाकार केवल सात मूल कथासूत्रो की आवृत्ति करते रहे हैं। मौलिकता बिल्कुल नई बात कहने मे ही नही बल्कि एक बात को अनेक ढगो से कहने मे है। उपन्यास का वास्तविक विषय स्वय उसका लेखक है और उसकी मौलिकता लेखक की सवेदना की मौलिकता है। उसमे विषय की अपेक्षा लेखक का महत्व अधिक है। कथा-वस्तु तो साहित्य-जगत की द्रौपदी है, जो प्रबन्ध काव्य, आख्यानक काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास सबकी सामूहिक सम्पत्ति है। उपन्यास-लेखकों ने

शायद यह सोचकर प्रख्यात विषय का उपयोग किया कि उसकी सत्यता मे अविश्वास नही किया जा सकता था। नवयुग के बुद्धिवादी पाठक परम्परागत विषय-वस्तु को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे इसलिए उपन्यास-लेखक उसे विश्वास योग्य बनाने के लिए सचेष्ट रहते थे। आरम्भ मे परम्परामुक्त कथा-वस्तु पर आधारित होने से उपन्यास समस्त पुरातन रचना-प्रकारो से भिन्न नूतन रूप मे प्रकट हुआ। ऐतिहासिक और पौराणिक विषयो के समावेश से उसमे विविधता आई और अभिनव कथाशिल्प से उसकी नवीनता अक्षुण्ण रही।

कथानक घटनाओ और क्रियाओ का संचयन ही नही, सघटन भी है। इस दृष्टि से पुरानी कथाओ मे कथानक जैसी कोई चीज नही थी। एक के बाद दूसरी घटना सीधी गति से आती थी, जिसमे कार्य-कारण की कोई शृङ्खला नही रहती थी। क्या हुआ, यह घटना है, क्यो हुआ, यह कथानक है। उपन्यास मे कथानक होता है जिसके गठन मे एक योजना रहती है, जिसका आदि-अन्त होता है और जिसमे कलात्मक इकाई रहती है। उसका एक निश्चित स्थापत्य है। पुराने ढंग की कथाओ मे घटनाएँ पूर्वापर क्रम से रहती थी। उपन्यास मे इस क्रम का निर्वाह नही किया गया, बल्कि इसके ठीक विपरीत उसके आरम्भ मे कथा का मध्य या अन्तिम भाग रखा गया और बाद मे सिलसिला मिला दिया गया। पुरानी कथा-कहानी का आरम्भ वर्णनात्मक या ऐतिहासिक था, उपन्यास का आरम्भ नाटकीय या महा-काव्यात्मक है। उदाहरण के लिए, 'वीरसिंह का वृत्तान्त' इस प्रकार आरम्भ हुआ है :

काशी अविनाशी सुखराशी से कुछ दूर गगा के तट के निकट एक सुन्दर गाँव है वहाँ वीरसिंह एक रघुवंशी राजपूत रहता था उसका बाप बड़ा धनाढ्य था घर के आगे सदा हाथी झूमा करता था ....

किशोरीलाल गोस्वामी की 'कुसुमकुमारी' (१८९१) का आरम्भ इस प्रकार हुआ है :

"कुसुम ?"

"कौन है ? वसन्त !" कहके एक नवयौवना सुन्दरी ने दीर्घ निश्वास लेकर शय्या से उठकर आगत युवक का प्रेमपूर्वक हाथ पकड़ा।.........

युवक धीरे-धीरे युवती के पास पलंग पर बैठ गया और युवती के

गुलाबी गालो का सस्नेह चुम्बन करके कहा · · ·

सितारेहिन्द ने एक ही वाक्य मे पृष्ठभूमि, पात्र और कथा का परिचय दे दिया । गोस्वामीजी ने यह नही बताया कि कुसुम और वसन्त कहाँ बातचीत कर रहे हैं, कौन हैं, उनका परस्पर सम्बन्ध कैसा है । इन सारी बातो की जानकारी उनके वार्तालाप और क्रियाकलाप से होती है और लेखक स्वय उनके विषय मे प्रकाश डालता है । वस्तुविन्यास की यह वक्रता पुराने ढंग की कहानियों और नये ढग के उपन्यास की स्पष्ट विभाजक रेखा है । ऐतिहासिक दृष्टि से उपन्यास सचमुच "कथा और नाटक के बीच की वस्तु है ।"[28]

जो पाठक कथा-वार्ता को एक साँस मे पढने के आदी थे उनके लिए कथानक का क्रम-विपर्यय एक पहेली था । उन्हे अपने धैर्य की परीक्षा देनी पडती थी । उपन्यासकार उन्हे कथा के भीतर के किसी प्रसग मे प्रवेश करा देते थे, उसके बाद उस प्रसग को अधूरा छोडकर दूसरा प्रसग प्रारम्भ कर देते थे और वह समाप्त भी नही हो पाता था कि उसे तीसरे के लिए स्थगित कर देते थे; फिर सबको उपन्यास के बीच या अन्त मे एक साथ गुम्फित कर देते थे ।

यह स्वरूपगत विलक्षणता नाटक और अग्रेजी उपन्यास की देन थी । उसका सम्बन्ध खासकर उपन्यास के आरम्भ एव अन्त से था । कभी आरम्भ मे ही चरम सीमा का बोध होता था ('स्वर्गीय कुसुम : किशोरीलाल गोस्वामी) कभी आरम्भ मे ही अन्त का ('चन्द्रकला' ठाकुर हनुमन्त सिह) कही वार्तालाप से कथा आरम्भ होती थी ('नूरजहाँ' : गगाप्रसाद गुप्त) कही वातावरण के वर्णन से ('सुशीला विधवा' . लज्जाराम शर्मा) । पुराने उपन्यासो मे बहुत कम ऐसे होगे जिनका आरम्भ चरित्र-चित्रण से हुआ हो और जिनका घटना-विन्यास सरल एव क्रमिक हो । उनका अंत भी बहुधा पूर्व निश्चित रहता था । नायक-नायिका का मिलन या विवाह कराया जाता था, भले-बुरे पात्रो को पुरस्कार और दण्ड दिये जाते थे और नैतिक आशय प्रकट किया जाता था ।

जीवन की गति किसी योजना से निर्धारित नही होती, इसलिए उपन्यास का गठन निश्चित योजना के अनुसार किया जाना अस्वाभाविक प्रतीत हो सकता है । किन्तु जीवन अव्यवस्था और बन्धनहीनता का नाम है

तो कला व्यवस्था और नियम का। फिर, मध्य या अत से आरम्भ करना किसी हद तक स्वाभाविक भी है। वास्तविक जीवन मे भी हम पहले किसी व्यक्ति को दूकान मे सामान खरीदते हुए या सडक पर जाते हुए देखते है, पीछे उसका परिचय पाते हैं; पहले कोई कार्य होता है, फिर उसका कारण जानने की कोशिश करते है और इस तरह आगे से पीछे की ओर लौटते है। यदि उपन्यास मे पात्र और क्रिया को इस रीति से दिखलाया गया तो वह जीवन का ही प्रतिबिम्ब था। उसका सुखद अत मनमाना होकर भी निरर्थक नहीं था। पुराने कथाकारो की भाँति उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य कहानी सुनाना नही था। वे कहानी के माध्यम से अपना निश्चित दृष्टिकोण व्यक्त करना चाहते थे। अतः कथानक का लक्ष्य की ओर अग्रसर होना आवश्यक था। उपन्यासकारो का उद्देश्य कथानक की गति और दिशा का निर्धारण करना रहा है। यह कहना ठीक है कि "लक्ष्य का ज्ञान ही कथानक है।"[१७]

उपन्यास एक काल-कला है। उसकी घटनाएँ कार्य-कारण शृङ्खला के साथ-साथ काल-क्रम मे बँधी रहती है। कथा की अवधि कई वर्षों से लेकर कुछ घण्टो तक रह सकती है। उसमे पूरे समाज का या एक परिवार का या कुछ पात्रों का विकास एव परिवर्तन दिखाया जा सकता है। तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों मे बहुधा कथा का विस्तार एक से अधिक पीढियो तक है। कुछ उपन्यास कल्पित जीवनी के समान लगते हैं। नर-नारी जन्म लेते है, बड़े होते हैं और मर जाते है। उपन्यास के आदि-अन्त की स्थितियों मे अन्तर होता है। हनुमन्त सिंह की 'मेरी दुख गाथा' एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की झाँकी है। कथानायक जन्म लेकर शिक्षा प्राप्त करता है, विवाह के बाद एक मारवाडिन युवती पर बलात्कार करने के अपराध मे जेल जाता है, जेल से छूटने पर देश-सेवा मे जीवन की अन्तिम घड़ियाँ बिताता है। इसी प्रकार किशोरीलाल गोस्वामी की 'लीलावती' बालिका से प्रेमिका और प्रेमिका से माँ बन जाती है। वह जब पचास बरस की हो जाती है, उसके जीवन मे कोई उल्लेख-योग्य घटना शेष नही रहती। अवधनारायण की 'विमाता' मे रघुनन्दन के बचपन से सुखी विवाहित जीवन तक की कथा है। कुछ उपन्यास जीवन के अल्प काल को लेकर लिखे गये हैं, जैसे, चाँदकरण शारदा का 'कालेज होस्टल' नायक के विद्यार्थी-जीवन का चित्र उपस्थित करता है। कुछ उपन्यासो का कथाकाल दिनों और घण्टों तक सीमित है। 'परीक्षागुरु' मे केवल पाँच दिनों की कथा है, गोस्वामीजी लिखित

'लालकुँवर' में केवल एक रात की।

जहाँ काल का विस्तार होता है वहाँ कुछ घटनाएँ दृश्य होती हैं, कुछ सूच्य। 'मेरी दुख गाथा' मे सात वर्षों की क्रिया को एक वाक्य मे बाँधने का प्रयास किया गया है, जैसे, "सात वर्ष के कारादण्ड से मेरे सब पापो का प्रायश्चित हो चुका"। 'लीलावती' मे चौथे परिच्छेद का अन्त होने पर पन्द्रह वर्षों के बाद पाँचवा परिच्छेद आरम्भ होता है। बीच की घटनाओ को यह कहकर छोड दिया जाता है कि वे उल्लेखनीय नही है। जीवन की प्रत्येक वस्तु का वर्णन साहित्य मे न तो सभव है, न वाछनीय ही। वर्षो की बात थोडे शब्दों मे कह दी जा सकती है और एक दिन की बात के लिए अनेक पन्ने रँगे जा सकते हैं। कलाकार को कुछ छोडना और कुछ ग्रहण करना पडता हैं। कला मे पसन्द और चुनाव जरूरी है। उपन्यास मे सक्षिप्त उल्लेख के द्वारा दृश्य और सूच्य घटनाओ मे सगति मिलानी पडती है। इसके विपरीत नाटक मे, जहाँ केवल दृश्य होते, घटनाओ की शृंखला सहज ही जुडती चलती है। कभी-कभी उपन्यासकार सकेत से जितना प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं, उतना वर्णन से सम्भव नही होता। 'विमाता' के तीसरे अध्याय मे सुभद्रा की मृत्यु के वर्णन के बाद चौथे अध्याय का प्रथम वाक्य ('सुभद्रा के परलोकवासी हुए ग्यारह वर्ष हो गए।') पढकर पाठक विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। एक छोटा-सा वाक्य वर्षो की रिक्तता भरना है और कथा की गति को मोड देता है। इस प्रकार की औपन्यासिक अभिव्यक्ति ही एक मधुर घटना बन जाती है। साधारणत: लम्बी अवधि के छोटे उपन्यास मे कसाब रहता है, छोटी अवधि के बडे उपन्यास मे शिथिलता।

पुरानी कहानियाँ कौतूहल बढाकर मनोरजन करने का साधन थी। उनमे घटनाओं का अविराम प्रवाह रहता था और पाठक या श्रोता उसमे बेसुध होकर बहते जाते थे। यह गुण उपन्यास मे भी अक्षुण्ण रहा किन्तु जहाँ पुरानी कहानियाँ सरल बाल-जिज्ञासा को शाति करती थी वहाँ उपन्यास उससे आगे बढकर पाठको की कल्पना और बुद्धि को भी उद्दीप्त करने लगे। बुद्धि-तत्त्व के समावेश से रोचकता मे कमी नही हुई बल्कि हास्यरस के लिए विशेष अवकाश मिला। कविता के लिए हास्यरस आवश्यक नही, लेकिन उपन्यास के लिए तो अनिवार्य है। हमारे पुराने उपन्यासकार हँसना-हँसाना खूब जानते थे। देवकीनन्दन खत्री की लोकप्रियता का एक कारण उनकी हास्यप्रियता है।

उपन्यास को रोचक बनाने के लिए कथानक की योजना की जाती है। इसके लिए पहले कथा को जटिल और रहस्यमय बनाना आवश्यक समझा जाता था। आरम्भिक अश से घटनाओ की गुत्थियाँ सजाकर उत्कठा जगाई जाती थी और अन्तिम भाग मे उन्हे सुलझाकर शात की जाती थी। गहमरीजी ने रहस्यमयता को उपन्यास का आवश्यक गुण मान लिया था .

उपन्यास मे पहिले जानने योग्य बात घटना की जवनिका मे छिपा रखना और इधर उधर की जो बेसिलसिले और बेजोड़ न हो पहिले कहना और घटना पर घटना का तूमार बाँधकर असल भेद जानने के लिये पाठको के हृदय मे कुतूहल बढाना और रहस्य पर रहस्य साजकर ऐसा उपन्यास गढना कि पूरा पढे बिना पूरा स्वाद न मिले लेकिन पढने वालो को ऊब न हो बल्कि जितना पढ़ता जाय उतना ही उसमे उलझता जाय।[30]

भोले-भाले नये पाठको को उलझाये रखने के लिए निपुण उपन्यासकार कथा के रहस्य को धीरे-धीरे खोलते थे, जैसे कोई रसिक वर-वधू के घू घट को हटाते-हटाते हटाता है। वे उपन्यास मे स्वय आकर दर्शन देते थे और अधीर पाठको को समझाने की कोशिश करते थे .

ऐसे दोपहर के समय यह क्यो घर से निकला और क्या इसका मन-सूबा था इसका रहस्य जानने के लिए कौन न उकताता होगा किन्तु सहसा किसी रहस्य का उद्घाटन उपन्यास लेखको की रीति के विरुद्ध है इससे इस प्रस्ताव को यही समाप्त करते हैं।[31]

"सहसा रहस्य का उद्घाटन उपन्यास लेखको की रीति के विरुद्ध है" यह कहकर भट्टजी ने बडे पते की बात कही है। एकबारगी कथा कह देने से कथा रुक जाती है, उसकी रोचकता नष्ट हो जाती है, कौतूहल समाप्त हो जाता है और पाठक को अनुमान तथा प्रत्याशा करने का अवसर नही मिलता। उपन्यासकार का कौशल इसमे है कि वह घटनाओं को इस प्रकार सम्बद्ध करे कि जो पहले अप्रत्याशित हो वह बाद मे अवश्यंभावी प्रतीत हो। आदिकालीन उपन्यासकार बहुधा अपनी रचनाओ के आरम्भिक भाग मे अप्रत्याशित और अन्तिम भाग मे अवश्यभावी को स्थान देते थे। वे पाठकों को मुग्ध करने के लिए कथानक को पेचीदा बनाना उचित समझते थे। लेकिन इससे पाठकों के मन में उलझन और ऊब भी पैदा होती है। रहस्य को तुरत प्रकट कर देना उतना ही आवांछनीय है जितना रहस्य की अनावश्यक सृष्टि करना। कथानक की जटिलता रहस्यमय उपन्यासो की शोभा हो सकती है तो अन्य प्रकार के उपन्यासों के लिए घातक भी। रहस्यमयता को आधार

मानकर चलने से चरित्रांकन की अपेक्षा आकस्मिक घटनाओ को अधिक और अनावश्यक महत्व मिल जाता है। सरल कथानक की कल्पना उतनी ही रचनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा रखती है जितनी जटिल कथानक की योजना। सरलता कथानक का बहुत बड़ा गुण है। यह आवश्यक नही कि सरलता केवल सरल कथानक मे हो, मिश्र मे नही हो। किशोरीलाल गोस्वामी ने कई उपन्यासो मे दो समानान्तर कथाओ को मिला दिया है अथवा अनेक कथा-सूत्रो को गुम्फित किया है, फिर भी कथानक पेचीदा नही होने दिया है। उपन्यास का इतिहास यही बताता है कि उसमे कथानक का क्रमश. ह्रास होता गया है और आज तो वह उपेक्षा की वस्तु बन गया है।

उपन्यास की शक्ति कथानक पर और उसकी सुन्दरता ढाँचे पर निर्भर है। एक बुद्धि को अपील करता है, दूसरा सौन्दर्यबोध को। ढांचा भिन्न-भिन्न तत्त्वो के सामजस्य से बनता है किन्तु कथानक से उसका अभिन्न सम्बन्ध होता है। कविता, नाटक और निबन्ध की तरह उपन्यास के ढाँचे की ओर पाठको का ध्यान अनायास नही जाता क्योंकि उसके अध्ययन मे वे प्रभाव-ऐक्य पर विचार नही करते। यदि पढ़ने के समय उसकी पूर्णता की ओर कुछ ध्यान जाता है तो पढने के बाद उसका आशिक स्मरण ही रह जाता है। हेनरी जेम्स ने उपन्यास के सभी अगो के सतुलन को अत्यधिक महत्व दिया है और उसे दृष्टि मे रखकर उपन्यास की केवल दो कोटियाँ निर्धारित की हैं . जीवित और जीवनहीन।[32] जीवित उपन्यास का कथानक सुघर और सुसबद्ध होता है। कथाविन्यास की दृष्टि से दो प्रकार के उपन्यास माने जाते है, शिथिल या सुगठित कथानक के उपन्यास। इनमे दूसरा प्रकार लेखक की सुचिंतित परियोजना और निर्माण-कौशल का परिचय देता है। उसमे कृत्रिमता का आभास रह सकता है किन्तु उसका रूप-सौष्ठव बौद्धिक आनन्द प्रदान करता है। उपन्यास का सुन्दर ढाँचा सुगठित कथानक का ढाँचा है, जिसमे अनावश्यक विस्तार या सक्षेप नही होता, साधारण बातें भी सरल लगती हैं, असाधारण परिस्थितियो मे भी वास्तविकता का आभास मिलता है, घटनाओ का आरम्भ, विकास और समाहार सहज स्वाभाविक होता है और विषय तथा स्वरूप अभिन्न होते हैं। 'चन्द्रकान्ता', 'विमाता' और 'प्रेमा' का ढाँचा अत्यन्त सुघर है।

उपन्यासकार अपने कथाकौशल से पाठको के हृदय का कोमल कोना छूकर उन्हें उपन्यास की सुन्दरता से प्रभावित होने योग्य बनाता है। अच्छा

उपन्यास अच्छी तरह कही हुई कहानी है। नाटक मे कहानी कहने का एक ढग है, उपन्यास मे उसके एक से अधिक ढग हैं। पुरानी कथा परम्परा मे मुख्यत. पुराण-शैली और कथामाला-शैली का अनुसरण किया गया है। पुराण-शैली मे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को कथा सुनाता है और कथाकार उस कथा को दुहराता है। 'नासिकेतोपाख्यान' मे वैशपायन मुनि राजा जनमेजय को कथा सुनाते है, सदलमिश्र तो केवल रिपोर्टर है। इस पद्धति मे मुख्यकथा तक पहुँचने मे पाठक को बहुत प्रतीक्षा करनी पडी है। कथाकार उसकी कथा सुनाने लगता है जिसने कथा सुनाई थी। 'पचतत्र', 'आलिफ लैला' मे प्याज के छिलके के समान एक कहानी से दूसरी कहानी निकलती है। उपन्यास मे इन पद्धतियो का अनुकरण नही किया गया है, इनका परिवर्तित रूप कही-कही अवश्य मिलता है। कुछ रचनाओ मे कथा का आरम्भ आरम्भ के पहले हो जाता है, जैसे, बालकृष्ण भट्ट की 'रहस्यकथा' और भुनेश्वर मिश्र का 'बलवन्त भूमिहार'। दोनो मे बेटे-पोते की कथा स्वर्गीय बाप-दादे से ही शुरू की गई है। बहुत-से उपन्यास एक से अधिक कथानक लेकर चलते है। दो या तीन कथाओ का क्रमिक या समानान्तर विकास होता है। उनमे एक मुख्य होता है और दूसरा विरोध या सामजस्य, विश्राम या विविधता उपस्थित करता है। अन्त मे उनकी अन्विति हो जाती है। उपन्यास मे कहानी-दर-कहानी का सिलसिला नहीं रहता है, यदि रहता है तो दूसरे रूप मे, जैसे: 'परीक्षागुरु' मे छोटी-छोटी कहानियाँ पूर्ण इकाई के रूप में नही बल्कि दृष्टात के रूप मे हैं। कभी-कभी उपन्यासकार रोचकता के लिए कोई छोटी कहानी उपन्यास मे जोड देते है। यह प्रणाली अभी भी पुरानी नही हुई है।

उपन्यास मे उपन्यास का विन्यास एक विलक्षण कथाशिल्प है। इसका पुराना प्रतिरूप पौराणिक कथाओ मे पाया जाता है। 'भाग्यवती' और 'परीक्षागुरु' मे इसका प्रारम्भिक रूप है। 'भाग्यवती' मे एक राजा एक पंडितजी को एक ऐसी पुस्तक लिखने के लिए कहते हैं जिसे पढ़कर लोग धोखे मे नही आ सकें। पंडितजी 'कौतुक संग्रह' नामक ग्रथ लिखकर देते हैं, जो 'भाग्यवती' के अनुरूप ही है। 'परीक्षागुरु' के अन्त में उसका नायक अपने शुभचिंतक मित्र को अपना वृत्तांत प्रकाशित करा देने का अनुरोध करता है। उसका वृत्तात तो उपन्यास ही है। यथार्थ का भ्रम उत्पन्न करने का यह अच्छा उदाहरण है। मनोहरलाल लिखित 'कातिमाला' और गोपाल लाल लिखित 'अलबेला रागिया' में इस शिल्प का कलात्मक उत्कर्ष है।

पुस्तक की 'प्रस्तावना' मे गगा-किनारे उपवन के बीच प्रासाद मे पलग पर लेटी हुई एक षोड़शी पूर्णचन्द्र की शोभा देख रही है कि एक पच्चीस वर्षीय युवक पीछे से उसकी आँखें बन्द कर देता है। युवती के यह पूछने पर कि युवक इतनी रात तक क्या कर रहा था युवक जवाब देता है कि वह एक उपन्यास लिख रहा था। हास-परिहास के बाद युवक युवती के हाथ मे एक पुस्तक रख देता है जिस पर अपना नाम देखकर वह मुस्कुरा उठती है और बड़े चाव से पढने लगती है। 'शेष' मे लेखक लिखता है 'बस उपन्यास समाप्त हो गया। पूर्वोक्त गगा तटस्थ उपवन के उन्नत आगार की उच्च अट्टालिका पर बैठकर चन्द्रमा की शोभा को देखने वाला तथा पति से प्रेम कलह करने उपरान्त पति का दिया हुआ उपन्यास बडे प्रेम से देखने वाली षोड़ष वर्षीया बालिका कातिमाला ने जिस समय पुस्तक समाप्त किया रात आधी से अधिक जा चुकी थी'। जब उससे पति पूछता है कि उपन्यास कैसा है तो वह कहती है कि वह तो उन दोनों का जीवन वृत्तान्त है। फिर वह कहता है कि 'उनके जीवन की घटना भी एक उपन्यास की घटना से कम नही है', इसलिए उसने उपन्यास लिखा। 'अलबेला रागिया' का अन्त होने पर उस उपन्यास का भी अन्त हो जाता है जो एक स्त्री-पात्र द्वारा अक्सर पढा जाता है। दोनो की घटनाओ मे समानान्तरता दीख पडती है। जहाँ कही इस कौशल का उपयोग किया गया है वहाँ लगता है कि पाठक के सामने कोई कलाकृति न होकर स्वय जीवन है और उपन्यास की रचना करना उपन्यास की एक घटना है।

कथा-शैली से कथाकार और उसकी कृति का सम्बन्ध सूचित होता है। नाटक मे नाटककार दृष्टिगोचर नही होता किन्तु उपन्यास मे उपन्यासकार स्वय कहानी कहता है, पात्रो के मुँह से कहलाता है तथा कभी-कभी प्रकट होकर अपना मत देता है। उपन्यास मे उसका स्रष्टा ईश्वर की भाँति व्यक्त होने पर भी अदृश्य रह सकता है और केवल पात्रों एवं उनके क्रियाकलाप का प्रत्यक्षीकरण हो सकता है। अन्यपुरुष मे कथा कहने की विधि सर्वाधिक सरल, प्राचीन और प्रचलित है। उपन्यासकार इतिहासकार और महाकाव्य-कार की भाँति प्रत्यक्ष ढग से कहता है। वह सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी है। वह दृश्य जगत के अतिरिक्त अन्तर्जगत का भी द्रष्टा माना जाता है। वह वार्तालाप में अव्यक्त रहता है किन्तु वर्णन मे उसका व्यक्तित्व उभर आता है। पुराने उपन्यास-लेखक वार्तालाप मे भी कभी-कभी प्रकट हो जाते थे।[33]

लेखक के तटस्थ रहने पर कथा का प्रवाह सहज स्वच्छन्द होता है। जब वह कथानक के बीच मे टपक पडता है, पाठको का भ्रम नष्ट हो जाता है और कथा की गति शिथिल हो जाती है। यही इस पद्धति का उल्लेखनीय गुण और दोष हैं। पुराने उपन्यासकार पाठको को कुछ कहे बिना रह नही सकते थे, शायद इसलिए यह शैली उन्हे विशेष प्रिय थी। यदि कहानी किसी एक पात्र के दृष्टिकोण से कही जाती है तो इस पद्धति मे भी उत्तम पुरुष वाली पद्धति की विशेषता आ जाती है।

उत्तम पुरुष की शैली मे लेखक और पात्र का तादात्म्य हो जाता है। कथा एक प्रधान पात्र या गौण पात्र या अनेक पात्रो से कही जा सकती है। एक व्यक्ति (खासकर प्रधान पात्र) द्वारा कही गई कथा आत्मचरित या आपबीती जैसी लगती है। उदाहरण के लिए, ठाकुर हनुमन्त सिंह की 'चन्द्रकला' और किशोरीलाल गोस्वामी के 'माधवीमाधव' मे क्रमशः नायिका और नायक द्वारा कथा कही गई है। आत्मकथा-शैली मे स्पष्टता और सत्याभास के गुण अनायास आ जाते है। घटना-प्रधान उपन्यासो मे, जहाँ वास्तविकता का रग रहना आवश्यक है, इसकी उपयोगिता देखी जाती है। 'आश्चर्यवृत्तान्त' मे एक पात्र अपने कल्पित भ्रमण का वर्णन इस तरह करता है कि उसमे अविश्वास करना कठिन है। रहस्य का उत्तरोत्तर उद्घाटन कराने के लिए एक से अधिक व्यक्तियो द्वारा कथा कहाने की विधि रहस्यमूलक उपन्यासो के लिए सर्वथा उपयुक्त होती है। आलोच्य-काल के जासूसी उपन्यासो मे इस विधि का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। भावात्मक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो को 'मैं' शैली से मोह होना स्वाभाविक है। वे अपनी ओर से वर्णन-विश्लेषण करने के बदले पात्रो के स्वगत-कथन से उनके व्यक्तित्व का निरूपण करते हैं। ब्रजनन्दनसहाय के प्रायः सभी उपन्यास इसी शैली मे हैं। इसमे रचयिता को बीच-बीच मे दर्शन देने की जरूरत नही होती। उसे जो कुछ कहना होता है पात्रो के स्वर मे कह देता है। यह परोक्ष ढग उपन्यास को नाटक के निकट ले आता है।

इस पद्धति की अपनी सीमाएँ है। कथा कहने वाला पात्र पृष्ठभूमि मे चला जाता है और अभिनय करने वाला पात्र ध्यान आकर्षित कर लेता है। यदि अभिनेता कथानायक बनता है तो स्वाभाविकता और सगति पर आघात होता है। लेखक कथावाचक पात्र को मार नही सकता, न ही उसे निजी अनुभव और पर्यवेक्षण की सीमा से बाहर होने दे सकता है। इस

कठिनाई को दूर करने के लिए अनेक व्यक्तियों से कथा कहाई जा सकती है, लेकिन एकसूत्रता लाने के लिए असाधारण रचना-कौशल की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि एक पात्र की आत्मकथा के रूप मे लिखित उपन्यास के ही अनेक उदाहरण मिलते हैं।

रामचीज सिंह की 'कुलवन्ती' दो पात्रो-नायक और नायिका के मुख से कथित आत्म-वृत्तान्त का उत्कृष्ट उदाहरण है। एक जगह एक साधु, एक मोदिआइन और एक लडका आ मिलते है। लड़के को साधु कहता है कि वह किस तरह घर छोडकर साधु बन गया और उसकी स्त्री लोकापवाद के कारण घर से भाग निकली। मोदिआइन कहती हैं कि वह कुलवन्ती नाम की एक लडकी को जानती है जो घर से निकल गई थी। फिर साधु बताता है कि वह भी कुलवन्ती का हाल जानता है। उसका पति एक रात अपनी ससुराल छिपकर गया, जिससे कुलवन्ती को गर्भ रह गया और उसने बदनामी के डर से घर छोड दिया। मोदिआइन आगे कहती है कि कुलवन्ती ने घर छोडने के बाद एक भिखारिन के हाथ अपने पुत्र को वेच दिया। इस प्रकार जब कहानी पूरी होती है तब यह भेद खुलता है कि मोदिआइन कुलवन्ती है, साधु उसका पति है और वह लडका उसका पुत्र है। ब्रजनन्दनसहाय ने 'राधाकान्त' की कथा दो खडो मे दो पात्रो द्वारा कहाई है और 'परिशिष्ट' लिखकर सम्बद्धता स्थापित की है। चन्द्रशेखर पाठक के 'वारागना रहस्य' मे कई पात्र बारी-बारी से अपनी-अपनी कथा सुनाते है। एक की कथा अधूरी रहती है कि दूसरे की शुरू हो जाती है। यह क्रम अन्त तक चलता है। इससे कथानक जटिल और रसहीन हो गया है। सिलसिला मिलाने के लिए पुनरुक्ति का आश्रय लेना पडा है। पात्रो का आत्म-विश्लेषण अस्वाभाविक और उपदेश-कथन नीरस लगता है। पाठक को कथा का क्रम और सगति मिलाने मे कठिनाई होती है। ये दोष, जो इस प्रकार के उपन्यास मे अक्सर पाये जाते हैं, 'चन्द्रकान्ता सतति' को स्पर्श नही कर सके हैं। इस विधि की सबसे बडी कठिनाई चरित्र-चित्रण मे है। प्रधान पात्र अन्य पात्रो का विश्लेषण नही कर पाता है और अपना विश्लेषण कर सकता है तो अत्यन्त प्रगल्भ या अत्यन्त विनम्र होकर ही, जो अस्वाभाविक लगता है। जहाँ गौण पात्र ऐसा करता है वहाँ ऐसी कठिनाई नही होती है।

पत्र और दैनिकी के माध्यम से कथन आत्मकथा-शैली का ही रूपान्तर है। इसलिए इनके पृथक प्रयोग की विशेष आवश्यकता और उपयोगिता

नही होती । इनकी दो विशेषताएँ उल्लेखनीय है । इनमे आत्मीयता का स्वर रहता है और विस्तृत वर्णन की गु जाइश रहती है । लेखक व्यक्तिगत अनुभूति का गहनतम रूप और दैनिक जीवन का सूक्ष्मतम विवरण प्रस्तुत कर सकता है । आलोच्यकाल मे पत्र या दैनिकी के रूप मे एक भी पूरा उपन्यास नही लिखा गया, उनका प्रयोग पूरक विधियो के रूप मे ही हुआ है, जो स्वाभाविक भी होता है । 'श्यामास्वप्न' इसका अन्यतम निदर्शन है । किसी घटना के घटने पर उसका वर्णन तुरत किया जाय तो उसमे स्पष्टता और तात्कालिकता का गुण आ जाता है, जो 'श्यामास्वप्न' मे है । 'सुराबाला' ('साहित्य-पत्रिका' १९१२-१३) एक पत्रात्मक उपन्यास है किन्तु उसकी मौलिकता सदिग्ध है । अधिकाश प्रारम्भिक उपन्यासकारो ने इतिहास-शैली मे पत्रों का बहुधा व्यवहार किया है, किन्तु उनसे कथा के विकास मे नही बल्कि भ्रम के उत्पादन मे सहायता मिली है ।

महाकाव्यात्मक, आत्मकथात्मक और लेख्यात्मक पद्धतियाँ क्रमश. घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान और भाव-प्रधान उपन्यासो के लिए विशेष उपयुक्त हैं । प्रत्येक पद्धति मे कुछ गुण, कुछ दोष है । कुशल उपन्यासकार एक के अभाव की पूर्ति द्वितीय की सहायता से करता है । प्रथम पद्धति से जीवन का चित्रण वास्तविकता, सम्पूर्णता और वस्तुनिष्ठता के साथ किया जा सकता है । उसमे लेखक को अपना कौशल दिखाने का अधिक अवसर मिलता है । विश्व के प्रसिद्ध उपन्यासकारो मे फीलिंडग, स्काट, जेन आस्टेन, हार्डी, डिकेंस, थैकरे, टाल्सटाय, दास्तावेस्की, गोर्की, बालजक, विक्टर ह्यू गो, जोला, पर्लबक, देवकीनन्दन खत्री, प्रेमचद, प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, यशपाल और शरत्चन्द्र की यह प्रिय शैली है ।

उपन्यास मे कथा का विकास वर्णन और वार्तालाप से होता है और वार्तालाप भी आत्मकथा का ही एक ढग है । अत. अन्यपुरुष-शैली मे व्यापकता और सम्भावना है । उपन्यासकार वणन, विश्लेषण, व्याख्या और वार्तालाप का उपयोग स्वतन्त्रता एव सुविधा के साथ करता है । मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण के लिए भी यह शैला अधिक उपयुक्त होती है । सर्वज्ञ लेखक सभी पात्रो के मन का विश्लेषण तटस्थता से कर सकता है ।

कथा कहने की विधियो का विकास कालक्रम से नही हुआ है ।[34] हिन्दी-उपन्यास के उदयकाल मे ही सभी विधियो के उदाहरण मिल जाते

हैं। एक 'श्यामास्वप्न' मे ही आत्मकथा, दैनिकी और पात्र की शैलियो की समष्टि है। प्रेमचन्द-काल तक अन्यपुरुष मे कथा कहने की विधि अत्यधिक प्रचलित रही। जैनेन्द्र ने परम्परा से अलग होकर 'मैं' शैली को ग्रहण किया और उसे कलात्मक रूप प्रदान करने की चेष्टा की।

कथा प्रस्तुत करने की नाटकीय विधि सर्वोत्तम विधि मानी जाती है। वार्तालाप मे उपन्यासकार अव्यक्त रहता है, इसलिए उसमे नाटकीयता है किन्तु नाटकीयता वार्तालाप तक सीमित न होकर वर्णन के अश मे भी है। उपन्यासकार अपनी ओर से नही करता है, कहानी को कहने देता है। पाठक को उसकी उपस्थिति का भान नही होता है। वह किसी वस्तु का इस प्रकार वर्णन करता है कि पाठक को नाटकीय वर्तमानता और प्रत्यक्षता की अनुभूति होती है। जिस उपन्यास मे सारांश (समरी) कम, दृश्य अधिक होते है उसका कथाशिल्प नाटकीय होता है। दृश्य वार्तालाप के बिना भी रह सकते है। वार्तालाप के उपयोग से अधिक वस्तुनिष्ठता आती है। जहाँ उपन्यासकार तुरत कथा आरम्भ कर देता है और व्याख्या को, जिसका सम्बन्ध अतीत से होता है, छोड देता है वहाँ वह नाटककार के निकट आ जाता है।

नाटकीय या परोक्ष विधि पुरानी कहानी और उपन्यास मे भेद प्रकट करती है। पुरानी कहानी की भाँति उपन्यास का सम्बन्ध भी बीती हुई घटनाओं से है पर जहाँ एक मे घटनाओ का वर्णन ऐतिहासिक रीति से किया गया है वहाँ दूसरे मे नाटक के समान अतीत की घटनाएँ वर्तमान मे घटती हुई दिखाई गई। उपन्यासकार का कौशल इसमे नही है कि वह जो हो चुका है उसकी सूचना दे बल्कि इसमे है कि वह नाटककार की तरह आखो के सामने घटनाओ को घटित होते हुए दिखाए। पात्रो के अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण मे, जहाँ नाटककार असमर्थता का अनुभव करता है, वह अपने कौशल का विशेष चमत्कार प्रदर्शित करता है। लुब्बौक ने कथा-शैली को अत्यधिक महत्त्व देते हुए लिखा है कि जब तक कहानी स्वय नही कहती है तब तक कला आरम्भ नही होती है।[35] जब उपन्यासकार उपन्यास के बीच-बीच मे प्रकट नही होता और कथा का स्वत: उद्घाटन होता चलता है तब वह सफल कलाकार होता है।

पात्र

उपन्यास पुरानी कथा-कहानी की तरह केवल यह नही कहता कि

क्या हुआ बल्कि यह भी कहता है कि क्यो हुआ, किसे हुआ। केवल कौतूहल-वर्धक घटनाओ का जाल बिछाकर पाठक को अधिक काल तक उलझाकर नही रखा जा सकता। मन रमाने के लिए कथा-तत्त्व के साथ-साथ मानव-तत्त्व चाहिए। उपन्यास-लेखको ने देवी-देवता, भूत-प्रेत, पशु-पक्षी, राजकुमार-राजकुमारी के बदले सामान्य नर-नारी को केन्द्रबिन्दु बनाकर मनुष्य के प्रति मनुष्य की सहज उत्कठा को तृप्त किया, घटना और चरित्र मे सम्बन्ध स्थापित किया और कथानक को सजीवता एव सार्थकता प्रदान की। प्रेमचद ने उपन्यास को 'मानव-चरित्र का चित्र-मात्र' कहकर उसके मर्म की ओर सकेत किया था तथा उसे घटना-प्रधान कथा-कहानी से अलग कर ऊचाई पर पहुँचाया था। 'रानी केतकी की कहानी', 'हातिमताई' आदि की भाँति उपन्यास मे घटना किसी बाह्य और अदृश्य शक्ति से उत्पन्न नही हुई है। उसमे चरित्र से घटना और घटना से चरित्र का विकास होता है। पुरानी कथाओ मे मनुष्य अतिप्राकृत शक्तियो के ताल पर नाचते थे, इसलिए घटनाएँ चरित्र-निरपेक्ष हुआ करती थी। उपन्यास मे मानवीय नाटक का सूत्राधार मानव को ही बनाया गया था, इससे 'चरित्र ही विधाता है' यह उक्ति चरितार्थ हो सकी। यदि उसमे अतिप्राकृत तत्त्वो को स्थान भी मिला तो वे मानव-जीवन का अग बनकर रहे। उन्हे मानवीय भावों से आन्दोलित होते हुए दिखाया गया, सामाजिक परिवेश मे उपस्थित किया गया और काव्यगत न्याय का भागी बनाया गया। पहले कथाओ मे जो प्रभाव अलौकिक घटनाओ के समावेश से उत्पन्न किया जाता था वह उपन्यास में छद्म वेश, सयोग, देवयोग आदि कृत्रिम साधनों से किया गया।

पुरानी कहानियाँ बिना मुसाफिर की गाडियाँ नही थी लेकिन मुसा-फिर अजनबी और अनोखे थे। उनमे नर-नारी-दर्शन भी देते थे तो उनका व्यक्तित्व उभरकर सामने नही आता था। जिस तरह दैनिक जीवन में किसी व्यक्ति का परिचय उसके नाम से मिलता है, उसी तरह कथात्मक पात्र को 'टाइप' के बदले 'व्यक्ति' के रूप मे उपस्थित करने वाला उसका नाम होता है। पात्र का नामकरण चरित्र-चित्रण की पहली आवश्यकता है। पूर्ववर्ती कथाकार अपने पात्रो को राजा-रानी, श्रेष्ठ-साहूकार, ठग-चोर, साधु-सन्यासी कहकर काम चला लेते थे, यदि नाम देते थे तो पशु-पक्षी को भी काव्यात्मक और पुरुष-स्त्री को भी प्रतीकात्मक नाम देते थे, जैसे, करालकेसर और धूसरक नामक सिंह और सियार ('पचतत्र'), हुस्न और इश्क ('सबरस')।

गहमरी और अवधनारायण ने परोक्ष ढग को प्रधानता दी है। किशोरीलाल गोस्वामी और प्रेमचन्द ने दोनो का समान रूप से उपयोग किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से चरित्रचित्रण की पद्धति का विकास स्थूलता से सूक्ष्मता और प्रत्यक्षता से परोक्षता की ओर हुआ है। पहले उपन्यासकार पात्रो के भावों और विचारो का वर्णन कर देते थे, बाद मे उनका विश्लेषण करने लगे।

चरित्रचित्रण के विभिन्न तत्त्व परस्पर पूरक होते है और उनके मिश्रण से पात्रो का व्यक्तित्व सपूर्णता मे उभरता है। बहिरग के विवरण से पाठकों के मन मे पात्रो का सजीव चित्र अकित हो जाता है किसी व्यक्ति की वेशभूषा, रूप-रग एव आचार-व्यवहार का वर्णन सामान्य रीति से या इस प्रकार किया जाता है कि विलक्षणता का बोध होता है। एक उपन्यास मे बहुधा दो-तीन पात्रो का ही सम्यक विश्लेषण किया जाता है। बहिरग के सविस्तार वर्णन से अन्तरग का सूक्ष्म विश्लेषण अधिक कौशल की अपेक्षा रखता है। कभी-कभी उपन्यासकार व्याख्या करने के बदले सकेत से ही स्थायी प्रभाव उत्पन्न करते है। वार्तालाप और भाव-भगी के सयोग से वक्ता का प्रत्यक्षीकरण होता है। वार्तालाप से क्रियाकलाप का महत्त्व कम नही होता है क्योकि कथन से क्रिया कम मुखर नही होती है। चरित्रचित्रण उपन्यास का अत्यन्त सजीव अग है। उसमे सफल होने के लिए अनुभव की व्यापकता, पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता, सहानुभूति की गहराई और कल्पना की उर्वरता वांछनीय है। इनके साथ-साथ जब उपन्यासकार मे मानवप्रकृति परखने की क्षमता और वर्णन करने की शक्ति होती है तब वह अविस्मरणीय पात्रो की सृष्टि कर पाता है। पात्रो मे वास्तविकता, विश्वसनीयता, स्वाभाविकता, मानवीयता और सजीवता होनी चाहिए। वे कठपुतले न होकर अपना व्यक्तित्व रखते हो।

प्राचीन कथासाहित्य के पात्र प्रकार या प्रतीक होते थे। विविध परिस्थितियो मे उनका उत्थान-पतन दिखाने का प्रयास नही किया जाता था। उनमे शीलवैचित्र्य नही था। उपन्यास मे मुख्यत: तीन कोटि के पात्रो के दर्शन हुए . सामान्य या प्रतिनिधि विशिष्ट और सार्वभौमिक। 'विमाता' मे एक ही व्यक्ति को घर और बाहर की भिन्न परिस्थितियो मे रखा गया है। उसके व्यक्तित्व मे उक्त तीन विशेषताएँ निहित है। फार्स्टर ने पात्रो को दो श्रेणियो मे रखा है, 'सपाट' (फ्लैट) और 'गोल' (राउन्ड)।[36]

सपाट पात्रो मे एक ही विशेषता हाती है, जो प्रमुख और सामाजिक होती है। वे पहचाने जाने योग्य और स्मरणीय होते है। गोल पात्र इसके विपरीत होते है वास्तविकता यह है कि कोई व्यक्ति न तो अत्यन्त सपाट होता है, न अत्यन्त गोल। जो विचार या आदर्श के मूर्त रूप होते हैं उन्हे ही सच्चे अर्थ मे सपाट कहा जा सकता है। पात्र स्थिर या गतिशील होते हैं। स्थिर पात्र परिस्थितियो से प्रभावित नही होते, गतिशील पात्र होते है। गौण पात्र सपाट और स्थिर होते हैं, मुख्य पात्र गोल और गतिशील। स्थिर पात्र लघु उपन्यास के उपयुक्त होते है, गतिशील पात्र विशाल उपन्यास के।

वार्तालाप

पात्रो की सजीवता और स्वाभाविकता वार्तालाप पर निर्भर है। ससार मे पशु-पक्षी और मूक-निष्प्राण व्यक्ति ही बातचीत करते हुए नही पाये जाते है। पूर्वकाल की कथाएँ वर्णनात्मक कथाएं थी। उनमें वार्तालाप का थोडा अश रहता भी था तो मानुषिक और अमानुषिक पात्रो मे बट जाता था। अन्य बातो मे मनुष्य और पशु मे विभिन्नता होने पर भी बोलने मे समानता थी। परम्परा-पालन के लिए पद्य मे भी सम्वाद की योजना की जाती थी। उपन्यास मे वार्तालाप का अधिकाधिक उपयोग किया गया और वह उपन्यास का आकर्षक अग बन गया। इसके माध्यम से उपन्यासकार कथा, पात्र और दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हैं। इससे कथा मे वास्तविकता, चरित्र मे स्वाभाविकता और उद्देश्य मे वस्तुनिष्ठता का समावेश हुआ तथा उपन्यास मे नाटकीयता आई। विविधता और विश्राम के लिए वार्तालाप का विशेष महत्त्व है। वणन का अश वार्तालाप के लिए अवसर प्रदान करता है और वार्तालाप का अश वर्णन के लिए विश्राम का काम करता है। कुशल उपन्यासकार दोनो के सन्तुलित उपयोग से प्रभाव डालते है। जहाँ वक्ता के नाम का उल्लेख या उसकी बाह्य चेष्टाओ का सकेत रहता है वहाँ वार्तालाप मे भी क्षणिक विराम होता है। बाह्य चेष्टाओ का सकेत रहने पर पात्रो का प्रत्यक्षीकरण होता है। कुछ पात्रो की वाणी लेखक की वाणी प्रतीत होती है, कुछ पात्रो की वाणी मे उनके व्यक्तित्व की छाप होती है और वे अपनी वाणी से पहचान लिए जाते है। बडे उपन्यास में प्रत्येक पात्र की वाणी मे विशिष्टता का निर्वाह करना कठिन है। कभी-कभी किसी व्यक्ति को सामूहिक चर्चा का विषय बनाकर उसका चरित्र-चित्रण किया जाता है।

यद्यपि वार्तालाप का उपयोग केवल रोचकता की वृद्धि के लिए किया जा सकता है तथापि जब कथा और पात्रों के विकास से उसका सम्बन्ध नही रहता तब वह असगत और अस्वाभाविक हो जाता है। उससे लेखक को विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है। कभी-कभी उसका दुरुपयोग किया जाता है। लेखक प्रचार या प्रदर्शन के लिए अप्रासंगिक बातों की चर्चा छेड देते है। उनके पात्र बातचीत करना छोडकर वाद-विवाद करने लगते है। या भाषण देते है। पाठक कहानी सुनना चाहते है। साहित्य, दर्शन राजनीति आदि के विषय मे अनावश्यक लम्बा कथोपकथन उन्हे अच्छा नही लगता। इस दोष का परिहार वहाँ होता है जहाँ पात्रो के सिद्धान्त उनके बौद्धिक धरातल के अनुकूल होते हैं। पुराने उपन्यासकारो मे किशोरीलाल गोस्वामी और ब्रजनन्दनसहाय प्रचार के लिए तथा नये उपन्यासकारो मे इलाचन्द जोशी और देवराज प्रदर्शन के लिए अप्रासगिक विषयो पर अनावश्यक वार्तालाप की योजना करते है। वार्तालाप साधारण हो या साहित्यिक उसे कथा के विस्तार का नही, विकास का साधन होना चाहिए।

लोग जो कुछ बोलते है वह सार्थक और रुचिकर नही होता। इसलिए कथात्मक वार्तालाप वास्तविक जीवन के अनुरूप न होकर कलात्मक होता है। उसे प्रभावोत्पादक बनाने के लिए चुनाव और व्यवस्था की आवश्यकता होती है। उपन्यासकार की दक्षता इसमे है कि वह वार्तालाप को इतना वास्तविक न रखे कि सरसता नष्ट हो जाय और न इतना कलात्मक बनाये कि कृत्रिमता आ जाय। सफल वार्तालाप वह है जो वास्तविक न होते हुए भी वास्तविक प्रतीत हो। उसमे अनुकूलता, उपयुक्तता, स्वाभाविकता, सजीवता, सार्थकता और रोचकता के गुण होने चाहिए। यथातथ्यवाद के आग्रह से पात्र, स्थान और काल के अनुकूल वार्तालाप की भाषा का प्रयोग किया जाता है। उसकी दुरूहता, दुर्बोधता और बहुलता कथारस मे बाधक होती है। 'फैजाबाद की बेगम' मे अग्रेज पात्र अग्रेजी मे बोलते है। चुन्नीलाल ज्योतिषी के 'शेखावारी रहस्य' मे स्थानीय बोली (राजस्थानी) का प्रयोग किया गया है। किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासो के पात्र बहुधा उर्दू एमुअल्ला बघारते हैं।

वातावरण

उपन्यासकारो ने पात्रो को वाणी ही नही दी, उनके रहने के लिए

संसार की भी रचना की। देश, काल और पात्र परस्पर इस तरह सम्बद्ध है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना करना कठिन है। पूर्वकालीन कथाओं मे पात्रो के क्रियाकलाप के लिए स्थान और काल निर्धारित नही थे। उनका राजा किसी समय किसी देश के किसी नगर मे रहता था, जादूगरनी और राक्षसी सात समुद्र के पार कही रहती थी। उनका ससार जादू और स्वप्न का ससार था। उपन्यास के पात्र देश काल की सीमा मे बँधे होते है। देश-काल की विशिष्टता आधुनिक उपन्यास की प्रमुख विशिष्टता है। इससे पात्र और उनके क्रिया-व्यापार वास्तविक और विश्वसनीय लगते है और पाठको का ध्यान उनमे केन्द्रित होता है। 'नूतन ब्रह्मचारी' मे एक ही वाक्य मे मानवीय कार्य की पृष्ठभूमि का सकेत दे दिया गया है :

वैशाख के महीने मे नासिक से दस कोस पर एक जगल मे साँझ के समय तीन आदमी हथियारबन्द घोडे पर सवार आपस मे कुछ बातचीत कर रहे थे।

यहाँ पात्र निश्चित स्थान-काल मे बातचीत करते हुए दिखाए गए है, इसलिए उनका चित्र पूर्ण और जीवन्त हो उठा है। आरम्भिक उपन्यासो मे पृष्ठभूमि की विशिष्टता का ऐसा ही उल्लेख रहता था। इशा की रानी केतकी जिस अमराई मे अपनी सहेलियो के साथ झूल रही थी वहाँ कुँवर उदयभान का घोडा ही पहुँच सकता था। रात के सन्नाटे मे उनका चोरी-चोरी मिलना सभव होकर भी सत्य प्रतीत नही होता है।

स्थान के नामकरण से पृष्ठभूमि की विशिष्टता अधिक स्पष्ट हुई। पुराने कथाकार किसी 'पुर', 'नगर', 'गढ' और 'गाँव' मे कथा का इन्द्रजाल फैला देते थे। कुछ उपन्यासकारो ने भी 'पुर' का प्रयोग किया है (जैनेन्द्र किशोर : 'कमलिनी', मेहता लज्जाराम शर्मा · 'आदर्श दम्पति') किन्तु उन्होने भौगोलिक सत्य का आभास दिया है। यह आवश्यक नही है कि उपन्यास मे उल्लिखित स्थानो के नाम वास्तविक और परिचित हो। कल्पित नामो से भी वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न किया जा सकता है। स्थान कल्पित रहे हो या अपरिचित, उपन्यास-लेखको ने उनका नाम रखकर उनका अस्तित्व सिद्ध किया। उन्होने या तो वास्तविक स्थानो को कल्पित नाम दिए या कल्पित स्थानो को वास्तविक नाम। बहुतो ने प्रसिद्ध और सुपरिचित स्थानों को कथा का केन्द्र बनाया। आलोच्यकाल के उपन्यासो मे काशी की चर्चा इतनी हुई है कि उनकी एक नायिका की कल्पना करनी है तो काशी की कल्पना

करनी चाहिए।

परिचित स्थानो की अपेक्षा नवीन या अपरिचित स्थानो मे अधिक आकर्षण होता है। कुछ उपन्यास-लेखको ने नवीन प्रदेशो या क्षेत्रो को चुना और उन्हे अपने उपन्यासो का घटनास्थल बनाया। इससे प्रादेशिक या आचलिक उपन्यासो का सूत्रपात हुआ। बालकृष्ण भट्ट, 'हरिऔध', गोपालराम गहमरी और मन्नन द्विवेदी ने सयुक्त प्रात, ठाकुर जगमोहन सिंह ने मध्यप्रदेश भुवनेश्वर मिश्र, अवधनारायण और जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने मिथिला के गाँवो की झाँकियाँ प्रस्तुत की है। उन्होने प्रकृति और मानव-समाज का जो रूप अकित किया है उसमे स्थानीय रग है। उपन्यास मे स्थानीय रग का महत्त्व बन गया है। 'श्यामास्वप्न' मे ग्रामीण दृश्य का जैसा स्वाभाविक किन्तु सुन्दर चित्रण है वैसा प्राचीन कथासाहित्य मे तो क्या समकालीन उपन्यासो मे भी विरल है ·

पुराने टूटे-फूटे दिवाले इस ग्राम के प्राचीनता के साक्षी हैं, ग्राम के सीमात के झाड जहाँ झु ड के झु ड कौवे और बकुले बसेरा लेते है गँवई की शोभा बढाते है, प्यौ फटते और गोधूली के समय गैयो के खिरके की शोभा जिनके खुरो से उडी धूल ऐसी गलियो मे छा जाती है मानो कुहिरा गिरता हो, ये भी ग्राम मे अभिसार का एक अच्छा समय होता है।

स्थान के अतिरिक्त काल की विशिष्टता पर ध्यान दिया गया। सामाजिक उपन्यासो मे वर्तमान का, ऐतिहासिक उपन्यासो मे अतीत का और तिलस्मी उपन्यासो मे भविष्य का प्रतिबिंब मिलता है। युग-विशेष के रीति-रिवाज, रहन-सहन और आचार-विचार की पूर्ण और यथार्थ रूपरेखा उपन्यास मे ही मिलती है। ऐतिहासिक उपन्यासों की महानता भिन्न-भिन्न कालों की सामाजिक, राजनीतिक और सास्कृतिक परिस्थितियो के सम्यक अध्ययन में है।

पृष्ठभूमि को कवि, चित्रकार और नाटककार की दृष्टियों से देखा जाता है। तदनुरूप उसका वर्णन सांकेतिक, यथातथ्य और तटस्थ होता है। प्रौढ़ प्रतिभासपन्न उपन्यासकार एक साथ ही कवि का हृदय, चित्रकार की आँख और नाटककार का मस्तिष्क रखते हैं। प्राकृतिक पृष्ठभूमि के लिए प्रकृति का संश्लिष्ट या संक्षिप्त वर्णन किया जाता है। पुराने उपन्यासों के अध्याय अक्सर प्रकृति के कोमल या भयकर दृश्य से आरम्भ होते हैं।

सामाजिक पृष्ठभूमि के लिए घर, कमरे, सडक आदि का विवरण दिया जाता है और उसकी सूक्ष्मता एव विस्तार पर यथार्थवादी उपन्यास मे विशेष ध्यान रखा जाता है। भौतिक वातावरण के अतिरिक्त मानसिक वातावरण भी होता है। दोनो मे सामंजस्य का विरोध दिखाकर अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। रोमानी उपन्यास मे मनुष्य और प्रकृति का रागात्मक सम्बन्ध दिखाया गया है और विविध भावो का संचार करने के लिए प्रकृति के विविध रूपो का चित्रण किया गया है। सामाजिक उपन्यास मे व्यक्ति और आवेष्टन मे सक्रिय, सजीव सम्बन्ध स्थापति किया जाता है। एक ही काल मे लिखित 'चन्द्रकाता' मे बनारस से दूर के पहाड, नदियाँ, घाटियाँ और जगल है तथा 'नि.सहाय हिन्दू' मे बनारस की गन्दी सडकें, अधेरी गलियाँ, नग कमरे और मनहूस दूकाने है। पहला उपन्याम वन और पर्वत का उपन्यास है, दूसरा गलियो और कोठरियो का।

वर्णन कवि के लिए मित्र है, उपन्यासकार के लिए शत्रु। सस्कृत के गद्य-प्रबन्धकार वन-उपवन, सध्या-प्रात आदि का वर्णन करने लगते थे तो कथाकार से कवि बन जाते थे। वे पृष्ठभूमि को वर्णन-शक्ति प्रदर्शित करने का साधन मानते थे। उनके सूक्ष्म विवरण से भौतिक वातावरण सजीव हो उठता था किन्तु उनका वर्णन कथा का अग न होकर आभूषण बन जाता था। उपन्यासकार वर्णन के लिए वर्णन नही करते। उनमे से कुछ तो सुन्दर मनोहर दृश्यो का संक्षेप मे उल्लेख कर देते है, कुछ साधारण, अनाकर्षक और उपेक्षित वस्तुओ का विवरण देना आवश्यक समझते हैं। ब्रजनन्दन सहाय के 'अद्भुत प्रायश्चित' (१९०५) मे दोनो के उदाहरण मिलते है। घर की दशा देखिये :

घर बहुत गन्दा था वहाँ एक चटाई बिछी हुई थी और एक टूटी चारपाई थी। कोने मे एक दो मिट्टी के बर्तन पड़े हुए थे। चारो ओर मकडे जाला लगाए हुए थे।[37]

वर्णन का नितान्त अभाव उतना ही खटकता है जितना उसका अनावश्यक आधिक्य। उपन्यासकार का वर्णन-कौशल इसमे है कि वह छोटी-छोटी बातो की चर्चा को भी रोचक बना दे और गल्त को सत्य के समान प्रस्तुत करे, जैसा 'भाग्यवती', 'आश्चर्य वृत्तान्त' और 'विमाता' में किया गया है।

उपन्यास मानवीय कथा है। उसमें वर्णन की उपयोगिता उसी अंश

तक है जिस अश तक वह नाटकीय और प्रतीकात्मक है अर्थात् उससे मानवीय कार्य और भाव की व्याख्या होती है। जहाँ पृष्ठभूमि का वर्णन मुख्य होता है वहाँ घटना और चरित्र गौण हो जाते है। प्रकृति से मनुष्य की महिमा बढकर है। हरी-भरी प्रकृति आनन्द-मग्न प्रेमी-प्रेमिकाओ के प्रेम-व्यापार मे अवश्य योग देती है पर वे स्वयं मरुभूमि को भी सरस बना सकते हैं।[38] जिस उपन्यासकार को मानवजीवन की ही कविता प्रिय है वह प्रकृति की माया से मोहित नही होता। प्रेमचन्द ने प्राकृतिक सौदर्य को मानवीय दृश्य का अंग बनाकर वर्णन को कथा मे मिला दिया गया है। 'प्रेमा' की ये पक्तियाँ उदाहरणार्थ उद्धृत है ·

अमृतराय मन मे बहुत सी बाते सोचते-सोचते पूर्णा के साथ कोठे पर गये। खुली हुई छत थी। कुर्सियाँ धरी हुई थी। नौ बजे रात का समय, चैत्र के दिन, चाँदनी खूब छिटकी हुई, मद-मद शीतल वायु चल रही थी। बगीचे के हरे-भरे वृक्ष धीरे-धीरे झूम-झूम कर अति शोभायमान हो रहे थे। जान पड़ता था कि आकाश ने ओस की पतली, हलकी चादर सब चीजो पर डाल दी है। दूर-दूर के धुँधले-धुँधले पेड ऐसे मनोहर मालूम होते हैं मानो देवताओ के रमण करने के स्थान है।[39]

पृष्ठभूमि के प्रति दो दृष्टिकोण है : वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ। दोनो के लिए यह उचित है कि वर्णन मे विस्तार नहीं हो, कथात्मक अंश से उसका सम्बन्ध रहे; जहाँ ऐसा न हो वहाँ वह किसी पात्र के दृष्टिकोण के अनुकूल हो। वर्णन-कला अनावश्यक विस्तार मे न होकर व्यजना मे है। देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, प्रेमचन्द और अवधनारायण के वर्णन की सार्थकता पाठको को वर्ण्य विषय मे तन्मय कर देने मे है। बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, ब्रजनन्दन सहाय और मन्नन द्विवेदी वर्णन के आवेश से कथा की गति मे बाधा डालते है।

उद्देश्य

कथा-साहित्य की पुरानी परम्परा और नवविकसित उपन्यास मे सबसे स्पष्ट किन्तु सबसे सूक्ष्म अन्तर उद्देश्य का अन्तर है। सस्कृत गद्य-कवियों का लक्ष्य रस और अलकार की झड़ी लगाकर पाडित्य का प्रदर्शन करना था। हिन्दी मे सस्कृत और फारसी से आने वाली लोकप्रिय कथाएँ मनबहलाव का मसाला देकर साहित्यिक खुराक जुटाती थी। 'रानी केतकी

की कहानी', 'नासिकेतोपाख्यान' और 'प्रेमसागर' भाषा का आदर्श उपस्थित करने के लिए लिखे गए। राजा शिवप्रसाद, प० वशीधर, प० बद्रीलाल आदि ने पाठ्यक्रम के लिए उपयोगी कथाग्रथो की रचना की। सक्षेप मे, उपन्यास के पूर्व साहित्यिक और लोकप्रिय कथाओ का उद्देश्य 'कांता सम्मित उपदेश' देना था। मनोरजन और उपदेश के तत्त्व, कम या अधिक, समस्त कल्पनात्मक साहित्य मे रहते है और वे उपन्यास मे भी बने रहे। प्राचीन कथाओं और उपन्यासो का अन्तर निरुद्देश्य और सोद्देश्य लेखको की रचनाओ का अन्तर नही है। अन्तर जीवन के प्रति दृष्टिकोण और उसको व्यक्त करने की प्रणाली मे है। उपन्यासकारो के दृष्टिकोण मे जो सजगता, वैयक्तिकता, विशिष्टता और व्यापकता है वह पुराने ढग के कथाकारो मे नही थी। प्रेमचन्द का यह कथन अपूर्ण है :

प्राचीन कथाओ मे लेखक बिल्कुल नेपथ्य मे छिपा रहता था। हम उसके विषय मे उतना ही जानते थे, जितना वह अपने को अपने पात्रो के मुख से व्यक्त करता था। जीवन पर उसके क्या विचार है, भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे उसके मनोभावो मे क्या परिवर्तन होते है, इसका हमे कुछ पता न चलता था; लेकिन आजकल उपन्यासो मे हमे लेखक के दृष्टिकोण का भी स्थल-स्थल पर परिचय मिलता रहता है।[40]

पात्रो के चुनाव और चित्रण मे उपन्यासकारो की जीवनदृष्टि ध्वनित होती थी, साथ ही वे उपन्यास के बीच मे पाठको से बातचीत करने का समय या अन्त मे विदा लेने के समय उन्हे कला या नीति के सम्बन्ध मे कुछ कहने का लोभ सवरण नही कर पाते थे। पुराने कथाकार टीका-टिप्पणी करने का प्रयास नहीं करते थे।

प्राचीन कथाओ के उपकरण के चुनाव और उपयोग मे किसी नवीन और गम्भीर जीवन-दर्शन को प्रभावशाली ढग से प्रकट करने का प्रयास नही मिलता। आधुनिक उपन्यास का स्वरूप निर्धारित करनेवाला लेखक का जीवन के प्रति विशेष दृष्टिकोण है। हम कह सकते है कि उपन्यास उपन्यासकार के जीवन-दर्शन का ही विस्तार है। वह अपनी वस्तु का विन्यास और पात्रो का चित्रण अपनी जीवनदृष्टि का स्पष्ट या साकेतिक परिचय देने के लिए करता है। पुरानी कथा-कहानी की तरह उपन्यास मन को मुग्ध करने वाला अद्भुत घटनाओ का चक्र नही है बल्कि लेखक के मत का वाहन और पाठक के भाव-विचार को उत्तेजित करने का साधन है। जो उपन्यास

कौतूहल तृप्त करने के साथ-साथ आदर्श की ओर आकृष्ट नही करता, जिसमे जीवन की जटिल समस्या का हल नही प्रस्तुत किया जाता और जिसके अध्ययन से शक्ति और प्रसन्नता का अनुभव नही होता उसकी लोकप्रियता अर्थहीन, साहित्यिक मूल्य नगण्य और सामाजिक उपयोगिता सदिग्ध है।

सस्कृत-फारसी कथासाहित्य मे सरल सुख-दुख, हास-विलास, विस्मय-वैचित्र्य का वर्णन है। सामाजिक जीवन के गूढ-प्रसगो से उसका सम्बन्ध नही है। उसकी रचना मनोविनोद के लिए हुई थी। उपन्यास लोकप्रिय किन्तु गम्भीर कला-रूप है। जिस उपन्यासकार के पास कहने के लिए कुछ मूल्यवान नही है वह पाठकवर्ग के हृदय पर स्थायी प्रभाव नही डाल सकता, भले ही वह कुछ पाठको को अधिक काल तक और अधिकाश पाठको को कुछ काल तक प्रभावित कर ले। जब तक उसका अपना एक निश्चित मत नही होगा तब तक वह समाज की समस्या और उसका समाधान उपस्थित नही कर सकेगा। हमारे सभी श्रेष्ठ उपन्यासकार श्रेष्ठ विचारक है। उनकी रचनाओ की शक्ति का स्रोत उनकी विचारधारा है। उनकी विचारधारा मे बल है और उस बल मे उन्हे विश्वास है। पुराने उपन्यासो मे कला की ऊँचाई हो या न हो जीवनदर्शन की गहराई तो है ही। उनके जन्मदाताओ ने उन्हे विचार के प्रचार का साधन बनाकर उन्हे मरण के भय से मुक्त कर दिया है।

शैली

शैली की दृष्टि से भी उपन्यास की अपनी विशेषता है। प्राचीन कथाएँ पद्य और पद्याभास गद्य मे लिखी गई थी। उपन्यास विशुद्ध गद्य मे लिखा गया। इब्सन के शब्दो मे पद्य 'देवताओ की भाषा' (लैंग्वेज आफ द गौड्स) है। गद्य दैनिक जीवन की भाषा है। पद्य मे गद्य यथार्थ के अधिक निकट है और उपन्यास यथार्थ के बिना रह नही सकता, इसलिए गद्य उसके लिए उपयुक्त होता है। यथार्थता विषय में ही नही, विषय का प्रतिपादन करने की रीति मे भी है। जीवन का यथार्थ, वस्तुनिष्ठ और पूर्ण चित्रण गद्य के माध्यम से ही मभव है और कहानी भी उसी के माध्यम से कहने योग्य होती है। उपन्यास के लिए ऐसा गद्य चाहिए जिसमे सरलता, स्वाभाविकता, लचक और स्वछदता हो। प्रारम्भिक हिन्दी-उपन्यास मे ऐसे गद्य का व्यवहार किया गया। सस्कृत और फारसी की रोमानी कथाओ का उदात्त गद्य उसके लिए विशेष उपयोगी नही हो सकता था। प्रथम आधुनिक उपन्यासकार को यथार्थ

चित्रण के लिए बोलचाल की भाषा का व्यवहार करना आवश्यक प्रतीत हुआ।[41] वाण और सुबन्धु के लिए शैली साधन न होकर साध्य थी। उन्नीसवी शताब्दी पूवार्ध तक लिखित हिन्दी-कथाओं का गद्य पद्य की रूढियो से आछन्न था। काव्याभास गद्य उदात्त, अलौकिक और शाश्वत तत्त्वो को वहन कर सकता था किन्तु दैनिक जीवन की साधारण वस्तुओ को प्रस्तुत करने मे असमर्थ था। अत· उपन्यासकारो ने सरल निराडम्बर गद्य-शैली का प्रयोग किया, जो कथासाहित्य मे नूतन परिवर्तन का द्योतक था।

उपन्यास के अभाव का एक कारण औपन्यासिक गद्य का अभाव था। इशा, सितारेहिन्द, प० बद्रीलाल, पं० गौरीदत्त आदि कथा-लेखको ने ठेठ भाषा का व्यवहार किया था, जो कथासाहित्य के लिए उपयोगी थी। फिर भी उन्नीसवी शताब्दी के मध्यकाल तक हिन्दी-गद्य की निजी विशिष्टता अच्छी तरह निखर नही पाई थी। एक नई समस्या उस समय खडी हुई जब राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द फारसी की ओर फिसल पडे और राजा लक्ष्मण सिंह सस्कृत के मोह मे पड गये। दोनों राजाओ का दृष्टिकोण प्रतिक्रियावादी था। इस विषम स्थिति मे भारतेन्दु प्रगतिशील दृष्टिकोण लेकर आये और मार्ग-प्रदर्शन किया। वे हिन्दी मे सरल और प्रचलित फारसी-उर्दू शब्दो के लाने के विरोधी नही थे पर कठिन तत्सम सस्कृत शब्दो के ठूँसने के हिमायती भी नही थे। उन्होंने अतिवाद से बचकर हिन्दी के व्यक्तित्व की रक्षा की। उन्होने भाषा का स्वरूप स्थिर कर शैली को आधुनिक वेश प्रदान किया। उनके हाथों "सन् १८७३ मे हिन्दी नई चाल मे ढली"। हिन्दी के नई चाल मे ढलने का अर्थ है बोलचाल की भाषा का साहित्यिक रूप मे ढलना।[42] भारतेन्दु ने सस्कृत और फारसी में नही बल्कि बोलचाल और साहित्य की भाषाओ मे समझौता किया। भारतेन्दु-युग मे आकर गद्य वर्णन, विश्लेषण और वार्तालाप का सफल माध्यम बन सका। उपन्यास जिस गद्य की प्रतीक्षा मे था उसे उपस्थित करने मे प्रारम्भिक गद्य-निर्माताओ के नाम स्मरणीय रहेगे।[43] उपन्यासकारो की गद्य-शैली मे स्पष्टता, सजीवता और स्वाभाविकता के साथ कथा, वर्णन और वार्तालाप प्रस्तुत करने की जैसी शक्ति है वैसी पुराने कथाकारो की शैली मे नही है। पुरानी शैली मे नई अनुभूति और विचार को व्यक्त करने की सामर्थ्य नही थी। उपन्यासकारो की भाषा का महत्त्व इसमे है कि वह नई वस्तु, नई संवेदना और नई भावना की अभिव्यक्ति कर सकी। उनकी शैली एक प्रकार से उनकी जीवन दृष्टि

बन गई।

उपन्यास का तात्त्विक विवेचन करने पर दो बाते स्पष्ट हो जाती है : उपन्यास के सभी अगो मे नवीनता और नमनीयता है तथा उनके गठन मे उपन्यासकार जिस विलक्षण कला का उपयोग करता है वह वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने की कला है। इस कला का चमत्कार विशेषकर कथा-विन्यास और चरित्र-चित्रण मे दिखाई पडता है। उपन्यासकार कथा और चरित्र का इस स्वाभाविक ढग से प्रस्तुत करता है कि वे कल्पित होकर भी यथार्थ प्रतीत होते है। पाठक कथा को आपबीती या जगबीती घटना के समान और चरित्र को अपने या अपने परिचित के समान सत्य समझ बैठते है। कला मे सत्य से सत्य की प्रतीति कम विश्वसनीय नही होती। यथार्थ-वादी एक प्रकार से भ्रमवादी होता है। नाटक मे दर्शक द्वारा भ्रम की सृष्टि की जाती है, उपन्यास मे लेखक द्वारा। दर्शक भ्रम की अवस्था मे अधिक देर तक नही रहता क्योकि वह अभिनेता को उस व्यक्ति से भिन्न समझता है जिसका वह अनुकरण करता है। उपन्यास मे कम से कम उस समय तक भ्रम बना रहता है जब तक वह पढा जाता है। जहाँ रंगमचीय साधन फीके पड जाते है वहाँ सजीव पन्ने अपना रग जमा लेते है। यदि उपन्यास मे भी घटनाएँ असम्भव और अद्‌भुत हो पात्र अलौकिक और असामान्य हो तो "अविश्वास को स्वेच्छा से हटाना" कठिन होता है। साधारणीकरण मे घटनाओ की असाधारणता से पात्रो की असाधारणता अधिक बाधक होती है। पात्रो की अवतारणा घटनाओ मे सत्याभास प्रदान करने के लिए की जाती है। कथा को विश्वास योग्य और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए विभिन्न तत्त्वो का सहज, सफल समन्वय वाछनीय है। स्वाभाविकता उपन्यास का प्राण है। हेनरी जेम्स के विचार से जीवन का भ्रम उत्पन्न करना "उपन्यास-कार की कला का अथ और इति" है।[44]

शब्द, अर्थ और परिभाषा

उपन्यास की विधा नई है पर 'उपन्यास' शब्द पुराना है। संस्कृत साहित्य-शास्त्र मे जिस सन्दर्भ और अर्थ मे उसका प्रयोग किया गया उस सन्दर्भ और अर्थ मे हिन्दी मे नही किया गया है। 'साहित्य-दर्पण' मे वह भाणिका का एक भेद माना गया है, जो दृश्यकाव्य के अन्तर्गत है। संस्कृत मे गद्यकाव्य के लिए उपन्यास का प्रयोग नही हुआ पर हिन्दी मे बहुत दिनो

तक वह गद्यकाव्य मे परिगणित होता रहा। पं० अम्बिकादत्त व्यास ने 'गद्य-काव्य मीमासा' और डा० श्यामसुन्दरदास ने 'साहित्यालोचन' मे उसे गद्य-काव्य की कोटि मे ही रखा है। उपन्यास गद्यकाव्य से भिन्न एक स्वतन्त्र रचना-प्रकार है। 'अमरकोष' मे दिया गया अर्थ उस पर लागू नही होता। वह अग्रेजी 'नोवेल' का समानार्थी है। प्राचीन सस्कृत-साहित्य मे प्रयुक्त इस शब्द से उसकी नाममात्र की समानता है। हिन्दी मे यह शब्द सीधे संस्कृत से न आकर बगला से आया।[45]

'उपन्यास' नाम का प्रयोग भारतेन्दु-काल से ही होने लगा था, यद्यपि उसके लिए अन्य शब्द भी व्यवहृत होते रहे। द्विवेदी-काल मे उपन्यास के लिए 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग होने लगा और कहानी के लिए 'आख्यायिका' का। पहले उपन्यास को आख्यायिका भी कहा जाता था, ('चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश')। उपलब्ध रचनाओ मे 'मालती' (१८७५) के लिए सर्वप्रथम उपन्यास का प्रयोग हुआ है। 'श्यामास्वप्न' को 'गद्यप्रधान कल्पना', 'प्रणयिनी परिणय' को 'एक अपूर्व अभिनव प्रकार की अलौकिक कल्पना' और 'सौ अजान एक सुजान' को 'प्रबन्ध कल्पना' कहा गया है। 'अमरकोष' मे कथा-आख्यायिका मे भेद दिखाते हुए कथा को प्रवन्ध कल्पना कहा गया है,— 'प्रबन्ध कल्पना कथा'। उक्त रचनाओ मे 'कल्पना' का व्यवहार सूचित करता है कि उपन्यास कल्पित कथा माना जाता था। अग्रेजी 'फिक्शन' का भी यही अभिप्राय होता है। अम्बिकादत्त व्यास ने अपने उपन्यास का नाम 'आश्चर्य वृत्तान्त' रखा है। वृत्तान्त से सच्ची घटना का बोध होता है। इस दृष्टि से उपन्यास सत्य-कथा का आभास देता था। 'वार्ता' शब्द का व्यवहार भी कभी-कभी किया जाता था, जो बडी कथा का सूचक था। 'परीक्षागुरु' को उपन्यास के साथ ही 'एक सासारिक वार्ता' कहा गया है। आरम्भ मे कुछ उपन्यासकार और आलोचक 'नोवेल' का ही प्रयोग करते थे, रूपनारायण दर ने अपनी 'श्यामकुमारी' को 'नोवेल' की सज्ञा दी है। राधाचरण गोस्वामी ने अपने उपन्यासो ('कल्पलता', 'सौदामिनी' आदि) के लिए 'नवन्यास' शब्द का उपयोग किया था जो अग्रेजी 'नोवेल' के अधिक निकट था। इन सभी शब्दों में 'उपन्यास' शब्द ही अत्यधिक प्रचलित रहा और अब तो वह रूढ हो गया है। उसे बहुधा पुस्तक के मुखपृष्ठ या भूमिका मे निर्दिष्ट कर दिया जाता था।

मराठी और गुजराती मे 'नवलकथा' 'नोवेल' के आधार पर गढा

हुआ शब्द है। मराठी मे उपन्यास को 'कादम्बरी' की भी सज्ञा दी गई है। अब भारतीय साहित्य मे प्राय: 'उपन्यास' शब्द का ही व्यवहार किया जाता है। 'नोवेल' से नूतन साहित्य-रूप का बोध होना है, जो उपन्यास से नही होता। उपन्यास का व्युत्पत्यर्थ है समीप रखना। वह ऐसा साहित्यिक माध्यम है जिससे लेखक पाठक के समीप अपने अनुभव की कथा, मानव-चरित्र का चित्र और अपनी जीवनदृष्टि प्रस्तुत करना चाहता है। उसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा नही है। जार्ज ऑरवेल ने उसे "सर्वाधिक अराजकतावादी साहित्य-रूप" (द मोस्ट एनार्किकल ऑफ ऑल फोर्मस ऑफ लिटरेचर") कहा है। वास्तव मे वह साहित्य का ऐसा रूप है जिसका कोई रूप नही है। वह परिभाषा के बन्धन मे बधने के लिए तैयार नही होता। जिसके सीमाहीन प्रसार मे 'चन्द्रकाता सतति', 'सेवासदन', 'सुनीता' और 'शेखर—एक जीवनी' को स्थान मिल सकता है उसकी एक परिभाषा सुनिश्चित करना कठिन है। हेनरी जेम्स के अनुसार वह "अत्यन्त स्वतन्त्र, अत्यन्त नमनीय, अत्यन्त विराट साहित्य-रूप" है।[46]

उपन्यासकारों के सिद्धान्त

फिर भी, उसके जन्मकाल से ही उसकी परिभाषा और व्याख्या दी गई है। उसके सम्बन्ध मे उपन्यासकारो ने जो विचार व्यक्त किये अथवा सिद्धान्त निर्धारित किये है यहाँ उनका विवेचन करना आवश्यक है। आलोचको के मत का उल्लेख 'प्रस्तावना' मे किया जा चुका है।

प० बालकृष्ण भट्ट ने उपन्यास को "मन बहलाने वाली गुटिका"[47] कहा था। उनकी परिभाषा एकागी होते हुए भी प्रारम्भिक उपन्यासो के लिए सत्य है। उनका आकार छोटा होता था। उनमे अनेक ऐसे हैं जो आज लघु उपन्यास की कोटि मे भी नही रखे जायेंगे। उनके आकार के सम्बन्ध मे तत्कालीन लेखको की जो धारणा थी उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। आज की धारणा के अनुसार उन्हें उपन्यास नहीं मानना उचित नहीं होगा। वह प्रयोग का काल था, उस काल की रचनाओ को जरा सहानुभूति से देखना ही पड़ेगा। भट्ट जी ने उपन्यास मात्र को गुटिका की सज्ञा दी थी परन्तु प० अम्बिकादत्त व्यास ने 'उपन्यासिका' नाम से उसका एक स्वतन्त्र प्रकार निर्धारित किया था। उनके अनुसार "जो तीन घण्टे के भीतर पढ़ा जा सके वह उपन्यासिका"[48] है। उन्होंने अपनी छोटी-सी कथारचना 'स्वर्गसभा' को

उपन्यासिका के अन्तर्गत रखा था। लघु उपन्यास की यह परिभाषा अभी भी उपयोगी है।

उपन्यास के आकार की अपेक्षा उसके उपादान को अधिक महत्त्व दिया जाता था। भट्टजी ने लिखा था कि उपन्यास का मुख्य रस शृङ्गार रस है, "बिना जिसके यह ऐसा भासित होता है जैसा सर्वांग सुन्दर रमणी की किसी ने नाक काट लिया हो"[49]। उपन्यास के उदयकाल से ही उसमे प्रेमतत्त्व की प्रधानता रही है। यहाँ तक कि वह प्रेमकथा का पर्याय माना जाता रहा है। किशोरीलाल गोस्वामी की दृष्टि मे प्रेमभाव उपन्यास का प्रमुख आकर्षण है :

इसमे प्रेम की प्रबलता, प्रणय की उन्मत्तता, चाह की मत्तता, यौवन का पूर्ण विकास, लालसा का प्रबल प्रवाह, कामना का वेग, रस की तरग, प्रीति की लहरी, सभी कुछ रहता है, इसीलिए कवियों मे, साहित्यश्रेणी मे उपन्यास को श्रेष्ठ गद्दी दी है।[50]

रामप्रसाद शर्मा ने अपनी 'चन्द्रमुखी' मे इसी आशय का विचार प्रकट किया है। कुछ उपन्यासकार उपन्यास को कल्पित प्रेमकथा न मानकर समाज का सच्चा इतिहास मानते हैं और उनके अनुसार उसकी श्रेष्ठता प्रेमानुभूति की व्यंजना मे नही बल्कि सामाजिक व्यवहार के वर्णन मे निहित है।

उपन्यास समाज का चित्र है और आज उपन्यास की जो कथा कल्पित मानी जाती है वही समय पडने पर इतिहास बन जाती है।[51]

ब्रजनन्दनसहाय ने उसे इतिहास से भी ऊँचा स्थान दिया है :

इतिहास उतने दिन नही रहता जितने दिन कविता, उपन्यास तथा नाटक रहते है और जितने लोग इन विषयो को पढते हैं उतने लोग इतिहास को कदापि नहीं पढते। इसका परिणाम यह होता है कि भविष्य में उपन्यास आदि के सहारे लोग समाज, देश तथा जाति की रीति, नीति एवं आचार-विचार से अवगत होते है।[52]

ऊपर दी गई कोई एक परिभाषा पूर्ण नही कही जा सकती। उपन्यास का क्षेत्र विशाल है। उसमे काव्य की कल्पना भी है और इतिहास का सत्य भी। उसमे सामाजिक यथार्थ के साथ ही सुधारवादी आदर्श भी होना चाहिए ताकि वह मनुष्य के भविष्य का निर्माण कर सके। माधव केसोट ने उपन्यासकार के गहन दायित्व की ओर संकेत करते हुए लिखा था :

उपन्यास लिखना कोई लडको का खेल नही है। उपन्यास से समाज, देश व भाषा को बडी हानि, लाभ पहुँचाता है। उपन्यास भी एक तरह पर समाज, देश व भाषा का इतिहास बनाने वाला होता है।[53]

पुराने उपन्यासकार इस महत्वपूर्ण बात को महसूस करते थे कि उपन्यास का कार्य वर्तमान की व्याख्या करने के साथ-साथ समाज को अनागत के लिए तैयार करना है। मेहता लज्जाराम शर्मा के विचार से उपन्यास के विविध प्रयोजन है. उससे "प्रजा के सच्चे चरित्र का बोध हो" और "होनहार प्रजा के चरित्र" का रूप भी अकित हो।[54] उपन्यास एक साथ ही अतीत की प्रतिध्वनि, वर्तमान का प्रतिबिम्ब और भविष्य का सकेत है।

उसमे जीवन, जीवनदर्शन और कला के तत्त्व सन्निहित है। इनके समन्वय से उसका रूप निर्मित होता है। वह केवल जीवन का अग नही, कलाकृति भी है। पुराने उपन्यासकारो की भी मान्यता थी कि उससे जीवन के सम्बन्ध मे उत्कठा ही पूरी नही होती, साहित्यिक आनन्द की भी उपलब्धि होती है। उसे गोपालराम गहमरी ने 'साहित्य का मधुर अग' और अमृतलाल चक्रवर्ती ने 'कोमल मधुर साहित्य' माना है।[55] यह सही है कि उसे इस रूप मे ग्रहण करने की चेष्टा कम हुई है। उसकी अपरिमित सख्या देखकर तो ऐसा लगता है कि उसकी रचना के लिए असाधारण प्रतिभा नही बल्कि कागज और स्याही का उपयोग करने की शारीरिक शक्ति चाहिए। फिर भी यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि उपन्यास एक गम्भीर कला है।

उपन्यासकार का काम केवल कहानी गढना, चरित्र-निर्माण करना और सन्देश सुनाना नही है। उसे सामग्री के साथ-साथ सामग्री की सज्जा पर भी ध्यान देना पडता है। निम्नलिखित परिभाषा कला-पक्ष की दृष्टि से बड़ी समीचीन है।

किसी घटना को ऐसे अगो मे विभक्त करके जिनको अलग-अलग वर्णन करने मे आश्चर्य, आनन्द और साहित्य के छओ रसों का यथास्थान रस प्राप्त हो सके और उन भिन्न-भिन्न अंगों के वर्णन के अन्त मे समस्त घटना सुशृंखल बन जावे और सारा वृत्तान्त एक साथ मालूम हो जावे, ऐसे गद्य के लेख को उपन्यास कहते है।[56]

टिप्पणियाँ

१– सस्कृत मे दडी का 'दशकुमारचरित', ग्रीक मे लौग का 'डैफनिस ऐंड क्लो' तथा लैटिन में पेत्रोनियस का 'सैट्रिकौन' 'पुराने उपन्यास के नमूने माने जा सकते हैं। 'दशकुमारचरित' एक राजकुमार और नौ मत्रि-कुमारो के भ्रमण-वृत्तात के रूप में प्रेम, साहसिकता और धूर्तता की अनूठी कथा है। 'डैफनिस ऐंड क्लो' ग्राम्य जीवन के निर्दोष प्रेम की मधुर कहानी है। 'सैट्रिकौन' मे उच्च वर्ग के पाखण्ड और रोमन समाज के भ्रष्टाचार पर व्यग्य किया गया है।

2– "Encyclopaedia Britannica, Vol 16, 577

इस उपन्यास का अनुवाद प० छविनाथ पाण्डेय द्वारा 'गेजी की कहानी' नाम से किया गया है और साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित हुआ है।

३– आदि अग्रेजी उपन्यासकार फील्डिग ने अपने उपन्यास 'जोसेफ ऐंड्रयूज' को 'कौमिक एपिक इन प्रोज' की सज्ञा दी थी। राल्फ फौक्स के शब्दों मे वह 'आधुनिक बुर्जुआ समाज का महाकाव्यात्मक कला-रूप (Epic are form of our modern bourgious society) है, 'द नोवेल ऐण्ड द पीपुल' पृ० ८०। हिन्दी लेखको मे सर्वप्रथम सभवत: पं० रामदास गौड ने उपन्यास को 'गद्य का महाकाव्य' कहा था। देखिए रामदास गौड़ : 'प्रेमचन्द जी का गद्यकाव्य', विशालभारत, जनवरी १९२८, पृ० ५६)

4– "The novel was bound to develop, therefore, under capitalism, whose increase in the productive forces brought by the division of labour not only increased the differentiation of society but also by continually revolutionising its own basis produced an endless flux and change in life."

—Illusion and Reality, p. 173.

5– "It is from Northern Italy that the novel of modern Europe (both the literary type and the name) derives."

—Encyclopaedia Britannica, Vol 16, p.577

६– देखिए 'प्रणयिनी परिणय' का उपोद्घात

७– वही

८– काव्यादर्श ॥२८॥

९– आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा
कथानिकोति मन्यन्ते गद्यकाव्यञ्च पञ्चधा ।।१२।।

१०–ओज: समास भूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवनम्

११–नवोऽर्थे जातिरग्राम्या श्लेषो क्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्
—हर्षचरित ।।९।।

१२–प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध-विन्यास वैदग्ध्यनिधिर्निबधम
—वासवदत्ता, श्लोक ९

१३–स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति राग हृदि कौतुकाधिकम्
रसेन शय्या स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव,
—वही ।।८।।

१४–'नाटक और उपन्यास', प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कार्य विवरण—
दूसरा भाग, पृ० ८८

१५–'उपन्यास-रहस्य', 'सरस्वती', अक्टूबर, १९२२, पृ० १९७

१६–'उपन्यास', 'हिन्दी प्रदीप', जनवरी १८८२, पृ० १८

१७–'उपन्यास और छोटी कहानियों के ढाँचे हमने पश्चिम से लिए है।'
—प० रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृ० ५३९

'उपन्यास-लेखन की आधुनिक कला पाश्चात्य देशो से आई है······'
—डा० श्यामसुन्दर दास : 'साहित्यालोचन', पृ० १५७

'हिन्दी मे नये उपन्यासो का चलन बहुत कुछ अंग्रेजी और बंगला के उपन्यासो की प्रेरणा से हुआ।'
—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र · 'वाङ्मय विमर्श', पृ० ५०

'यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियाँ संस्कृत की कथा-आख्यायिका की सीधी संतान है।'
—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'साहित्य का मर्म', पृ० ६३

१८–'मिश्रबन्धुविनोद' (चतुर्थ भाग), पृ० १५८

१९–'साहित्यालोचन', पृ० १५४

२०–'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृ० १३८
'हिन्दी-उपन्यास', पृ० ६१

21– ‚Any fictitious prose work over 50,000 words'
—Aspects of the Novel, p. 9

२२–'गद्यकाव्य मीमांसा', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, प्रथम भाग, १८९७

23– "A novel is a living thing, all one and continuous, like other organism and in proportion as it lives will it be found, I think, that in each of the parts there is something of each of the other parts."

—The House of fiction, p.34

24 –'Art is that which gives meaning to experience'

२५–डा० श्यामसुन्दरदास : 'हिन्दी के निर्माता', पृ० ८८

२६–यशोदा देवी : 'स्वर्गीय पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी',

'सरस्वती', जुलाई, १९३२, पृ० ८२

२७–'साहित्य का उद्देश्य', पृ० ६१

२८–वही, पृ० ४४

29– "Plot is the knowing of destination"

—Elizabeth Bowen Collected impressions, p. 249

३०–"नाटक और उपन्यास", प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कार्यविवरण,

—दूसरा भाग पृ० ९४

३१–बालकृष्ण भट्ट : "सौ आजन एक सुजान", पृ० ३०

32– ··'the only classification of the novel that I can understand is into that which has life that which has it not'

—वही, पृ० ३५

३३–देखिए "चन्द्रकाता सतति", "लतिका मधुप" (१९१५)

३४–डा० श्रीकृष्णलाल ने उपन्यास की कथा-शैलियों का ऐतिहासिक दृष्टि से विकास दिखाते हुए लिखा है, 'उपन्यास मे सभाषण-कला का उपयोग बहुत देर मे हुआ, प्रारम्भ मे बहुत दिनो तक केवल वर्णनात्मक शैली का ही बोलबाला था।' —"आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास', पृ० २८६।

35– "The art of fiction does not begin until the novelist thinks of his story as a matter to be shown, to be so exhibited that it will tell itself."

—Craft of fiction, p.62

36– Aspects of the Novel, p.65

३७–पृ० ३५

38– "The setting is not very important. Happy lovers have in themselves the power of beautifying a desert. A luxuriant

nature no doubt serves them better."

—Robert Liddel . Some principles of fiction

३९—पृ० २२४—२५

४०—"साहित्य का उद्देश्य", पृ० ५०

४१—"इस पुस्तक मे दिल्ली के एक कल्पित (फर्जी) रईस का चित्र उतारा गया है और उसको जैसा का तैसा (अर्थात् स्वाभाविक) दिखाने के लिए सस्कृत अथवा फारसी अरबी के कठिन-कठिन शब्दो की बनाई हुई भाषा के बदले दिल्ली के रहने वालो की साधारण बोलचाल पर ज्यादः दृष्टि रखी गई है ।" —"परीक्षागुरु" का "निवेदन"

४२— "हरिश्चन्द्र ने उस बिगडी हुई हिन्दी भाषा को नव अलकारो से अलकृत करके सुसम्पन्न नागरी बनाकर नागरी का नाम सार्थक किया । हिन्दी-भाषा उनके समय मे ऐसी सहज मधुर एव लावण्यमयी हुई कि लोग देखते ही इस पर विमोहित होने लगे "

—शिवनन्दन सहाय : "हरिश्चन्द्र", पृ० १०९

४३—"इस देश रूपी खेत मे जो हमारी भाषा का बीज छिप रहा था उसे लल्लूलाल रूपी वर्षाऋतु ने अकुरित किया तो शिवप्रसाद शारद ने उसे वेलबूटे का आकार दिया और हरिश्चन्द्र वसंत ने उसमें फलफूल दिखलाए ।"

44— 'the begining & the end of the art of the novelist '

वही, पृ० ३३

४५—"हिन्दी मे यह शब्द बगला से आया है और अनुकरणप्रिय रचनाचतुर बंगाली ग्रन्थकारो ने आधुनिक लक्षणा से अग्रेजी के नोविल शब्द का पर्याय बना लिया है ।"

—"माधवमिश्र निबधमाला", पृ० १००

डा० सत्येन्द्र ने "समीक्षा के सिद्धान्त" (१९५२) मे पृ० १५७ मे लिखा है कि उन्हें किशोरीलाल गोस्वामी ने बताया था कि 'उपन्यास का आरम्भ बंगला के बकिम ने किया । वे एक दिन हुक्का पीते-पीते मनु-स्मृति पढ रहे थे कि उन्हें उपन्यास शब्द का पता चला और वही नाम उन्होने ग्रहण किया ।'

उपन्यास शब्द का ग्रहण और प्रचार बंकिम ने भले ही किया हो,

उसका प्रथम प्रयोग कदाचित भूदेव मुखोपाध्याय ने किया क्योंकि उन्होंने बंकिम से पहले 'ऐतिहासिक उपन्यास' (१८५७) नामकी पुस्तक लिखी थी।

46- 'the most independent, most elastic, most prodigious of literary forms'

—'The Art of the Novel'. p.326

४७—"उपन्यास", "हिन्दीप्रदीप" (जनवरी १८८२), पृ० १८

४८—"गद्यकाव्य मीमासा", ना० प्र० प०, १८९७

४९—वही, पृ० १९

५०—"सुख सर्वरी" का "निदर्शन"

५१—मेहता लज्जाराम शर्मा : "आदर्श दम्पत्ति" की भूमिका

५२—"राधाकान्त" की भूमिका

५३—"किरणशशी" की आलोचना ("मनोरजन", एप्रिल १९१३)

५४—वही

५५—"गेरुआ बाबा" की भूमिका

"चन्दा" की भूमिका

५६—वनवारीलाल तिवारी : "वीरव्रतपालन" (१९०५) की "अवतरणिका"

३

ऐतिहासिक पीठिका

हिन्दी-उपन्यास उन्नीसवी सदी की सन्तान है। साहित्य के इस नये रूप का जन्म नये भारत के जन्म के साथ हुआ और नये भारत की भाँति ही यह अंग्रेजी सम्पर्क की देन है। अंग्रेजी सम्पर्क से उपन्यास की विधा ही नहीं मिली, उससे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रो मे वे परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई जिनसे उपन्यास का विकास सम्भव हुआ।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना

भारत मे अंग्रेजों की नजर धन, धरती और धर्म पर गड़ी रही परन्तु भारतीय इतिहास मे उनका प्रवेश एक ऐसे सक्रान्ति-काल में हुआ कि वे अनजान मे भारतीय समाज और साहित्य मे नूतन, महान और दूरगामी परिवर्तन के भागी बने। आंग्ल-भारतीय सम्बन्ध की अद्भुत कहानी सोलहवी सदी के अन्त से आरम्भ हाती है। उस सदी के अन्तिम वर्ष में सैमूयल डेनियल ने विदेश मे अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रचार की रोमानी कल्पना की[1] और उसी के अन्तिम दिन ईस्ट इंडिया कम्पनी को पूर्व मे व्यापार करने की शाही सनद मिली। १६१२ मे कम्पनी ने पहलेपहल सूरत मे सुरती की कोठी खोली। एक अंग्रेज विद्वान ने एक बार कहा था कि आधुनिक सभ्यता मे दो चीजें बडी आवश्यक हो गई हैं : तम्बाकू और उपन्यास।[2] अंग्रेजों ने पहले तम्बाकू और बाद मे उपन्यास देकर दो बड़ी आवश्यकताएँ पूरी कर दी। सतरहवीं शताब्दी के अन्त तक वे पश्चिम-दक्षिण

से पूर्व-उत्तर की ओर बढ गये, तीन बडे नगरो (मद्रास, बम्बई, कलकत्ता) की नींव डालने मे सफल हुए और सौदागर के साथ-साथ जमीदार बनकर भारत मे राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखने लगे। उनका स्वप्न अन्तिम महान मुगल सम्राट औरगजेब की मृत्यु के बाद ही साकार हो सका।

१७०७ मे औरगजेब के निधन के बाद प्राय: पचास वर्षों मे विशाल, उन्नत मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और अकबर के वशज नाममात्र के सम्राट रह गए। देश छोटे-बडे स्वाधीन और सघर्षरत राज्यों मे बंट गया। वीर मराठो की जयध्वजा मध्य में गुजरात से उडीसा तक और उत्तर मे पजाब तक फहराने लगी। हिन्दू-राज्य के पुनरुत्थान की सभावना जाग उठी। भूषण की कल्पना सत्य होने को आई। ऐसी स्थिति मे यदि विदेशी व्यापारी भारतीय राजनीति मे हस्तक्षेप नही करते तो भारतवासियो मे जो योग्यतम होता उसका सिक्का चलता और भारत का इतिहास दूसरा होता। अग्रेजो ने केन्द्रीय शासन की दुर्बलता और आतरिक कलह से लाभ उठाकर अपना प्रभुत्व स्थापित करना शुरू किया। अन्तत. मुगलो के उत्तराधिकारी मराठे नही, अग्रेज बने। प्लासी के युद्ध (१७५७) मे बगाल के अंतिम बहादुर नवाब सिराजुद्दौला को उसी के अस्त्र से पराजित कर क्लाइव ने भारत मे जिस राज्य की नीव कूटनीति पर डाली उसे कूटनीति के द्वारा ही वारेन हेस्टिंग्स (१७७२-१७८५) ने मजबूत बनाया, वेलेस्ली (१७९८-१८०५) ने उस पर पाये खड़े किए और डलहौसी (१८४८-१८५६) ने उसे महल बना दिया। १७५७ से १८५७ तक का काल भारतीय राजसत्ता के विघटन और अग्रेजी प्रभुता के विस्तार का काल है। प्लासी युद्ध के बाद कम्पनी की छत्र-छाया उत्तर भारत की ओर बढने लगी और अवध के विलयन (१८५६) से समूचे हिन्दी-ससार पर छा गई।

आर्थिक परिवर्तन

कम्पनी सरकार के सौ वर्षो का इतिहास राजाओ, नवाबो और बेगमो से अधिक व्यापारियो, कारीगरो और किसानो के रक्त तथा आँसू से लिखा गया है। व्यापारी शासक के राज्य मे शासन का अर्थ था व्यापार और व्यापार का अर्थ था लूट। भारत से मुफ्त या कम दाम मे माल लिया जाता था और यूरोप मे ज्यादा दाम मे बेचा जाता था। लगान वसूल करने मे ज्यादती की जाती थी। कार्नवालिस के 'इस्तमरारी बदोबस्त' (१७९३)

से अंग्रेजी ढग की जमीदारी प्रथा की नीव पडी और किसानो को मजदूर बनानेवाला एक नया वर्ग बना। पूर्व के शासक आर्थिक शोषण करते थे तो सार्वजनिक हित के कार्यो मे व्यय करते थे। कम्पनी ने जो लूटा उससे भारत उजाड़ हो गया[3] किन्तु इगलैण्ड मे औद्योगिक क्राति हो गई[4]। औद्योगिक क्रांति के बाद मशीन से बने सस्ते विदेशी माल भारत मे धडाधड आने लगे और उद्योगपतियो का शोषण-चक्र चलने लगा। उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्ध तक भारत कच्चा माल देकर तैयार माल लेनेवाला खेतिहर उपनिवेश बन गया। उधर इगलैण्ड मे पूँजीपतियो के घर मे धन का ढेर लग गया।[5] पूँजीवाद ने साम्राज्यवाद को जन्म दिया। बाजार बनाए रखने के लिए उपनिवेश बनाए रखने की आवश्यकता थी। १८५७ के विप्लव के पूर्व ही ईस्ट इडिया कम्पनी के हाथ से शासन-सूत्र लेने की तैयारी शुरू हो गई थी जो १८५८ मे पूरी हो गई। अब लूट पर कानून की मुहर लग गई। नतीजा यह हुआ कि उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे सात बार अकाल पडे, उत्तरार्ध मे चौबीस बार।[6]

मार्क्स ने १८५३ मे लिखा था कि समस्त गृहयुद्ध, विदेशी आक्रमण, विद्रोह, विजय, दुर्भिक्ष भारतीय समाज की ऊपरी सतह को छूकर रह गए पर इगलैण्ड ने उसका पूरा ढाँचा ध्वस्त कर दिया।[7] कृषि की अवनति, उद्योग-व्यवसाय के विनाश, नगरो के ह्रास और व्यक्तिगत भू-स्वामित्व के सूत्रपात से प्राचीन ग्राम-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। भारत की आर्थिक प्रणाली की रीढ ही टूट गई। अठारहवी शताब्दी मे राजनीतिक प्रभुत्व से और उन्नीसवी शताब्दी मे उत्पादन के उन्नत साधन से आर्थिक विध्वस हुआ। भारतीय समाज की अपरिवर्तनशीलता का कारण परम्परागत श्रमविभाजन था। अग्रेजों के आने से उत्पादन और वितरण के साधनों मे परिवर्तन हुआ और भारत मे महान सामाजिक क्रान्ति हुई। मध्यकालीन सामंती व्यवस्था का स्थान नवीन पूजीवादी व्यवस्था लेने लगी। इस परिवर्तन के लिए भारत को जो मूल्य चुकाना पडा वह इतिहास मे अपना सानी नही रखता। इंगलैण्ड मे पूजीवादी समाज-व्यवस्था की प्रतिष्ठा इगलैण्ड के ही पूजीपतियों द्वारा हुई, भारत मे विदेशी व्यापारी और पूँजीपतियों द्वारा।

भारत मे भी मुगल साम्राज्य के अध:पतन के साथ पूंजीवादी वर्ग का आविर्भाव हो रहा था। सत्रहवी शताब्दी के भारतीय सौदागरों की तुलना लदन या आमस्टरडम के सौदागरों के साथ की जाती थी, सूरत का वीरजी

वोरा ससार का सबसे धनी सौदागर माना जाता था।[8] अठारहवी शताब्दी के मध्यकाल तक भारत एक महान औद्योगिक देश था। अपने उत्पादन और उत्पादन की प्रणाली मे वह किसी भी उन्नतिशील देश की समानता कर सकता था। गाँव के साथ-साथ नगरो का और नगरों में बुर्जुआ वर्ग का विकास हो रहा था। परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई थी। विकासोन्मुख पूँजीवाद ह्रासोन्मुख सामन्तवाद को अपदस्थ कर नई समाज-व्यवस्था की स्थापना अवश्य करता। मुगल साम्राज्य के अस्तकाल में राजाओ और नवाबो की विलासिता, प्रतिद्वंदिता, अयोग्यता, राज्यलिप्सा, स्वेच्छाचारिता मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था में पतन की सूचना थी। इतिहास स्वय उसके लिए चिता सजा रहा था। भारत मे अंग्रेजो का आगमन नही होता तो भी उसके आर्थिक और सामाजिक ढाँचे मे परिवर्तन होता। उन्होने आकर स्वाभाविक विकास में व्यवधान उपस्थित कर दिया। देश को सुदीर्घ संक्रातिकाल की कठिन परिस्थितियो से गुजरना पडा। भारतीय पूँजीवाद और सामतवाद दोनों को पददलित कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत के भाल पर चढ बैठा।

सामंतवाद का क्षय

आर्थिक परिवर्तन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिवर्तनो का आधार होता है। अंग्रेजी राज्य ने भारत पर एक नई आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था लाद दी। मध्यकालीन सामंनवाद का क्षय और आधुनिक पूँजीवाद का उदय हुआ। इस प्रक्रिया से उपन्यास के उद्भव एव विकास का अटूट सम्बन्ध है। १७०७ से १८५७ तक की अर्ध शताब्दी सामतवाद का ह्रासकाल है। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियो के साथ ही सामंतो का बौद्धिक, नैतिक, शासकीय आदि दृष्टियो से अधः पतन हुआ मानो खोखले पेड के गिरने से डालियाँ टूटकर बिखर गईं। बक्सर की लड़ाई (१७६४) मे बंगाल-अवध के नवाबो और मुगल सम्राट की हार सामतवाद की पहली करारी हार थी। १८५६ मे अवध के साथ ही मुस्लिम सामंती संस्कृति पर आघात पहुँचा। सिपाही विद्रोह में उन सभी शक्तियों की पराजय हुई जो सामंती व्यवस्था की पोषक थी और सामंती व्यवस्था जिनकी पोषक थी। सत्तावन का स्वाधीनता-सग्राम एक प्रकार से सामंतवाद का अन्तिम असफल स्वाधीनता-सग्राम था। उसके बाद उसका सजाया शव

ही सात सौ देशी रजवाड़ो मे रह गया ।

सामतवाद के ह्रासकाल मे राजनीति, धर्म, समाज और संस्कृति के क्षेत्रो मे अंधकार छाया हुआ था; केवल साहित्य की दिशा मे प्रकाश दृष्टि-गोचर हो रहा था, यद्यपि उसमे भी अस्तकालीन आभा ही शेष रह गई थी, सुन्दर किन्तु जीवन-हीन । मुगल दरबार की विलासिता छलक-छलक कर राजाओ और नवाबो के दरबारो मे बिखर रही थी । छोटे-छोटे दरबार छोटे-छोटे स्वर्ग बन रहे थे । कवि और किस्सागो अपने आश्रयदाताओ की रुचि के अनुकूल अपनी कला दोनो हाथो से लुटा रहे थे । सामती सस्कृति के साथ सामती साहित्य और कला विकास की चरम सीमा पर पहुँच गई थी । अब उनका पतन अवश्यभावी था । सत्तावन की क्राति के बाद साहित्य मे अभूतपर्व क्राति हुई । सामतवाद का पोषक प्रभाव नष्ट हो गया और अंग्रेजी प्रभाव का विस्तार हुआ । दरबार और दरबार की शोभा बढाने वाले कवि और किस्सागो फीके पड़ गए । शिक्षा, शासन और समाज के नवगठन से मध्यवर्ग का उदय हुआ । मध्यवर्गीय समाज साहित्य, कला और सस्कृति का सगम बना । मध्यवर्ग के द्वारा मध्यवर्ग के लिए उपन्यास की सृष्टि होने लगी । वह मध्यवर्गीय कला-रूप बन गया ।

मध्यवर्ग का उदय

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे मध्यवर्ग का उदय एक नई घटना था । डाडवेल का मत है कि इस वर्ग का अस्तित्व कम से कम डेढ हजार वर्षों से नही था ।[9] मुगलकाल मे उच्च और निम्न वर्गों के बीच पुरोहित, व्यापारी, कवि और कलाकार थे पर आधुनिक मध्यवर्ग से उनकी सामाजिक स्थिति भिन्न थी । कम्पनी काल क छोटे-छोटे जमीदारो, कवियो और नौकरी-पेशे वालों को मध्यवर्ग की कोटि में रखा जा सकता है, यद्यपि इनकी संख्या अधिक नही थी । सत्तावन के विप्लव तक मध्यवर्ग, जिसमे कवि और कलाकार भी थे, एक प्रकार से राजाओ और रईसो पर अवलम्बित था । नवोत्थित मध्यवर्ग प्रत्यक्षतः शासक का आश्रित नही था । वह समस्त देश का प्रतिनिधि था ।

उसका गठन ऐसा था कि उसके विभिन्न स्तरों मे स्पष्ट विभाजक रेखा नही खीची जा सकती है । एक छोर पर वे थे जिन्हे पूँजीपनि कहा जा सकता था और दूसरे छोर पर वे थे जो सर्वहारा के निकट थे । मोटे तौर पर मध्यवर्ग को दो समूहो मे रखा जा सकता है : (१) स्वतन्त्र पेशेवर, जैसे—वकील

साहित्यकार, पत्रकार, सेठ तथा सौदागर, (२) सरकारी और गैरसरकारी वेतनभोगी नौकर, जैसे—किरानी, अधिकारी, शिक्षक, पटवारी और मुनीम।[10]

उपन्यास-लेखक शिक्षित मध्यवर्ग के थे। इस वर्ग के लोग अल्पसख्यक होते हुए भी अत्यन्त शक्तिवान और प्रभावशाली थे। उनकी कुछ सामान्य विशेषताएँ थी। वे सुसंस्कृत, जागृत, उदार और गतिशील थे। उनमे जाति, भाषा और प्रान्त का भेदभाव नही था। वे समान स्वार्थ से अनुप्राणित थे। उनकी रुचि प्रवृत्ति जातिगत न होकर वर्गगत थी। वे एक वग थे, जाति नही।[11] सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और साहित्यिक नेतृत्व उनके हाथ मे था। वे विद्रोह और क्रान्ति के बदले समझौता और सुधार के हिमायती थे। पूर्व-पश्चिम और प्राचीन-नवीन मे वे समन्वय करना चाहते थे। वे गोमास खाने से मर जाना बेहतर समझते थे पर अपने सिर पर गोमूत्र डालने को उतावले नही थे।[12] मध्यवर्गीय नैतिकता की जैसी गहरी छाप उपन्यास पर पड़ी वैसी साहित्य के अन्य अंगों पर दिखाई नही दी।

नागरीकरण

अधिकाश मध्यवर्गीय लेखक और पाठक नगरो मे रहते थे। अंग्रेजो के आगमन-काल तक देश मे धन-जन से सम्पन्न बड़े-बडे नगर थे, जहाँ उद्योग-व्यवसाय और शासन के कार्य होते थे। कम्पनी की आर्थिक नीति के कारण कई पुराने नगर उजड गये और नये बने। सतरहवी शताब्दी मे बम्बई और कलकत्ते की नीव डाली गई थी। १७७५ मे बनारस अवध के नवाब के हाथ से कम्पनी के हाथ मे आया। अठारहवी सदी तक हिन्दी-उपन्यास के तीन मुख्य प्रारम्भिक प्रकाशन-स्थान अग्रेजी प्रभाव के अन्तर्गत आ गये थे। १८५६ तक हिन्दी-क्षेत्र के सभी नगर कम्पनी के आधीन हो गये। विदेशी व्यापार, नये उद्योग, शिक्षा और शासन के केन्द्रो क रूप मे नगरो का क्रमिक विकास हुआ। पुराने नगरो का कायापलट हो गया। जहाँ सामंती सभ्यता और सस्कृति पलती थी वहाँ महाजनी सभ्यता और सस्कृति निवास करने लगी। १८७१ मे भारतेन्दु ने नवाबो के नगर लखनऊ की दशा का वर्णन करते हुए लिखा था : "जहाँ पहिले जौहरी बाजार और मीना बाजार था वहाँ गदहे चरते है और सब इमामबाडो में किसी मे डाकघर कही अस्पताल कही छापाखाना हो रहा है।…… · बेदमुश्क के हौजों मे गोरे मूतते है।……

जहाँ मोती लुटते थे वहाँ धूल उडती है ।"[13]

इन धूल-धूसरित नगरो मे ही सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्रियाशीलता आरम्भ हुई । सन्तों की कुटिया और राजाओ के दरबार छोड कर साहित्य नगरो की सभाओं, समितियो और समाजो मे शरण लेने लगा । उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्ध मे बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, अवध, बनारस, राजस्थान के राजदरबारो मे वीर और श्रृङ्गार रस की कविताएँ गूँजती थी । उसके उत्तरार्ध मे बनारस, प्रयाग, मेरठ, अलीगढ, कानपुर, आगरा, पटना, राँची आदि शहरो मे साहित्यिक सभा-समितियो का जाल बिछ गया । इनसे भाषा के प्रचार के साथ साहित्य की सर्जना मे सहायता मिली । कवि-समाजो मे पुराने ढंग की कविताओ का पाठ होता था, समस्यापूर्ति होती थी एवं स्फुट शृंगारिक कविताओ को प्रश्रय मिलता था । यह दरबारी वातावरण गद्य-साहित्य के विकास के अनुकूल नही था तथापि इसी दरबारी वातावरण मे उपन्यास पनपने लगा ।[12] जहाँ साहित्यकारो का सम्मेलन, साहित्यिक चर्चा और विचार-विनिमय होता था वहाँ साहित्य की प्रवृत्तियो का निर्माण और त्रुटियो का अनुभव भी हो रहा था । दरबारी साहित्य का अन्तिम आश्रय-स्थान बनारस ही नये साहित्य की धाराओ का उद्‌गम-स्थान बना । लक्ष्मण गोबिन्द आठले ने काशी को हिन्दी-उपन्यास का 'उत्पत्ति स्थान' माना है और कहा है कि 'भारतेन्दु की सभा' ने सभ्य समाज मे हिन्दी-प्रेम बढाकर उपन्यास पढने और लिखने की रुचि पैदा की, और "जहाँ उपन्यासों का नाम न था वहाँ बीस ही वर्ष के भीतर उपन्यासों का एक दूसरा हिमालय खड़ा हो गया" ।[15]

उपन्यासो मे गोष्ठी जीवन के अनेक पक्ष प्रतिबिम्बित है । कथा-नायक चाटुकारो से घिरे हुए हैं ('एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती', 'परीक्षागुरु', 'सौ अजान एक सुजान') । सभ्य समाज में कविता इतनी प्रिय है कि कवि ही सच्चा साहित्यकार माना जाता है । युग की रुचि के अनुकूल उपन्यास मे काव्य का रूपरग है, जो अध्यायो के आरम्भ में पद्यात्मक उद्धरण और दृश्य-योजना, नखशिख वर्णन, सरस वार्तालाप और अलंकृत भाषा-शैली मे देखा जा सकता है । 'भाग्यवती' और 'श्यामास्वप्न' में तो कवियित्री और कवि को ही नायिका और नायक बनाया गया है । सहृदय उपन्यास-लेखको के समान उनके पात्र भी मित्र के बिना नही रह सकते हैं । किसी नायक को मित्र सामाजिक आन्दोलन मे सहयोग देता है ('निःसहाय हिन्दू'), किसी के

लिए स्वय सूली पर चढ जाना चाहता है ('प्रणयिनी परिणय'), किसी को प्रेमिका के बाग मे ('चन्द्रकांता') तो किसी को वेश्यालय तक ('धूर्त रसिक-लाल') पहुँचा देता है। इस प्रकार मित्रता उपन्यास की कथा-रूढि बन गई है।

मध्यवर्गीय लेखको ने राजभवन के प्राचीर से साहित्य को निकाल कर उसका गठबन्धन समाज के साथ कर दिया। बहुत दिनो तक साहित्य और समाज का सम्बन्ध साहित्य और नागरिक समाज का सम्बन्ध रहा तथापि इस प्रकार दोनो कभी सम्बद्ध नही हुए थे। उपन्यास ही एक ऐसा साहित्य-रूप है जिसमे नागरिक सभ्यता की विविधता और जटिलता की यथार्थ और पूर्ण अभिव्यक्ति हुई। नगरों मे सर्वप्रथम सामाजिक एव आर्थिक परिवर्तन के चिह्न प्रकट हुए। वेतनभोगी वर्ग शक्ति और स्वतन्त्रता का अनुभव करने लगा। धार्मिक दृष्टिकोण के बदले भौतिक दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ। पुराने मूल्यो का विघटन हुआ और उनका स्थान नये मूल्य लेने लगे। नागरीकरण की इन विशेषताओ का उपन्यास पर गहरा प्रभाव पडा। अधिकाश उपन्यासकारों ने नगर को घटनास्थल और वहाँ के वैयक्तिक, पारिवारिक एव सामाजिक जीवन को वर्ण्य विषय बनाया तथा कही-कही उसे इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया कि वह एक पात्र बनकर मानवीय पात्र से अधिक सजीव हो उठा। उन्होने निर्भीक होकर नगरवासियो की नैतिकता पर प्रकाश डाला। रईसो की अकर्मण्य विलासिता और वेश्याओ के छिछले प्रेम को लेकर उन्होने अनेक पृष्ठ रगे तथा वचना और साहसिकता की यथार्थवादी कथाएँ सुनाईं। प्रारम्भिक उपन्यास नगर-जीवन के दस्तावेज हैं और प्रारम्भिक उपन्यासकार सच्चे अर्थ मे नागरिक उपन्यासकार हैं।

व्यावसायिक लेखन

मध्यवर्ग के अभ्युत्थान से साहित्य का नागरीकरण ही नही व्याव-सायीकरण भी हुआ। सामन्ती समाज मे साहित्य राजाओ का विनोद और विद्वानो का व्यसन था। साधारण पाठको की सख्या सीमित होने से कवि राजा-महाराजाओ की कृपा पर निर्भर थे। आधुनिक युग मे साहित्य शिक्षित समाज की सम्पत्ति बना तथा पाठक और प्रकाशक उसके संरक्षक हुए। यद्यपि राजदरबार से बाजार मे आकर साहित्य पुरस्कार की वस्तु नही रह कर खरीद-बिक्री की सामग्री हो गया तथापि उसका अवमूल्यन नही हुआ।

शासक वर्ग के आश्रय मे रहने के कारण कवि उसकी वीरगाथा और विलास-लीला का गान करते थे। नवोदित मध्यवर्गीय लेखक साधारण ग्राहकों की गुणग्राहकता पर अवलम्बित थे और उसकी अवहेलना नही कर सकते थे। फलत. साहित्य एक स्वतन्त्र एव सामान्य वृत्ति बना तथा उसमे मानव-जीवन की साधारण घटनाओ, सवेदनाओ और आकाक्षाओ को स्थान मिला। सामयिक निबन्ध, गद्यनाटक और यथार्थवादी उपन्यास पेशेवर लेखको के विशिष्ट अशदान है।

जहाँ उपन्यास जनता की वस्तु बना वहाँ उसमे साहित्यिक गुणो का ह्रास भी हुआ। राजाश्रित कवियो को अपनी कला के प्रदर्शन का अवसर मिलता था और लोकरुचि के अनुसार लिखने को बाध्य नही होना पडता था। राजाश्रय से मुक्त लेखक लोकरुचि को प्रभावित करने के बजाय उससे प्रभावित होने लगे। उन्होने अच्छे-बुरे, मौलिक-अर्धमौलिक उपन्यास लिखना और लिखवाना शुरू किया और उनका ढेर लगा दिया। उनकी दृष्टि कला की आवश्यकताओ की ओर न जाकर बाजार की माँग की ओर चली गई। इस त्रुटि की पूर्ति दूसरे प्रकार से हुई। जब तक अर्थ के लिए लिखना लेखक की प्रतिष्ठा के विरुद्ध होता है तब तक वाणी का मन्दिर आर्थिक और सामाजिक समस्याओं के लिए बन्द रहता है। साहित्य के व्यावसायीकरण से उसका सामाजीकरण हुआ। व्यावसायिक उपन्यास-लेखक समाज के लिए और समाज के सम्बन्ध मे लिखने की भावना से प्रेरित हुए। उनकी वस्तु और शैली मे निजी विशिष्टता है। उनकी शैली उनकी रानी न होकर उनकी दासी है। महान व्यावसायिक लेखक गोपालराम गहमरी के उपन्यास इस तथ्य की पुष्टि करते है।

सामंती तत्त्वों का विरोध

आधुनिक भारत का निर्माता मध्यवर्ग आधुनिक साहित्य का निर्माता है। रीतिकाल का साहित्य सामंतवर्ग का साहित्य है। आधुनिक काल का साहित्य मध्यवर्ग का साहित्य है और उपन्यास उसका अत्यन्त सजीव अग है। जैसे सामंतवर्ग और रोमानी कथासाहित्य का सम्बन्ध अभिन्न था, वैसे ही मध्यवर्ग के साथ यथार्थवादी कथासाहित्य—उपन्यास—का इतिहास जुड़ा हुआ है। सगीत की भाँति कथा-कहानी भी शासक वर्ग के लिए विलास की वस्तु थी। रोमानी कथासाहित्य क्षणिक मनोरंजन के लिए जीवन की कठोर

वास्तविकता से दूर आदर्श प्रेम और साहसिकता के अद्भुत, असाधारण लोक मे ले जाता था। रोमाँस और आदर्श साथ-साथ चलते हैं। रोमानी लेखक अनिवार्यतः आदर्शवादी और आदर्शवादी सामान्यत. रोमानी होता है। मध्य-वर्ग आदर्शवादी होते हुए भी व्यावहारिक एव वस्तुवादी था। उसका साहित्य अस्त्र आदर्शवाद न होकर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद हो सकता था। रोमानी कथासाहित्य उस मध्यवर्ग की रुचि और भावना के अनुकूल नहीं था जिससे हिन्दी उपन्यासकार उत्पन्न हुए थे। अत· उपन्यास की उत्पत्ति रोमानी कथा-साहित्य के प्रतिक्रियास्वरूप हुई। इस प्रतिक्रिया का परिचय उपन्यास-लेखको ने उपन्यास मे मध्यवर्गीय यथार्थवाद की प्रतिष्ठा और रोमास-विरोधी रुख से दिया है।

आरम्भ से लेकर आज तक उपन्यास मे मध्यवर्ग की वाणी मुखरित होती रही है। मध्यवर्गीय समाज, सभ्यता और सस्कृति से उसका विशेष सम्बन्ध रहा है। रमन्यास मे प्रेम और युद्ध की कथा प्रधान रही है, उपन्यास मे प्रेम और सम्मान की। मध्यवर्ग के जीवन की ये दो मौलिक समस्याएँ श्रीनिवादास से लेकर प्रेमचन्द तक उपन्यासकारो को प्रिय रही हैं। जब समाज एव देश का नेतृत्व राजा-रानी के हाथ मे था, कथासाहित्य मे वे नायक-नायिका थे। अब नेतृत्व मध्यवर्ग करने लगा, इसलिए उपन्यास मे मध्यवर्गीय पुरुष-नारी नायक-नायिक की भूमिका मे उतरे। अपनी परिस्थिति से जूझने वाले 'निःसहाय हिन्दू' के मध्यवर्गीय नायक-नायिका बारम्बार नामरूप बदलकर उपन्यासो मे जन्म लेते रहे है। देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास मे भी कुमार वीरेन्द्र सिंह अपनी निष्क्रियता के कारण पतनशील सामत वर्ग का और तेजसिंह अपनी सक्रियता के कारण उदीयमान मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखलाई पडते है। मध्यवर्ग के सुधारवादी आदर्श और उपदेशात्मक प्रवृत्ति, सस्ती भावुकता और अतिशय बौद्धिकता ने उपन्यास मे अभिव्यजना पाई है। वस्तु, पात्र और दृष्टिकोण की सीमाओ के बावजूद उपन्यास प्रतिनिधि साहित्य-रूप रहा है।

उपन्यास-लेखको के सामने सस्कृत और फारसी और उन पर आधारित उन्नीसवी शताब्दी की हिन्दी-कथाएँ थी, जिन्हे 'रोमास' की सज्ञा दी जा सकती है। दण्डी, सुबन्धु और बाण के प्रेम-रोमास, जो विषय और शैली दोनो मे असाधारण थे, उन्हें सन्तुष्ट नही कर सके क्योंकि उनकी अभिरुचि नवीन विचार, सामयिक विषय और सरल शैली मे थी। पं० बालकृष्ण

भट्ट ने लिखा था कि दण्डी के 'दशकुमार चरित' से 'किसी प्रकार की शिक्षा नही निकलती' और सुबन्धु की 'वासवदत्ता' से 'कुछ आनन्द नही मिल सकता।'[16] प० अबिकादत्त व्यास ने 'कादम्बरी' के सम्बन्ध मे अपना मत इन शब्दो में व्यक्त किया था, 'कथा से कही लम्बा चौड़ा उसका आटोप है। ····· कथा का आनन्द लेने को पढना हो तो एक पृष्ठ बाँचते-बाँचते जी घबडा जाता है'।[17] देवकीनन्दन खत्री पर फारसी रोमास का प्रभाव भी पडा और उसकी प्रतिक्रिया भी हुई। उन्होने 'दास्तान अमीर हमजा' के नायक अमीर और उसके ऐयार अमूर की प्रतिद्व द्विता मे कुमार वीरेन्द्र सिह और तेजसिह को खडा किया। फैजी ने अपने जादूगरो को हिन्दू काफिर बनाकर धार्मिक असहिष्णुता दिखाई थी। खत्रीजी ने इसका कलात्मक प्रतिवाद किया। उन्होने मुसलमानो को खलनायक का ऐयार बनाया पर हिन्दू-मुस्लिम पात्रो के चित्रण मे दुहरी कूची से काम नही लिया।

उन्नीसवी शताब्दी पूर्वाध मे प्रचलित कहानियो मे 'रानी केतकी की कहानी', जिस पर फारसी के साथ ही भारतीय छाप है, दरबारी कवि और कथाकार द्वारा लिखी गई थी। उसमे दरबारी कहानी की प्राय: सभी प्रवृत्तियाँ हैं। शासक वर्ग के विचार एव विश्वास निराले होते है। प्रेम और युद्ध की कल्पित घटनाएँ, जादू-टोने की अद्भुत बातें उसका मन मोह लेती है। अत: रोमानी कथाओ मे देशकाल की परिस्थितियों का वास्तविक और स्वाभाविक वर्णन नही रहता। शासक वर्ग अपने वैभव-विलास और सुख-सुविधा को अक्षुण्ण रखने के लिए धर्म, नीति, दर्शन और अधविश्वास के हथकन्डों से काम लेता है। यही कारण है कि रोमानी कथा साहित्य मे अलौकिक एव उपदेशात्मक तत्त्व भी रहते है। उसका मुख्य उद्देश्य कौतूहल बढाकर आनन्द प्रदान करना है, अत: उसका घटना-प्रधान और सुखात होना आवश्यक है। उसमे उपदेश की अपेक्षा मनोरजन की मात्रा अधिक होती है। वह अद्भुत रस का साहित्य था, जिससे मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी लेखक प्रभावित नही हो सके। वे उसके आदर्शों को अपनाकर या उसकी परम्परा को आगे बढ़ाकर अपना प्रयोजन सिद्ध नही कर सकते थे। रानी केतकी लोपाजन लगाकर गायब हो गई थी। देवकीनन्दन खत्री ने उसे हँसकर उडा दिया, 'जिस आदमी के पास कोई ऐसी चीज हो जिससे वह गायब हो जाय तो फिर ऐयारी सीखने की जरूरत क्या रही? गायब होकर जो चाहा कर डाला।'[18] पुरानी कथाओ के स्वरूप या वस्तु से आधुनिक उपन्यासकारों

की आवश्यकता पूरी नही हो सकती थी । प्रेमचन्द ने उन पर व्यग्य की बौछार की थी :

हमारे यहाँ उपन्यास-काल से पहले ऐसे किस्से कहानियो का बहुत प्रचार था जिनमे प्रेम और विरह के वर्णन प्रधान होते थे । प्रेमी एक निगाह मे माशूक का 'कुश्तए नाज' हो जाता था, माशूका अपनी सहेलियों से अपनी विपत्ति कहानी सुनाती थी, आशिक साहब आहे भरते थे, सिर धुनते थे, घर पर खबर होती थी, यार समझाने के लिए जमा होते थे ...... ।[19]

रोमानी कथा के समान रीतिकाव्य भी अवकाशभोगी अभिजात वर्ग का साहित्य था । उसमे भी जीवन के गभीर प्रश्नो और प्रसगो का अभाव था तथा कल्पना, चमत्कार और आडबर की प्रधानता थी । उसके आदर्श भी मध्यवर्ग के नए लेखको को मान्य नही हो सके । उनमे से कुछ उसके प्रशसक होते हुए भी समर्थक नही थे । राजाओ-रईसो का जीवन उस कमरे के समान था जिसे परदे की आट से ही देखा जा सकता था । उसी तरह, रीतिकाल मे नर-नारी का यौन-सम्बन्ध नायक-नायिका भेद के बहाने दिखाया जाता था और नायक-नायिका का वर्णन राधाकृष्ण के नाम पर किया जाता था । अलौकिक आवरण को हटाकर नर-नारी के सहज सामान्य रूप को देखने और दिखाने की प्रवृत्ति आधुनिक उपन्यास मे प्रकट हुई । रीतिकालीन नायक-नायिका मे नर-नारी के सौन्दर्य की चरम कल्पना साकार हुई और उनका चित्रण वैभव के मादक वातावरण मे किया गया । दरबारी कवियो ने साधारण स्त्री-पुरुष को अपने काव्य मे स्थान देना उचित नही समझा । 'जिनमे कटाक्ष-निक्षेप की क्षमता न हो ऐसी गोबर पाथती हुई, खेत निराती हुई, गृहकर्म मे उलझी हुई स्त्रियाँ उनके काव्य का विषय नही हो सकती थी ।'[20] साधारण, परिचित वातावरण मे साधारण नर-नारी के क्रियाकलाप का वर्णन उपन्यास की निजी विशेषता है । रीतिमुक्तको मे गृह-जीवन के भीतर भी नर-नारी के सम्बन्ध की झाँकी मिलती है पर उसमे जितनी मादकता है उतनी मार्मिकता नही । मिलन-विरह के वर्णन कृत्रिम और परम्परागत हैं । 'अष्टयाम' के रूप मे वर्णित नायक-नायिका के निशिदिन के क्रीड़ा-विलास सच्ची गृहस्थी के सुखद दाँपत्य जीवन के प्रतिबिब न होकर विलासिता-मग्न शासक वर्ग के जीवन के परिचायक है । उपन्यास का प्रवर्तन परिवार की दैनिकी के रूप मे हुआ । पहला लिखित उपन्यास 'भाग्यवती' कुटुम्ब का उपन्यास है ।

रीतिकाल मे वर्णित नायिका, दूती, अलंकार, मादकता और शृ गारिकता राजमहल की सुन्दरी, कुटनी, आभूषण, विलासिता और वासना का साहित्यिक प्रतिरूप थी। आश्रयदाताओ की अभिलाषा की तरह कवियो की कल्पना कामिनी के देहलता मे लिपटी, सिमटी थी। नारी मे केवल शरीर रह गया था, शरीर मे केवल सुन्दरता और सुन्दरता मे केवल सजावट रह गई थी। शृंगारी कवियो ने मानवी को नकली कागज की फुलवारी बनाकर उसके फूल से अगो के साथ खिलवाड किया। प० किशोरीलाल गोस्वामी ने 'लीलावती' मे उनका उपहास किया ·

यदि उन उपमाप्रिय कवियो के गढे हुए उपमानो से ऐसी नायिका मूर्ति बनाई जाय कि जिसके मुख की जगह आईना, भौवो की जगह दो तलवारें, आँखो के बदले दो मछली, नाक के स्थान मे सरो के पेड, हँसी की जगह मिश्री की डली, गले के स्थान मे शख, छाती की जगह हाथी के मस्तक, चोटी के बदले मोटी सी साँपिन, हाथ के बदले कमल लिखकर, कमर की जगह एकदम खाली छोड दी जाय और फिर उसके नीचे जाँघ की जगह दो केले के खम्भ खडे करके एडी की जगह अनार की डार रख दी जाय तो वह नायिका कैसी भयावनी राक्षसी मूर्ति-सी बनकर तैयार होगी ? इसलिए बाबा ! हम अनर्गल बकने वाले कवि नही है।[१]

नारी को शरीर मात्र मानना नर-नारी के रागात्मक सम्बन्ध को अस्वीकार करना था। नर-नारी की जीवनकथा के रूप मे उपन्यास की रचना तभी सम्भव हो सकती थी जब उनमें रागात्मक सम्बन्ध हो। रीतिकाव्य प्रेमहीन काव्य था। देव और बिहारी को छोडकर प्राय: सभी कवियो का सौन्दर्यबोध सूक्ष्म न होकर स्थूल शृ गारिकता पर आधारित था। रीतिकालीन प्रेम-वासना की कुञ्जगली मे खो गया था। उसे वीर-गाथाकालीन साहसिक प्रेम (मार्क्स की शब्दावली में 'सिवेलरस लव') या भक्तिकालीन उदात्त प्रेम की कोटि मे नही रखा जा सकता।

रोमानी कथा और रीतिकाव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया सामन्तवाद और पूँजीवाद के सधिकाल की स्वाभाविक देन थी। सामन्ती अभिरुचियों और आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति करने वाले साहित्य के प्रति असन्तोष सामन्त वर्ग के प्रति असन्तोष का आवश्यक अग था। भारत मे युग-युग से यह धारणा चली आती थी कि राजा और महाराजा देश के भाग्य-विधाता है। यह

धारणा गलत नही थी क्योंकि यहाँ अनेकानेक विद्वान, वीर, दानी, न्यायी और प्रजापालक राजाओं का आविर्भाव हुआ था। अठारहवी-उन्नीसवी शताब्दियो के भारतीय इतिहास ने यह निर्णय कर दिया कि उच्च वर्ग से देशहित की आशा करना भूल है। एक चिरकालीन राष्ट्रीय विश्वास को धक्का लगा। नवाबो और नरेशों के युद्ध नई व्यवस्था कायम करने के बदले पुरानी व्यवस्था को बनाये रखने के लिए थे। उनमे से बहुतो ने सन् सत्तावन के विद्रोह मे देशवासियो के विरुद्ध विदेशियो का साथ दिया। यदि वे अवरोधक नही होते तो विद्रोह की बाढ़ में कम्पनी बहादुर के साथ ब्रिटिश ताज भी बह जाता। भारतीय शासक वर्ग के पतनकाल मे भी जनता मे राजभक्ति की भावना जीवित थी। १८५६-५७ मे कम्पनी के हाथ मे अवध के जाने पर जनता मे असन्तोष की ज्वाला भड़क उठी थी और विद्रोह होने पर सबने मिलकर बहादुरशाह को सम्राट घोषित किया था। राजभक्ति की आरती की यह अन्तिम लौ थी। प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्रैडला स्वागत' मे देशद्रोही राजसमाज के प्रति जनता की भावना को वाणी प्रदान की थी :

दुष्ट सुमझ अपने भाइन कहँ साथ न दीन्हो।
भोजन बिन विद्रोहिन दल कहँ निर्बल कीन्हो।।
ठौर-ठौर निज घर लुटवाए अरु फुँकवाये।
प्रान खोय बहु ब्रिटिश वर्ग के प्रान बचाये।।

भारतेन्दु के समय राजाओ और रईसो की वीरता विदा हो चुकी थी, विलासिता शेष रह गई थी। वे व्यक्तिगत स्वार्थ के सामने सार्वजनिक स्वार्थ को भूल गये थे। उनमे उच्च आदर्श के लिए मर मिटने की हौस नही रही। शिष्टता और सुरुचि का स्थान असभ्यता और रूढिवाद ने ले लिया था।[22] वे आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास के नायको की भाँति नपुंसक, असामाजिक और परवश हो गये थे। उनके लिए 'मोम की नाक', 'दूध की मक्खी', 'शतरज के राजा' आदि उपमाएँ उपयुक्त थी।[23] उनका दृष्टिकोण सामन्ती था। वे रेत मे चोच गाडकर चैन की साँस लेने वाले शुतुर्मुर्ग की तरह महलो मे बन्द रहते थे। समय की गति देखने और पहचानने मे वे असमर्थ थे। आत्मविश्वास और सामाजिक दायित्व से अनुप्राणित मध्यवर्ग वर्तमान का वैतालिक था, इसलिए भविष्य भी उसके साथ था। प० बालकृष्ण भट्ट ने दृढ शब्दों मे कहा था कि "मध्यम श्रेणी ही महत्त्व या बडप्पन की नर्सरी या उत्पत्ति स्थान है, जो ऊँचे दर्जेवालो को लात मार सुशिक्षा का पूर्ण वैभव

प्राप्त कर सब कामो मे पहिले अग्रसर होती रहेगी ।"[24]

जिस प्रकार सामन्ती समाज के साथ सामन्ती साहित्य का ह्रास हुआ, उसी प्रकार नई शक्ति के रूप मे मध्यवर्ग के उदय के समानान्तर नई कला के रूप मे उपन्यास का उदय हुआ । राजसमाज के प्रति असन्तोष उसमे व्यग्य, विद्रोह, आक्षेप के रूप मे उभर कर आया । तिलिस्मी-ऐयारी और ऐतिहासिक उपन्यासकारो ने सुन्दर स्त्री के लिए युद्ध, हत्या, षणयन्त्र और प्रपच करने वाले सामतो की कुत्सित मनोवृत्ति का परिचय देकर पतनशील सामती सभ्यता की झाँकी प्रस्तुत की । जर्जर, रुग्ण सामती सभ्यता को ढोने वाले ज्योतिषी, पुरोहित और पुजारी भी श्रद्धा एव विश्वास का भाजन नही रहे । पूर्व मे राजाओ की तरह उनका भी समाज मे सम्मान था क्योकि वे विद्या, धर्म, दर्शन, राजनीति आदि मे निपुण होते थे । धीरे-धीरे वे भी रूढिवादी और अपरिवर्तनशील बन गये । उन्हे प्राचीन भारत के अध: पतन का सहायक और नवीन भारत के उत्थान का अवरोधक मानकर उपन्यास-लेखको ने उन पर खुलकर या छिपकर आक्रमण किया ।[25] इस प्रकार उपन्यास की रचना सामती व्यवस्था के त्रिदेवो-राजाओ, राजाश्रित कलाकारो और पण्डितो की आलोचना के रूप मे हुई ।

मानवतावाद और जनवाद

सामत और सामंती मस्कृति के रक्षक समाज और देश की रक्षा करने मे असमर्थ थे । अत: उनमे राष्ट्रीय अविश्वास होना स्वाभाविक था । 'प्रसाद' जी के मतानुसार "भारतीय नरेशो की उपस्थिति भारत के साम्राज्य को बचा नही सकी । फलत: उनकी वास्तविक सत्ता मे अविश्वास होना सकारण था । धार्मिक प्रवचनो ने पतन मे और विवेकदभपूर्ण आडम्बरो में कोई रुकावट नही डाली । तब राजसत्ता कृत्रिम और धार्मिक महत्त्व व्यर्थ हो गया और साधारण मनुष्य जिसे पहले लोग अकिंचन समझते थे वही क्षुद्रता मे महान् दिखलाई पडने लगा ।"[26] साधारण मनुष्य की महिमा मे आस्था, उसकी शक्ति मे विश्वास, उसकी लघुता के प्रति सहानुभूति उस मानवतावादी दृष्टि की परिचायिका है जिसे भारतीय विद्वान पश्चिम की देन मानते है । मानवतावादी दृष्टि उपन्यास की प्रमुख प्रेरकशक्ति बनी । उपन्यास के लिए वह समय सबसे अधिक उपजाऊ होता है जब मनुष्य के प्रति मनुष्य का आकर्षण होता है । जब मनुष्य को मनुष्य के सम्बन्ध मे

जानने और सोचने की इच्छा हुई और मनुष्य मनुष्य के अध्ययन का महान विषय बना तब साधारण नर-नारी उपन्यास मे अवतरित हुए। इतिहास के पन्ने पर राजा-रानी और सेना-सेनापति उडते हैं, महाकाव्य मे देवता-दानव, राजा-महाराजा और जीवनी में महापुरुष ही स्थान पाते हैं किन्तु उस जन-समूह का प्रवेश निषिद्ध रहता है जिसे अमरीकी कवि वाल्ट ह्विटमैन ने 'डिवाइन एवरेज' की सज्ञा दी है। उपन्यास मानव लोक के सुख-दुख, आशा-अभिलाषा, स्वप्न-संकल्प, जय-पराजय की गाथा है। उपेक्षित, पीडित, दलित और निम्न वर्ग का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण तो उसकी कलात्मक विशिष्टता ही है।

लगभग एक हजार वर्षों का (८००—१८००) प्राचीन हिन्दी-साहित्य सामत युग मे पला। दरबारी काव्य और भक्तिकाव्य की समानान्तर धाराएँ चलती रही और उनमे राजा-रानी तथा देवी-देवता विहार करते रहे। लौकिक प्रेमाख्यानक काव्य मे भी राजा, राजकुमार, मन्त्रीपुत्र, रानी, राजकुमारी, मन्त्रीपुत्री को नायक-नायिका का पद मिला। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' ही एक ऐसी मानवीय कथा है जिसमे नाना प्रकार के पुरुषों और स्त्रियो का मेला देखने योग्य है। उन्नीसवी सदी मे गद्यकाल के आरम्भ के साथ मनुष्य के वास्तविक रूप का विशद चित्रण आरम्भ होता है। पाठ्य पुस्तको के रूप मे लिखित कथाओ, पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित रेखा-चित्रो, निबन्धो और नाटको मे मनुष्य जैसा है उसी रूप मे उसे उपस्थित करने का प्रयास किया गया। जीवनी और आत्मकथा लिखने की प्रवृत्ति भारतेंदु-युग मे ही उत्पन्न हुई। रेखाचित्रो मे प्ररूप ('टाइप') का दर्शन हुआ तो जीवनी और आत्मकथा मे व्यक्ति के बाह्य और आन्तरिक पक्षो पर प्रकाश पडा। इनसे मानव-जीवन मे बढती हुई रुचि का बोध होता है।

उपन्यास जनवादी भावना की सर्वोत्कृष्ट देन है। रोमानी कथासाहित्य अपने उपादान और दृष्टिकोण मे आभिजात्य लिए था। सामन्त युग के अन्त-काल मे यह भावना विकसित हुई कि साधारण लोगो के जीवन मे भी रोचक और मार्मिक प्रसग होते हैं और उन्हें साहित्य का प्रतिपाद्य बनाया जा सकता है। उपन्यास वह रचना-प्रकार है जिसमे सर्वप्रथम साधारण लोगों का जीवन चित्रण के योग्य समझा गया और साधारण भाषा मे पूर्णता के साथ चित्रित हुआ। यथार्थ में रोमास, सामयिक मे शाश्वत तथा परिचित में नवीन की उपलब्धि के लिए जिस व्यापक दृष्टि की आवश्यकता होती है वह उपन्यास-

लेखको मे है। उन्होने सामाजिक और पारिवारिक उपन्यासो मे यह अच्छी तरह दिखा दिया कि प्रतिदिन की घटनाओ और क्रियाओ मे भी हँसाने-रुलाने की क्षमता है तथा वास्तविक जीवन के रोमास से बढकर कोई रोमास नही होता। उन्होने अपने आस-पडोस, घर-आँगन की छोटी-छोटी बातो की चर्चा इतने सीधे-सादे ढग से की है कि सत्य गल्प से अधिक अद्‌भुत लगता है। देवकीनन्दन खत्री और उनके अनुगामियो तक ने राजाओं की अपेक्षा उनके नौकरो (ऐयारो) को अधिक महत्त्व दिया और उन्हे अधिक आकर्षक बनाकर उपस्थित किया क्योकि नौकरो के जीवन से विशेष मनोरजक शिक्षा मिल सकती थी।[27]

उच्च वर्ग के बदले मध्यम और निम्न मध्य वर्गो मे मनोरजन और शिक्षा के तत्त्वो का अन्वेषण परिवर्तित लोकरुचि का द्योतक था। लोगो को उन नर नारियो की कथा मे विशेष रुचि हो सकती थी जिनके साथ वे एकात्म बोध कर सके। उन्हे सामत युग के उदात्त नायक-नायिका के सुख-दुख भी उतने प्रभावित नही कर सकते थे जितने अपने युग के नर-नारी के सुख-दुख। उचित वर्ण्य विषय के प्रति आस्था और आत्मीयता के बिना कला की सृष्टि नही होती। जब लेखको-पाठको को अपने समाज और समय के व्यक्तियो के प्रति उत्कठा और सहानुभूति हुई तब व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की कथा उपन्यास मे लिखी गई। इस रूप मे उपन्यास-लेखन उस पूँजीवादी समाज मे ही सम्भव हुआ, जहाँ व्यक्ति की महत्ता स्वीकृत हुई।

व्यक्तिवाद

भारतीय सामाजिक सगठन आत्मनिर्भर ग्राम-व्यवस्था, जाति प्रथा और सयुक्त कुटुम्ब-प्रथा पर आधारित था। उसमे व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि का महत्व विशेष था। धर्म-निरपेक्ष अंग्रेजी शासन-प्रणाली, नई पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था, पाश्चात्य व्यक्तिवादी सभ्यता, आधुनिक शिक्षापद्धति और सुधार-आन्दोलन के फलस्वरूप व्यक्ति का महत्त्व बढ़ने लगा। व्यक्तिगत स्वाधीनता और उपन्यास मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'परीक्षागुरु' का मदनमोहन हिन्दी-उपन्यास का पहला व्यक्तिवादी नायक है। वह आर्थिक व्यक्तिवाद का ज्वलत प्रतीक है। 'अवस्था के संग उसकी स्वतन्त्रता' बढी है। युवक होने पर वह खुलकर खेलता है। मार्क्स ने पूँजीपति वर्ग के जो लक्षण[28] बताए हैं वे मदनमोहन में वर्तमान है। वह परम्परागत सामाजिक सम्बन्धों से मुक्त

पाश्चात्य सभ्यता मे पल रहा था, अशिक्षित वर्ग गाँवो मे भारतीय सभ्यता को पाल रहा था। दोनो के व्यक्तिगत और सामाजिक आदर्शों मे मेल नही रहा। नव शिक्षित वर्ग व्यक्तिवादी बन गया। वह जनता से दूर अपने वर्ग-स्वार्थ मे लीन रहता था। उसे इसका भान नही रहा कि समाज का अस्तित्व है और वह समाज का अग है। अग्रेजो की तरह 'रिजर्व' रहने की लालसा, सुरक्षा और स्थायित्व की भावना, श्रेष्ठता का बोध आदि ने व्यक्तिवादी भाव को दृढ किया। और सामाजिक दायित्व को दुर्बल बना दिया। व्यक्ति और समाज मे सामजस्य नही रहा। समाज से विभिन्न नवशिक्षित वर्ग के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का दिग्दर्शन लज्जाराम मेहता और किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो मे कराया गया है।

राल्फ फाक्स की मान्यता है कि "उपन्यास का सम्बन्ध व्यक्ति से है, वह समाज और प्रकृति के साथ व्यक्ति के सघर्ष का महाकाव्य है, उसका विकास उस समाज मे ही सम्भव हो सकता था जिसमे समाज और व्यक्ति के बीच सन्तुलन नही है और मनुष्य एव मनुष्य या प्रकृति के बीच सघर्ष है। ऐसा समाज पूँजीवादी समाज है।"[29] व्यक्ति और समाज के सघर्ष की झलक हिन्दी-उपन्यास की प्रथम नायिका भाग्यवती (श्रद्धाराम फिल्लौरी : 'भाग्यवती') और प्रथम नायक तिलकधारी (बालकृष्ण भट्ट : 'रहस्यकथा') के जीवन मे ही मिल जाती है। दोनो सामती सस्कार से मुक्त होकर समाज से संघर्ष करते है और अपने भाग्य का निर्माण करने मे सफल होते है। भाग्यवती एक वर्ष मे तीन आने पैसे से पाँच सौ रुपये जमा कर लेती है। यह भले ही विश्वास योग्य नही हो, इससे साधारण स्त्री की असीम क्षमता का परिचय मिलता है। तिलकधारी सम्पन्न होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से चीन तक की यात्रा करता है।

हमारे उपन्यास-लेखक स्वस्थ सामाजिक चेतना से सम्पन्न थे। वे व्यक्तिवाद का समर्थन नही कर सके। उनके पात्र समाज और परिवार से अलग होकर फिर मिल जाते है। उन्हे उत्तरदायित्वहीन व्यक्तिगत स्वाधीनता से सहानुभूति न होकर भी मानवता मे आस्था है, इसलिए उन्होने व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन करा दिया है। उन्होने समाज से व्यक्ति के विच्छिन्न होने की चर्चा की है पर व्यक्ति को अपने कर्तव्य और दायित्व का पथ दिखाकर समाज से भिन्न नही होने दिया है। उनके मत से समष्टि व्यष्टि के लिए नहीं बल्कि व्यष्टि समष्टि के लिए है। वे समाज से विमुख व्यक्ति को खलनायक बनाकर

सन्तुष्ट होते थे, भले ही उनके अधुनातन वंशज उन्हे नायक-नायिका का पद दे दें। बहुधा उनके दो नायक होते है, एक व्यक्तिवादी होता है और दूसरा व्यक्तिवादी होते हुए भी सामाजिक होता है। दूसरे की सहायता से पहले को सुपथ पर लाकर उसके माध्यम से वे अपना सुधारवादी आदर्श व्यक्त करते है। व्यक्ति को व्यक्ति, परिवार, समाज और देश का उद्धारक बनाकर उन्होने उसका महत्त्व बड़ी विलक्षणता से प्रतिपादित किया है।

आंग्ल शासन-व्यवस्था

अग्रेजी शासन ने विभिन्न भारतीय भाषाओ मे आधुनिक साहित्य के उत्थान के लिए वातावरण तैयार किया। हिन्दी-साहित्य उन्नीसवी सदी के आरम्भ से ही अग्रेजी सम्पर्क की छाया मे आने लगा था किन्तु वास्तव मे अग्रेजी सम्पर्क और उससे प्रभावित होने का अवसर उसे उसके उत्तरार्ध मे मिला। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दी-साहित्य को प्रश्रय नही दिया। फोर्ट विलियम कॉलेज की नीति उर्दू और बगला के लिए लाभप्रद हुई। गिलक्राइस्ट और कैरे की उन भाषाओ पर इतनी कृपा थी कि वे उनके पिता ही कहे जाते है। हिन्दी को ब्रिटिश साम्राज्य का भी आश्रय नही मिला। पिछली एक सदी से वह अपने पैर पर खडी होकर आगे बढी है। सामत युग के साथ ही राजकीय सहारा चला गया। अग्रेजी सम्पर्क का महत्त्व राजाश्रय प्रदान करने मे नही वरन् उससे वचिन करने मे है। जैसा कि बताया जा चुका है, सन् सत्तावन सामती व्यवस्था के प्रसादमय प्रभाव के अन्त और अग्रेजी शासन के व्यापक प्रभाव के आरम्भ का सूचक है। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद अग्रेजी प्रभाव भारतीय जीवन और साहित्य पर प्रबल और स्पष्ट रूप से पडने लगा। भारतीय जीवन और साहित्य मे अठारहवी शताब्दी उत्तरार्ध मे जितनी ही जड़ता थी, उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्ध मे पाश्चात्य शिक्षा, सस्कृति, साहित्य और विचार के उत्तेजक सम्पर्क से उतनी ही चेतना आई। पुराने उपन्यासो मे साहस, प्रेम, वीरता, देशभक्ति और समाजसुधार की व्यंजना के मूल मे नवोत्थान की उन्मादना है।

डेढ़ सौ वर्षो की अराजकता और अशान्ति के बाद व्यवस्था और शान्ति कायम कर अग्रेजी राज्य ने साहित्य की क्षतिपूर्ति एव नवनिर्माण के लिए अनुकूल अवसर प्रदान किया। भारत का पूर्व इतिहास विदेशी आक्रमण और गृहकलह का इतिहास बना हुआ था। अंग्रेजी शासनकाल मे शान्ति

और सुरक्षा समूचे देश मे वास करने लगी और विदेशी आक्रमण बन्द हो गया। इस स्थिति मे भारतवासियो को अपने भूत, वतमान और भविष्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने का अवसर मिला। हिन्दी-लेखको को गुण-दोष परखने की सूक्ष्म दृष्टि मिली थी। उन्होने मुसलमानी और अग्रेजी राज्यों की विशेषताओ और दुर्बलताओ को अच्छी तरह समझने का प्रयास किया। राजनीतिक एकता, सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, राष्ट्रीय सुरक्षा, यातायात की सुविधा और नवीन शिक्षा-प्रणाली अग्रेजी राज्य की विशिष्ट उपलब्धियाँ थी। अत. लेखको ने अग्रेजी राज्य का हार्दिक स्वागत किया और कविता, नाटक, उपन्यास आदि मे उसकी सराहना की। इसे उनकी राजभक्ति नही अपितु गुण-ग्राहकता मानना चाहिए। सुरक्षा और स्थायित्व का वातावरण गार्हस्थ उपन्यासो मे व्याप्त है। आग्ल शासन-प्रणाली से जासूसी उपन्यास प्रत्यक्षतः प्रभावित है। खुफिया विभाग से उपन्यास-लेखको को कच्चा माल मिला। पुलिस वाले कहने के लिए तो जनसेवक रहे है पर अपने वचन और व्यवहार से अपराधी की अपेक्षा निरपराध को अधिक आतकित करते रहे है और इसलिए अपराध की छानबीन मे उन्हे जनता का सहयोग नही मिला है। वास्तविक जीवन के अनुरूप ही उपन्यास मे जासूस और उसकी जासूसी मे लोग सहानुभूति प्रदर्शित नही कर सके। फलतः पुलिस की भाँति पुलिस-उपन्यास बदनाम रहा और उसके प्रचार-प्रसार मे बाधा हुई।

राष्ट्रीयता

अंग्रेजो की शासन-व्यवस्था प्रशंसनीय थी किन्तु उनकी शासन-नीति अत्यन्त हानिकर थी। उन्होने भारत मे जिस शान्ति की स्थापना की वह मरघट की शान्ति थी। उसमे जीवन का सन्देश नही था, मौत की आहट थी। आर्थिक समृद्धि से रहित पराधीन देश की राजनीतिक शान्ति से स्वतत्र देश की अराजकता ज्यादा प्यारी होती है। जब कम्पनी ने विक्टोरिया के हाथ भारत को बेच दिया और १८५८ में महारानी का उदारतापूर्ण घोषणा-पत्र सुनाया गया तो लोगों ने सन्तोष का अनुभव किया, जो स्वाभाविक था। लेकिन आशा और विश्वास का वातावरण अधिक दिनों तक टिक नही सका। लोगों ने जिस परिवर्तन का स्वागत किया था वह शासन का परिवर्तन नही बल्कि शासकों का परिवर्तन सिद्ध हुआ। अग्रेजी शासन के विरुद्ध एक ऐसी भावना अंगड़ाई लेकर खडी हो गई जिसे राष्ट्रीयता की संज्ञा दी जाती है।

अग्रेजों के पहले भी भारत मे विदेशियो ने आकर राज्य किया था पर उनमे और अग्रेजो मे बहुत अन्तर था। पूर्ववर्ती शासको ने भारत को अपना घर बना लिया था। वे देश के अंग बन गये थे। देश के उत्थान-पतन मे उनका उत्थान-पतन था। भारत मे उनका शासन भारतवासियो का शासन था। अग्रेजी औपनिवेशिक शासन इससे सर्वथा भिन्न था। अग्रेज ऐसे विदेशी शासक थे जो भारत को अपना देश मानने के लिए तैयार नही थे। उनका शासन कलकत्ते से होता था लेकिन उसकी बागडोर लन्दन मे रहती थी। उनका उत्थान-पतन इगलैंड के उत्थान-पतन पर अवलम्बित था। भारत मे पहली बार ऐसे शासको का आगमन हुआ जो अपने को विदेशी समझते थे। भारतवासियो ने पहली बार वास्तविक पराधीनता का अनुभव किया। अग्रेजो के प्रति उनका दृष्टिकोण स्वामी के प्रति दास का दृष्टिकोण रहा।

अग्रेज यहाँ व्यापार करने के लिए आये लेकिन शासन करने लगे। शासक बनने के बाद भी वे बनिया बने रहे। कम्पनी राज्य के समान विक्टोरिया का राज्य भी व्यापार के लिए था। पूँजीवादी साम्राज्यवाद की सभ्य बर्बरता धीरे-धीरे प्रकट होने लगी। पूँजीवादी सभ्यता घर मे घूँघट लटकाये रही, परदेश मे आकर नगी हो गई।[30] भारत के उद्योग-धधे नष्ट हो चुके थे, अब विदेशी पूँजी से नए-नए उद्योग स्थापित किये गये। किसानों को लूटने मे देशी जमीदार का साथ विदेशी जमीदार देने लगे। किसान महाजनो के चगुल मे फँस गये और स्वय भूखे रहकर दूसरे की तोद भरते रहे। फ्लोरेन्स नाइटिंगेल ने १८७८ मे कहा था, "दुनियाँ का सबसे करुण दृश्य देखना हो तो भारतीय किसानो को देखो।"[31] एशिया और अफ्रीका के स्वाधीन देशो के साथ युद्ध किये गये और उनकी लपटो मे भारत के जन-जन को झोक दिया गया। हिमालय के आँगन मे टैक्स, अकाल, मँहगी, बेकारी और महामारी के प्रलय नृत्य होने लगे। भारत भिखारी बन गया और उसकी लक्ष्मी सात समुद्र पार 'दूकानदारो के देश' मे बन्दिनी बन गई। प० नेहरू ने लिखा है, "सोने की नदी इंगलैंड की ओर बहती रही।"[32] उनके समान ही देशभक्ति से तडपते हुए हृदय की भाषा मे भारतेन्दु ने लिखा था :

अगरेज राज सुख साज सज्यो अति भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।

भारत की आर्थिक अवस्था पर मुसलमानो की युद्ध-विजय की अपेक्षा

अंग्रेजो की युद्ध-विजय का अधिक गभीर और घातक प्रभाव पडा । भारतेंदु-काल में कहा था । जाता कि मुसलमानी राज्य हैजे का रोग है, अग्रेजी राज्य क्षय का ।[33] पूर्व आक्रमणकारियो और विजेताओ के पास सहार के अस्त्र थे, उत्पादन के उन्नत साधन नही थे ।[34] यहाँ बसने वाले विजयी शासक धन का सचय या अपव्यय करते थे तो वह यहाँ रह जाता था । अतः राष्ट्रीय सम्पत्ति एवं उद्योग-व्यवसाय का ह्रास नही होता था । अग्रेजी काल मे आर्थिक विनाश का क्रम जारी रहा और पुर्ननिमाण का अवसर नही आया । फिर, शोषण का यत्र ऐसा था कि पकड मे नही आता था । स्वाधीनता और जननंत्र के दावेदारो ने जिस आर्थिक नीति को अपनाया था उसे हमारे सूक्ष्मदर्शी साहित्यकार समझते थे ।[35] उन्होने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय जनता के शोषण मे इगलैण्ड की साधारण जनता का हाथ नही है ।[36] अग्रेजी राज्य के अन्यायो और अत्याचारो का भडाफोड कर उसके विरुद्ध जनमत तैयार करने मे उनका प्रयत्न स्तुत्य है ।

अग्रेजो और उनसे पहले आने वाले विदेशियो मे एक अतर और था । मुसलमानो और हिन्दुओ की संस्कृति मे समन्वय हो गया था । बहुत-से हिन्दू मुसलमान बन गए इसलिए हिन्दू सस्कृति के प्रति उनके हृदय मे सहानुभूति बनी रही । अंग्रेज ऐसे विदेशी थे जो भारतवासियो में घुलमिल नही सके । दोनो के बीच खाई बनती गई और सत्तावन के विद्रोह के बाद तो इतनी चौडी हो गई कि देश दो जातीय खेमो मे बँट गया । जब भारतवासियो ने देखा कि अंग्रेजो की भाषा, साहित्य, धर्म और सस्कृति उनकी इन वस्तुओं से भिन्न है और उन पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लादी जा रही है तब उनके मन मे घोर प्रतिक्रिया हुई ।

भारतीय सभ्यता इतनी प्राचीन, समृद्ध और सशक्त थी कि अग्रेजो के पूर्व आने वाली सभी सभ्य-असभ्य विदेशी जातियो को उसने आत्मसात् कर लिया । अब उसका पतन हो रहा था अतः पाश्चात्य सभ्यता की श्रेष्ठता स्वीकृत और प्रमाणित हुई । अंग्रेजो की भाषा, रहन-सहन, धर्म, विचार और रीतिरिवाज की जिस विभिन्नता से वर्ण-विद्वेश की उत्पत्ति हुई उसी से स्वदेशानुराग का पोषण हुआ ।[37]

अंग्रेजों की शासन-प्रणाली,आर्थिक नीति और सास्कृतिक साम्राज्य-वाद ने भारतवासियों के हृदय में देशप्रेम की चिनगारी सुलगा दी । स्वामी

दयानन्द ने पहले पहल घोषणा की कि भारत भारतवासियो का है[38] और स्वराज्य का मंत्र दिया ·

जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियो का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नही है।[39]

भारतेंदु ने अपनी वाणी मे अपनी सपूर्ण शक्ति और विवशता भरकर देशमाता की दुर्दशा पर आँसू बहाने के लिए लोगो को पहली बार पुकारा। मिश्र-बधु के मत से 'इतना अधिक स्वदेशाभिमान शायद ही किसी मे उस समय हो'।[40] आधुनिक भारत के उक्त दो नेताओ, निर्माताओं और प्रतिनिधियो ने जागरण का शख उस समय फूँका जब उस इडियन नेशनल काग्रेस का, जो अग्रेजी भाषा मे जमीदारो और पूँजीपतियो की माँग पेश करने वाली अग्रेजी-शिक्षित वर्ग की सस्था थी[41], नाम भी नही था। एक भारतेंदु ने जो किया वह एक संस्था से शायद ही सभव हो। हिन्दीस-ाहित्य पर आग्ल प्रभाव दिखाने के जोश मे कुछ आलोचक इन बातो को भूल जाते हैं और राष्ट्रीयता के बीजारोपण का श्रेय अग्रेजी शिक्षा और अग्रेजी शिक्षा पाने-वाले वर्ग को देते है। राष्ट्रीय भावना राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियो की उपज थी। उसके विकाश मे पाश्चात्य विचारो का प्रभाव पडा भी तो वह अत्यत गौण और सीमित है। जब तक किसी व्यक्ति या राष्ट्र मे बीज रूप मे कोई भाव नही रहता तब तक उसके लिए बाह्य प्रभाव फल-दायक नही होता। राष्ट्रीयता की परम्परा पूर्वकाल से आ रही थी।[42] यद्यपि उसमे पुनरुत्थान का भाव था।

मुगलकाल की राष्ट्रीयता मे धार्मिकता की छाप थी, कम्पनी काल की राष्ट्रीयता मे सामंती रंग था, अंग्रेजी राज्यकाल की राष्ट्रीयता मे शासक के प्रति शासित की भावना का उभार था। उसमे सकीर्णता और एकागिता नही थी, इसलिए वह पश्चिम की उस राष्ट्रीयता से नितात भिन्न थी जिसका दूसरा नाम उपनिवेशवाद है। उसमे प्राय. वे सभी तत्त्व थे जो गाँधी-युग मे काग्रेस के मूलभूत सिद्धान्त बने। वह सांस्कृतिक राष्ट्रीयता थी। उसमे अतीत के आलोक मे अपनी वर्तमान हीनता को देखकर विश्व के प्रगतिशील देशों की पंक्ति में सम्मिलित होने की अदम्य अभिलाषा थी;

धर्म, जाति, सप्रदाय वर्ग के भेदभाव को भूलकर व्यापक मानवीय सहानुभूति के आधार पर सगठित होने का आदर्श था और था आलस्य, अधविश्वास, आडबर, धैर्य, सहनशीलता आदि को ठुकराकर त्याग और बलिदान द्वारा स्वत्व ग्रहण करने का सकल्प। यह समय की गति को पहचान कर देश के समस्त अभावो को मिटाने और सर्वागीन विकास करने का महाकाव्यात्मक प्रयास था।[43] उसमे राजनीतिक-आर्थिक प्रश्नो के अतिरिक्त सामाजिक-सास्कृतिक प्रश्नो का भी समावेश था। अत. उसमे विद्रोह और क्राति की अपेक्षा समझौता और सुधार की ओर अधिक झुकाव था। राष्ट्रीय भावना की व्यजना उपन्यास मे मुख्यत: वर्तमान के प्रति सजगता और अतीत के अनुराग मे हुई है। सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास इस तथ्य का स्पष्ट द्योतन करते है।

अग्रेजी राज्य मे केन्द्रीय शासन, रेल, डाक, तार और सिक्के ने मिलकर भारत को एक राष्ट्र बना दिया। अशोक और अकबर जैसे महान हिन्दू मुस्लिम सम्राटो के शासन काल मे भी देश एक राजनीतिक इकाई नही बना था। राजनीतिक एकता अग्रेजी शासन की एक अपूर्व देन थी। यातायात के वैज्ञानिक साधनो का उपयोग राजनीतिक-आर्थिक स्वार्थ के लिए किया गया था और उनसे उनकी पूर्ति भी हुई तथापि वे अग्रेजी राज्य के वरदान सिद्ध हुए। साम्राज्यवादी डलहौसी ने रेल, तार, डाक और सड़क की व्यवस्था करने के समय शायद ही सोचा होगा कि वह समाज-सुधारक बेंटिक से बढकर रचनात्मक भूमिका अदा करने जा रहा है। यातायात के नए साधन नवयुग के वाहक हुए और रेल तो नवीन भारत का प्रतीक बन गयी। आवागमन की असुविधा से मनुष्य के साथ उसके विचार भी भौगोलिक सीमा मे बँधे थे। बैलगाडी के युग के बाद रेलगाडी का युग अद्भुत परिवर्तन लेकर आया। लोग दूर-दूर की यात्रा करने लगे। जान-पहचान बढी। एक प्रान्त दूसरे प्रान्त के निकट आया तथा एक दूसरे के साहित्य से परिचित और प्रभावित होने लगा। भौगोलिक दूरी के साथ मानसिक दूरी मिटी। मध्ययुग की दीवारें गिरने लगी। सकीर्णता का स्थान उदारता ने लिया। लोगो मे समान भाव-विचार का सचार हुआ और जातीय एकता का आदर्श सामने आया। १८८३ मे इलवर्ट बिल आन्दोलन के विरुद्ध आन्दोलन कर भारतीय शिक्षित समुदाय ने इस एकता का प्रदर्शन किया। भारतेन्दु के 'कालचक्र' के अनुसार 'आर्यो मे ऐक्य का बीज' इसी समय बाया गया।

साहित्य में आधुनिकता

'रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई' मे सह-अस्तित्व, बन्धुत्व और समवेदना का एक नया स्वर था जो भारत के विराट जनसमुदाय की भावात्मक एकता का प्रतीक था। बाबू श्यामसुन्दरदास[44] 'ह्रासकारिणी शृ गारी कविता के प्रतिकूल आन्दोलन' के साथ-साथ 'साहित्य मे एक नवीन चेतना' का आरम्भ उस दिन से मानते है जिस दिन 'स्वय सरस्वती ने राष्ट्र-भाषा के प्रतिनिधि कवि के कठ मे बैठकर एक राष्ट्रीय भावना उच्छ्वसित की थी'। उनका यह कथन सर्वथा सत्य है·

'मध्यकालीन भक्तिकाल के मूल मे जैसे शासक और पडोसी विदेशियो के अधिकाधिक सपर्क से उत्पन्न परिस्थिति तथा अपनी पूर्व सस्कृति के स्मरण द्वारा अपने उद्धार की बेचैनी दिखाई पडती है· · ठीक उसी प्रकार बीसवी शती के आरम्भ मे ही हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल का उदय भी अत्यन्त स्वाभाविक कारणो से और अत्यन्त स्वाभाविक परिस्थिति मे हुआ।'

पूर्व मध्यकाल मे सास्कृतिक चेतना साहित्यिक चेतना बनकर प्रकट हुई, आधुनिक काल मे राष्ट्रीय चेतना साहित्यिक चेतना बनकर। पूर्व मध्य-काल मे साहित्यिक चेतना कविता के माध्यम से और आधुनिक काल मे मुख्यत. गद्य के माध्यम से प्रकट हुई। सामतवाद के साथ-साथ साम्राज्यवाद के प्रति बढते हुए विरोध-भाव ने साहित्य-जगत मे मध्ययुग का अन्त और नवयुग का आरम्भ किया। इस दृष्टि से आधुनिक हिन्दी-साहित्य (जो परा-धीन भारत मे विकसित हुआ है) राजभक्ति के प्रति देशभक्ति का विद्रोह है।

नई राष्ट्रीय चेतना एव पाश्चात्य विचार के सघात से नवजागरण की लहर तरगित हुई। उसके स्पर्श से हिन्दी-साहित्य का मुख आकाश से धरती की ओर हो गया। मध्यकाल मे काव्य की, और काव्य मे भक्ति एव दर्शन की प्रधानता थी। तुलसी, सूर, कबीर पहले भक्त थे तब कवि। प्रेमाख्यानक काव्य लौकिकता का अश था पर अलौकिक रूपक के कारण लौकिक कथाओ और पात्रो की स्थूल वास्तविकता विलीन हो जाती थी। शृ गारी कवियो का वक्तव्य न तो पूर्णतः ऐहिक था न पूर्णत· आमुष्मिक। ग्रियर्सन ने कहा था कि १६वी शताब्दी के मध्य से लेकर वर्तमान काल तक भारतीय साहित्य मे जो कुछ उत्तम और महान है उसका सम्बन्ध राम और कृष्ण की कथाओं से है।[45] गोस्वामीजी की धारणा थी कि प्राकृत जन का गुणगान करने से शारदा

को पश्चाताप होता है। आधुनिक युग मे कला या साहित्य धार्मिक अभिव्यक्ति बनकर नही रह सका। मर्त्य को ही स्वर्ग बनाने की कामना तीव्र हो उठी और मानवता की पूजा होने लगी। इस नये विश्वास को पश्चिम की भौतिकता-प्रधान सभ्यता से बल मिला। भोगवाद वतमान युग और साहित्य की आत्मा बन गया। उपन्यास लौकिक रस का साहित्य है। उसके अस्तित्व के लिए ऐहिकतापरक भाव अत्यन्त आवश्यक था। उसने धर्म और मोक्ष को छोडकर अर्थ और काम से नाता जोड लिया। वह नया माध्यम था, इसलिए उसमे नये प्रसगो का समावेश हो सका, जब कविता मे भक्ति-शृंगार की परम्परा जीवित रही। मध्ययुगीन भक्ति-विरक्ति के स्थान के मानवीय राग-द्वेष का वर्णन करना उसका प्रधान लक्ष्य रहा है। विवेच्यकाल मे अन्यतम सासारिक उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी है, जिनकी दृष्टि आत्मा की अपेक्षा देह पर विशेष है।

विश्व की कई भाषाओ की भाँति हिन्दी मे भी कविता के ह्रास के साथ उपन्यास का विकास हुआ। ह्रासकाल मे नूतन विषय और विधा की ओर आकर्षण होता है। उपन्यास उस बौद्धिक युग की कलात्मक अभिव्यक्ति है जिसका आरम्भ 'कला-काल' के अन्त में हुआ। नवयुग की चेतना, नई अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के फलस्वरूप शिक्षित समाज मे वैज्ञानिक, आलोचनात्मक एव उपयोगितावादी दृष्टिकोण का उन्मेष हुआ, जिसके लिए कविता विशेष अनुकूल नही थी। अतः गद्य-साहित्य के प्रणयन और अध्ययन की ओर प्रवृत्ति हुई। मराठी, मैथिली जैसी कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओ की भाँति हिन्दी मे गद्यसाहित्य का अस्तित्व था किन्तु उसमे विविधता का अभाव था। अंग्रेजी प्रभाव सबसे अधिक गद्य-साहित्य पर पडा। गद्य के नाना रूप निबन्ध, नाटक, उपन्यास आदि पल्लवित हुए। कवि का सम्बन्ध अन्तर्जगत से होता है, उपन्यासकार का सम्बन्ध बाह्य जगत से। एक मुख्यतः उदात्त, शाश्वत और दिव्य जीवन-सत्य को व्यक्त करता है, दूसरा मुख्यतः पार्थिव, सामयिक और मानवीय यथार्थ को। उपन्यासकार कवि ही नही किसी भी कलाकार की अपेक्षा मानव-जीवन के अधिक निकट रहता है। अविश्वास को स्वेच्छा से हटाना काव्यगत विश्वास हो सकता है।[46] जो कुछ अविश्वसनीय और अस्वाभाविक है वह उपन्यास के लिए उपयुक्त नही होता। यह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिणाम था कि उपन्यास मे असम्भव के बदले सम्भव को स्थान मिला और वह प्राचीन कथा-कहानी से भिन्न एक

लोकप्रिय कला-रूप बना ।

वैज्ञानिक और बुद्धिवादी दृष्टिकोण आधुनिकता का मूलाधार है। वैज्ञानिक दृष्टि का सर्वोत्तम साहित्यिक रूप तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास है । देवकीनन्दन खत्री ने तिलिस्म को वैज्ञानिक स्तर पर लाकर यह तर्क उपस्थित किया कि दुनिया मे भूत-प्रेत कोई चीज नही, जादू मन्त्र सब खेल कहानी है ।[47] जादू-टोने के बदले बेहोशी की बुकनी और लखलखा का प्रयोग पुरानी मूर्खता के बदले नई किन्तु न्यून मूर्खता का प्रयोग था और यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक था ।[48] 'चन्द्रकाता' की घटनाओ की संभवता-असभवता को लेकर होने वाला विवाद उसका द्योतक था कि जो मन बहलाने के लिए पढते थे उनके भी बौद्धिक जिज्ञासा थी । बुद्धिवादी युग के पाठक हर वस्तु को तर्क की कसौटी पर कसकर ही ग्रहण करने के लिए तैयार थे । लेखको को पाठको का मनोरजन करने के साथ-साथ उनमे विश्वास उत्पन्न करना था । वे बडी कुशलता से कथा का विन्यास करते थे ताकि पाठक समझें कि वे जो पढ रहे है, वह सत्य है । कभी-कभी वे भूमिका मे या उपन्यास के बीच मे स्वय कथा की प्रमाणिकता सिद्ध करने लगते थे । वे कल्पना से अधिक विचार-बुद्धि को महत्त्व देते थे इसलिए हास्य-व्यग्य से कथा को मनोरजक बनाते थे। हास्यरस के बोध के लिए लेखक और पाठक दोनो का बौद्धिक होना आवश्यक है । विज्ञान के आविष्कारो मे अद्भुत आकर्षण था । उपन्यास मे उनकी चर्चा होती थी । घटनाओ मे मोड देने के लिए उनका उपयोग किया जाता था । 'श्यामास्वप्न' का नायक अपनी प्रेमिका को भी पारदर्शक यन्त्र से देखने लगा था । ऐसे उपन्यास बहुत कम होंगे जिनमे पत्र-व्यवहार न किया गया हो । रेल के डब्बे रोमास के घटनास्थल बन गए । यह यातायात के नये साधन से ही सम्भव हो सका । जेन आस्टेन ने अपनी रचनाओ मे रेल की चर्चा नही की । हिन्दी उपन्यासकार समकालीनता से इतने विमुख नही थे ।

मुद्रण-यन्त्र

साहित्य के लिए विज्ञान की बहुमूल्य देन मुद्रण-यत्र है । उपन्यास गद्य-युग की उपज है और गद्य-युग के निर्माण मे मुद्रण-यत्र का योगदान विशेष महत्त्व का है । मुद्रण-यत्र के अभाव मे साहित्य के विकास और स्वरूप का निर्धारण श्रोताओ द्वारा होता था । ईसाई धर्म-प्रचारको ने अठारहवी

शताब्दी मे नागरी के टाइप तैयार किए, उन्नसीवी शताब्दी पूर्वार्ध मे देश के विभिन्न स्थानो मे मुद्रण-यत्र की स्थापना की और धार्मिक, शैक्षिक ग्र थ छपवाए। उन्हे धार्मिक प्रचार करना था, हिन्दी का हित-साधन नही करना था फिर भी उन्होने जो कुछ किया उससे हिन्दी-साहित्य के उन्नयन मे परोक्ष रूप से सहायता मिली। नागरी मे मुद्रित पहला ग्र थ 'मिसकीन का मरसिया' (१८०२) माना जाता है। मुद्रण-यंत्र के प्रचार से साहित्य मे नवीनता का सूत्रपात हुआ। वाणी पद्य के बधन मे रह नही सकी। गद्य की विधाओ का विकास तथा आधुनिक युग का प्रवर्तन हुआ। किस्सागो तथा कथावाचको की आवश्यकता और उपयोगिता नही रही। साहित्य का केन्द्र दरबारो से उठकर जनता के बीच आ गया। पुस्तकें छपकर लोगो को घर बैठे मिलने लगी। नए पाठक बने और लेखको-पाठको मे निकट सम्बन्ध हुआ। उपन्यास लोकप्रिय बने, उपन्यासकार लोकरुचि के अनुसार लिखने लगे और प्राचीन तथा नवीन भारतीय साहित्य से परिचित हुए।

मुद्रण-कला सभी कलाओ की सरक्षिका है। लिखित उपन्यास से मुद्रित उपन्यास की प्रभावशीलता अधिक होती है। मुद्रित सामग्री वेदवाक्य के समान सत्य और प्रामाणित मान ली जाती है। मुद्रित उपन्यास के कथानक और चरित्र यथार्थ और जीवित प्रतीत होते हैं। मुद्रण-कला उपन्यास-कला से मिलकर वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने मे पूर्ण सफल हुई। उपन्यास मुद्रित शब्दो से निर्मित ससार बन गया। पाठक उस ससार को सुन्दर या असुन्दर कह सकते थे परन्तु उसके अस्तित्व मे अविश्वास नही कर सकते थे। प्रेस ने एक ओर उपन्यास को 'पाकेट थियेटर' बनाकर उसकी सम्भावना बढाई और दूसरी ओर उसे व्यावसायिक रूप देकर उसके विषय और दृष्टिकोण की सीमा निर्धारित कर दी।

पत्र-पत्रिका

मुद्रण-यत्र से पत्र-पत्रिका का और पत्र-पत्रिका से गद्य-साहित्य का सवर्धन हुआ। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (१८७३) पहला पत्र था जिसके मुखपृष्ठ पर अंकित विविध विषयो में उपन्यास भी सम्मिलित था। उपन्यास-विषयक पत्र से उपन्यास का अभाव पूरा करने के लिए बाबू राधाकृष्ण दास ने 'नाटकोपन्यास पाक्षिक पुस्तिका' निकालने का प्रस्ताव 'श्रीहरिश्चन्द्र चन्द्रिका (नवम्बर १८७८) मे छपवाया, जो कार्य मे परिणत नही हुआ।[49] इस ढग

का पहला पत्र निकालने का श्रेय बाबू देवकीनदन खत्री को है। उनकी 'उपन्यासलहरी' का प्रकाशन उपन्यास के इतिहास मे एक स्मरणीय घटना है।[50] 'लहरी' के बाद कई औपन्यासिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिनमे किशोरीलाल गोस्वामी का 'उपन्यास' (१८९८), गोपालराम गहमरी का 'जासूस' (१९००), जयरामदास गुप्त का 'उपन्यास बहार' (१९०७) और राम लाल वर्मा का 'दारोगा दफ्तर' (१९१०) अपेक्षया दीर्घजीवी और प्रसिद्ध हुए। यो उपन्यास दैनिक और पाक्षिक पत्रो मे भी प्रकाशित हुए पर मासिक पुस्तक के रूप मे उनका प्रकाशन विशेष महत्त्व रखता है। स्वतत्र पुस्तक की अपेक्षा मासिक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित उपन्यास, खासकर जासूसी उपन्यास, अधिक लोकप्रिय हुए।

पत्र-पत्रिकाएँ लेखक और पाठक मे सम्पर्क स्थापित करने का प्रभावशाली माध्यम थी। उन्होने उपन्यास पढने का शौक पैदा और पूरा किया और इस तरह उसके पाठको की सख्या बढाई। उनमे उपन्यासो के अतिरिक्त आलोचना और विज्ञापन का प्रकाशन हुआ। उनसे उपन्यास के उपयुक्त गद्य-शैली के निर्माण मे भी सहायता मिली। कभी-कभी उनके द्वारा उपहार-स्वरूप उपन्यास बाट दिए जाते थे। इस प्रकार पत्र-पत्रिकाओ ने उपन्यास को और उपन्यास ने पत्र-पत्रिकाओ को लोकप्रिय बनाया। प्रारम्भिक पत्रकारिता का इतिहास एक प्रकार से प्रारम्भिक उपन्यास का इतिहास है।

उपन्यास के रूपविधान पर उसके धारावाहिक प्रकाशन का प्रभाव स्पष्ट है। पत्र की आवश्यकता के अनुसार किसी उपन्यास का अनावश्यक विस्तार या सशोधन किया जाता था। इससे उसमे अवान्तर प्रसग आ जाते थे, उसका आकार बडा और स्थापत्य शिथिल होता था। हर किश्त के अन्त मे उत्सुकता जाग्रत कर पाठको को प्रतीक्षा करने के लिए छोड़ दिया जाता था, नई किश्त के आरम्भ मे पूर्व कथा का स्मरण दिलाने या घटनाओ का क्रम मिलाने के लिए पुनरावृत्ति की जाती थी और उपन्यास सुखान्त बनाया जाता था। पत्र-पत्रिकाओं से घटना-प्रधान उपन्यासो का सवर्धन हुआ, गम्भीर और उच्चस्तरीय रचनाओ को प्रोत्साहन नही मिला।

सुधार-आन्दोलन

पश्चिम और पूर्व के सघर्ष से भारत के सास्कृतिक जीवन मे एक विचित्र सकट उपस्थित हो गया। नवीन विचारो के आलोक मे धार्मिक और

सामाजिक रूढियो का उन्मूलन तथा नवयुग के अनुकूल नये नैतिक और सामाजिक मूल्यो की प्रतिष्ठा आवश्यक हो गई। देश मे अनेक सुधार-आन्दोलनो का जन्म हुआ। ब्राह्म समाज (१८२८) के महान सस्थापक राजा राममोहन राय ने हिन्दू धर्म के घेरे मे रह कर समाज-सुधार के लिए प्रयास किया पर उनके अनुयायी ईसाई धर्म की ओर फिसल गये। ब्राह्म समाज का प्रभाव बगाल के अल्पसख्यक नवशिक्षित वर्ग तक सीमित रहा। ईसाई मत नव शिक्षित समुदाय को परोक्षत: और दलित वर्ग को प्रत्यक्षत. प्रभावित कर रहा था। उन्नीसवी सदी के श्रेष्ठतम महापुरुष स्वामी दयानन्द ने एक साथ ही ईसाइयो, मुसलमानो और सनातनियो के धार्मिक पाखण्ड पर आक्रमण कर दिया और वैदिक धर्म का जयघोष किया। स्वामीजी शकराचार्य के बाद दूसरे दिग्गज धम-प्रचारक होते हुए भी मूलत: मानवतावादी थे और अग्रेजी शिक्षा के बिना भी प्रखर बुद्धिवादी। 'मनुष्योन्नति' के लिए सत्य पर प्रकाश डालना वे उचित समझते थे। वे पीडित मानवता के पुजारी थे। बाल-विवाह जातिप्रथा आदि का विरोध और विधवा-विवाह स्त्री-शिक्षा, विदेश-यात्रा आदि का समर्थन उनके धर्म का अग था। उन्होने १८७५ मे आर्य समाज की स्थापना की और आर्यभाषा हिन्दी को अपने विचारो के प्रचार का साधन बनाकर गौरवान्वित किया। उनकी दिव्य वाणी सम्पूर्ण उत्तर भारत मे गूँजकर जन-मन मे बस गई।

हमारे दो यशस्वी साहित्यकार श्रद्धाराम फिल्लौरी और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वय धर्म और समाज के बहुत बडे सुधारक थे। फिल्लौरीजी ने अनेक धर्मसभाओ और धर्मोपदेशको का निर्माण किया, बहुतो को ईसाई होने से बचाया और अधविश्वासियो का विरोध किया। आर्यसमाज की स्थापना से दो वर्ष पूर्व १८७३ मे भारतेन्दु ने 'तदीय समाज' नाम की वैष्णव धर्म-सस्था की स्थापना की थी। उसके माध्यम से उन्होने स्वदेशी वस्तु, मद्य-निषेध, गो-रक्षा,—इन तीन प्रमुख सामाजिक-राष्ट्रीय आन्दोलनो का सूत्रपात किया। 'समाज' के सदस्य देशमान्य सज्जन थे।

पुराने उपन्यासकार स्वतन्त्र, निर्भीक और उदार विचार के मनुष्य थे। यह कहना कठिन है कि कहाँ तक उनके विचार मौलिक है और कहाँ तक सुधार-आन्दोलनों से प्रभावित है। वैसे ही यह निर्णय करना कठिन है कि उनमे कौन उच्चकोटि का विचारक है कौन साधारण कोटि का। उन्हे किसी 'समाज' के कट्टर धार्मिक सिद्धान्त मान्य नही हुए किन्तु उसके

सामाजिक, राष्ट्रीय और मानवतावादी विचारो से वे अवश्य अनुप्राणित हुए। स्वामी दयानन्द को मार्टिन लूथर और भगवान बुद्ध के तुल्य मानते हुए राधाचरण गोस्वामी ने भारतेंदु (जून १८८६) मे 'आर्य समाज' शीर्षक जो लेख लिखा था उससे सूचित होता है कि तत्कालीन लेखक एक साथ ही आर्य समाज के आलोचक और प्रशसक थे, "स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत वेद-भाष्य और मूर्तिपूजन के विषय मे हम लोगो का मत कैसा ही क्यो न हो परन्तु स्वामी जी मे श्रद्धा और आर्यसमाज मे हमारी सहानुभूति है। स्वामीजी के देशोपकारी होने मे जो कोई सन्देह करे वह नरकी है और आर्यसमाज के देशोन्नति करने मे किसी को भ्रम हो तो वह साक्षात पशु है।"

स्वामीजी अहिन्दू को हिन्दू बनाते थे, उपन्यास-लेखक बिगड़े को सुधारते थे। उनके सुधारवादी जोश, राष्ट्रीय भावना और नैतिक आदर्श पर आर्य समाज की छाप स्पष्ट है। नई राष्ट्रीयता के उत्थानकाल तक आर्य समाज हिन्दी-उपन्यास पर व्यापक प्रभाव डालता रहा। उसके सामाजिक पक्ष से तो उसका अविच्छेद सम्बन्ध रहा है। उसने विविध विषय, मानवीय दृष्टि, बौद्धिक यथार्थ और सृजन-प्रेरणा प्रदान की है। उपन्यासकारो की उपदेशात्मक प्रवृत्ति और ओज-व्यग्य से गर्भित शैली पर उसका परोक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचद की 'प्रेमा' आर्य समाज के प्रभाव का उत्कृष्ट निदर्शन है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मत से "स्वामी दयानन्द के विचारो और आदर्शों से वे सीधी तरह प्रभावित थे।"[51]

नारी-स्वाधीनता

सामाजिक सुधार का एक क्रान्तिकारी पहलू नारी-स्वाधीनता का आन्दोलन था, जो उपन्यास के लिए विशेष प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। प्राचीन भारतीय समाज में नारी का स्थान बहुत ऊँचा था। मुसलमानो के आगमन के उपरान्त वह परदे की रानी बना दी गई और बाल-विवाह तथा सती-प्रथा की वेदी पर उसका बलिदान किया गया। उन्नीसवी सदी में राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र और बालकृष्ण भट्ट ने स्त्रीजाति की हीन दशा सुधारने पर बल दिया। भारतेन्दु ने 'बालाबोधिनी' (१८७४) पत्रिका निकाल कर उसके मुखपृष्ठ पर स्त्री-पुरुष की समानता का सिद्धान्त निरूपित किया। उनकी दृष्टि मे नारी पुरुष की दासी नही, स्वामिनी थी।[52] बालकृष्ण भट्ट पतन के गर्त से स्त्रीजाति का उद्धार करना "तरक्की की पहली सीढी"

मानते थे ।[53] नारी-सम्बन्धी यह दृष्टि पश्चिम की देन थी पर उसमे भारतीय भावना भरी हुई थी ।[54]

चारण कवियो ने नारी को विजय का उपहार और शृ गारी कवियो ने विलास की सामग्री बनाकर उसके प्रति सामती दृष्टिकोण व्यक्त किया था । मध्यवर्गीय लेखको ने उसे सामती बन्धन और वर्जना से मुक्त कर पुरुष के समकक्ष ही नही बल्कि उससे श्रेष्ठ माना किन्तु उसके अधिकारो के साथ-साथ कर्त्तव्यो पर ध्यान रखा । यदि नारी को हेय दृष्टि से देखा जाता तो उपन्यास मे उसके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा नही होती । नारी की महिमा के के साथ ही नर-नारी के स्वाभाविक आकर्षण की महिमा स्वीकृत हुई । उपन्यास मानव-चरित्र का अध्ययन है और मानव-चरित्र का प्रेरक प्रेम है इसलिए उपन्यास प्रेम का कथानक रहा है। उपन्यासकार नारी की स्वतन्त्रता और समानता के हिमायती थे परन्तु वह समाज मे न तो स्वतन्त्र थी और न आर्थिक एव बौद्धिक दृष्टियो से पुरुष के समान ही । फलतः उपन्यास मे स्वछद प्रेम की अपेक्षा वैवाहिक प्रेम को प्रधानता मिली । विवाह के पूर्व प्रणय-क्रीडा होती थी किन्तु प्रेमिका को पत्नी बनाया जाता था, पत्नी को प्रेमिका नही । वैयक्तिक अनुभूति से उत्पन्न अबाध प्रेम को विशेष प्रोत्साहन नही दिया जाता था बल्कि उसके लिए रोग या मृत्यु का दण्ड निश्चित रहता था । जब पुरुष-नारी के उन्मुक्त मिलन का समर्थन करने वाली पीढी बनी और स्वेच्छा से विवाह करने की प्रथा चली तब प्रेम और प्रेमविवाह का वर्णन मुख्य हो गया ।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान

देशप्रेम की मस्ती और समाजसुधार की उमंग मे साहित्यकारो ने अतीत की उपेक्षा नही बल्कि उसका आकर्षण उसके देशप्रेम का एक अग था । अठारहवी-उन्नीसवी सदियो मे पाश्चात्य पण्डितों ने शासन-सम्बन्धी आवश्यकता और जिज्ञासा की भावना से प्रेरित होकर भारत की रीति-नीति, विधि-व्यवहार, धर्म-दर्शन, इतिहास-कला और भाषा-साहित्य का अनुशीलन किया । मैक्समूलर तो इस देश को 'धरती का स्वर्ग' मानने लगा । इधर स्वामी दयानन्द ने प्राचीन भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता प्रमाणित और घोषित की तथा भारतेन्दु ने पुराण, इतिहास और पुरातत्त्व का गम्भीर विवेचन किया । अतीत के आविष्कार से भारतवासियों को अपनी अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर का भान और गौरव हुआ । इससे पुनरुत्थान की प्रवृत्ति जाग उठी

और ऐतिहासिक, पौराणिक, रोमानी तथा तिलिस्मी उपन्यास लिखने-पढने की रुचि उत्पन्न हुई। सास्कृतिक पुनरुत्थान मे सुदूर अतीत के प्रति मोह और निकट अतीत के प्रति विरोध-भाव था। दोनो की व्यजना पौराणिक उपन्यासो मे और उन ऐतिहासिक उपन्यासो मे हुई जिनका सम्बन्ध मुगल-काल से है। एक ओर टाड की 'राजस्थान की गाथा' से बलवती प्रेरणा लेकर ऐतिहासिक उपन्यास के नाम पर रोमानी उपन्यास लिखे गए और उनमे रोमानी राष्ट्रीयता का प्रतिष्ठापन किया गया दूसरी ओर नूतन अनु-सन्धान के आलोक मे ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास तैयार किए गये जो उपन्यास न होकर उसके उपादान हैं। पुरातत्व का प्रेम यहाँ तक बढा कि तिलिस्मी उपन्यासों मे भी खण्डहरो और पुराने स्थानो के मूल नाम' का उल्लेख किया गया और 'आश्चर्य वृत्तान्त' मे एक पुरातत्त्ववेत्ता अग्रेज को केन्द्रीय पात्र बनाया गया। अतिशय और अनावश्यक प्राचीनता प्रेम से अतीत की अधभक्ति भी उद्भूत हुई। कुछ लोग वर्तमान दुरवस्था को भूलकर बीते गौरव का गीत गाने लगे और प्रत्येक वस्तु को भारतीय सिद्ध करने का यत्न करने लगे। देवकीनन्दन खत्री ने आलोचको का मुंह बन्द करने के लिए तिलिस्म और ऐयारी को भारतीय वस्तु प्रमाणित करने के प्रयास मे कहा था कि 'माया भी नाम ऐयारी का है।'।

इस प्रकार पाश्चात्य प्रभाव के विभिन्न स्रोतो ने हिन्दी-साहित्य के परम्परागत रूपो का सस्कार एव नवीन रूपो का निर्माण किया, जिनमे उपन्यास युग-सत्य को स्पष्टतया प्रतिबिम्बित करने मे सफल हुआ।[55]

टिप्पणियाँ

1- And who in time knows whither we may vent. The treasure of our tongue? To what strange shore This gain of our best glory shall be sent.

२- 'सरस्वती', जून १९२०, पृ० ३४२

3- "There is nothing before the eyes of the natives but an endless, hopeless prospect of new fights of birds of prey and passages, with appetites continually renewing for a good that is continually wasting."

—बर्क के प्रसिद्ध भाषण का अंश

४- डिग्वी ने अपनी पुस्तक 'प्रौसपरस ब्रिटिश इण्डिया' मे यह मत व्यक्त किया है।

5- 'Great fortunes sprang up like mushroom in a day'

—मार्क्स : 'केपिटल'

६- रजनी पाम दत्त : 'इण्डिया टूडे', पृ० १०६

7- "All the civil wars, invasions, revolutions, conquests, famines, strangely complex, rapid and destructive as the successive action in Hindostan may appear, did not go deeper than its surface. England has broken down entire framework of Indian society......"

—आन ब्रिटेन, पृ० ३७९

८- मोरलैंड : 'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', पृ० २८८

९- एच० एच० डाडवेल : 'इण्डिया', पार्ट टू (१९३६), पृ० १८९

१०-'परीक्षागुरु' के पात्रों मे लाला ब्रजकिशोर वकील है, मास्टर शिंभूदयाल शिक्षक है, अहमद हुसेन हकीम है, बाबू बैजनाथ रेलवे का नौकर है, हरिकिशोर साधारण व्यापारी है, हरकिशन दलाल है, मिस्टर ब्राइट अंग्रेज सौदागर है और फिर पण्डित, पत्रकार, जज, शिक्षित, बेकार आदि है। मध्यवर्ग के इन प्रतिनिधियों का केन्द्र सेठ लाला मदनमोहन है।

11- "They formed a class, not a caste."

—एच० एच० डाडवेल : वही

१२–एच० एच० डाडवेल : वही

१३–देखिए 'लखनऊ'

१४–समस्यापूर्ति–सम्बन्धी मासिक 'साहित्य-सुधानिधि' (१८९३–९४) मे ही देवकीनन्दन खत्री की 'कुसुमकुमारी' प्रकाशित हुई थी।

१५–'हिन्दी भाषा मे उपन्यास', सप्तम हिं० सा० स० लेखमाला, १९१७, पृ० ११९

१६–'उपन्यास', 'हिन्दी प्रदीप' (जनवरी १८८२), पृ० १७

१७–'गद्यकाव्य मीमासा', ना० प्र० पत्रिका (१८९७)

१८–'चन्द्रकाता', दूसरा हिस्सा, छब्बीसवा बयान

१९–'साहित्य समालोचक', १९२५ भाग १, अक १, पृ० १९

२०–हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी-साहित्य', पृ० ३३९

२१–पृ० ४४९

२२–"यहाँ के हिन्दू रईस धनिक लोग असभ्य हैं और पुरानी बातें उनके सिर मे भरी है। मुझसे जो मिला उसने मेरी आमदनी गाँव पहिले पूछा और नाम पीछे।"—भारतेन्दु 'लखनऊ'

२३–भारतेन्दु की रचनाओ मे प्रयुक्त।

२४–'हिन्दी प्रदीप', जुलाई १८८८

२५–"ब्राह्मणो ही के कर मे कलम था मनमाना जो आया घिस दिया राजाओ पर ऐसा बल रखते थे कि इनके मोम की नाक थे, या काष्ठ पुत्तलिका जिसकी डोर उनके हाथ मे थी—"

—'श्यामास्वप्न', पृ० ९

'हिन्दुओ के परम पूज्य विश्वासपात्र ब्राह्मणो ने स्वार्थ परायण होकर चौपट कर दिया।'

—अम्बिकादत्त व्यास . 'स्वर्गसभा'

भारत की 'दुरवस्थाओ के कारण ब्राह्मण और मुसलमान लोग है'

—नि:सहाय हिन्दू, पृ० १८

ज्योतिषी और पुजारियो के सम्बन्ध मे 'परीक्षागुरु' और हनुमन्त सिंह की 'चन्द्रकला' द्रष्टव्य है।

२६–'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध', पृ० ८६–८७

२७–'आज तक हिन्दी के बहुत से उपन्यास हुए हैं जिनमे कई तरह की बात

ओ राजनीति भी लिखी गई है, राज दर्बार के तरीके वो सामान भी जाहिर किये गये हैं, मगर राजदर्बारो मे ऐयार (चालाक) भी नौकर हुआ करते थे ·· इन ऐयारो का बयान हिन्दी किताबों में अभी तक मेरे नजरो से नही गुजरा, अगर हिन्दी पढने वाले भी इस मजे को देख ले तो कई बातो का फायदा हो,'

—'चन्द्रकान्ता' : भूमिका

28- "The bourgeoisie... has put an end to all feudal, patriarchal, idyllic relations. It has pitilessly torn asunder the motely feudal ties that bound man to his "natural superior", and has left no other bond between man and man than naked self-interest, than callous "cash payments". It has drowned the most heavenly ecstasies of religious fervour, of chivalrous enthusiasm, of philistine sentimentalism, in the icy water of egotistical calculation, The bomgeoise has torn away from the family its sentimental veil and has reduced the family relation to a money relation "

—लिटरेचर ऐण्ड आर्ट, पृ० ३४

29- "The Novel deals with the individual, it is the epic of the struggle of the individual against society, against nature, it could develop in a society where the balance between man and society was lost, where man was at war with his fellows or nature. Such a society is capitalist society."

—द नोवेल ऐण्ड द पिपुल, पृ० ८२

30- The profound hypocrisy and inherent barbarism of bourgeois civilization lies unvelied before our eyes, turning from its home, where it assumes respectable forms, to the colonies, where, it goes naked.

—मार्क्स : ऑन ब्रिटेन, पृ० ३९१

31- "The saddest sight to be seen in the East—nay probably in the world is the peasant of our Eastern Empire."

—जवाहरलाल नेहरू : ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, पृ० ४२८ मे उद्धृत

32- "River of gold flowed ceaselessly to England."

—वही, पृ० ४००

३३—भारतेन्दु : 'बादशाह दर्पण' की भूमिका

३४—'तैमूर, नादिर, चगेज महमूद गजनवी आदि हमला करने वालों ने समय-समय देश पर आक्रमण कर इस कदर नही लूटा था जैसा विलायत की बनी चीजो से हमारा धन लूटा जाता है। ये नादिर आदि लुटेरे आए एक बार लूट पाट चले गए दो चार वर्ष उनके लूट का असर रहा थोड़े ही दिन बाद देश फिर अपनी पहिली की सी सम्पन्न दशा मे आ गया।'

—बालकृष्ण भट्ट : 'हिन्दी प्रदीप'

३५—भारतेन्दु ने एक पहेली को पहेली से ही समझाया था :

भीतर भीतर सब रस चूसे, बाहर से तन मन धन मूसे।
जाहिर बातन मे अति तेज, क्यो सखि साजन ? नहि अग्रेज।

इसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट ने (हिन्दी प्रदीप, जून १८८६) मे सकेत किया :

'जहाँ तक चाहे कर बढाते जायँ कोई हाथ पकडने वाला नही है।'

३६—"भूखो के हाथ की रोटी छीन, दुखियो के तन के वस्त्र उतार, लोगो के प्राण का रुधिर चूस सरकार रुपया उगाहेगी और उस रुपये से इगलैड की प्रबल जठराग्नि को आहुति देगी। उस रुपये से अग्रेज सिविलियनो और सिपाहियो को शराब पिलायी जायेगी। उसी रुपये से विलायत के स्वार्थ परायण लोभी कारीगरो का और सौदागरो का रोजगार बढावेगी और साथ ही हम लोगो को बडे कोमल मीठे और कृत्रिम उदार वचनो मे फुसलावेगी कि तुम हमको प्राणो से अधिक प्यारे हो। तुम्हारे उपकार के लिए तुम्हारे ही सुख के लिए हम अपने सुखमय शीतल देश को छोड़कर यहाँ की भयानक लू सहते है। तुम्हारे सुख के चिन्तन मे हमे रात-रात नीद नही आती।"

—बालकृष्ण भट्ट : 'हिन्दी प्रदीप'

३७—"हजारो साहब लोग हिन्दुस्तान मे ऐसे है कि उन्हे बीसो वर्ष यहाँ रहते बीत गया पर यहाँ का पानी नही अब तक पिया, चाहे जो खर्च हो बोतलो मे भर-भर विलायत का पानी आता है वही वे पीते हैं। इसका नाम जन्मभूमि वात्सल्य है।...... ..नेटिवो के बर्ताव की चीजो को खुलाखुली अपने काम मे लाना इससे बढकर उनके वास्ते और क्या बेइज्जती हो सकती है।... .. उनके तौर्यत्रिक अर्थात् नृत्य, गीत, वाद्य

को लिया जाये तो उस पर ख्याल कर जो कुढता है । ..... · इतनी अपूर्णता पर भी ये बुद्धिमान और सभ्यता की नाक हैं। सब तरह के गुणो मे पूर्णता होने पर भी हम गवार असभ्य और मूर्ख बने है समय पडे की बात है।"

—'भट्ट निबन्धमाला', प्रथम भाग, पृ० ५२

38– "It was Daynand Saraswati who first proclaimed India for the Indians"

—Annie Besant . Renascent India

३९–'सत्यार्थ प्रकाश' (सवत् २०१६ सस्करण), अष्टम समुल्लास, पृ० २२७

४०–दे० 'हिन्दी नवरत्न'

41– "It represented the richer bourgeoisie; even the poorer middle classes were not in it XX It was the organ of the English-educated classes chiefly, and it carried on its activities in our step-mother tongue–the English language. Its demands were demands of the land-lords and Indian capitalists and educated unemployed seeking for jobs. Little attention was paid to the grinding poverty of the masses or their needs"

—प० जवाहरलाल नेहरू : 'ग्लिम्पसेज आफ वर्ल्ड हिस्ट्री', पृ० ४९३

४२–अठारहवी शताब्दी मे भी हैदरअली, टीपू सुल्तान, मीरकासिम, महादजी सिंधिया, नाना फडनवीस जैसे कट्टर अग्रेज-विरोधी और जन्मजात देशभक्त थे। भारत पर विजय प्राप्त करने मे अग्रेजो को सौ वर्ष लग गये और सौ से भी अधिक युद्ध करने पडे। भारतीय प्रतिरोध का एक रूप लूट-खसोट और चोरी-डकैती था। जैसे-जैसे कम्पनी का राज्य बढता गया वैसे-वैसे अपराध भी बढते गये। सन्यासियो, पिंडारियो और ठगो के उपद्रव अकारण नही थे। देश के विभिन्न भागो मे अनेक राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलन होते रहे। १८५७ की क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना नही थी। उसके पीछे कम्पनी के सौ वर्षों का शासन—जान ब्राइट के शब्दो में "सौ वर्षो का अपराध" (हण्ड्रेड इयर्स आफ क्राइम) था और था उस शासन के प्रति व्यापक असन्तोष।

४३–एक हिन्दी प्रेमी अग्रेज कलक्टर की अध्यक्षता में भारतेन्दु द्वारा १८७७

मे बलिया मे "भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है" शीर्षक व्याख्यान भारतीय स्वाधीनता का प्रथम घोषणा-पत्र कहा जा सकता है :

"यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुडदौड हो रही है। अमेरिकन, अग्रेज, फरासीस, आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते है। ··· उस समय हिन्दू काठियावाढी खाली खडे-खडे टाप से मिट्टी खोदते है। इनको, औरो को जाने दीजिये, जापानी टट्टुओ को हाँफते हुए दौडते देखकर भी लाज नही आती।··· मनुष्य दिन-दिन यहाँ वढते जाते हैं और रुपया दिन-दिन कमती होता जाता है। ····· कोई धर्म की आड मे, कोई देश की चाल की आड मे, कोई सुख की आड मे छिपे है। उन चोरो को वहाँ-वहाँ से पकड-पकड कर लाओ। उनको बाँध-बाँध कर कैद करो।··· ·· इस समय जो-जो बातें तुम्हारे उन्नति-पथ मे काँटा हो उनकी जड खोदकर फेक दो। कुछ मत डरो। जब तक सौ दो सौ मनुष्य बदनाम न होगे, जात से बाहर न निकाले जायेगे, दरिद्र न हो जायेंगे, कैद न होगे वरच जान से न मारे जायेगे तव तक कोई देश भी न सुधरेगा।· बगाली, मरठ्ठा, पजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मी, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकडो। ·· परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश मे अपनी भाषा मे उन्नति करो।"

४४–'हिन्दी-साहित्य', पृ० २७८

45– "From the middle of the sixteenth century to the present day all that was great and good in industani literature was bound by a chain of custom or of inpulse or of both to the ever recurring themes of Rama and Krishna."

—The Mod.rn Vernacular Literature of Hindustan, Chapter III

46– Willing suspension of disbelief for the moment which constitutes poetic faith.

—कालरिज : बायोग्राफिया लिटरेरिया, अध्याय १२, (२)

४७–'चन्द्रकान्ता', दूसरा हिस्सा, तेरहवाँ बयान

४८–ऐंगल्स ने भूत, जादू आदि के विश्वास को आदिम–मूर्खता (Primitive nonsense) मानकर लिखा है :

"The history of science is the history of the gradual clearing away of this nonsense or of its replacement by fresh but already less absurd nonsense"

—लिटरेचर ऐंड आर्ट, पृ० ६

४९—नाटकोपन्यास, पाक्षिक पुस्तिका

हिन्दी भाषा मे नाटक और उपन्यास का सम्पूर्ण रूप से अभाव है विशेष करके अंग्रेजी और बगभाषा के अनुसार उत्तम नाटक आज तक बहुत ही कम प्रकाशित हुए है और उपन्यासो के तो अभी तादृश स्वाद से भी हमारे देश बाधवगण वचित है इस हेतु ऐसा विचार किया है कि एक पाक्षिक पुस्तिका २० पृष्ठ की हिन्दी भाषा की पूर्वोक्त नाम की प्रचलित हो और उसमे केवल मनोहर उपन्यास और नाटक रहे, अनेक कृतविद्यो ने बंगला और अग्रेजी से अच्छे-अच्छे नाटको और उपन्यासो (नावेल्स) का अनुवाद करना भी स्वीकार किया है, इसका मूल्य ५) साल होगा और १०० ग्राहक नियत हुए बिना प्रकाश न होगी।

—राधाकृष्ण दास
बाबू गोपालचन्द्र की कोठी, चौखम्भा

५०—'उपन्यास-लहरी' का प्रकाशन मई १८९४ मे हुआ। उसका विज्ञापन 'चन्द्रकान्ता' (१८९५ वि० स०) मे इस प्रकार दिया गया है—

"भारतवर्ष मे ऐसा कोई भी हिन्दी का पत्र नही है जिसमे केवल नवीन उपन्यास ही लिखे जाते हों, भविष्य में चाहे ऐसा कोई पत्र निकले मगर, 'उपन्यास-लहरी' इस ढग का पहिला पत्र गिना जायेगा।"

५१—'नया साहित्य : नये प्रश्न', पृ० २५६

५२—जो नारी सोई पुरुष, या मे कछु न विभक्ति ॥
नारी नर अरधग को, सांचेहि स्वामिनी होय ॥

५३—'हिन्दी प्रदीप', जुलाई, १८५१

५४—देखिये 'नीलदेवी' (१८८१) की भूमिका

५५—इस अध्याय के अवलोकन से आलोचकों की निम्न धारणा गलत सिद्ध होती है।

"देश के सामाजिक और राजनैतिक जीवन मे जो परिवर्तन हो रहे थे उनका स्पष्ट चित्र उन कृतियों (आलोच्य उपन्यास) मे नही है।"

—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी . 'आधुनिक कथासाहित्य', पृ० ४७

"इस युग के लेखक को जीवन से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नही था। वे रहस्य और जादू, प्रेम और रोमास की दुनियाँ बनाते थे।"

—डा० इन्द्रनाथ मदान 'प्रेमचन्द · एक विवेचन', पृ० १५४

४

पूर्व इतिहास

हिन्दी-उपन्यास के इतिहास का वास्तविक आरम्भ १८८१ के उत्तरार्ध से होता है, जब लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' प्रकाशित हुआ और राधाकृष्णदास का 'नि.सहाय हिन्दू' लिखा गया ।[1] इनसे पूर्व प्रकाशित कोई ऐसी मौलिक रचना नही मिलती है जो पूरी हो और आधुनिक उपन्यास की सभी आवश्यकताओ की पूर्ति करती हो । फिर भी अनुवाद, अनुकरण और रूपान्तर के रूप में कई ऐसी रचनाए निकली जो उपन्यास है अथवा उसके अत्यन्त निकट हैं । इनके अतिरिक्त कुछ मौलिक अधूरे उपन्यास और उपन्यास के ढग की बड़ी कहानियो का प्रकाशन हुआ । कुछ मौलिक ग्रन्थ प्रणीत होकर वर्षों तक अप्रकाशित रहे, जो उपन्यास–सम्बन्धी तत्कालीन और वर्तमान धारणा के अनुकूल है । अधिकाश रचनाओ को 'इतिहास', 'कहानी', 'कथा', 'वृत्तान्त' आदि की संज्ञा दी गई है, शायद इसलिए उनके वास्तविक रूप को पहचानने मे भूल की गई है या उन पर ध्यान नही दिया गया है । उनमे 'सैण्डफोर्ड और मरटन की कहानी' (१८५५) को कालक्रम की दृष्टि से प्रथम स्थान प्राप्त है । 'सैण्डफोर्ड और मरटन की कहानी' और 'परीक्षागुरु' के बीच का काल हिन्दी-उपन्यास का पूर्व इतिहास है और उस काल के कथा-कार हिन्दी-उपन्यासकारो के अग्रणी है ।

उपदेशप्रद अंग्रेजी उपन्यास

यह एक मनोरंजक बात है कि पूर्व इतिहास का आरम्भ अनुवाद से नही बल्कि अनुवाद के अनुवाद से होता है । अठारहवीं शताब्दी मे अंग्रेज

उपन्यासकार थामस डे ने 'सैण्डफोर्ड ऐण्ड मरटन' नामक शिक्षाप्रद उपन्यास लिखा था। पश्चिमोत्तर प्रदेश के विद्यालय-निरीक्षक प० वशीधर ने उसका अनुवाद उर्दू से 'सैण्डफोर्ड और मरटन की कहानी' (१८५५) के नाम से किया। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने पहले उर्दू और फिर हिन्दी अनुवाद किया था। सम्भव है पं० वशीधर का अनुवाद सितारेहिन्द के ही उर्दू अनुवाद पर आधारित हो। सितारेहिन्द का हिन्दी अनुवाद इसी नाम से १८७७ मे मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से निकला। उपन्यास मे एक गरीब और अमीर के लडके की चारित्रिक विभिन्नता दिखाकर शिक्षा दी गई है। सैण्डफोर्ड का लडका हारी परिश्रमी, शिष्ट और उपकारी है। इसके विपरीत मरटन का लडका तामी लाड़-प्यार मे बिगडकर बारलो पादरी की सगति से सुधरता है। मूलकथा के साथ छोटी-छोटी नीतिकथाएँ सम्बद्ध है। अग्रेजी के दूसरे लोकप्रिय उपन्यास-लेखक डिफो का विश्व-प्रसिद्ध भ्रमण-उपन्यास काशीस्थ पाठशाला के मुख्य हिन्दी पण्डित बद्रीलाल द्वारा बगला से अनूदित होकर 'राबिन्सन कूसो का इतिहास' नाम से १८६० मे प्रकाशित हुआ। अनुवाद केवल प्रथम भाग का और स्वतन्त्रता के साथ किया गया है लेकिन टाइप मोटा और आकार बड़ा है। दोनो अनूदिन उपन्यासो की भाषा सुबोध है।

इनसे पाठ्य पुस्तक की आवश्यकना पूरी हुई। ये हिन्दी मे उपन्यास का अभाव पूरा करने नही आए थे। इस दृष्टि से डा० जॉनसन के दार्शनिक उपन्यास 'रासेलास' के दो अनुवाद हुए, जो 'सारसुधानिधि' (मई १८७९) और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका' (एप्रिल १८८०) मे निकले। पहला अनुवाद सम्भवतः प० केशवराम भट्ट का है और दूसरा बाबू दीपनारायण सिंह वर्मा का, जो शायद पुस्तकाकार प्रकाशित नही हुआ। उपन्यास हमे नील नदी के किनारे अबसीनिया मे ले जाता है। उसका नायक एक राजकुमार है, जो इस ससार में दुख ही दुख देखता है और सुख की खोज मे अपनी बहन के साथ भटकता है। कहानी रोमानी होते हुए भी दार्शनिक चर्चा के कारण नीरस है।

मुंशी शिवनारायण द्वारा अग्रेजी से अनूदित 'विद्याशक्ति रस्ति' (१८६१) अध्यायो मे विभाजित ९२ पृष्ठो की रोचक रूपककथा है। यह किसी उपन्यास का अनुवाद हो या न हो, रूप-रंग मे उसके समान अवश्य है। इसमे अनित्य-नगर के धनाकाँक्षी, प्रसिद्धकर्ता और बुद्धिवान नामक चार भाइयो की कहानी

सुनाई गई है। अन्त मे रूपक की व्याख्या की गई है, जैसे, अनित्यनगर क्या है यह संसार है। वातावरण और पात्र भारतीय हैं। शैली सरल और वर्णनात्मक है। पात्र प्रतीकात्मक होते हुए भी व्यक्तित्व-सम्पन्न है।

धार्मिक उपन्यास

उपन्यास के पूर्व और उदयकाल मे ईसाई मत के प्रचार के लिए छोटी-बडी कथाएँ लिखी गईं। इनके लेखक साहित्यिक रुचि के नही थे, अतः इनमे साहित्यिक गुण का अभाव था। कहानी उद्देश्य के सामने दब जाती थी, परिस्थितियो की योजना धार्मिक सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए की जाती थी और पात्र वाद-विवाद करने के लिए बनाए जाते थे पर कहानी कहने का ढंग सीधा-सादा होता था, प्रसग घरेलू और घटनाहीन होते थे और पात्र बहुधा भारत के निम्नवर्ग से लिए जाते थे। धार्मिक विषय को लौकिक और साहित्यिक स्तर पर लाकर हृदयग्राह्य बनाने का यह सूक्ष्म प्रयास था। मसीही पादरियो ने भारतीय जनता को अच्छी तरह समझने और उसकी रुचि के अनुकूल सामग्री देने मे बडी सावधानी से काम लिया। 'फूलमणि और करुणा का वृत्तांत' (१८६५), 'विश्वासविजय' (१८८२), 'जयसिंह की कथा' (१८८४) जैसी लम्बी कथाओ को धार्मिक उपन्यास की कोटि मे रखा जा सकता है।

किसी अज्ञात लेखक द्वारा उर्दू से अनूदित 'फूलमणि और करुणा का वृत्तांत' बँगला का पहला उपन्यास माना जाता है। उसकी लेखिका हन्ना कैथेराइन मूलेन्स नाम की एक अंग्रेज महिला थीं और उसका प्रकाशन १८५२ में हुआ था। उसकी कहानी आत्मचरित शैली मे कही गई है और चरित्रांकन ऐसा किया गया है मानो किसी कलाकार ने कूची के हलके स्पर्श से मोहक चित्र उतार दिया हो। एक मजिस्ट्रेट की पत्नी साधारण लोगों के जीवन की साधारण बातो का वर्णन करती है। फूलमणि का पति एक भला चपरासी है, करुणा का पति शराबी और दुराचारी। दोनो स्त्रियाँ अपने-अपने पति के अनुरूप ही हैं। एक शिष्ट और सुशील है, दूसरी पति को गाली देने वाली कर्कशा। पति को सुधारने के लिए करुणा को ईसाई बनने का उपदेश दिया गया है। भाषा विशुद्ध खड़ीबोली होकर भी ब्रजभाषा और बंगला से अछूती नही है। अंग्रेजी से अनुवादित १६२ पृष्ठो का 'विश्वासविजय' केवल इसलिये उल्लेखनीय है कि इसके दो स्त्री-पात्र सौदामिनी और कामिनी किशोरीलाल

गोस्वामी की 'चपला' में भी हैं ।

मनोहर कथाएं

उपदेशात्मक कथासाहित्य के समानान्तर ही मनोहर कथाओ का विकास हुआ । इनका उद्देश्य नीति और धर्म की शिक्षा देना नही बल्कि विशुद्ध मनोरजन करना था । इन्होने उन पाठको की मांग पूरी की औरव ढाई जो शिक्षित होकर बड़ी-बड़ी कथात्मक पुस्तकें पढने के आदी हो रहे थे । इनमें प्रेम और साहसिकता की प्रधानता रहती थी, कथानक जटिल और सुखात होता था और दैनिक जीवन की घटनाओ के बदले प्रेमी-प्रेमिकाओं के सुख-दुख वर्णित थे । पात्र उच्च वर्ग के होते थे । उनमे वीर राजकुमार और सुन्दर राजकुमारी आकर्षण-केन्द्र थे ।

उर्दू कथाकार रज्जब अली 'सरूर' ने उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे 'फिसान-इ-अजाएब'की रचना की थी । उनके तीन अनुवाद हुए· शभूलाल का 'फेसाने अजायब यानी किस्सा जान आलम का '(१८६६), प्राणकिशन का 'फिसाना अजायब अर्थात् मोहनी चरित्र, (१८६९) तथा श्री भट्ट का 'किस्सा फिसाने अजायब अर्थात् आश्चर्य इतिहास' । प्रथम अनुवाद की भाषा फारसी मिश्रित, दूसरे की बोधगम्य तथा तीसरे की नागरी लिपि में फारसी है । प्राणकिशन का अनुवाद सर्वोत्तम है । कहानी और उसकी शैली पुरानी रीति की है लेकिन उसमे नवीनता की झलक है । विनोदशकर व्यास के मत से यह उर्दू का प्रथम मौलिक उपन्यास है ।[2] सजीव और मोहक वर्णन उसकी सबसे बड़ी विशेषता है । लखनऊ के वातावरण का चित्र सच्चा उतरा है । जादू, तिलस्म और प्रेम के उपादान घुले मिले हैं । शाहजादा जान आलम एक तोते के मुँह से अंजुमनआरा के रूप की प्रशसा सुनकर उसकी खोज मे निकलता है और उसे जादूगर के फदे से छुड़ा लाता है ।

मूलतः अरबी मे लिखित और संसार मे प्रसिद्ध 'अलिफलैला' के बगला अनुवाद का अनुवाद प० बद्रीलाल द्वारा किया गया और १८८१ में 'सहस्रजनी सक्षेप' के नाम से प्रकाशित हुआ । पूरा अनुवाद 'सहस्र रजनी चरित्र' नाम से नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित हुआ । इसमें करमकल्ले के पत्ते की तरह एक कहानी मे दूसरी कहानी छिपी है । बादशाह शहरयार को शहरजाद एक हजार रातों तक कहानियाँ सुनाती है । हर रात कहानी अधूरी रह जाती है, जो दूसरी रात पूरी की जाती है । प्रेम और जादू के

ताने-बाने से बुनी हुई घटनाएँ मन को बरबस उलझा देती हैं। 'अलिफलैला' को पडित बालकृष्ण भट्ट ने उपन्यास की कोटि मे रखते हुए उसकी बदिश की सराहना की थी।[3] और इडियन प्रेस से १९०९ मे प्रकाशित उसका अनुवाद 'बाल-आख्योपन्यास' कहा गया था। आधुनिक अर्थ मे यह उपन्यास नही कहा जा सकता है पर कथाशिल्प और यथार्थ वर्णन मे यह किसी भी उपन्यास से टक्कर ले सकता है। 'फिसाना अजाएब' और 'अलिफलैला' की मूल विशेषता मनोरजकता है, जिसकी खोज उपन्यास मे सर्वप्रथम की जाती है। ये हमे आनन्दित भले ही कर दे, संतुष्ट नहीं कर सकते, उत्तेजना भले ही दें, प्रेरणा नही देते, हँसा भले ही दें, रुला नही सकते।

फारसी-उर्दू की घटनामूलक कथाओ के अतिरिक्त सस्कृत से भावमूलक कथाएँ आई। शालग्राम मिश्र लिखित 'मालती माधव की कथा' (१८७५) भवभूति के इसी नाम के नाटक का कथात्मक रूपान्तर है। एक पत्र[4] ने इसे उपन्यास कहना पसद नही किया पर दूसरे[5] ने इसका स्वागत उपन्यास का नमूना मानकर किया। यदि इसे उपन्यास माना जाए तो रघुवश और रामायण के गद्य रूपान्तर को भी उपन्यास मानना चाहिए। इसमे अध्याय नही है, विराम-चिह्न भी विरल है; जैसे पूरी कथा दो-चार वाक्यो की कथा हो। मालती और माधव के मिलन और विरह से भरी सुकुमार प्रेमकहानी हृदय को छू लेती है। प्राकृतिक दृश्यों और मानवीय भावो का वर्णन बहुत सुन्दर है। विषय-वस्तु उपन्यास के योग्य है। शैली मे कही सादगी है :

शीतल कमल के पत्तों की बनी जल से सोची हुई सेज पर भी बेपलक लगाए कई रात्रि बिता देती है देवयोग से कही आँख लगी तो एकाएक चौक पडती है सब देह थरथराने लगती मुख से लम्बी साँस भरती छाती मे धडका होने से अधिक काँपते कुचो को हाथ से छिपा लेती है।

कही अत्यत कृत्रिमता है, जो कथा मे व्याघात उत्पन्न करती है :

मालती तो चित्र की लिखी सी प्रेम रस पगी सी चित्र मे ठगी सी काम रंग रगी सी भीति मे लगी सी मोहजाल मे फँसी सी अज्ञान कुन्ड धँसी सी प्रेम-डोर मे बँधी सी शोक सागर में पड़ी सी चिन्ता गडी सी काठ की पुतली सी बेचैन हुई बैठी थी।

बाबू गदाधरसिंह ने बाणभट्ट की 'कादम्बरी' को उपन्यास मानकर

उसका अनुवाद बंगला से किया। यह 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मे १८७३ से क्रमश छपकर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' मे १८७९ मे पूर्ण हुआ और उसी वर्ष पुस्तक-रूप मे प्रकाशित हुआ। अनुवादक ने उसे 'प्राचीन सस्कृत उपन्यास' कहा है। अनुवाद में केवल कथा का अश है, वर्णन का अधिकाश छोड दिया गया है। भाषा संस्कृतनिष्ठ और शैली सरल है। अनुवाद सक्षिप्त नही होता तो भी उसे उपन्यास नहीं माना जाता। जब मूल कादम्बरी को आधुनिक उपन्यास की कोटि मे नही रखा जाता है तब उसका अनुवाद कैसे रखा जायगा ? तत्कालीन लेखक इसे उपन्यास मानते थे इसलिए यह उल्लेख योग्य है।

महिलोपयोगी कथासाहित्य

नाटक, निवध आदि खासकर पुरुषो के पढने के लिए थे। नई शिक्षा के प्रचलन से स्त्री-शिक्षा का प्रचार होने लगा और ऐसी पुस्तको की आवश्यकता हुई जिनसे स्त्रियो को सरस ढग से शिक्षा दी जाय। फलत. एक विशिष्ट प्रकार के कथासाहित्य की रचना होने लगी। इसे गार्हस्थ उपन्यास का पूर्व रूप कहा जा सकता है। इसमे उपन्यास के अनेक उपकरण हैं : सीधा-सादा कथानक, मानव-प्रकृति की परख, यथार्थ चित्रण और सहज सरल गद्य-शैली। इसमे नारी का नया रूप और उसके प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण मिलता है। उसकी निपट मूर्खता को निर्दोष भोलापन मानकर उसका गुण-गान नही किया गया है। उसे शिक्षित और सभ्य बनाने पर जोर दिया गया है। यहाँ कहानी परियो के देश से ठोस धरती पर उतर आई है। महिलोपयोगी साहित्य के इस लोकप्रिय अग मे आधुनिकता का आभास है।

मेले और तमाशे मे भी नागरी की जयपताका उडाने वाले पण्डित गौरीदत्त ने 'देवरानी जेठानी की कहानी' (१८७०) लिखकर कथासाहित्य मे नूतन क्षितिज का उद्घाटन किया। उन्होने पहली बार घरेलू भाषा मे घरेलू जीवन के सुख दुख की कहानी लिखी। एक बनिया के दो लडके विवाह के बाद भिन्न हो जाते हैं, इस घटनाहीन प्रसग को लेकर उन्होने नगर के मध्यवर्गीय परिवार का यथाथ चित्र अकित किया है। प्रतिदिन की परिस्थि-तियो, परिचित वस्तुओ और साधारण व्यक्तियो मे भी उन्होने अद्भुत आकर्षण भर दिया। उनकी चक्की चलाती और गोबर पाथती हुई बहुएँ अपनी क्षुद्रता मे महानता और क्रियाशीलता मे सुन्दरता लेकर उपस्थित है। उन्होने जेठानी का द्वेष, देवरानी की ममता, नन्द-भावज का स्नेह और

पति-पत्नी का प्रेम स्पष्ट और अकृत्रिम रूप मे व्यक्त किया है, जिससे पारिवारिक जगत के मानवीय सम्बन्धो के साथ ही मानवीय भावो पर प्रकाश पडता है। ससुराल से ननद का भावज के सन्देश भेजना कि "माँ से कहना कि मुझे दो चार महीने को बुला ले" किसी कविता स कम मधुर है ? जो बगला के गार्हस्थ उपन्यासो को प्रशसा करने मे थकावट महसूस नही करते उन्हे सुखद गृह-जीवन का यह दृश्य देखना चाहिए, जिसमे एक साथ ही दाम्पत्य, वात्सल्य और शैशव की झलक है।

रात को दोनो स्त्री-पुरुष उसे खिलाते और बडे मगन होते जब छोटेलाल कहता आओ हमारे पास आओ वह चट चला आता और जब उसकी माँ कहती आओ हमारे पास आओ हम चीजी देंगे न आता तब दोनो हँस पड़ते कभी माँ की खाट पै से बाप की खाट पै चला जाता और कभी रोके फिर चला आता।

पडितजी को पुरुष से स्त्री के स्वभाव की पहचान ज्यादा है। उनके पुरुष सपाट और स्त्रियाँ सजीव है। जेठानी का चित्रण स्वाभाविक और विश्वसनीय है। वह चर्खा कातती जाती है और देवरानी को सुना-सुना कर कहती जाती है, "पीसे कोई और खावे कोई"। वह ठोकर खाती है घर के चौखट से और कोसती है अपनी देवरानी को। वह कर्कशा और मूर्ख स्त्री का 'टाइप' है। देवरानी नवयुग की शिक्षित और चेतन स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। दोनो की चारित्रिक विभिन्नता अच्छी तरह उभरी है। जेठानी पति का कान भरती रहती है, देवरानी पति को नागरी का अखबार पढ़कर सुनाती है। देवरानी पढी-लिखी होने के कारण स्वयं सुख मे पलती है और पति को सुख पहुँचाती है। "दिल तो वहाँ नही मिलता जहाँ मर्द पढ़ा हो और स्त्री बेपढ़ी हो।"

पडितजी का दृष्टिकोण सीमित नही है। उन्होने स्त्रियो को शिशु-पालन, गृह-प्रबन्ध, पति-सेवा आदि को शिक्षा देने के लिए ही पुस्तक नही लिखी है। उन्होने स्त्री-शिक्षा, नागरी-प्रचार, वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध मे अपने विचार कहानी के माध्यम से व्यक्त किये है। उनके विचार नवीन और सुधरे हुए हैं। वे नारी जाति के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए उसे समाज मे ऊँचा स्थान देना चाहते हैं। वे परम्परा से विमुख होकर प्रगति का स्वागत करते हैं। उन्होने उन्नीसवी सदी के टूटते हुए संयुक्त परिवार का जो रूप

उपस्थित किया है उसमे कल्पना या आदर्श का रग नही है।

वे पारिवारिक यथार्थ के जन्मदाता है। उनके सामने यथार्थवादी कथासाहित्य की कोई परम्परा नही थी। उन्होने यह कहानी लिखकर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है और गार्हस्थ उपन्यासो को प्रत्याशित किया है। प्रतिभा इसी तरह प्रत्याशित करती है। पुस्तक मे उपन्यास के सभी अणु हैं केवल कहानी कहने की प्रणाली पुरानी है। विभाजन अध्यायो या परिच्छेदों मे नही किया गया है, बीच-बीच मे मुख्य कार्यसूचक शीर्षक कोष्ठक मे दे दिये गये हैं। उन दिनो इस प्रकार का शीर्षक देना भी एक नया प्रयोग था। कथा-विन्यास मे थोडा परिवर्तन कर देने से यह कहानी हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास बन जायेगी। इसमे असम्भव और अद्भुत घटनाओ का जाल फाडकर फेंक दिया गया है और दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं को मनोरम कथानक के रूप में गूँथा गया है, जो उपन्यास का लक्ष्य होता है। लिखित शब्दो मे बोलचाल के शब्दो की अनुरूपता वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने मे सहायक हुई है। बातचीत कथा को आगे बढाती है और पात्रो मे जीवन डालती है।

मुशी ईश्वरीप्रसाद मुदर्रिस और मुशा कल्याण राय का 'वामा शिक्षक' पूर्वलिखित कथासाहित्य मे उपन्यास के सर्वाधिक समीप है। इसकी रचना १८७२ मे हुई, प्रकाशन १८८३ मे। 'देवरानी जेठानी की कहानी' की अपेक्षा इसका चित्रपट बडा है। इसमे मध्यवर्गीय परिवार एव समकालीन समाज की समस्याओ पर प्रकाश डाला गया है। देवरानी-जेठानी का कलह और पिता की मृत्यु के बाद भाइयो का आपसी बँटवारा सम्मिलित परिवार-प्रथा के विघटन का सूचक है। बाल-विवाह के दुष्परिणाम और विधवाओ की दुर्दशा दिखाकर कुरीतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। सामाजिक रोगों के शमन के लिए स्वावलम्बन और स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। लेखको के आदर्श की सजीव प्रतिमा बडे घर की बेटी गगा है। वह उर्दू पढकर हिन्दी से प्रेम रखती है और शिक्षित होकर गृहकार्य करती है। ऐसी नवयुवती से विवाह कर आधुनिक आलोचक भी नही पछतायेंगे। बाल-विधवा ज्ञानो रो-रोकर जीवन नही बिताती बल्कि घर पर लड़कियों को पढाकर अपनी जीविका का निर्वाह करती है। नई नारी की यह कल्पना असाधारण होकर भी असम्भव नही है। लेखक का उद्देश्य उदाहरण देकर शिक्षा देना है इसलिए उन्होने अपने पात्रो को या तो बिल्कुल

उजले रग मे रग दिया है या बिल्कुल काले रग मे । गगा की चचेरी बहन उससे पूर्णत. भिन्न है, "लाज उसमे नाम को भी नही था कभी घूँघट काढ लिया कभी मुँह उघाड दिया……" । गगा मे मध्यवर्गीय शिष्टता और शालीनता है, उसके पति मे मध्यवर्गीय मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना । जब गगा उसे कहती है, "क्या दूकान करने मे कुछ डर है", वह झट भोले शिशु की तरह जवाब देता है, "लो डर नही है लोग कहेगे कि पढ-लिखकर दूकान करते है ।" लेखक पात्रो के मन मे प्रवेश करने का प्रयास करता है ।

पश्चिम के सम्पर्क से प्राचीन और नवीन विचारो मे जो सघर्ष हुआ उसकी छाप इस पुस्तक मे स्पष्ट है । एक ओर लेखक कहते हैं, "स्त्री मर्द के पैर की जूती है एक टूट गई दूसरी आ जायेगी", दूसरी ओर उनकी इच्छा है कि अग्रेज स्त्रियो की तरह हिन्दू लड़कियो को पढ़-लिखकर पति के घर-बाहर के काम मे सहायता करनी चाहिए । लेखक को जो कुछ कहना है वह स्वय कहते हैं और पात्रो से भी कहवाते है । कथाकार द्वारा मत प्रकट करने की ये प्रत्यक्ष और परोक्ष विधियाँ पूर्व की कथाओ मे नही मिलती । स्त्री-शिक्षा के पक्ष और विपक्ष मे दो पात्रो के विचार व्यक्त कराये गये है । ग्रन्थकार का झुकाव नये विचार की ओर है । जमनादास समझते है कि लड़कियाँ पढेंगी तो "निडर और निलज्ज होकर जिसको चाहेगी चोरी छिपे चिट्ठी पत्री लिख भेजेगी" । उत्तर मे मथुरादास कहते है "क्या कुपढ़-स्त्रियों का बुरा चाल-चलन नही होता है" ।

पचतत्र और हितोपदेश की तरह उपदेश पद्य मे न होकर कहानी के बीच-बीच मे गद्य मे हैं । दृष्टात और पत्र द्वारा शिक्षा देने के अतिरिक्त लोककथा की भाँति अत में लडके-लड़कियो को कहानी से शिक्षा ग्रहण करने के लिए कहा गया है । मुहावरो और कहावतो से भरी 'प्रतिदिन की बोल-चाल की भाषा' ने कहानी मे रोचकता, वार्तालाप मे सरसता और उपदेश मे मधुरता प्रदान की है । 'नौकरी पेशह तो दर्जी की सूई है कभी गंजी मे कभी मखमल मे', छोटा बेटा खोटा पैसा समय पर काम देता है', ये वाक्य तुरत मर्म को छू लेते हैं । प्रेम-प्रसग के बिना भी सरस, सुन्दर कहानी कैसे लिखी जा सकती है, यह 'बामा शिक्षक' से आजकल के कथाकार सीख सकते है ।

इसमे दो भाइयो और चार बहनो की कहानियाँ बारी-बारी से सुनाई गई है । अध्याय के बदले 'गगा का हाल', 'राधा का हाल' आदि उपशीर्षको

से काम चलाया गया है। यदि विभाजन अध्यायो मे होता, कथानक मे वक्रता और अन्विति होती, तो 'बामा शिक्षक' पुराने उपन्यास का बढिया नमूना होता। इसके विपक्ष मे सबसे बडी बात यह है कि यह पूर्णत: मौलिक नही है। इसकी रचना पं० गौरीदत्त की 'देवरानी जेठानी की कहानी' और उर्दू उपन्यासकार नजीर अहमद के 'मिरातुल अरूस' के आधार पर हुई है। 'देवरानी जेठानी की कहानी' की भाँति इसमे कथाकेन्द्र मेरठ है, देवरानी-जेठानी के कलह और उससे सम्मिलित परिवार मे होने वाली फूट के प्रसग है तथा 'ज्ञानो' नामक एक-एक स्त्री-पात्र है। कथानक और चरित्र-चित्रण मे 'मिरातुल अरूस' का प्रभाव स्पष्ट है। जिस तरह 'मिरातुल अरूस' मे पहले अकबरी और तब असगरी का हाल सुनाया गया है, उसी तरह 'बामा शिक्षक' मे स्वतत्र कथाएँ क्रम से रखी गई है, यद्यपि प्रथम की कथाओ मे एकसूत्रता है। गगा-सीताराम 'मिरातुल अरूस' के असगरी-मुहम्मद कामिल से मिलते-जुलते है। मुदर्रिस की रचना मे जो विचार की प्रगतिशीलता और कहानी की कला है वह नजीर अहमद की रचना मे नही है।

जिनका हृदय प्रेम का खिलौना है उनके ही हाथो मे प्रेमकथा की पुस्तक देना उचित नही समझा गया, इसलिए 'देवरानी जेठानी की कहानी' और 'बामा शिक्षक' मे रस का अभाव है। उर्दू से अनूदित 'मनसुखी और सुन्दर सिह का वृत्तात (१८७६) ८० पृष्ठो की एक ऐसी रचना है जिसमें कोमल प्रेम की करुण कहानी सामाजिक व्यवहार की भूमि पर लिखी गई। गाँव के अहीर की लडकी मनसुखा अपने चाचा के आश्रय मे पलती है। उसका पति घरजमाई बनकर रहना चाहता है इसलिए चाचा द्वारा निकाल दिया जाता है। उसका दुख दूना हो जाता है। एक बार मेले मे अपने बिछुड़े हुए पति से मिलने का अवसर आता है लेकिन वह इस ससार से विदा हो जाती है। उसकी याद मे उसका पति भी मर जाता है। विषय मे लोक-कथा की माधुरी, शैली मे व्यजना-शक्ति और वार्तालाप मे स्वाभाविकता है, जो पात्रो को प्राणमय बनाती है।

पार्वती ने कहा जीजी ! तेरे व्याह को तो पाच बरस होगे तू भी पन्द्रह बरस की हुई गौना कब होगा उसने उत्तर दिया अबके बैसाख मे बतावें है फिर पार्वती ने कहा जीजी तेरा बनड़ा तो बडा सुन्दर है यह बात सुनकर मनसुखी मुसकराई और कहने लगी हाँ जीजी मैंने भी कई बेर छिप लुक कर देखा था मुझे भी उसकी सूरत भली लगी थी।

उन्नीसवी शताब्दी के विलक्षण विद्वान, विचारक, वक्ता और उत्तर भारत के महान सांस्कृतिक नेता प० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने धर्मग्रथों और जीवन चरित के अतिरिक्त कल्पनाप्रसूत साहित्य की रचना की। उन्होंने इस नये माध्यम का उपयोग 'भारतखण्ड की स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा' देने के लिए किया। इसके लिए इससे अधिक उपयुक्त कथा क्या हो सकती थी कि एक शिक्षित स्त्री का चरित्र घर और बाहर मे दिखाया जाय? १८७७ मे 'भाग्यवती' लिखकर उन्होने ऐसा ही किया। भाग्यवती ससुराल आकर अपनी बोली, स्वभाव, और क्रिया से अपने सम्बन्धियो और पडोसियो का मन मोह लेती है। उसे एक दिन बिना किसी अपराध के 'नगी, भूखी, निर्धन और निराश्रय' करके घर से निकाल दिया जाता है। पति भी निर्मम होकर कहता है, 'जहाँ उसकी इच्छा हो अकेली रहा करे'। जब उसके 'खेलने खाने के दिन' हैं तब उसे अपने पति और परिवार से अलग अपने दुख-सुख के साथ रहना पडता है। वह न तो मैके सदेश भेजती है, न ससुराल की शिकायत करती है; घरेलू उद्योग-धन्धे और खेतीबारी से अपना निर्वाह करती है। जब उसका ससुर उसे बुलाने का विचार करता है तब वह आती है, तुरत तीर्थयात्रा के लिए निकलती है और राह मे एक बार फिर अपने संबधियों से बिछुड़ जाती है। उसे जीवन मे पहली बार एक ही दिन मे भूख-प्यास सहने, पैदल चलने और लडके का बोझ उठाने का कड़वा अनुभव होता है। उसकी दुर्दशा देखकर विक्टर ह्यूगो की ये दो पक्तियाँ याद आ जाती है, 'जिसने पुरुष का-दुख देखा उसने कुछ नही देखा, उसे स्त्री का दुख देखना चाहिए।'[6]

उस पर विपत्तियाँ आती है लेकिन वह धैर्य नही खोती, पराजय स्वीकार नही करती, घुल-मिलकर मरना नही जानती। अपनी बुद्धि के बल पर वह परिस्थितियो का सामना करती है, खतरो से खेलती है और उन पर विजय पाती है। पतिगृह छोडने के बाद वह प्रेमचंद की सुमन ('सेवासदन') की तरह वेश्यालय की ओर पैर नही बढाती, न ही प्रतापनारायण श्रीवास्तव की कुमुद ('विदा') की तरह पितागृह की ओर मुह करती है। उन्नीसवी सदी की यह नई नारी अपनी हथेली मे अपना भाग्य लिए नये दौर की देहली पर खडी है। वह पुराने सस्कारो के जर्जर बन्धन को एक झटके मे तोड डालती है और स्वय अपने इतिहास का निर्माण करती है।

उसके व्यक्तित्व के चार रूप है : व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और सार्वभौमिक। वह व्यक्ति होकर भी समाज के घेरे मे रहती है। वह

व्यवहार-कुशल गृहस्वामिनी और आदर्श समाजसेविका है। वह व्यक्ति, परिवार और समाज का सुधार और कल्याण करती है। मनुष्य के लिए उसके पास स्नेह-सद्भावना के सिवा और कुछ नही है। उसमे गंभीरता है तो चतुरता भी; स्वाभिमान, कर्मठता, सहनशीलता और क्षमा है तो लज्जा, ममता, भावुकता और कोमलता भी। वह जितनी दूर गई है उतनी दूर जाने की कल्पना कोई स्त्री कर सकती है। किसी भी देश और युग की स्त्रियाँ उसके साथ एकात्म बोध कर सकती है। यही कारण है कि एकांत में, परिवार में, समाज मे, परदेश मे जहाँ कही वह दिखाई पडती है, हमे आकृष्ट कर लेती है। हमारे हृदय पर उसका व्यक्तित्व उसी तरह अकित हो जाता है जिस तरह उसके रुमाल पर उसकी कविता अकित है।

भाग्यवती के चरित्र-चित्रण मे लेखक की रचनात्मक प्रतिभा का ही नही, नारी के प्रति उनके उस स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण का भी परिचय मिलता है जो केवल प्रेमचद मे मिलेगा। नारी की पराधीनता और परवशता उनकी मूल प्रेरणा है। उसके लिए उनके हृदय मे अथाह करुणा और असीम समवेदना है। उनकी भाग्यवती युग युग की पददलित, उपेक्षित, लाछित और अपमानित स्त्रीजाति की प्रतिनिधि है। वह अपने ससुर को जाने के समय पत्र लिखती हे, "मेरा क्या है मैं तो घड़े की मछली हूँ, रक्खोगे रहूँगी निकाल दोगे चली जाऊँगी, पर एक स्मृति रखना जहाँ जाऊँगी आप ही के यहाँ की बहू कहलाऊँगी।" उसका ससुर अपने अत्याचार को भूल जाता है लेकिन वह अपने अपमान को कभी नही भूलती और ससुराल लौटने पर कहती है, "मैं तो आज लो यही माने हुई बैठी हूँ कि पराई बेटी का किसी के घर मे क्या मान होता हे जब चाहा गाय भैस की नाईं कान पकड के बाहर कर दी।" फिल्लौरीजी नारी को पशु और दासी के रूप मे देखना चाहते। उसके प्रति किए गए अन्याय को वे बहुत बड़ा सामाजिक अन्याय मानते हैं। उनकी दृष्टि में नारी को पुरुष के समान जीने का अधिकार है। तभी तो उनकी भाग्यवती सम्मान के साथ घर से जाती है, अलग होकर रहती है और लौटती है। वह कभी अपना सिर नही झुकाती है। वे नारी को अबला नही मानते। उनके सौन्दर्य और प्रेम से उसके त्याग और साहस की ओर वे अधिक आकृष्ट हैं। घर में भाग्यवती के त्याग का और बाहर मे साहस का पता चलता है। यदि ये दो गुण स्त्री-पात्रो को घर और बाहर मे रखकर दिखाये जाते तो उतनी प्रभावोत्पादकता नही आती।

श्रद्धारामजी ने दो अमर स्त्री-पात्र दिए हैं, भाग्यवती और लडाकी। भाग्यवती हिन्दी-उपन्यास की पहली सकारात्मक नायिका है। लड़ाकी एक 'टाइप' है, जिसे देखकर कर्कशा पडोसिन की याद आ जाती है। भाग्यवती उसे प्रणाम करती है तो मजाक समझ बैठती है। भाग्यवती सफाई देती है कि वह उसकी सास और माँ के समान है तो वह गाली मान लेती है और आशीर्वादो की झडी लगा देती है :

'क्या री! तू मुझे चतुराई से अपने बाप और समुरे की लुगाई बनाती है? हत्तेरे ससुरे की दाढी जलाऊँ, वह भडुआ कौन है जो मुझे अपनी लुगाई बनावे? उसकी लुगाई बन तू, अथवा उसकी बेटी देवकी। आने दे मेरे बडे बेटे को, मैं कैसा तेरा चूँड़ा और तेरे ससुरे की कजर दाढी फुंकवाती हूँ। यो बकती और फूट-फूटकर रोती हुई अपने घर के द्वार पर आ खडी हुई। जो कोई भला बुरा स्त्री-पुरुष उस गली मे से होकर जाता उसी को पकड के खडी हो जाती और रो-रो के कहती, देखो जी चुडैल भाग्यवती मुझे अपने सुसरे की लुगाई बनाती है।

यहाँ लडाकी के स्वर का आरोह-अवरोह सुनाई पडता है, उसके हाथ और चेहरे की भगिमा दीख पड़ती है, उसके रोने की आवाज गूँजती मालूम पडती है और इन सबसे उसके स्वभाव की सरलता झाँकती है। उसकी जीभ मे उपयुक्त शब्द भर दिए गए, इसलिए यह नाटकीय प्रत्यक्षता सम्भव हुई। आश्चर्य है स्त्रियो के स्वभाव, बोलचाल और व्यवहार को जानने, समझने और प्रकट करने मे लेखक कैसे समर्थ हुए! कहाँ ये पण्डितजी और कहाँ यह लडाकी! भाग्यवती की एक पडोसिन तो अविस्मरणीय है। वह पहले भाग्यवती की ननद से रुपये उधार लेकर और समय पर लौटा कर विश्वास प्राप्त कर लेती है, फिर एक दिन बहाने से गहना माँग कर ले जाती है और माँगने पर मुकर जारी है :

'अरी तू कौन है? और गहना कैसा? क्या तूने कुछ भाँग खाई है? बता तो सही, तेरा घर किस गली मे है? मैं तो कभी घर से बाहर भी नही निकली कि तुझे पहचान सकती? चल कोई मर्द घर मे आ निकलेगा तो तुझे नाहक शरमिन्दी होना पड़ेगा।

भाग्यवती जैसी स्त्रियो की संख्या कम होती है। उसकी पड़ोसिनो, जेठानियो, ननद और सास जैसी स्त्रियो की तो गणना ही नही की जा सकती

लूटते है। पंडितजी की विलक्षणता यह है कि उन्होने समाज की बुराइयो और कुरीतियो को न तो बढा-चढा कर दिखाया है और न उन पर परदा डाला है। उन्होने उनका वास्तविक स्वरूप दिखाने और उनका उचित विन्यास करने मे एक महान यथार्थवादी के सयम किन्तु निर्भीकता से काम लिया है। जैसा कि उन्होने स्वय बताया है, उनकी भावना वैसी ही है जैसी सोये बच्चे को जगाने वाले पिता की होती है। उन्होने विधवा के अवैध प्रेम और पुनर्विवाह की चर्चा करने का साहस किया। जिस समय ऐसी बात सुनकर 'धरती काँपती थी' उस समय भी सत्य, अप्रिय सत्य कहने मे उन्हे भय नही हुआ।

प्रेमचन्द का कहना था कि 'यथार्थवाद यदि हमारी आँख खोल देता है तो आदर्शवाद हमे उठाकर किसी मनोरम स्थान मे पहुँचा देता है।' फिल्लौरीजी ने अपने सतुलित दृष्टिकोण के कारण यथार्थ और आदर्श, लौकिकता और अलौकिकता, नीति और धर्म मे एक सामजस्य उपस्थित किया है। राजभक्त पडितो, घूसखोर पुलिस-वालो, लाभी ठगो, चालाक चोरो, ढोगी साधुओ और झगडालू स्त्रियो के बीच भाग्यवती का दर्शन होता है। घृणा-द्वेष, विरोध-वैमनस्य के वातावरण मे पारिवारिक जीवन के सुख-सतोष का आभास मिलता है।

पडितजी आशावादी है, निष्ठावान हैं। उन्हे मनुष्य की शक्ति और ईश्वर की भक्ति मे विश्वास है। वे धरती को स्वर्ग बनाने के पक्ष मे हैं। इससे यथार्थ की ओर उनका झुकाव मालूम पडता है। अग्रेजी राज्य की शांति मे भी जो सामाजिक और नैतिक सकट उपस्थित हुआ उसमे वे पथ-प्रदर्शन करते है। वे जर्जर पुरातन पर हलका व्यग्य और स्वस्थ नूतन का हार्दिक स्वागत करते है। सीधे उपदेश देने के बदले दृष्टातो द्वारा बताई गई गभीर बाते भी ग्रहण करने योग्य हो गई हैं। जीवन, मरण, मुक्ति आदि पर प्रकट किए गए विचार नवीन होकर भी शास्त्रीय आधार लिए हुए है। भाग्यवती के व्यस्त जीवन के माध्यम से कर्म का सदेश मिलता है। उनके उपदेश देने की कला अनूठी है। हम उन्हे सुनते है लेकिन देखते नही हैं। उनके नूतन सामाजिक दर्शन और नैतिक सिद्धात सरल होने के साथ-साथ मार्मिक है। 'विवाह उस समय करना चाहिए जब बालक आप ही स्त्री का भूखा हो', 'सिंह और शूरवीर वही है जो किसी दूसरे की मार से अपना पेट न भरें', ये चुभते वाक्य किसी सूक्ति से कम है ?

उनके उपन्यास मे हम उनके कथावाचक को पाते है। वे लिखते है, 'इस ग्रथ मे मैंने एक कल्पित कहानी ऐसी सरस रीति से लिखी है कि जिसके पढनेहारे का मन समाप्ति पर पहुँचाए बिना तृप्त न होवे।' आदि से अत तक कहानी की रोचकता का पहला कारण है कहानी कहने का सरल स्वाभाविक ढग। आरम्भ कितना सीधा-सादा है।, काशी नगर मे पडित उमादत्त जी के घर मे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम 'लालमणि' और एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम 'भाग्यवती' रक्खा।, कही भी कलात्मक योजना का प्रयास नही है। नारी प्रकृति के सौदर्य का वर्णन तो दूर रहा, उसका दर्शन भी दुर्लभ है। वर्णन, विश्लेषण और व्याख्या से बचकर कहानी अबाध गति मे आगे बढती जाती है। फलत: 'पढनेहार' का ध्यान घटनाओ के प्रवाह पर केन्द्रित रहता है। उसे सम्बोधित कर उसके ध्यान को कभी भग नही किया गया है। हास्य और करुणा धूप-छाँह की तरह अपना प्रभाव डालती चलती है। दो दृश्य अतिनाटकीय लगते हैं; जब भाग्यवती की जेठानी रात मे शहर से बाहर ठगी जाती है और निरावरण होकर घर लौटती है तथा जब भाग्यवती मैके मे बडी चतुरता से चोरो को पकडती है। हिन्दी-उपन्यास मे पहली बार एक नारी को निरावरण किया गया है। लेखक का उद्देश्य पाठको को उत्तेजित करना नही बल्कि पात्र को लालच का दड देना था। नायिका को नगी बनाकर वासना भडकाने का काम उन्होने जैनेन्द्र और यशपाल के लिए छोड दिया।

उनका गद्य बातचीत का साहित्यिक रूप है, जो कथा-कहानी के लिए उपयुक्त होता है। भारतेंदु की भाँति शब्दो, मुहावरो और वाक्यो पर उनका अधिकार है और उसी तरह उनकी शैली पर उनके व्यक्तित्व की छाप है। आज के लेखक मुहावरो का प्रयोग करते है, उन्होने उनकी सृष्टि की है। सरल लिखना अत्यन्त कठिन होता है। उसमे वही सफल होता है जो भाषा को कलम की नोक पर नचाता है। कलम के जादूगर प० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने जिसे अपनी 'सरस रीति' कहा है वह उनकी आडम्बरहीन कला है।

'भाग्यवती' शब्दो से बना हुआ एक निराला ससार है, जिसमे जो कुछ है वह देखने और सुनने योग्य है। लेखक के शब्दो मे "यह अनहुई और कल्पित कहानी और अनुत्पन्न पुरुषो के मुख के उपदेश है परन्तु पढनेहार को सब ऐसे प्रतीत होगे कि जैसे प्रत्यक्ष खडे होते और सामने बैठे शिक्षा करते है।" कथानक, पात्र और वार्तालाप की सजीवता और सम्भवता, जो

उपन्यास की रीढ होती है, 'भाग्यवती' की सर्वोत्तम कलात्मक उपलब्धि है। यह एक अद्वितीय लेखक की मौलिक कल्पना की अमूल्य देन है। रामशकर शुक्ल, 'रसाल' के मत से यह 'प्रथम प्रौढ उपन्यास'[7] है। इसमे उपन्यास के कुछ प्रमुख तत्वो को पाकर आलोचको ने इसे उपन्यास की श्रेणी मे रख दिया किन्तु स्वय लेखक ने इसकी रचना उपन्यास के रूप मे नही की। उनकी कलम पर अनजान मे एक ऐसी कृति उतर आई जो उपन्यास बन गई। आगे जिन रचनाओ का विवेचन किया जायेगा वे निश्चित रूप से पश्चिम से प्रभावित आधुनिक उपन्यास है।

मौलिक प्रयास

उपन्यास के अभाव का अनुभव सबसे पहले और सबसे अधिक हिन्दी-गद्य-साहित्य के पिता भारतेंदु को हुआ और उन्होने उसे दूर करने की चेष्टा की। उनके लिए हिन्दी का कोई अभाव राष्ट्रीय अभाव था। उन्होने हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए जन्म लिया था। यदि वे ३५ वर्ष के अल्प वयस मे इस ससार से विदा नही होते तो हिन्दी-उपन्यास अधिक समृद्ध और सम्पन्न होता। उनकी प्रेरणा, सम्मति और प्रोत्साहन पाकर कई लेखक उपन्यास लिखने मे प्रवृत्त हुए। "उपन्यास की ओर इनका ध्यान पीछे गया था इसी से इसकी बहुतायत नही है। परन्तु हिन्दी मे उपन्यास लिखने के लिए लोगो के हृदय मे अकुर जमाने वाले यही हुए।"[8] उन्होने पत्र द्वारा पण्डित सन्तोषसिह का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। "यह पत्र लिखे जाने के बाद ही लोगों की रुचि इधर हुई और कई एक उपन्यास बगभाषा से अनुवादित हुए और नये भी लिखे गये।"[9] एक तो भारतेन्दु ने उपन्यास-लेखक तैयार किये, दूसरे, उन्होने उस शैली और उस विचार को जन्म दिया जिनके अनुसार उपन्यास लिखे गये और जो उपन्यासकारो का प्रेरक बने, फिर, उन्होंने स्वय उपन्यास लिखने और अनुवाद करने का प्रयास किया। अत. अन्य गद्य-रूपो की भाँति उपन्यास का उद्घाटन भी उन्होने ही किया। इस दिशा मे उनके कृतित्व से उनका व्यक्तित्व अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ।

उनकी पत्रिका 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' मे पहले पहल उपन्यास का प्रकाशन आरम्भ हुआ। १८७५ के फरवरी-मार्च के अको मे प्रकाशित 'मालती' प्रथम प्रकाशित मौलिक उपन्यास है।[10] इस अधूरी रचना को 'उपन्यास' की सज्ञा दी गई है परन्तु यह नही बताया गया है कि उसका लेखक कौन है और वह

मौलिक है या अनूदित। अपनी वस्तुगत और शैलीगत विशेषताओ मे वह हिन्दी-उपन्यास के समान है। इसलिए उसे मौलिक मानना ही समीचीन प्रतीत होता है। एक मित्र के कारण दो भाइयो मे होने वाली फूट को लेकर कहानी गढ़ी गई है। पहले पहाड़ी प्रदेश की सध्या दिखलाई पडती है, फिर दो सुन्दर युवको का आगमन होता है। एक युवक दूसरे को मदिरा पिलाता है, भाई के विरुद्ध भडकाकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करता है और एक दिन उसे नशे मे छोड़कर और उसके पास एक पत्र रखकर चला जाता है। कथा एक सिलसिले मे बँधी नही है, न पात्रो का परिचय पहले दिया गया है। इससे उपन्यास मे कौतूहल और रहस्यमयता की सृष्टि हुई है। इस प्रकार की नाटकीयता आरम्भिक उपन्यासो की विशिष्टता है। आरम्भ मे प्राकृतिक सुषमा का काव्यात्मक वर्णन भी पुराने उपन्यासो का स्मरण दिलाता है :

असख्यात झरनो का शिखरो के चारो ओर से प्रवाह ऐसा सूचन करता है मानो मेघ गिरि को अपने बराबर ऊँचा देख ईर्षा कर बडे क्रोध से चारो ओर मण्डल कर अति प्रबल अखण्ड जलधारा छोड़कर उसको नाश किया चाहते या श्वेत रग देख मेघों को हिमालय का भ्रम हो गया है और सूर्य के प्रचण्ड तेज से पिघल कर वहता देख अपने विश्राम का स्थान जान पर्वत को आच्छादित कर बचाना चाहते हैं

यदि 'मालती' मौलिक कृति नही है तो 'कविवचनसुधा' (१८७६) मे प्रकाशित "एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती" भारतेंदु का पहला मौलिक उपन्यास ही नही, हिन्दी का भी पहला अधूरा मौलिक उपन्यास है। इसके नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि यह कहानी या आत्मकथा या सस्मरण है। किन्तु इसके प्राप्त अश तथा अन्य प्रमाणो से यह सिद्ध होता है कि यह अर्ध आत्मकथात्मक उपन्यास के सिवा और कुछ नहीं है। आश्चर्य है, डा० केसरीनारायण शुक्ल ने अपने 'भारतेंदु के निबन्ध' मे इसे कैसे सकलित कर दिया। इसका ढाँचा निवन्ध का-सा तो नही है। बाबू राधाकृष्णदास ने भारतेंदु के कथासाहित्य का परिचय देते हुए लिखा है, "स्वयं एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था जिसका कुछ अश 'कविवचनसुधा' मे छपा भी था। नाम उसका था 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती'।"[11] इसकी पुष्टि बाबू शिवनन्दनसहाय[12] और बाबू ब्रजरत्नदास[13] के कथन से होती है।

'एक कहानी' का केवल 'प्रथम खेल' उपलब्ध है। आरम्भ परम्परागत

उपन्यासो की तरह हुआ है :

प्रथम खेल

जमीने-चमन गुल खिलाती है क्या क्या ?
बदलता है रग आसमाँ कैसे कैसे ?

हम कौन हैं और किस कुल मे उत्पन्न हैं आप लोग पीछे जानेगे। आप लोगो को क्या, किसी का रोना है। पढे चलिये, जी बहलाने से काम है।............

उपन्यास की भाँति यहाँ प्रथम अध्याय के बदले प्रथम खेल है, आरम्भ मे शेर है, पाठको के प्रति सम्बोधन है, नायक का परिचय पीछे देने का वादा है और मन बहलाने की साध है। भारतेन्दु का जीवन किसी उपन्यास के नायक के जीवन से क्या कम सरस और सक्रिय था ? उन्होने व्यक्ति की कहानी के बहाने समाज की कहानी सुनाई है। उन्होने दरबारियो का सूक्ष्म, सजीव और वास्तविक चित्रण करने मे अपूर्व कौशल का परिचय दिया है :

कोई बोला हाय ! आपका फलाना कवित्त पढकर रात भर रोते रहे, दूसरे ने कहा आपकी फलानी गजल लाला रामदास की सैर मे जिस वक्त प्यारी ने गाई सारी मजलिस लोटपोट हो गई, तीसरा ठढी साँस भरकर बोला धन्य हैं आप भी गनीमत हैं बस क्या कहे कोई जी से पूछे, चौथा बोला आपकी अँगूठी का पन्ना क्या है काँच का टुकडा है या कोई ताजी तोडी हुई पत्ती है ......

निम्नाकित पक्तियो मे सेवक-स्वामी की एक ही रेशमी कोडे से खबर ली गई है और अभिजात वर्ग की सफेदपोशी उधेडकर रख दी गई है :

"कोई रडी के भडुए से लडता है, रुपये मे दो आने न दोगे तो सरकार से ऐसी बुराई करेंगे कि फिर बीबी का इस दरबार मे दरशन भी दुर्लभ हो जायगा, कोई बजाज से कहता है कि वह काली बनात हमें न ओढ़ाओगे तो बरसो पड़े झूलोगे रुपये के नाम खाक भी न मिलेगी, ... कोई इस बात पर चूर है कि मालिक का हमसे बढकर कोई भेदी नही जो रुपया कर्ज आता है हमारी मारफत आता है"......

मानव-स्वभाव की परख, पात्रों के शब्द चित्रण, वर्णन-शक्ति और सरल साहित्यिक शैली मे भारतेन्दु प्रेमचन्द को प्रत्याशित करते है। उन्होने

एक वाक्य मे वातावरण का जैसा निर्माण किया है वैसा नयी पीढी के उपन्यासकार एक पृष्ठ रगकर शायद ही कर सकें। 'साँझ फूली हुई, आकाश मे एक ओर चन्द्रमा दूसरी ओर सूर्य पर दोनो लाल-लाल, अजब समा बधा हुआ कसेरू गडेरी और फूल बेचने वाले सडक पर पुकार रहे थे।' पूर्व कथा-साहित्य मे कथानक, चरित्र और वार्तालाप का अस्तित्व था पर वर्णन-विश्लेषण का अभाव था। उपन्यास के इस आवश्यक तत्त्व का दर्शन 'एक कहानी' मे मिला। मनोवैज्ञानिक यथार्थ की पहली झलक भी मिलती है। लगभग छह सौ बोलते शब्दो की यह अधूरी कलासृष्टि ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्व रखती है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दो मे 'उनकी प्रतिभा जिस बुलन्दी पर यहाँ दिखाई देती है उस बुलन्दी पर नाटको और निबन्धो मे भी नही दिखाई देती।'[14]

भारतेन्दु के दूसरे मौलिक उपन्यास 'हमारी हठ' का उल्लेख प० राम शकर व्यास द्वारा अग्रेजी मे दिए गये भारतेन्दु-रचनावली के विवरण मे है।[15] बाबू राधाकृष्णदास लिखते हैं, "नवीन उपन्यास 'हमीर हठ' बडे धूम से आरम्भ किया था, परन्तु प्रथम परिच्छेद ही लिखकर चल बसे।"[16] इससे अनुमान किया जा सकता है कि 'हमीर हठ' भारतेन्दु के जीवन के अतिम वर्षो मे लिखा गया ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका प्रथम परिच्छेद भी अप्राप्य है, इसलिए इसके रचनाकाल और स्वरूप के सम्बन्ध मे कुछ अधिक नही कहा जा सकता।

भारतेंदु के बाद उपन्यास-लेखको मे दूसरा अमर नाम प० बालकृष्ण भट्ट का है। वे वस्तुतः द्वितीय भारतेंदु थे। उनका 'रहस्यकथा उपन्यास' ('हिन्दी प्रदीप', नवम्बर, १८७९) 'एक कहानी' की भाँति ही कुछ अधूरी लेकिन तगड़ी रचना है और यदि वह पूरी होती तो उन्नीसवी सदी के उपन्यासो में 'एक कहानी' के बाद स्थान रखती। इसका नायक तिलकधारी अवध के एक जागीरदार का लड़का है। वह एक पेंशनर सिपाही के यहाँ पलने वाली अनाथ बालिका गुणवती को मेले मे धक्के से बचाता है। आकर्षण और कृतज्ञता के सयोग से प्रेम जन्म लेता है। दोनो विवाह करने का निश्चय करते हैं। तिलकधारी चीन चला जाता है और यह समझ लिया जाता है कि उसकी मृत्यु हो गई। इधर उसके पचास वर्षीय चाचा से गुणवती की शादी कर दी जाती है। वह लौटने पर चाचा द्वारा घर से निकाल दिया जाता है। एक दिन उसके मरे हुए चाचा के कलेजे से जो कटार निकाला जाता है उस

पर उसका नाम पाया जाता है। यदि यहाँ पर भी उपन्यास के समाप्त होने की सूचना दी जाती तो कलात्मक दृष्टि से विशेष क्षति नही होती। यो उपन्यास पूरा होने पर सुखात अवश्य होता।

कथानक और उसके गठन मे भट्ट जी की कारयित्री कल्पना का स्पर्श है। उन्होंने गाँव और शहर की घटनाओ को दक्षता से गुम्फित किया है और पात्रो मे मानवीय सम्बन्ध के साथ-साथ कलात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है। विवाह के पूर्व प्रेम और उसमे बाधा उपन्यासकारो का प्रिय विषय है। तिलकधारी और गुणवती के प्रेम की उत्पत्ति आकस्मिक रूप से हुई है पर उसका विकास दैनिक परिस्थितियो के बीच स्वाभाविक ढग से हुआ :

कभी दोनो मिल एक ही किताब पढने लगते थे और पुष्प-रस समान उसके स्वास-प्रस्वास मे उत्पन्न भाफ रूपी मधुपान कर मधुकर सा उन्मत्त हो जाता था कभी अपनी प्रेमपत्री को सुईकारी का काम करते देख गुलाब की पखुरी सा सुकुमार अधर और कोमल गोल कपोल की शोभा खडा निरखा करता मानो बहुत दिनो का प्यासा मरुभूमि के पथिक समान उसके अधर रूपी मू गे के कटोरे मे रक्खा हुआ सुधारस उठाकर पीना चाहता है [17]

प्रेमी-प्रेमिका का एक साथ मिलकर किताब पढना, प्रेमिका को सिलाई करते देखना कितना साधारण प्रतीत होता है लेकिन कितना सुन्दर होता है। जो आकर्षण सुकुमार अधर और गोल कपोल की कल्पना मे नही है, वह जीवन की वास्तविकता मे है। यथार्थ के रोमानी पक्ष की ओर सभी ध्यान नही देते। यहाँ मनोवैज्ञानिक उपन्यास की तरह भावावेग का प्रभाव मन पर नही बल्कि शरीर पर दिखाया गया है।

प्रेमी-प्रेमिका भतीजा-चाची बनकर बडे अन्तर्द्वन्द्व मे पड जाते हैं कि वे एक दूसरे को किस भाव से देखें। भट्टजी ने नाटकीय स्थिति उत्पन्न कर कथा की रमणीयता बढाने की चेष्टा की किन्तु तिलकधारी को घर से निकाल कर और उसके चाचा की हत्या कर उन्होने उसका निर्वाह नहीं किया। यदि वे प्रेम से उत्पन्न होने वाले आन्तरिक और वाह्य संघर्षों का विस्तार से वर्णन करते तो कलात्मक सम्भावना पूरी तरह प्रकट होती। शायद उनका उद्देश्य त्रिकोणात्मक प्रेम का रूप अकित करना नही था। वे समाज की समस्या-वद्ध विवाह की समस्या–प्रस्तुत करना चाहते थे। इस समस्या का जहाँ उन्होने यथार्थ चित्रण किया है वहाँ 'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' मे उसका आदर्शवादी

हल उपस्थित किया गया है।

वे मानव-हृदय का तलस्पर्शी अध्ययन नही करते हैं, रूप और अवस्था का वर्णन कर रह जाते हैं। उनकी दुनियाँ मे रूप नारी को ही नही पुरुष को भी मिला है। धनुषधारी और तिलकधारी मानो 'रूप लावण्य के मनोहर फूलो से सुशोभित वसन्त ऋतु के चैत्र और वैशाख के दो महीने हो।'[18] एक के चेहरे से कुटिलता और दूसरे के चेहरे से सरलता टपकती है। वाह्य सौन्दर्य मे समानता होते हुए भी अन्त: सौन्दर्य मे जो विभिन्नता है वह वाह्य सौन्दर्य में प्रकट हो जाती है। प्रमदा के नखशिख के वर्णन मे पुरानी रीति की आलकारिकता है। इन्दु का सौन्दर्य-वर्णन नवीनता लिए हुए है: 'टटके चमेली के फूल के समान उसके अंग·········सगमरमर सा गौर वर्ण, रेशम के लच्छे से भूरे बाल,········· रुई के पहले सा गोल कपोल।'[19] भट्टजी के शब्दचित्र बडे मर्मस्पर्शी होते हैं। चित्रकार जो प्रभाव रगो से उत्पन्न करता है, वह वे शब्दो से करते हैं।

चरित्राकन मे मनोवैज्ञानिक यथार्थ का अभाव रहते हुए भी सामाजिक यथार्थ है। उन्होंने प्रतिनिधि पात्रो का चित्रण ही नही किया है, उनका निर्माण भी किया है। धनुषधारी ह्रासोन्मुख अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, तिलकधारी उगते हुए मध्यवर्ग का। एक आवारा, विलासी, शरावी तथा नाच-गान, बटेरबाजी और पतगबाजी मे दिन काटने वाला है। दूसरा उद्यमी, कर्मठ, साहसी और स्वाभिमानी है। वह बापदादे के सचित धन पर पलने के बदले आत्मनिर्भर रहने मे गौरव का अनुभव करता है और जीविका के लिए विदेश-यात्रा करने को तैयार हो जाता है। जागीरदार होते हुए भी वह सामती रूढियो का विरोधी है। असहाय गुणवती का पालन पोषण करने वाला केसरीसिंह भी नवीन विचारो मे प्रभावित है और स्त्री-शिक्षा का हार्दिक समर्थक है। स्त्री-पात्रो मे गुणवती पाठको की सहानुभूति प्राप्त करती है। वह तिलकधारी को वरण करने के बाद दूसरे को देखना भी नही चाहती किन्तु केसरीसिंह के कहने पर बूढे जगीरदार से शादी करना मन्जूर कर लेती है। वह उस भारतीय नारी की प्रतिनिधि है जो प्रेमपाश मे बँधकर भी सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण नही करती। उसकी विवशता मूक विद्रोह बनकर रह जाती है। उसके ठीक विपरीत इन्दु है, जो लखनऊ की तितली बनी हुई है। नवशिक्षिता, यौवन-मतवाली सौदामिनी घडी पहनती है, घंटी बजाकर दासी को बुलाती है और एक पढे-लिखे सेठ को

प्यार करती है। ऐसी आधुनिका के दर्शन नये उपन्यासो मे ही होते है। अपनी उदारता एव प्रगतिशीलता के कारण भट्टजी ने उसका जैसा सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया है वैसा नये उपन्यासकार नही कर पाते है।

उपन्यास विभिन्न वर्गों के पात्रो की चित्रशाला है। उपन्यासकार केवल नायक के व्यक्तित्व का विकास न दिखाकर सभी पात्रो का रेखाचित्र अकित करता है। बौने-कुबडे नौकर, काली-कलूटी दासी को भी उसने आकर्षक रूप मे प्रस्तुत किया है। इसमे उसकी मानवतावादी दृष्टि और जनतान्त्रिक भावना निहित है। वह और आगे बढता है तथा मानव-लोक मे पशु को भी स्थान देता है। कुत्ता मानिक मालिक के शव पर रो-रोकर जान देता हुआ दिखाया गया है।

लेखक के व्यापक दृष्टिकोण के कारण 'रहस्यकथा' एक साथ ही पारिवारिक, जासूसी और सामाजिक उपन्यास है। इसमे उस परिवर्तन का प्रतिबिंब है जब सामती सस्कृति का पतन और आधुनिक सभ्यता का उदय हो रहा था। गाँव मे जागीरदारो का षड्यन्त्र और नगर मे बढती हुई विलास-वासना दिखाने के लिये अवध की एक जागीर और लखनऊ को घटनास्थल बनाया गया है। लखनऊ ऐसा नगर है जहाँ 'कलई की भी कलई की जाती है'। लेखक कलई को हटाकर सच्चे रूप का उद्घाटन करता है। पनडब्बा लेकर चलने वाली बूढी विधवा किरायादारिन नजाकत और नखरे मे एक ही है। 'जहाँ खूबसूरती की बिक्री बडे चाह और कदर के साथ होती है' वहाँ अधेड़ प्रमदाओं की पूछ नही है।

समाज की आलोचना करने मे भट्टजी का व्यंग्य तीखा हो जाता है, शैली आवेशमयी बन जाती है। कहावतो और मुहावरो से उन्हे शक्ति मिलती है। बिगड़े हुए रईस पर चोट करते हुए वे कहते हैं, "एक तो चढ़ती उमर दूसरे बडे नामी गरामी रईस के लडके सिफारिशी घोडी बादशाह को भी लात मारती है"।[20] फिर भी उनके वर्णन मे लालित्य और वार्तालाप मे स्वाभाविकता है। पात्रानुकूल वार्तालाप के प्रयोग मे भाषा को ज्यों का त्यो प्रस्तुत करने की क्षमता है। बौने और कुबडे की बातचीत बड़ी मजेदार है। कुबड़ा अपने कूबड़ को 'सौभाग्य लक्ष्मी के खेलने का गेद' कहता है। वर्णन और वार्तालाप मे रोचकता होते हुए भी कहानी मे रवानी नही है।

बंगला के अर्ध ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास

जब हिन्दी मे मौलिक उपन्यास का नाम भी नही था, बंगला में

बकिमचन्द्र और उनके अनुगामी रमेशचन्द्र स्काट तथा लिटन के उपन्यासो को भारतीय वेश मे सजाकर भारतीय कथासाहित्य मे मौलिक परिवर्तन उपस्थित करने का श्रेय लूट रहे थे। बकिम की रचनाएँ 'बग दर्शन' मे धडाधड निकल रही थी और उनकी ख्याति बगाल से बाहर फैल रही थी। हिन्दी लेखक अपने पड़ोस की नई साहित्यिक गतिविधि से परिचित और प्रभावित हो रहे थे। 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' भारतेन्दु की यह अमर वाणी उन्हे अपने भाषा-भण्डार को नए साहित्य से सुसज्जित करने की प्रेरणा दे रही थी। आर्यभाषा के लिए सर्वस्व समर्पित करने वाले बाबू गदाधर सिंह ने बकिम की 'दुर्गेशनन्दिनी' और रमेशचन्द्र दत्त के 'बगविजेता' का अनुवाद कर हिन्दी मे बगला उपन्यासों के लिए प्रवेशद्वार बना दिया। प्रथम उपन्यास 'कविवचनसुधा' (अनुमानत. १८७७–७८) मे निकलकर पुस्तकाकार दो भागो मे क्रमश. १८८२ और १८८४ मे प्रकाशित हुआ। बगविजेता 'सारसुधानिधि' में २६ मई १८७९ से छपने लगा। दोनो ऐतिहासिक रोमास है। दोनो मे अकबर के शासन-काल को पृष्ठभूमि बनाकर स्वच्छंद प्रेम का क्रीडा-विलास दिखाया गया है। इतिहास-प्रसिद्ध पात्रो को कल्पनाप्रसूत पात्रो ने अपनी ओट मे छिपा लिया है। ऐतिहासिक घटनाएँ गौण और सुकुमार भावो का घात-प्रतिघात प्रबल हो उठा है। बकिम अधीर पाठको को उपन्यास का ऐतिहासिक अश छोडकर आगे बढने की सलाह देते हैं। इसी प्रकार इतिहास-लेखक होकर भी रमेशचन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति को जानने के लिए इतिहास पढने की सिफारिश करते हैं। दोनो के पात्र व्यक्ति न होकर भावुकता के पुतले है। पुरुषों से स्त्रियो मे अधिक आकर्षण है। बकिम की आयेशा अपने पिता के हिन्दू शत्रु की सेवा अपने हरम मे करते-करते उसे अपना प्रेमी बना लेती है। रमेशचन्द्र का शकुनी अपने आश्रयदाता की लडकी पर रीझ जाता है। ये परिस्थितियाँ नाटकीय सौन्दर्य की सृष्टि करती है, सामाजिक सत्य की अभिव्यक्ति नही करती। इन उपन्यासो की रमणीयता रूप-यौवन की छटा, रोमानी वातावरण, प्रगल्भ भाव-व्यजना पर निर्भर है। अनुवाद की भाषा परिमार्जित है। 'बगविजेता' मे उर्दू शब्द उद्धरण चिह्नों मे बन्द है, मानो वे अछूत हो।

'वंगविजेता' से एक महीना पहले 'सारसुधानिधि' मे (२८ एप्रिल, १८७९) 'तपस्विनी' नामक एक उपन्यास निकलकर बन्द हो गया। रचयिता का नामोल्लेख नही है। पहले सध्या का विस्तृत अलकृत वर्णन है, फिर गगा

किनारे 'सुकोमल करतल पर कपोल' धरकर बैठी हुई एक 'चतुर्दश वयष्का बालिका' के 'सुधामय मुधाशु विनिंदित मुखमण्डल नवजलधर सदृश आलुलायित सुदीर्घ केशजाल' की शोभा है। भाव और भाषा की दृष्टि से उपन्यास बगला का अनुवाद प्रतीत होता है। कही ब्रजनाथ भट्टाचार्य की 'तरुण तापसी' ही 'तपस्विनी' नही बन गई हो।

भारतेन्दु द्वारा लिखित कहा जाने वाला 'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' तथा 'राजसिंह' भी बगला के अनुवाद है।

कुछ विद्वान 'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' को भारतेन्दु की मौलिक रचना और हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने" 'पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा' नाम का सर्वप्रथम सामाजिक उपन्यास लिखा था"।[21] डा० रामविलास शर्मा ने उसे 'हिन्दी के यथार्थवादी कथा-साहित्य की पहली कड़ी'[22] मानकर उसका विशद विवेचन किया है।

हरिप्रकाश यन्त्रालय से 'कुलीन कन्या अथवा चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ था। मुखपृष्ठ पर यह लिखा है कि वह 'कुलीन कन्या विवाह सम्बन्धी एक छोटी सी आख्यायिका' है, जो 'वंगभाषा का आशय लेकर प्रकाश की गई' है। अनुवाद और प्रकाशनकाल का उल्लेख नही है। इस पुस्तक को खड्गविलास प्रेस ने पहली बार १८८९ मे और दूसरी बार १९२७ मे 'पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा' नाम से प्रकाशित किया। दोनो सस्करणो में लेखक का नाम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र है।

उसके मूल लेखक भारतेन्दु नही है और न वह हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास ही है। हरिप्रकाश यन्त्रालय के सस्करण से यह स्पष्ट है कि वह बगला उपन्यास का रूपातर है। बाबू राधाकृष्णदास[23] और बाबू शिवनन्दनसहाय[24] का कहना है कि भारतेन्दु ने उसका अनुवाद कराकर शुद्ध किया था। उनके कथन की पुष्टि 'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' तथा स्वरूपचद जैन द्वारा मराठी से अनूदित 'रमा और माधव' (१९०३) की तुलना से होती है। दोनो की कथा एक ही है, पात्रो के नाम और वर्णन-शैली मे थोड़ा अतर है। 'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' मे बूढे वर ढुंढिराज का चित्र इस प्रकार खीचा गया है :

'देखने मे दीर्घकार कृष्णवर्ण और कृश था अवस्था अनुमान चौंतीस

बरस की सिर के बाल दो एक पकने लगे हैं और साम्हने के दो दाँत गिर गये हैं।'

'रमा और माधव' मे बूढे वर अन्नासाहब का यह चित्र है :

'उनकी आयु ६४ वर्ष से अधिक नही थी, शरीर किंचित ऊँचा होने से और वृद्धावस्था की अशक्ति के कारण पीठ किंचित टेढी दीखती थी·····‧····· मस्तक पर बहुत से बाल कभी के नौ दो ग्यारह हो चुके थे·····मुख मे एक दाँत न था।

'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' मूलत: पहले बगला मे लिखा गया हो या मराठी मे यह निश्चित है कि वह अनुवाद है।[25] बाबू व्रजरत्नदास ने उसे श्रीमती मल्लिका देवी द्वारा अनूदित कहा है।[26] भारतेन्दु की प्रेरणा से देवीजी ने अनुवाद किया होगा और फिर भारतेंदु ने उसका सशोधन किया होगा। उसका प्रकाशनकाल अज्ञात है इसलिए अनूदित उपन्यासो मे भी कालक्रम की दृष्टि से उसका स्थान निर्धारित करना कठिन है। खड्गविलास प्रेस से १८८४ मे प्रकाशित 'भाषासार' मे वह सकलित है, अतः वह १८८४ के बाद की रचना नही है। उसकी प्राचीनता असदिग्ध है।

'राजसिह' के सम्बन्ध मे बाबू राधाकृष्णदास का कहना है कि भारतेंदु ने उसका अनुवाद कराकर 'प्रथम परिच्छेद स्वय नवीन लिखा, आगे कुछ शुद्ध किया'[27] बाबू व्रजरत्नदास और बाबू शिवनन्दन सहाय के अनुसार अनुवाद अधूरा रह गया था, बाबू राधाकृष्णदास द्वारा पूरा किया गया तथा छपाया गया।[28] सभव है अनुवाद मल्लिका देवी द्वारा कराया गया हो, भारतेंदु ने सशोधन किया हो और राधाकृष्णदास ने कुछ परिवर्तन-परिवर्धन कर उसे छपवाया हो। किन्तु खड्गविलास प्रेस से 'राजसिह' १८९४ मे भारतेंदु के नाम से निकला। परिच्छेदों के प्रारम्भ मे तुलसी दास, नन्ददास, रहीम आदि की कविताओ के अवतरण हैं। भाषा-शैली मे भारतेन्दु की कलम का स्पर्श मिलता है लगता है जैसे मूललेखक वकिम नही हैं।

अनुवादो का स्वरूप जितना ही सुन्दर है मूल रचनाओ के भाव और विचार उतने ही मनोरम हैं। 'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' अनूदित होकर भी मौलिक उपन्यास के रूप में समादृत हुआ है। चन्द्रप्रभा का पिता उसे बूढ़े वर के हाथ बेचना चाहता है। उसकी माता और मामा बड़ी चतुराई से उसका विवाह उसके प्रेमी पूर्णप्रकाश के साथ करा देते हैं। पुरानी परम्परा

नई पौध से पराजित होती है। नवशिक्षिता नायिका से उसकी माता गुणमजरी अधिक प्रगतिशील और आकर्षक है। उसके रूप मे युगो से पददलित नारी स्वाधीनता और सम्मान की रक्षा के लिए सहसा जाग उठी है। मूलकथा मे व्यग्य और विद्रोह की ध्वनि है, प्रासंगिक कथा मे गूढ-भावो की मृदु झकार है, जिससे उपन्यास और सुन्दर हो सका है। पूर्णप्रकाश अपनी बहन से बातें करता है और उसका अन्धा बहनोई उसे पराया समझकर मन ही मन जलता रहता है। अत मे उसकी शंका निर्मूल सिद्ध होती है।

'राजसिंह' की भूमिका मे बकिम ने स्वय उसे अपना एकमात्र वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यास माना है पर वह भी अर्ध ऐतिहासिक है। इसमे समकालीन सास्कृतिक और सामाजिक अवस्था का चित्रण तो नही है, औरगजेब के महल की रहस्यमय प्रणय-लीला का वर्णन अवश्य है। चचलकुमारी औरगजेब की वासना-पकिल दृष्टि से बचने के लिए राणा राजसिंह को पति मानकर पत्र लिखती है। राजसिंह उसकी रक्षा करने के लिए औरगजेब के साथ युद्ध करता है और विजयी होता है। वकिम की रोमानी राष्ट्रीयता और आदर्शवादी भावना उपन्यास मे उभर कर आई है। उनकी आवेशशील प्रकृति उनके पात्रो मे परिलक्षित होती है। 'दुर्गेशनन्दिनी' की भाँति यहाँ भी घर-घर मे सुन्दरी है। राजकुमारी से उसकी सहेली अधिक मोहिनी है। राजपूत बालाओ की वीरता और दृढता हिन्दू-हृदय को स्पर्श कर लेती है। विद्युतप्रभा औरंगजेब की तसवीर को ठुकराकर कहती है, "जैसे खिलौना खेलकर सासारिक सुखो की साध मिटाते है हमने वैसे ही मोगल बादशाह के मुँह मे लात मार कर अपनी साध मिटाया है।"

१८८१ मे वगभाषा से 'बिंदो चतुरा' तथा 'रामेश्वर का अदृष्ट' राधाचरण गोस्वामी और राधाकृष्ण दास द्वारा अनुवादित होकर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका' मे क्रमशः सितम्बर और दिसम्बर के अको मे प्रकाशित हुए। उसी वर्ष सितम्बर मे रमाशकर व्यास ने 'मधुमती' का अनुवाद किया लेकिन उसका प्रकाशन १८८६ मे हुआ। इन रचनाओ को उपन्यास कहा गया है पर आकार की दृष्टि से गल्प की श्रेणी मे रखा जाय तो अनुचित नही होगा। 'बिंदो चतुरा' तो केवल ग्यारह पृष्ठों मे समाप्त हो गई है। उसके मूल लेखक सम्भवत. सतीशचन्द्र वसु हैं। उन्होने एक अहीरिन कुटनी का चरित्र चित्रित किया है। 'रामेश्वर का अदृष्ट' बंकिमचन्द्र के भाई संजीवचन्द्र द्वारा लिखित है। इसमे रामेश्वर का अपनी पत्नी से, जो पद्मा

मे कूद गई थी पर मरी नही थी, मार्मिक पुनर्मिलन होता है। 'मधुमती' की कथावस्तु भी ऐसी ही है। उसके रचयिता का उल्लेख नही किया गया है पर वह पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित है। यह नारी-हृदय के भाव-सघर्ष की करुण कहानी है। मधुमती अपने पति से बिछुड़कर दूसरे पुरुष से विवाह कर लेती है और जब पहला पति आता है तब दूसरे को छोड़कर उसके साथ नदी में डूब मरती है। बगला उपन्यास मे अक्सर पात्रो को अलग कर मिलाया और मारकर जिलाया जाता है। फालतू भावुकता, अनहोनी घटना और रोमानी कल्पना उसकी विभूति है।

मूल्यांकन

अब तक जिन अनूदित-मौलिक, अपूर्ण-पूर्ण रचनाओ का अध्ययन किया गया है उनमे हिन्दी-उपन्यास की परम्परा का आरम्भ-बिन्दु किसे माना जाय, यह विचारणीय है।

अनुवाद और रूपान्तर इस ऐतिहासिक महत्त्व के अधिकारी नही हो सकते, यद्यपि कालक्रम और परिमाण की दृष्टि से वे अग्रगण्य है। मौलिक कृतियो मे 'देवरानी जेठानी की कहानी' से लेकर 'रहस्यकथा' तक सभी नये ढग की कृतियाँ है किन्तु सभी नये ढग के उपन्यास की विशेषताओ से पूर्ण नही हैं। 'देवरानी जेठानी की कहानी' का विषय और उसका प्रस्तुतीकरण नया है किन्तु कथा-शैली पुरानी है, उसे बडी कहानी कहकर आसानी से छाँट दिया जा सकता है। 'बामा शिक्षक' मे अनेक आवश्यक गुण होते हुए भी कथानक जैसी कोई वस्तु नही है, साथ ही वह अर्ध-मौलिक है; अतः उसका मूल्य अधिक नही है।

'भाग्यवती' पुरानी कथा-परम्परा से पूर्णतः विछिन्न नही है। उसके स्वरूप, उपादान और प्रयोजन मे नवीनता रहते हुए भी प्राचीनता है। प० श्रद्धाराम पुरानी कथाओ के चिर-परिचित पात्र—राजा, साधु, ठग और पडित—को भूल नही सके हैं। मूलकथा की भूमिका राजा और पण्डित के सवाद के रूप मे वर्णित ठगो की रोमाचकारी लीलाओ से बनती है, जो पुराण-शैली की याद दिलाती है। उसका आरम्भ पूर्वापर क्रम से और विकास अखड गति से होता है। घटनाओ के विन्यास मे शिथिलता है। दो बार कहानी का अत होते-होते रह गया है, भाग्यवती के ससुराल लौटने और यात्रा से आने पर। पुस्तक अध्यायों में विभाजित नहीं है। जैसे महाकाव्य

में सर्गों का इतना महत्त्व है कि उनके आधार पर उसकी परिभाषा निर्मित हुई है वैसे ही उपन्यास मे अध्यायों की उपयोगिता है। प्रत्येक अध्याय पिछले अध्याय से कुछ ग्रहण करता है और अगले अध्याय को कुछ प्रदान करता है। कथात्मक वक्रता और कलात्मक विश्राम (रिलीफ) अध्यायो पर ही अवलम्बित हैं। पात्रो के प्रवेश और प्रस्थान के लिए उनकी आवश्यकता होती है।

पुराने ढर्रे की 'शुकबहत्तरी', 'मनसुखी और सुन्दरसिंह का वृत्तान्त' और 'भाग्यवती' मे बहुत समानता है। 'शुकबहत्तरी' की तरह 'भाग्यवती' मे स्त्रियो की बनावटी हँसी और आँसू, झूठी कसम, प्रपंच-भरी बातचीत, बहानाबाजी और धूर्तता का रूप दिखाकर स्त्री-चरित्र की झाँकी प्रस्तुत की गई है। दोनो की नायिकाओ के नाम भी मिलते-जुलते हैं, यद्यपि भाग्यवती और प्रभावती दो भिन्न युगो की सृष्टि है। मनसुखी की भाँति भाग्यवती भी चतुर और साहसी है और सपरिवार गंगा नहाने जाती है। मनसुखी का चाचा धूर्त फकीर से उसी तरह ठगा जाता है जिस तरह भाग्यवती का ससुर। फकीर तम्बाकू की चाँदी बनाकर दिखाता है और मनसुखी के चाचा से यह कहकर गहना लेता है कि वह उसका पचास गुना बना देगा लेकिन हाँडी मे ककड भरकर चम्पत हो जाता है, उसी प्रकार भाग्यवती के ससुर को एक साधु सखिया और पारे से चाँदी बनाकर दिखा देता है और एक दिन उसका सारा गहना लेकर हाँडी में ककड छोड जाता है। दोनों पुस्तको मे गगा-किनारे के साधुओं का पाखण्ड वर्णित है और धूर्तों की बातचीत मे कृत्रिम स्वाभाविकता का पुट है। चरित्र, कथाभाग, वार्तालाप आदि का साम्य यह सूचित करता है कि यदि 'भाग्यवती' पञ्जाब से प्रकाशित 'मनसुखी और सुन्दरसिंह का वृत्तान्त' से प्रत्यक्षत: प्रभावित नही भी हो तो उसका ढाँचा पुरानी कथा-कहानी से भिन्न नही है। श्रद्धारामजी ने निश्चय ही अपनी कहानी का नमूना पश्चिम से नही लिया है।

सम्भव है, उन्होने 'मनसुखी और सुन्दरसिंह' के जिन दृष्टान्तो और प्रसगो का उपयोग किया है वे लोक-परम्परा से लिए गये हों अथवा वे उनके जीवन-अनुभव और आत्म-निरीक्षण के अग हो। वे स्वय कथावाचक थे और कथावाचक किसी गम्भीर विषय को समझाने के लिए रोचक कथा-वार्ता और दृष्टान्त का आश्रय लेते हैं। उन्हे सामग्री जीवन से मिली हो या पुस्तक से, उसे उन्होने मौलिक, स्वतन्त्र और सरस रीति से सजाने मे अपनी कल्पना

और कौशल से काम लिया है।

'मालती' (१८७५), 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' (१८७६), 'भाग्यवती' (१८७७) और 'रहस्यकथा' (१८७९) उपन्यास-लेखन की दिशा मे बढते हुए चरण-चिह्न हैं किन्तु इनकी अपनी सीमाएँ है। 'मालती' ऐतिहासिक एव कलात्मक दोनों दृष्टियो से आधुनिक उपन्यास की सम्भावनाओं से सम्पन्न है। इसमे जिस नाटकीय कौशल से एक सेठ के जीवन की कथा लिखी गई है और सुधारवादी दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है उससे ऐसा लगता है कि 'परीक्षागुरु' इसका ही पूर्ण रूप है। यदि वह अपूर्ण नही होती तो हिन्दी-उपन्यास की परम्परा का वास्तविक आरम्भ उसी से माना जाता। यह बात 'एक कहानी' के लिए भी लागू हो सकती थी। 'भाग्यवती' पूर्ण होने के कारण सर्वाधिक महत्त्व की है और 'बामा शिक्षक' तथा 'रहस्य-कथा' के बीच स्थान रखती है। 'बामाशिक्षक' की घटनाएँ उखडी हुई है। एक के बाद दूसरा पात्र आता है और चला जाता है। 'भाग्यवती' की घटनाएँ इस रूप मे सम्बद्ध नही है कि एक घटना दूसरी पर आश्रित है, फिर भी भाग्यवती आदि से अत तक दर्शन देती रहती है, इसलिए वह नायिका की अभिधा पा सकती है। उपन्यास मे नायक और नायिका घटनाओ को एक सूत्र मे पिरोते हैं। इस दृष्टि से 'रहस्यकथा' ने वास्तव मे नायक-नायिका दिये है। 'भाग्यवती' मे तो भाग्यवती स्वय एक ऐसा सूत्र है जिस पर घट-नाओ और अन्तर्कथाओ को लटका दिया गया है। फिल्लौरीजी ने सहज सरल शैली से वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न किया है, भट्टजी ने पात्रो और उनके क्रियाकलाप से। फिल्लौरीजी की भाँति भट्टजी ने वार्तालाप मे बोलचाल की भाषा का व्यवहार करते हुए भी वर्णन-शैली मे साहित्यिक छटा प्रदर्शित की है। 'भाग्यवती' मे कला नही है, जीवन है, 'रहस्यकथा' मे जीवन के साथ कला भी है। भट्टजी सचेष्ट कलाकार है। वे परम्परागत उपन्यास-लेखको की तरह सर्वज्ञ बनकर घटनाओ और पात्रों की व्याख्या करते चलते है और कथा-सूत्र को सभाले रहते है। उनका अशदान अधिक मूल्यवान है। उनका उपन्यास परवर्ती और असम्पूर्ण होने के कारण ही ऐतिहासिक दृष्टि से 'भाग्यवती' की समानता नही कर सकता है।

फिर भी, 'भाग्यवती' को 'पहला आधुनिक उपन्यास' नही कहा जा सकता है, जैसा कि उसके 'पाकेट बुक' सस्करण मे उसका सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित परिचय देते हुए प्रो० विजयशकर मल्ल ने कहा है। यह गौरव

सच्चे अर्थ मे 'परीक्षागुरु' या 'नि सहाय हिन्दू' को प्राप्त है। 'भाग्यवती' और 'परीक्षागुरु' मे उतना ही अन्तर है जितना 'भाग्यवती' और आधुनिक उपन्यास मे। उनकी पुस्तक क्या है, दृष्टात-कथाओ का सग्रह है, जिसमे भाग्यवती का चरित्र मानो एक लम्बा दृष्टात है। उनका उद्देश्य दृष्टातो के माध्यम से 'लोक परलोक विहित अविहित योग्य अयोग्य सब प्रकार के व्यवहारो का ज्ञान' प्रदान करना है। उनका ध्यान परलोक की ओर भी है। 'भाग्यवती' स आधुनिक उपन्यास के प्रयोजन की सिद्धि नही होती है।

'परीक्षागुरु' मे प्राय. वे सभी विशेषताएँ है जो आधुनिक उपन्यास मे पाई जाती है और जो आधुनिक उपन्यास को कथासाहित्य की पुरानी परम्परा से भिन्न एक विशिष्ट साहित्यिक विधा के रूप मे उपस्थित करती है। प० श्रद्धाराम ने उपन्यास लिखने की भावना से 'भाग्यवती' नही लिखी। उन्होने उसे उपन्यास मे कह कर कहानी कहा है। नाम की नवीनता से भी वे अपनी रचना की नवीनता सूचित नही कर सके। लालाजी को यह चेतना थी कि वे नये प्रकार की कथा की सृष्टि कर रहे है, जैसा कि उन्होने 'निवेदन' किया है :

अब तक नागरी औक उर्दू भाषा में अनेक तरह की अच्छी, पुस्तकें तैयार हो चुकी हैं परन्तु मेरे जान इस रीति से कोई नही लिखी गई इसलिये अपनी भाषा में यह नई चाल की पुस्तक होगी।

लालाजी ने पुस्तक के मुखपृष्ठ पर 'उपन्यास' शब्द देकर उसे अग्रेजी मे समर्पित करते हुए लिखा है कि वह 'उपन्यास-लेखन का विनम्र प्रयास' है। 'परीक्षागुरु' निर्विवाद रूप से अग्रेजी ढंग का उपन्यास लिखने का प्रथम सफल प्रयास है।

उसके पूर्व कथासाहित्य पाठ्यक्रम और धर्मप्रचार का अग बना हुआ था। उसके प्रकाशन से उपन्यास एक स्वतत्र कला-रूप बना, उसका व्यक्तित्व प्रतिष्ठित हुआ और यह निश्चित हो गया कि हिन्दी-उपन्यास सस्कृत-फारसी की कथावली पुरानी लीक छोड़कर अंग्रेजी उपन्यास का अनुसरण करेगा। उससे पहले मौलिक उपन्यास प्रकाशित हुए तो अपूर्ण थे और जो पूर्ण थे वे प्रकाशित ही नही हुए। अत: उनका कोई दूरगामी प्रभाव नही पड़ा। प्राय: अर्ध शताब्दी तक औपन्यासिक परम्परा 'परीक्षागुरु' के आदर्शानुसार चली। 'भाग्यवती' की तरह सरल, वर्णनात्मक और अध्यायहीन कथा लिखने की

पद्धति अपनाई नही गई। लाला श्रीनिवासदास से रूप-विधान और विषय-वस्तु दोनों मे उपन्यास-लेखको को मार्ग-प्रदर्शन मिला। उन्होने नाटकीय कथा-शिल्प और मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण की उद्भावना की, जो आधुनिक उपन्यास की विशिष्ट उपलब्धि है। उनके समान उपन्यासकार बहुत दिनो तक किसी रईस के बिगडने और सुधरने की कथा सुनाते रहे। उनकी पुस्तक मे सामाजिक, राजनीतिक, गार्हस्थ, मनोवैज्ञानिक, रोमानी, जासूसी और ऐतिहासिक उपन्यास के बीज विद्यमान है। उन्होने अनावश्यक आडबर को राष्ट्रीय समस्या के रूप मे उपस्थित किया था, जिसकी चर्चा 'सेवासदन' और 'गबन' मे भी की गई। उनके नायक-नायिका की भाँति 'गबन' का नायक मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना से आक्रात रहता है और नायिका अपने पति के लिए अपना आभूषण उत्सर्ग कर देती है। इस दृष्टि से उन्होने हिन्दी के उपन्यास-सम्राट को प्रत्याशित किया। हिन्दी-उपन्यास के इतिहास मे उनका वही स्थान है जो अग्रेजी मे फील्डिग, रूसी मे गोगल और बगला मे बकिम का है। अस्तु, 'परीक्षागुरु' से हिन्दी-उपन्यास की मुख्य और अखड धारा का प्रवर्तन हुआ। कला की दृष्टि से उसे आज महान उपन्यास की अभिधा भले ही न मिले, वह एक महान युग के शक्ति-सपन्न लेखक की ऐतिहासिक कृति तो है ही। जब तक हिन्दी है तब तक वह अमर रहेगी।

उसके पूर्व और सामानान्तर लिखित या प्रकाशित उपन्यास-जातीय कथाओ का कम महत्व नही है। शैक्षिक और धार्मिक ग्रन्थो के रूप मे लिखित उपन्यास इस तथ्य के द्योतक हैं कि शिक्षाविशारद और धर्मप्रचारक भी कथासाहित्य के कायल थे। उन्होने पाठकवर्ग के हृदय तक अपना सदेश प्रेषित करने के लिए नवीन साहित्यिक माध्यम का उपयोग करना आवश्यक समझा। जिस समय साहित्य मे कविता का स्थान सर्वोपरि था और कथा-कहानी सम्मान की वस्तु नही बनी थी, उपन्यास-लेखन का मौलिक प्रयास ही एक उपलब्धि था। मौलिक लेखको ने कथासाहित्य को युग-चेतना की अभिव्यक्ति का साधन बनाकर उसे अपूर्व गौरव प्रदान करने का युगातरकारी कार्य किया। काव्य और नाटक का गद्य-रूपातर गद्यकथा मे बढती हुई लोक-रुचि का परिचायक था। पद्यबद्ध कथा मे जीवन का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा था। गद्य मे नव परिधान का गुण था, अत. उसमे कथा को सुसज्जित करने की प्रवृत्ति उभर रही थी। इस प्रकार 'परीक्षागुरु' के पूर्व की कथा-कृतियो में उपन्यास की सामर्थ्य एव सम्भावना प्रगट हुई।

उन पर देश-विदेश के साहित्य की छाप है। उनमे प्राचीनता और नवीनता का मिश्रण है। उनका ऐतिहासिक मूल्य इसलिए है कि वे परम्परा से प्रगति की ओर उन्मुख है। अधूरे मौलिक प्रयोगो की सार्थकता इसमे है कि प्रयोगकर्ताओ को एक प्रकार से उपन्यास-कला का आविष्कार करना पडा, जो कठिन था और जिसकी प्रतीक्षा की जा रही थी। अनुवादो की अधिकता आशा दिलाती है क्योकि उनसे कुछ न कुछ प्रेरणा अवश्य मिली। उनसे यह भी सूचित होता है कि कथासाहित्य लोकप्रिय हो रहा था। मौलिक लेखको और अनुवादको ने उपन्यास का स्वागत करने वाले पाठक तैयार किए और उपन्यासकारो का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी भाषा-शैली का महत्त्व इसमे है कि वह अनुभव के एक नये आयाम को व्यक्त करने मे सफल हुई।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे उपन्यास के उद्भव के लिए सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ अनुकूल थी। पाश्चात्य सपर्क के फलस्वरूप उसका कच्चा माल तैयार हो चुका था। पूर्वलिखित कथासाहित्य ने उसकी कई समस्याएँ सुलझा दी। गद्य विकास की उस अवस्था तक पहुँच गया था जब वह कथन और वर्णन कर सकता था। समकालीन जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने वाली कथा के पाठक उत्पन्न हो रहे थे। अब आवश्यकता इस बात की थी कि अनुकूल अवसर से लाभ उठाया जाय, जो भारतेन्दुयुगीन लेखको द्वारा किया गया। उनकी प्रतिभा ने विभिन्न तत्त्वो के सयोग से साहित्य की एक नई फसल पैदा की।

टिप्पणियाँ

१– 'परीक्षागुरु' के प्रकाशन-काल का निश्चित और प्रामाणिक उल्लेख हिन्दी के किसी आलोचना-ग्रन्थ मे नही मिलता। 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका' (पौष शुक्ल १९३९ तदनुसार जनवरी १८८२) और 'हिन्दी प्रदीप' (जनवरी १८८२) मे उसकी प्राप्ति-स्वीकृति और आलोचनात्मक परिचय है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उसका प्रकाशन १८८१ के अन्तिम महीनो मे हुआ होगा। उसके प्रथम सस्करण की एक भी प्रति प्राप्य नही है। द्वितीय सस्करण (१८८४, दिल्ली) के समर्पण का समय १८८४ है। समर्पण द्वितीय संस्करण मे ही किया गया प्रतीत होता है। उसके आधार पर १८८४ को प्रथम प्रकाशन का काल नही मान लेना चाहिए। प्रथम सस्करण की प्रतियाँ 'सारसुधानिधि' के पाठको को उपहार मे बाँट दी गई थी। इससे दूसरे सस्करण का शीघ्र प्रकाशन आवश्यक हुआ।

'नि:सहाय हिन्दू' के 'निवेदन' मे उसे १८८१ मे लिखित बताया गया है। उसके सम्बन्ध मे रामशकर व्यास की सम्मति २७–११–८१ को दी गई है। 'परीक्षागुरु' और 'नि सहाय हिन्दू' मे पहले कौन लिखा गया, यह कौन कहे? रचनाकाल प्रकाशनकाल से कम महत्त्व नही रखता किन्तु रचना की वास्तविक तिथि ज्ञात नही रहने से प्रकाशनकाल का ऐतिहासिक महत्त्व स्वीकार करना पडता है।

२– 'उपन्यासकला' (१९५० तृ० स०), पृ० ७३

३– 'उपन्यास', 'हिन्दी प्रदीप', जनवरी १८८२, पृ० १९

४– 'आनन्द कादम्बिनी', खण्ड १, सख्या २, १९३८ वि०

५– 'ग्रन्थकर्ता ने इसे उपन्यास की रीति पर लिखा है परन्तु बना नही। ···· 'हम पहले इसके शुभचिन्तकों के निकट निवेदन करते हैं कि एक बेर उसे आद्योपान्त अवलोकन कर लें ताके उनको यह तो मालूम हो जाय कि उपन्यास क्या है और किसे कहते हैं।'

—'क्षत्रिय पत्रिका', खण्ड १, सख्या ५, सवत् १९३८, पृ० १२३

6– "He who has seen man s misery has seen nothing, he must see woman's misery"

—Les Miserable, Vol. II, Book VIII, chapter II, p.28

७– 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृ० ५१५

८– 'शिवनन्दन सहाय . 'हरिश्चन्द्र', पृ० २४४
'प्रियवर पण्डित सतोष सिह जी !

९– वही

निवेदन जैसे भाषा मे अब कुछ नाटक बन गए है अब तक उपन्यास नही बने है । आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ वा गोस्वामी राधाचरणजी कोई उपन्यास लिखे तो उत्तम है । यदि ऐसी इच्छा हो तो 'प्रदीप निर्वाण' नामक उपन्यास का अनुवाद हो । यह उपन्यास केवल उपन्यास ही नही है, भारतवर्ष से इससे एक बडा सम्बन्ध है ।'

१०–डा० माताप्रसाद गुप्त के 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' मे सदानन्द मिश्र और और शभुनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'मनोहर उपन्यास' (१८७०) का उल्लेख है । डा० गुप्त के गजट मे विशेष सूचना नही मिल सकी । यदि पुस्तक सम्पादित है तो अनूदित होगी । उससे 'मालती' के ऐतिहासिक महत्त्व मे कमी नही होती है । अनुवाद से हिन्दी-उपन्यास के इतिहास का आरम्भ माना जाय तो मनोहर उपन्यास से पहले कई उपन्यास अनुवादित हो चुके थे ।

११–'भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र', पृ० ८९

१२–वही, पृ० २४५

१३–'भारतेंदु हरिश्चन्द्र', पृ० २३२

१४–'भारतेदु हरिश्चन्द्र', पृ० १७१

१५–'श्री हरिश्चन्द्र कला', द्वितीय भाग (१८९२) मे सकलित

१६–वही, पृ० ८९

१७–'हिन्दी प्रदीप', नवम्बर १८७९, पृ० १०

१८– ,, ,, ,, पृ० ६

१९– ,, जनवरी १८८१, पृ० २१

२०– ,, नवम्बर १८७९, पृ० ७

२१–हिन्दी-साहित्य, पृ० ४१५

२२–भारतेंदु हरिश्चन्द्र, पृ० १७०

२३–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० १७०

२४–वही

२५–डा० श्रीकृष्णलाल ने 'श्रीनिवास ग्रन्थावली' की भूमिका (पृ०११) में उसे गुजराती का अनुवाद कहा है। हरिप्रकाश यन्त्रालय के उक्त संस्करण से उनके कथन की पुष्टि नहीं होती है।

२६–हिन्दी-उपन्यास-साहित्य, पृ० १२९

२७–वही

२८–वही, 'हरिश्चन्द्र', पृ० ३०५

५

प्रारम्भिक दशक (१८८१-९०)

रीतिकाल मे 'वाग्धारा बँधी हुई नालियो मे प्रवाहित होने लगी' थी। भारतेंदु ने उसे जन-जीवन के आँगन मे लाकर उसकी दिशा और गति बदल दी। यह कार्य युगातकारी और युगातरकारी सिद्ध हुआ। भारतेंदु काल मे जो सजीवता और क्रियाशीलता, जो सजगता और सच्चाई है वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे दुर्लभ है। युग की प्रतिभा वसत मे विकसित फूल की पँखडियो की भाँति साहित्य के कोने-कोने मे निखर उठी। निबध, नाटक और कविता का यह महान युग उपन्यास का भी महान युग है।

युग-जीवन की आवश्यकता साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम निर्धारित करती है। साहित्य के परम्परागत रूपो को ज्यो का त्यो या कुछ परिवर्तन के साथ ग्रहण किया जाता है या फिर नये रूपो की उद्‌भावना की जाती है। भारतेंदु और उनके मडल का उदय भारतीय इतिहास के एक विशिष्ट नाटकीय काल में हुआ था। वह काल शासक और शासित वर्ग, प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता तथा सामतवादी और पूँजीवादी व्यवस्था का सघर्ष-काल था। इस काल मे रहना दो ससारो के बीच रहना था[1] और इसलिए इस काल मे ऐसे साहित्यिक माध्यम की आवश्यकता थी जो दोनो ससार का सत्य पूर्णतया व्यक्त कर सके। तत्कालीन लेखको ने काव्य की मध्ययुगीन प्रवृत्तियों को आत्मसात् करते हुए भी मध्ययुगीन महाकाव्य,

आख्यानक काव्य और वर्णनात्मक काव्य की परम्परा को आगे नही बढाया। उन्होंने पद्य नाटकों की प्रणाली छोडकर गद्य नाटको का प्रणयन किया और सस्कृत कथा-आख्यायिका को जीवित करने के बदले अग्रेजी ढग के उपन्यासो की सृष्टि की।

संख्या की कमी

कविता, नाटक और निबध की तुलना मे उपन्यास कम लिखे गए। इसके कई कारण है। साहित्य के क्षेत्र मे कविता का स्थान इतना ऊँचा था कि उपन्यास उपेक्षित बना हुआ था। प० अम्बिकादत्त व्यास ने यह शिकायत की थी कि 'इन दिनो के भी नानाविध कवि सभाओ के सभ्यो को समस्या-पूर्ति छोड गद्य अच्छा ही नही लगता'।[2] उपन्यास को प्रचार और प्रोत्साहन के आवश्यक साधन उपलब्ध नही हो सके। जब साहित्यकार दैनिक जीवन का यथार्थ चित्रण करना चाहते थे और उसमे कविता से सहायता नही मिलती थी तो निबन्ध और नाटक का आश्रय लेना पसद करते थे। उनके सामने कविता,नाटक और आलोचना की परम्परा थी। उसे आधार बनाकर चलने मे उन्हें विशेष कठिनाई नही थी। उन्हे सस्कृत का कथा-वैभव उपलब्ध था किन्तु उसमे वे तत्त्व थे जो काव्य के लिए आवश्यक और शोभन होते है। उन्हे कथासाहित्य का वह रूप या आदर्श नही मिल सका जो समकालीन सामाजिक जीवन को अपना प्रतिपाद्य बनाता है। आधुनिक उपन्यास की ओर उनका ध्यान गया भी तो बाद मे गया। वह पश्चिम का पौधा था, इसलिए उसे लगाने मे विलम्ब भी हुआ और बाधा भी। किसी भी नूतन रचना-प्रकार को भली भाँति समझने मे प्रारम्भिक कठिनाई होती है। बहुत दिनो तक उपन्यास के सबन्ध मे भी लेखकों की धारणा अस्पष्ट और अनिश्चित रही। 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग भी सभी नही करते थे। समर्थ आलोचक प० बालकृष्ण भट्ट के विभावन मे भी अन्तर्विरोध था। उन्होने 'परीक्षागुरु', 'कादम्बरी', 'अलिफलैला' और 'लदनरहस्य' को एक ही श्रेणी मे रख दिया था।[3] पुरानी पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित अधूरे उपन्यास इस तथ्य के द्योतक है कि लेखक उपन्यास की नवीनता से मुग्ध होकर लिखना आरम्भ करते थे पर उसकी कलात्मक विशिष्टता से अपरिचित होने के कारण उसे पूरा नही कर पाते थे।

उपन्यास का अभाव ऐतिहासिक प्रक्रिया का भी परिणाम था। अग्रेजी

सम्पर्क का प्रभाव हिन्दी क्षेत्र पर कुछ देर से पडा, इसलिए परिस्थिति अनुकूल होने पर ही उपन्यास का विकास हो सका। आदि उपन्यास-लेखको को लोकरुचि से विशेष प्रेरणा नही मिली क्योकि जिन लेखको के पूर्वज नही होते उनके पाठक भी नही होते। १८८२ मे प० बालकृष्ण भट्ट ने लिखा था, 'सच तो यो है कि हिन्दी अभी इस लायक हुई ही नही कि इसमे नोवेल लिखे जायँ न निखालिस हिन्दी-रसिको की समझ अभी इतनी बढी है कि नोवेल की काटछाँट समझ सकें'।[4] जिस प्रकार मध्यकाल मे कथाकाव्य कथा पढने की प्रवृत्ति तुष्ट करते थे उसी प्रकार भारतेंदुकाल मे निबन्ध और नाटक ने उपन्यास की कमी महसूस नहीं होने दी। उपन्यास की भाँति नाटक ने जीवन का पूर्ण, यथार्थ और मार्मिक रूप अकित किया और निबन्ध कथात्मक स्वरूप लेकर उपस्थित हुआ। हमे भारतेंदुकालीन उपन्यासो की सख्या नही, वजन देखना चाहिए। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे प्रचुर परिमाण से नूतन प्रयास का मूल्य कम नही होता। बीसवी शताब्दी की पूर्णता और सफलता उन्नीसवी शताब्दी के अधूरे प्रयोगो और अभिनव प्रयासो की देन है।

राष्ट्रीय उपन्यास

भारतेंदु ने नाटक के क्षेत्र मे जो कार्य किया वह बल्कि उससे बढ़कर लाला श्रीनिवासदास ने उपन्यास के क्षेत्र मे किया। भारतेंदु की भाँति इन्हे यथेष्ठ आधार नही मिला, अत . अपनी कला का निर्माण स्वय करना पडा। इनका जन्म दिल्ली मे एक मध्यवित्त परिवार मे हुआ था। इन्होने घर पर पढकर हिन्दी, अग्रेजी, उर्दू, फारसी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया, मथुरा के एक प्रसिद्ध सेठ की दिल्ली स्थित कोठी का कुल कार्यभार अठारह वष की अवस्था मे ही सभाल लिया और देश का भ्रमण किया। इस प्रकार इन्होने अनेक क्षेत्रो मे योग्यता और अनुभव प्राप्त किए। इन्होंने अपने अल्प जीवनकाल (१८५१-१८८७) मे समाज और साहित्य को जो कुछ दिया वह स्थाई मूल्य रखता है। इन्होने 'सदादर्श' का प्रकाशन और सपादन किया, फुटकर लेख लिखे। भारतेंदु के अनुसार इनका पौराणिक नाटक 'तप्तासंवरण' (१८७४) हिन्दी का चौथा नाटक था। मिश्रबन्धु के शब्दो मे 'इनकी कविता अमृत में डुबोई होती थी'।[5] इनके एकमात्र उपन्यास 'परीक्षागुरु' मे इनके व्यक्तित्व की जैसी छाप है वैसी अन्य रचनाओ मे नही। इनमे इनके गभीर अध्ययन और व्यावहारिक अनुभव, प्रौढ विचार और सच्ची अनुभूति

के दर्शन होते है। वह नव भारत का नव महाकाव्य है।

'इनका अन्य सेठो की अपेक्षा सर्वसाधारण के लाभ की ओर विशेष ध्यान रहता था। और इस विषय का उद्योग भी करते थे।'[6] इन्होने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर दिल्ली के सेठ लाला मदनमोहन को अपनी कथा का केन्द्र बनाया। 'देशोन्नति का भार पुरानी रूढी के अनुसार केवल राजपुरुषो पर समझा जाता था'।[7] अब आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप राजाओ और नवाबो का स्थान सेठ और साहूकार लेने लगे। उनकी उन्नति और अवनति पर देश की उन्नति और अवनति निर्भर थी।[8] व्यक्ति और राष्ट्र के हित को परस्पर सम्बद्ध मानकर लेखक ने दोनो के उद्धार के उपाय बताए है। व्यक्ति की कथा गौण है, एक सेठ चापलूसो के सग रहकर बिगड जाता है और एक शुभचितक की सहायता से सुधरता है। वास्तव मे उपन्यास राष्ट्र के पतन और उत्थान की कहानी है।

पुस्तक किसी रईस या शासक को नही बल्कि एक देशप्रेमी मित्र को समर्पित है। प्रथम प्रकरण मे एक अग्रेज सौदार की दूकान मे नए फैशन के विलायती सामान खरीदते हुए नायक को दिखाकर सब बातो मे अग्रेजो की नकल तथा विदेशी वस्तुओ के व्यवहार से होने वाली व्यक्तिगत एव राष्ट्रीय क्षति पर चिता प्रकट की गई है। अखबार पढने की आवश्यकता से लेकर प्राकृतिक साधनो के उपयोग तक का उल्लेख किया गया है। देश की मूल समस्या—आर्थिक समस्या—पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है और उसके समाधान के लिए उद्योगीकरण एव वैज्ञानिक कृषि-प्रणाली पर जोर दिया गया है। उपन्यासकार की दृष्टि मे सावधानी सर्वोत्तम राष्ट्रीय गुण और चाटुकारिता निकृष्टतम अवगुण है।

उन्होने एक व्यक्ति की कथा मे समूचे राष्ट्र का इतिहास गूँथ दिया है। उन्हे दुख है कि जो शहराती, सभ्य और शिक्षित है तथा जिनके पास सम्पत्ति, सुविधा और अवकाश है वे व्यक्ति-स्वार्थ के सामने सार्वजनिक स्वार्थ को ठोकर मार रहे हैं। लक्ष्मी के लाडलो का काम खुलकर खेलना है :

जिन बातो को सब लोग बुरी जानते हैं, जिन बातो को करने मे कमीने भी लजाते हैं, जिन बातो को प्रकट होने से बदचलन भी शर्माते है उनका करना यहाँ के धनवानो के लिये कुछ अनुचित नही है।

यह चुभता हुआ व्यग्य, यह उबलता हुआ क्षोभ उन निर्लज्ज अर्थ-

पिशाचो के लिए है जो लूट-खसोट के बल पर धरती के देवता बन गये है।

'इस समय बहुधा मनुष्य तरह-तरह की बनावट और अन्याय से औरो की जमा मार कर साहूकार बन बैठते है सोनें चाँदी के जगमगाहट के नीचे अपने घोर पापो को छिपाकर सज्जन बनने का दावा करते है धन को अपनी पाप वासना पूरी करने का एक साधन समझते है ·· ···'

लेखक की पैनी दृष्टि महाजनी सभ्यता के मूल मे छिपी हुई नीचता, पशुता और बर्बरता तक जाती है। गरीबो के देश मे अमीरो का जुल्म बन्द करने के लिए वह उनका कच्चा चिट्ठा खोलना जरूरी समझता है :

देश के हित के लिए तो हम यही चाहते हैं कि इस तरह प्रगट मे नए सुधार की झलक दिखाकर भीतर से दीये तले अँधेरा रखने वालो का भडा जल्दी फूट जाय जिससे और लोगों की आँखे खुलें और लोग सिंह का चमड़ा ओढने वाले भेडिये को सिंह न समझै ····

समाज मे दो विरोधी शक्तियाँ हैं, भेड़िया और भेड। यह विषमता ईश्वर की देन नही है, 'उसने अपनी सृष्टि मे सब गरीब अमीरो को एक सा बनाया है'। इसे ईश्वरीय देन वे ही मानते हैं जो शोषण करते हैं या शोषण मे सहायता देते है। यह दुनिया का सबसे बडा झूठ है। उसके प्रचारक दया के पात्र नही, दण्ड के भागी है :

'जो लोग ···औरों की दौलत उडाकर उनको भी अपनी तरह बैरागी बनाना चाहें वह मेरे निकट सर्वथा दया करने के योग्य नही हैं और जो लोग ऐसे आज्ञानियो की सहायता करते है वह मेरे निकट ईश्वर का नियम तोड़ते है और ससारी मनुष्यो के लिए बड़ी हानि का काम करते है मेरे निकट ऐसे आदमियो को उनकी मूर्खता का दण्ड अवश्य होना चाहिये जिसमे और लोगों की आँखें खुलें।

सम्पन्न वर्ग एक ओर पाप और भ्रष्टाचार को जन्म देता है, दूसरी ओर दरिद्रता और दुख को। वर्ग समाज मे निहित शोषण और उससे उत्पन्न सघर्ष की चेतना लेखक को है तथा उसकी सहानुभूति शोषित और पीड़ित की ओर है। वह मदनमोहन के विरुद्ध हरकिशोर को खडा करता है और उससे कहवाता है :

मैं गरीब, आप अमीर, मैं दिन भर पैदल भटकता हूँ, आप सवारी बिना एकदम नही चलते, मेरे रहने की एक झोपडी, आपके बड़े-बड़े महल,

मुल्क मे अकाल हो, गरीब बेचारे भूखो मरते हों, आपके यहाँ दिन रात ये ही हा हा ही ही रहेगी।

यहाँ लक्ष्य व्यक्ति नही बल्कि वर्ग है। मदनमोहन पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि है। सामती सस्कृति राजदरबार को छोडकर पूँजीपति के बैठकखाने मे आ गई है। इस परिवर्तन से निम्न वर्ग और निम्नमध्यवर्ग को लाभ नही हुआ है। सामाजिक असमानता मे वृद्धि हो रही है। मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव की दीवारें खड़ी हो रही है। उच्च मध्यवर्ग शासक वर्ग का अनुकरण और उसके सम्पर्क मे आने का प्रयास कर रहा है। वह गरीबो के पसीने से निचोड़े हुए धन को इसलिए पानी की तरह बहा रहा है कि वह सडी-गली रूढियो को पाल सके, झूठा बडप्पन दिखा सके और देश के नाम पर फूटी कौडी नही बचा सके।

जैसे पूँजीपति वर्ग शासक वर्ग से मिल जाना चाहता है, वैसे ही पूजीपति वग से नौकरी-पेशेवाले मिल जाना चाहते है। व्यापारी, दलाल, पण्डित, हकीम, शिक्षक, पत्रकार ये सभी मदनमोहन के हाँ मे हाँ मिलाते हैं। उच्च मध्यवर्ग और उसका कृपाकाक्षी मध्यम और निम्न मध्यम वर्ग समान रूप से देश की दुर्दशा के लिए उत्तरदायी है। एक मिथ्या प्रतिष्ठा का भूखा है, दूसरा झूठी प्रसशा का। श्रीनिवासदास इन पर चोट करते है। उन्होने मार्क्स की भाँति यह दिखाया है कि पूँजीपति वर्ग चिकित्सक, वकील, पुजारी, कवि, वैज्ञानिक को अपना क्रीतदास बना लेता है।[9] वे चाहते है कि पढे-लिखे लोग अपनी आँखे खोले, अपना हक पहचानें और देश को सुधारें।

उनका दृष्टिकोण राजनीतिक न होकर राष्ट्रीय है। वे क्राति नहीं, सुधार चाहते हैं। उनके विचार से धन का उपयोग नये उद्योग, कृषि, शिक्षा आदि कार्यों के लिए किया जाना चाहिए। वे इस पक्ष मे हैं कि पूँजीपति अपनी पूँजी देश-हितकारी कार्यो मे लगाएँ परन्तु इस सम्बन्ध मे उनका कोई निश्चित मत नही है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति रहे या न रहे। वे व्यक्ति का परिवर्तन चाहते हैं, समाज-व्यवस्था के परिवर्तन पर उन्होने जोर नही दिया है। वे प्रतिक्रियावादी शक्तियो की आलोचना करके नही रह जाते, प्रगति का मार्ग भी बताते है। इसके लिए उन्होने ब्रजकिशोर जैसे चेतन और देशभक्त वकील की सृष्टि की है। वह व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की समस्याएँ सुलझाता है। वह देश से गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा और रोग को दूर करने

के लिए प्रयत्नशील है।

वे एक विश्वजनीन उपदेशक की भाँति जीने की कला सिखाते है। गभीर से गभीर और साधारण से साधारण विषयो पर उन्होने अपने मत प्रकट किए है। वे कोरे सिद्धान्तवादी नही हैं। व्यक्तिगत अनुभव से प्राप्त ज्ञान को वे महत्त्व देते है। उनके विचारो को विशेषकर व्रजकिशोर ने वाणी प्रदान की है। वह एक पात्र और वकील है इसलिए उसका कथन किसी हद तक सगत है। सरस वार्तालाप के क्रम मे रोचक दृष्टातो और सूक्तियो के द्वारा दी गई शिक्षा के कारण उपन्यास आचार-शास्त्र का निर्जीव ग्रथ नही बन सका। फिर भी आवश्यकता से अधिक उपदेश ने उसकी रोचकता नष्ट कर दी है। नीतिवादियों को भी रह-रहकर और जबरन गम्भीर बाते बताई जायँ तो वे सुनना पसन्द नही करेगे।

लालाजी के उपन्यासकार के लिए उनका निबन्धकार घातक पर नाटककार सहायक है। उनकी कहानी मे गति न होकर विकास है। उसके चढाव-उतार और गठन मे उन्होने अपूर्व नाटकीय कौशल प्रदर्शित किया है। उन्होने अनेक दृष्टातो, उक्तियो और फुटकर पदो को मुख्य कथा मे इस रीति से जड दिया है कि कथानक अवान्तर प्रसगो के रहते हुए भी सुसम्बद्ध है।

वे कवि की तरह कोमल भावो को उभारने मे समर्थ नही है। हवा-लात का दृश्य सबसे अधिक करुण किंतु सबसे कम प्रभावोत्पादक है। वे नायक पर हँसकर ही पाठको की सहानुभूति प्राप्त करते हैं। उन्होने हास्य का उपयोग चरित्र-चित्रण के लिए और व्यग्य का सुधारात्मक आदर्श के लिए किया है।

वे कवि की तरह वर्णन न कर नाटककार की तरह सकेत करते है। दूसरे उपन्यासकार वेश्या के विषय मे लिखते है तो उसकी वेष-भूषा, रूप-रग, हाव-भाव आदि का चित्ताकर्षक विवरण देने लगते है। लालाजी ने वेश्या की झलक दिखाए बिना वेश्यालय के वातावरण का वास्तविक रूप अकित कर दिया है :

'अय ! सुभानअल्लाह ! क्या जोबन खिल रहा।' 'वल्लाह ! क्या बहार आ रही है ?' 'चश्म बद्दूर क्या भोली, भोली सूरत है !' अय ! परे हटो !' मैं सदके ! मैं कुर्बान मुझे न छेड़ो !' ख़ुदा की कसम ! मेरी तरफ तिरछी नजर से न देखो !'

प्रकरण ३३ में एक दिन की साधारण बातो की चर्चा करते हुए उन्होंने

आधुनिक सभ्यता की सफेदपोशी का नमूना पेश किया है। एक दृश्य देखिए :

लाला मदनमोहन और एक मित्र के मकान पर पहुँचे, बाहर खबर मिली कि 'वह मकान के भीतर हैं 'भीतर से जवाब आया कि 'बाहर गये'।

लाला श्रीनिवासदास ने मध्यवर्गीय समाज को निकट से देखा, परखा और उसके ढोग का पर्दाफाश किया। पर समाज के नाम पर उन्होने व्यक्ति की उपेक्षा नही की। उन्होने व्यक्ति के पतन के लिए वातावरण को उत्तरदायी बनाया है और उसका उत्थान दिखाकर मानवता की अच्छाई में आस्था प्रकट की है। मदनमोहन पिता की उदासीनता के कारण बचपन से हठी और भीरु हो जाता है। उसकी मनोवृत्ति मे स्थिरता नही रहती। वह दूसरो के बहकावे मे तुरत आ जाता है और एक दिन विपत्ति मे पड जाता है। इनसे छुटकारा पाकर वह इतना बदल जाता है कि नया मनुष्य बन जाता है। वह अपनी दुर्बलता की कहानी छिपाने के बदले छपवाकर प्रसिद्ध कर देना चाहता है। उसके चरित्र का विकास मनोवैज्ञानिक होने से स्वाभाविक है। उसकी पत्नी ऐसी भारतीय नारी है जो अपने पुत्र से अपने वेश्यागामी पति को अधिक महत्त्व देती है और उसे देखकर जीती है।

श्री निवासदास की कला का उत्कर्ष मदनमोहन और उसके दरबारियो के चरित्राकन मे है। उनके विश्लेषण मे मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। दरबारियो मे वर्गगत विशेषता के साथ व्यक्तिगत विशेषता है। उनमें चुन्नीलाल सर्वाधिक स्मरणीय है। वह ब्रजकिशोर से पीछा छुडाने के लिए अपनी घडी मे चाबी देने के बहाने आधा घण्टा समय बढा देता है, मदनमोहन से रुपये लेकर जेब मे रख भी लेता है और कहता भी है, "जी नही, हुजूर ! ऐसी क्या जल्दी थी।" प्रकरण ९ मे लेखक ने इन खुशामदी दरबारियो का अपने शब्दो मे परिचय दिया है, जो अत्यन्त सूक्ष्म है। इनकी स्वाभाविकता और सजीवता इनके वार्तालाप और व्यवहार से प्रकट होती है। इनकी लच्छेदार बातें इनके अनुरूप ही है। जब हरकिशोर मदनमोहन को धमकी देकर चला जाता है तब उसके दरबारी इस तरह मुँहदेखी बातें करते हैं :

"ये बदला लेंगे ! ऐसे बदला लेने वाले सैकडो झक मारते फिरते हैं" हरकिशोर के जाते ही मुद्शी चुन्नीलाल ने मदनमोहन को दिलासा देने के लिए कहा, "जो यो किसी के वैर भाव से किसी का नुकसान हो जाया करे

तो बस ससार के काम ही बन्द हो जाँय" मास्टर शिभूदयाल बोले—

"सूर्य चन्द्रमा की तरफ धूल फेकने वाले अपने ही सिर पर धूल डालते है"

पडित पुरुषोत्तमदास ने कहा—

श्रीनिवासदास की तरह राधाकृष्णदास ने १८८१ मे 'निःसहाय हिन्दू" लिखकर सरल कथानक के माध्यम से राष्ट्र की एक गम्भीर समस्या का समाधान प्रस्तुत किया । नायक मदनमोहन एक उदार मुसलमान अब्दुल अजीज की सहायता से गोवध रोकने का प्रयास करता है किन्तु गाय की पूँछ पकड कर वैतरणी पार करने वाले हिन्दू उसका साथ नही देते और कुछ धर्मान्ध मुसलमान उसका विरोध करते है । दोनो वीर अपनी-अपनी पत्नी के साथ सघर्ष करते हुए मारे जाते है ।

हिन्दी-उपन्यास मे पहली बार गोवध की समस्या राष्ट्रीय समस्या के रूप मे उपस्थित की गई है। यदि गोरक्षा के धार्मिक पक्ष पर ध्यान दिया जाता तो उपन्यास साधारण साहित्यिक पर्चा बनकर रह जाता । उसके आर्थिक पहलू को बुनियादी पहलू माना गया है। आर्थिक प्रश्न हिन्दू-मुसलमान दोनो के लिए समान महत्त्व का है। उसका सम्बन्ध पूरे राष्ट्र से है। एक मुसलमान भाई को गोमाता की रक्षा के लिए शहीद बनाकर हिन्दू-मुसलमान दोनो के लिए साम्प्रदायिक एकता का उच्चादर्श उपस्थित किया गया है । इस एकता मे कट्टर हिन्दू और मुसलमान बाधक है क्योकि उनका स्वार्थ यथास्थिति बनाये रखने मे है। लेखक ने हिन्दू-मुसलमान की उस मनोवृत्ति को देखने-दिखाने का प्रयास किया है जिससे पाकिस्तान के निर्माण मे सहायता मिली । उन्होने जातीय और मानवीय भेदभाव के उस प्रश्न को भेदनीति के विधायक राज्य मे उठाने का साहस किया जो आज भी, जब देश दो टुकडो मे बँटा है, हमारे लिए चुनौती बना हुआ है । उपन्यास के अत तक आते-आते यह स्पष्ट हो जाता है कि साम्प्रदायिकता का नशा कितना जहरीला होता है और उसके लिए क्या मूल्य चुकाना पडता है । दोनो पक्ष के लोग हताहत होते हैं पर किसी की हार या जीत नही होती । मदनमोहन और उसके सहयोगियो की पराजय में उनकी विजय का घोष छिपा है। उपन्यास का अन्त करुण होकर भी सुखद तथा अपूर्ण होकर भी साकेतिक है।

प्रो० विजयशंकर मल्ल को अन्त "बच्चो के खिलवाड़-सा" लगा ।[10]

वास्तविकता यह है कि अन्तिम दृश्य उपन्यास की कलात्मक सीमा और उपन्यासकार के सन्देश का सार है। एक अतहीन समस्या का प्रस्तुतीकरण सामाजिक आलोचना एव कथाशिल्प दोनो की दृष्टि से स्तुत्य है। 'गोदान' के अन्त मे इसी तरह स्वार्थांध समाज मे नि:स्वार्थ व्यक्ति की विवशता दिखाई गई है और निर्मम तटस्थता बरती गई है। यह भी ध्यान देने की बात है कि अधिकाश पुराने उपन्यास की भाँति नायक-नायिका के मिलन से न तो 'नि:सहाय हिन्दू' का अस्वाभाविक अत हुआ है और न कथाभाग के मध्य से नाटकीय आरम्भ ही।

पात्र केवल दो प्रकार के है, अच्छे या बुरे। जो अच्छे है उनमे अन्त तक केवल अच्छाई रहती है, जो बुरे है उनमे अन्त तक केवल बुराई रहती है। किन्तु अच्छे पात्रो की विजय और बुरे पात्रो की पराजय दिखाकर उपन्यास को सुखान्त नही बनाया गया है। नीति और कला का यह समन्वय विलक्षण है। प्रधान पात्रो का महत्त्व इसमे है कि वे अपने सृष्टा के आदर्शो के वाहन है। सक्रिय होने के कारण वे कठपुतले नही बन सके। मदनमोहन व्याख्यान देने वाला सिद्धान्तवादी ही नही है, समाज-सुधारक भी है। अब्दुल अजीज निर्भीक, वीर और सज्जन है। 'गोहितकारिणी सभा' मे उसमे हिन्दुओं को उपदेश दिलाना अविश्वसनीय होकर भी असम्भव नही है। इन दोनों की स्त्रियो मे नारी की कोमलता और पुरुष की साहसिकता है। मदनमोहन की पत्नी की आत्महत्या निराशा या विफलता की नही बल्कि त्याग की सूचक है। अपने बलिदान से वह नई सती बनकर भारतीय कथा-साहित्य मे आती है। ये चार पात्र जागरूक मध्यवग के प्रतीक है। पुस्तकालयाध्यक्ष शीतलप्रसाद मिथ्या प्रतिष्ठाभाव से ओतप्रोत मध्यवर्ग का प्रतीक है। उसे मित्र के सामने डीग हाकने और मूर्ख पर धौस जमाने की आदत है। निम्न वर्ग के पात्रों मे नौकर बड़े सजीव है।

इनके अतिरिक्त पसीने से सराबोर दूकानदार, एक पैसा के लिए घटो तक सिर मारने वाला सेठ, बही लिए बुदबुदाता हुआ गुमाश्ना, बेचैन हुण्डी का दलाल, साहूकार की तोद से चोरी का माल निकालता हुआ सिपाही, कलमदान लिए बैठा थाने का मुशी, महावीरी टीका लगाये छटा गुण्डा, दोपहर मे आता हुआ डाकिया,—नई महाजनी सभ्यता के ये प्रतिनिधि झलक दिखाकर चले जाते है। पात्र सभी वर्गों से लिए गये है पर लेखक की सहानुभूति शोषितो और उपेक्षितो की ओर है। वह सेठ के गुमाश्ते की परवशता

का अनुभव कर कहता है, "नौकरी बडी बुरी चीज है, पेट के लिए सभी कुछ करना पडता है।" उसकी दृष्टि महल से झोपडी तक दौड गई है .

लू चल रही थी। बेचारे गरीब लोग भी इस समय अपनी झोपडियो मे सोये थे। अमीरो का तो क्या पूछना था, खसखानो मे ·· ··· आनन्द करते थे।

इस उपन्यास को पढना क्या है बनारस मे उन्नीसवी सदी का एक दिन व्यतीत करना है। वहाँ के बाजार, दूकानें, सडकें, कचहरियाँ, मकान, कमरे आँखो के सामने घूम जाते है। सावजी की कोठरी का यथातथ्य वर्णन सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचायक है ·

अढाई गज की लम्बी, चौडी भी उतनी ही · । एक बडा पुराना फटा टाट बिछा हुआ था, और एक दीया, जिसमे एक ही बत्ती थी, जल रहा था। दुर्गन्ध के मारे नाक फटी जाती थी। पसीने से शरीर और कपडे तो बात क्या है, टाट जो बिछा हुआ था भीग गया।

फ्रेंच प्रकृतवादियो की तरह राधाकृष्णदास का यथार्थ जीवन की कुरूपता के ही चित्रण मे न होकर विविधता के चित्रण मे है, जो यथार्थवाद का स्वस्थ रूप है। उनका बनारस वास्तविक बनारस का कलात्मक प्रतिबिंब है। यदि वहाँ गरमी है, बदबू है, घुटन है, प्यास है, "पखे से हाथ को और हाथ से पखे को कष्ट होता है" तो बरफ का पानी है, पान है, खरबूजे है, बाग है, गगातट की सन्ध्याकालीन शोभा है। वर्णन और वार्तालाप की स्वाभाविकता 'नि.सहाय हिन्दू' की सुन्दरता है।

'परीक्षागुरु' और 'नि.सहाय हिन्दू' भारत की वर्तमान समस्याओ पर प्रकाश डालते है, प० अम्बिकादत्त व्यास का 'आश्चर्यवृत्तान्त' उसके वर्तमान और अतीत दोनो की झाँकी प्रस्तुत करता है। व्यासजी उद्भट विद्वान, प्रभावशाली वक्ता और तेजस्वी लेखक थे। उन्होने कविता, नाटक, आत्मकथा, आलोचना एव कथासाहित्य से हिन्दी-मन्दिर की श्रीवृद्धि की। प० माधवप्रसाद मिश्र के शब्दो मे "भारतेंदु जी ने हिन्दी-भाषा की मनोहर मूर्ति बनाई, मिश्रजी ने उसकी प्रतिष्ठा की और व्यास जी ने पूजा।"[11] भारतेन्दु के समान व्यासजी का हृदय स्वदेशप्रेम से परिप्लावित था। वे कहा करते थे कि "हमे भारतवर्ष के सामने स्वर्ग भी प्यारा नही है।"[12] उनका उपन्यास उनके उत्कट देशानुराग का निदर्शन है। उन्होने एक कल्पित

भ्रमण-कथा के बहाने भारत की प्रकृति, शिल्पकला, तीर्थस्थान, सस्कृत भाषा, शास्त्रीय सगीत, प्राचीन सभ्यता आदि की गौरव-गाथा प्रस्तुत की है। उन्हे मिट्टी से ममता है। वे कालिदास के समान देश के वन, पर्वत और नदियो के पुजारी है। उन्हे विदेश-प्रेमी भारतीय से भारतप्रेमी विदेशी अधिक प्रिय है। उनके दो ही प्रमुख पात्र हैं, एक अग्रेज और एक बगाली। अग्रेज प्राचीन शिलालेखो का अनुशीलन तथा भारतीय सभ्यता और सस्कृति का गुणगान करता है। बगाली बाबू जैसे बीबी के गुलाम हैं वैसे ही अग्रेजी सभ्यता के। व्यासजी की आत्मीयता विद्याप्रेमी अग्रेज से है। ब्राह्म-समाजी बगाली उनके उपहास का पात्र है। वे अग्रेजो के गुण के प्रशसक होकर भी अग्रेजी शिक्षा और शासन के आलोचक हैं। वे अग्रेजी पढकर देश को भूलने वाले युवकों पर व्यग्य करते हैं और भारत की वर्तमान दुरवस्था पर आँसू बहाते हैं। एक पक्ति उनके हृदय की व्यथा को अच्छी तरह व्यक्त कर देती है— "जो भारत पीताम्बरधारी था वह आज नगा हो रहा है।" उन्होने केवल बीते वैभव का बखान नही किया है। वे वर्तमान के प्रति सजग हैं। यह उनकी स्वस्थ राष्ट्रीय चेतना का परिचायक है। उनका उपन्यास एक साथ ही देश का इतिहास और भूगोल है।

उसमे उनकी मौलिक प्रतिभा का निखार है। शिल्प की दृष्टि से वह अपने ढग का आनूठा है। एक व्यक्ति विराधकुन्ड से निकलता है और गया से चित्रकूट तक अपनी यात्रा का वर्णन करता है। अन्त मे वह पाठकों के भ्रम को एक झटके मे यह कहकर दूर कर देता है कि वह स्वप्न देख रहा था। गल्प को सत्य के रूप मे प्रस्तुत करने की कला आत्मकथा-शैली से मिलकर विलक्षण हो गई है।-कथानायक असबद्ध घटनाओ को अन्विति प्रदान करता है। कौतूहलवर्धक कथा और स्पष्ट वर्णन से उपन्यास की रोचकता बढ़ गई है। उसे पढकर कहानी और यात्रा दोनों का आनन्द मिलता है। इसमें दृश्य जगत का मनोरम चित्रण है। वस्तु के विवरण मे अनावश्यक विस्तार और क्रिया के विवरण मे अनावश्यक सक्षेप समान रूप से कथाप्रवाह मे बाधक होते हैं। व्यासजी दोनो प्रकार के दोषो से मुक्त है। रूह का ऐसा वर्णन रीतिकाव्य मे दुर्लभ है, 'कोमलता, सुन्दरता, मधुरता, मोहनता और अलौकिकता तो उसके पसीने की बूँदो से चुई पड़ती थी'। जागने की क्रिया का वर्णन इस तरह किया गया है :

वे भी ऊँ आ कर, करमर हो, अँगुली तोड़, बाँह मरोड़, देह ऐंठ,

लोटपोट कर, उबासी ले, आँखे मल, कपडा सम्हाल, इधर उधर देखते औ आँखें मिचमिचाते उठ बैठे हुए ।

प्रादेशिक उपन्यास

राष्ट्रीय उपन्यास की तरह प्रादेशिक उपन्यास भी राष्ट्रीय चेतना का साहित्यिक प्रतिफलन था । कुछ लेखक स्वदेशानुराग से प्रेरित होकर विशिष्ट प्रदेश या अचल के जीवन का चित्रण करने मे प्रवृत्त हुए । उन्हे स्वदेश के भूगोल से प्रेम था इसलिए उन्होने विशिष्ट स्थान को उपन्यास की पृष्ठभूमि के लिए चुना । इसके मूल मे प्रातीयता की वह भावना नही थी जिसका दूसरा नाम सकीर्णता है । उनके उदार दृष्टिकोण का परिचय इससे मिलता है कि उन्होने सीमित परिसर मे भी विषय की विविधता प्रदर्शित की और विश्व-जनीन भावो को व्यक्त किया । उनकी रचनाओ की प्राकृतिक सुषमा मात्र मनोरजन की वस्तु नही बल्कि देशमाता का अग है ।

प० बालकृष्ण भट्ट, जो 'भारतीय राष्ट्रीयता के जन्मदाताओ और उसके प्रारम्भिक उपासको मे थे'[13], प्रादेशिक उपन्यास के जन्मदाता है । उन्हे स्थान का बोध और स्थान तथा उसके निवासियो के सम्बन्ध का परि-ज्ञान था । विशिष्ट पृष्ठभूमि मे पात्रो का वैचित्र्य दिखाना तथा प्रथम से द्वितीय को अधिक महत्त्व देना उनकी विशेषता है । उन्होने अवध के ग्राम एव नगर के सामाजिक व्यवहार का वास्तविक रूप अकित किया । उन्हे आदर्शवादी या भावुकतापूर्ण चित्रण प्रिय नही था .

लोक कहेगे नीम के कीड़े को नीम ही भाती है अपने वतन की झूठी तारीफ गा रहा है सो मेरा मतलब नही किन्तु मैं यहाँ दिखलाया चाहता हूँ कि नुमाइश नई सभ्यता और टटके फैशन की छिलावट के साथ ही साथ छिपी हुई बुराइयाँ भी बढती जाती हैं ।[14]

भट्टजी के उपन्यासो की सख्या छह है : चार अपूर्ण और दो पूर्ण । प्रथम उपन्यास का अध्ययन पिछले अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है । उसके बाद लिखित तीन उपन्यासो के कुछ अश उपलब्ध है । वे इस तथ्य का द्योतन करते हैं कि भट्ट जी की परिधि बड़ी थी और उन्हे नित नूतन विषयों मे रुचि थी । वे 'गुप्त बैरी' (१८८२) मे जागीरदार और महन्थ तथा 'उचित दक्षिणा' (१८८४) मे वकील और मुख्तार के जीवन पर प्रकाश डालना चाहते थे । पहला उपन्यास प्रेम और साहसिकता का रमणीय रूप प्रस्तुत

करता है। जागीरदार अपने पुत्र को एक महन्थ के हाथ सौप जाता है। महन्थ उसकी जागीर हथियाकर उसके बेटे को दास के समान रखता है। जागीरदार का बेटा चतुर, साहसी और सुन्दर किसान-कन्या इरम्मदा के रूप पर मुग्ध होकर उसे आवेश के साथ प्यार करने लगता है। अपनी प्रेयसी के भाई के साथ वह लुटेरो की अँधेरी गुफा मे जाता है, जहाँ उसे अपने बैरी के विरुद्ध सहायता मिलने की सम्भावना है। उपन्यास की शक्ति का स्रोत रोमांस न होकर सामाजिक यथार्थ है। मठाधीश के पाखड और धन से उत्पन्न बुराई का पर्दाफाश किया गया है। एक किसान-कन्या में सौन्दर्य का दर्शन सौन्दर्य के उस मापदण्ड का परिचायक है जिसका उपयोग प्रेमचन्द ने किया।

'उचित दक्षिणा' मे भट्टजी ने पाठको को कचहरी का दृश्य दिखाया है पर उनकी दृष्टि शहर और गाँव, धनी और गरीब सब पर है। 'टाट के परदो की आड किए तेल की मिठाई धूप मे बेचनेवाले, वस्ती के छप्पर पर छावनी लगाते मजदूर' वातावरण को यथार्थता प्रदान करते है। वकील गजानन 'परीक्षागुरु' के ब्रजकिशोर के समान आदर्शवादी है।

'सद्भाव का अभाव' चरित्र-प्रधान उपन्यास है। इसका आरम्भ एक पात्र से होता है। जुतहर गाँव की मदाकिनी एक बडे घर की विधवा है। वह निर्धन होने पर प्रयाग मे आकर रहती है। उसे केन्द्र बनाकर अनेक प्रतिनिधि पात्रो का यथार्थ चित्रण किया गया है। वह पुराने विचार की है। उसे नई शिक्षा से उतनी ही नफरत है जितनी नई पोशाक से। यदि उसमे ग्राम्य भोलापन है तो उसकी दासी गुलबिया मे नागरिक चचलता है, जिसका शब्दचित्र इस प्रकार अंकित किया गया है :

उमर मे २२ या २३ वर्ष की आँख कटीली ओठ चौड़े अग सब सुडौल यह जब श्याम मजनी पर लाल बिन्दा लगाकर पान खाय बड़े ठसक से निकलती थी उस समय विधाता बाजीगर के मोहन मन्त्र का पिटारा मानों अपने ही हस्तगत समझती थी...... ..

भट्टजी पात्रो के सामाजिक सम्बन्ध से कथा में एकसूत्रता लाते हैं। उनकी कला की व्यापकता मंदाकिनी के पडोसी रेवतीदास नामक कपटी बनिया के चरित्र-चित्रण मे है। वे उसका रेखाचित्र अकित करते हैं, उसकी आकृति को उसके अन्तर का विज्ञापन बनाते हैं और उसके स्वभाव का विश्लेषण करते हैं। "माला एक दिन इसके हाथ से अलग नही होता था .....

जल अपने हाथ का भरा पीता था, गगा स्नान नित्य का नियम था पर उस्तादी और चालाकी मे पूरा ही था।" भट्टजी अपनी ओर से अधिक टीका-टिप्पणी नही करते। रेवतीदास के कथन से उसके अचेतन में रहने वाले भाव-विचार का वास्तविक परिचय मिलता है ·

जल कैसे पीवे कलियुग अब भरपूर आ गया बड़े-बड़े कुलीन ब्राह्मण बर्फ पीने लगे · · यही सब देखभाल हम तो पानी तक अपने हाथ का भरा पीने लगे (फिर जभा कर) हरे हरे गोविन्द—डोल माज धो रख आये हैं तनिक निराला हो तो भर लावें पानी—गुलबिया ने कहा था सो भी न आई है—

गोविन्द के साथ गुलबिया की याद करने वाला रेवतीदास मध्यवर्गीय व्यापारियो का प्रतिनिधि है, जो भीतर से दो होते है।

'नूतन ब्रह्मचारी' (१८८६) भट्टजी का प्रथम सफल प्रयोग है। इसमे एक बालक के रूप-गुण से प्रभावित होने वाले एक डाकू का हृदय-परिवर्तन दिखाया गया है। शीर्षक साकेतिक, उपशीर्षक ('एक सहृदय के हृदय का विकास') सार्थक और आदि एव अन्त आकर्षक है। आरम्भ मे वातावरण का वर्णन विषय-वस्तु का निर्देश कर देता है। विनायक और डाकू एक बार मिलकर फिर पन्द्रह वर्षों के बाद मिलते हैं। इस लम्बे अरसे मे क्या हुआ, यह नही बताया जाता है। "इस बात को हुए पन्द्रह वर्ष बीत गये।" अन्तिम परिच्छेद का यह प्रथम वाक्य कथा की गति को सहसा बदल देता है। वर्णन मे उतनी प्रभावोत्पादकता नही होती जितनी संकेत में है। प्रथम परिच्छेद की अपेक्षा अन्तिम मे अधिक नाटकीयता है। विनायक और डाकू के पुनर्मिलन का दृश्य बड़ा मार्मिक है। डाकू घायल पड़ा है, विनायक उसे देखकर पहचान जाता है। डाकू उससे कहता है कि वह विनायक के पास एक सन्देश पहुँचाना चाहता है। उसे क्या मालूम कि उसके पास जो सुन्दर युवक खड़ा है वह विनायक ही है। कैसी नाटकीय स्थिति है। एक के कौतूहल और दूसरे की अज्ञानता से आनन्द उठाता हुआ पाठक दोनो की बातचीत सुनता है :

विनायक ने समझा यह कुछ हिचकता है। तब उससे कहा "आप कुछ भी सन्देह मत कीजिये, आप यही समझिये कि आप स्वयं विनायक से अपना हाल कह रहे हैं।"

विनायक के चरितांकन मे बहिरग और अन्तरंग दोनो पर समान दृष्टि डाली गई है। उसके चेहरे से भोलापन टपकता है, छोटी-छोटी आँखो मे हृदय का भाव झलकता है, "पतले भीतर को धँसे हुए ओठो से दृढता भासित होती है। उसका रेखाचित्र बडी सूक्ष्मता के साथ अंकित किया गया है

"विनायक क्रोध और दुख से जब भर जाता था तब उसके दोनो भावो के ऊपर सिकुडन पड जाती थी और मुँह खुल जाता था और मोतियो की लडियों के समान चमकदार बतीसी दाँतो की आभा काँपते हुए बिम्ब सदृश ओठो पर पडती हुई मानो इस बात को सूचित करती थी कि क्यों मेरे ही मन की न हो ··· ···।"

डाकुओ को अतिथि समझ कर विनायक उनका हर्ष और उत्कठा के साथ स्वागत करता है, उन्हे घर की चीजें दिखा देता है लेकिन जब वे उसके खिलौने की ओर ध्यान नही देते तब उसकी सारी उमग काफूर हो जाती है और वह मेहमानो की ओर से उदासीन होकर एक गम्भीर दार्शनिक की तरह स्वय खिलौने को देखने लगता है। (इससे डाकुओ को घर की सभी चीजें अच्छी तरह देखने का मौका भी मिलता है)।

डाकू का चरित्र रहस्यमय है। उसके चित्रण मे नाटककार की तटस्थता और कथाकार के कौशल का परिचय मिलता है। वह विनायक का घर लूटने आता है लेकिन उसके भोलेपन से ख़ुद लुट जाता है। वह विनायक को देखता है और कुछ सोचता भी है। लेखक यह नही बताता कि वह क्या सोच रहा पाठक चाहे तो यह अनुमान कर सकता है कि वह डकैती छोडने की बात सोच रहा है। इसी तरह दूसरी बार विनायक से मिलने के समय उसके भाव वाणी मे समा नही पाते है। फिर भी वह कुछ नही कहकर सब कुछ कह देता है। उसकी मूकता विवशता, गभीरता और भावना आसानी से पकड मे नही आती है।

उपन्यासकार के विचार अव्यक्त है, दूसरे शब्दो मे, वे कथा और चरित्र के माध्यम से परोक्ष रूप से व्यक्त किए गए है। विनायक निरस्त्र होकर भी डाकू-सरदार के हृदय पर विजय प्राप्त करता है और डाकू-सरदार अपने साथियों से पराजित होकर भी जय का अनुभव करता हुआ मरता है। उसकी मृत्यु तब होती है जब उसके आत्मान्वेषण की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। वह अकेले अपने हत्यारे साथियो से संघर्ष करते-करते आहत होता है। इन कारणों से उसकी मृत्यु भी दुखद होती है। उसका हृदय-परिवर्तन कराकर

क्रूरता पर नम्रता की, हिंसा पर अहिंसा की और असत्य पर सत्य की नैतिक विजय दिखलाई गई है। उसके हत्यारो की हत्या करवा कर साहित्यिक न्याय किया गया है। 'नूतन ब्रह्मचारी' सुखद दुखात उपन्यास का उत्तम उदाहरण है।

इसमे भट्टजी ने दक्षिण भारत की एक मनोरम झलक देने की चेष्टा की। मानवीय एव प्राकृतिक दृश्यो मे स्थानीय रग अच्छी तरह उभरा है। वेश-भूषा और रीति-रिवाज से विशिष्टता प्रकट होती है। वन, पर्वत, टीले, नदी, गुफा, डाकुओ के कारनामे आदि साहसिक उपन्यास के उपकरण हैं पर इनके वर्णन मे लालित्य और सौन्दर्य है। 'वृक्षो के कोमल प्रवाल सदृश पल्लव', 'साँपों से गुथे हुए चन्दन के पेड', इस तरह की व्यंजना मे चित्रमयता है। निम्नलिखित पक्तियो मे रंग और स्पर्श का बोध कराने की अपूर्व क्षमता है। इन्हे पढकर पाठक विनायक की तरह स्फूर्ति का अनुभव करता है।

विनायक सैर के वास्ते इस टीले पर चढ गया। ··नीचे ही गोदावरी की चद्दर का निर्मल जल अति वेग से एक पहाडी पर नीचे गिरता था और सायकाल की लालिमा मे इस जल के शुभ्र रग की, मोटी धारा की कुछ अद्भुत ही शोभा थी। यहाँ की वायु मे जो जलकणो की ठढक भर रही थी उससे राह के थके विनायक को अत्यन्त सुख मिला। नीचे उतर कर एक छोटे चट्टान पर अपने हथियार रख मुँह-हाथ धो पानी पीने लगा।

भट्टजी ने नगर जीवन को उपन्यासो का विषय बनाया है परन्तु उससे उनका नगर के प्रति आकर्षण नही बल्कि विकर्षण लक्षित होता है। उन्हे आधुनिक नागरिक सभ्यता से घृणा है। उनकी भावना 'सौ अजान एक सुजान' (१८९०–९१) मे व्यक्त हुई है। इसमे उन्होने अनन्तपुर नामक एक ठेठ कस्बे मे नागरिक सभ्यता के प्रचार का दुष्परिणाम दिखाया है। जितने बुरे पात्र है वे शहर से आने वाले है। उनके सम्पर्क मे आकर कस्बे के लोग भी पतन की ओर उन्मुख हो रहे हैं। भट्टजी ने एक भोलेभाले दरवान के मुँह से नगर जीवन के प्रति अपना आक्रोश प्रकट किया है। वे स्वय अपने दरवान के समान सरल ग्रामीण जीवन के प्रेमी थे। अपने पात्र से उनका तादात्म्य हो गया है। अवध की नवाबी नष्ट होने पर दरबार की वेश्याओ भाँडो, उस्तादों कत्थको और अमीरो की जमात अनन्तपुर में बस गई है। उन्होंने नाम, पेशा, वेश बदल लिए हैं। हुमा बेगम के नाम से प्रसिद्ध वेश्या पर लखनऊ की किसी बेगम का सदेह किया जाता है। सामंती सस्कृति की

टूटी डाल से बिछुडे हुए मुफ्तखोरो ने एक छोटे-से कस्बे को 'दिल्ली और लखनऊ का नमूना' बना दिया है। इनकी धूर्तता, चालाकी, सफेदपोशी और बेशर्मी पर निर्मम प्रहार करने मे भट्टजी की तगडी कलम अचूक है।

उनको धरती से मोह है। उन्होने उसकी शोभा पर शरदाकाश को न्यौछावर कर दिया है। चाँदनी उसकी हँसी है, फूल उसके गहने है। अवध की नदी, ऋतु, वन, पेड़, पक्षी सभी वहाँ की 'मरकतमयी' भूमि के वैभव है। गाँव से कुछ दूर सघन कुंजो के बीच पुराना पवित्र मठ, वहाँ के मेले, द्वापर से लाने वाली धूनी आदि स्थानीय दृश्य को आलोकित करते हैं। ग्राम पाठ-शाला और मध्यवर्गीय गृहस्थी की झाकी सच्ची और मार्मिक है। जेठ की सूनी दोपहरी मे एक ओर पुराने खण्डहरो मे चील की तीखी आवाज सुनाई पडती है, दूसरी ओर :

प्रत्येक गृहस्थो के यहाँ घर २ सब लोग भोजन के उपरान्त विश्राम-सुख का अनुभव कर रहे हैं; नीद आ जाने पर पखा हाथ से छूट गया है, खुर्राटे भरने लगे हैं—स्त्रियाँ गृहस्थी के कामकाज से छुटकारा पाय दूधमुँहे बालको को खेला रही हैं—कोई-कोई बालक बालिकाओं को इकट्ठे कर उनके रिझाने को कहानियाँ कह रही हैं—कोई-कोई नवोढा अपनी हमजोली सखी सहेली से गतरात्र मे अनुभूत अपने प्राणनाथ के प्रेमालाप की कथा सुना रही है—कोई रूपगर्विता बार-बार दर्पन मे मुख देख-देख वेशभूषा की सजावट कर रही है—कोई-कोई बडी जगरैतिन गृहस्थी का सब काम शेष होते देख जेठ के दीर्घ दोपहर की ऊब दूर करने को सूप की फटकार से अपने परोसी के विश्राम मे विक्षेप डाल रही है—

भट्टजी ने सामंतवाद के ध्वसकाल का दृश्य उपस्थित करते हुए विभिन्न वर्गों के नैतिक पतन पर प्रकाश डाला है। सेठ के लडके नवाबो और तालुकेदारो की नकल कर रहे हैं। उनके पास 'खुशामदी चुटकी बजाने वाले मुफ्तखोरों' का जमघट लगा रहता है। वे यौवन, धन और अधिकार के मद मे मतवाले है। उन्हे नाचगान, खेलकूद, साज-सिंगार से शौक है। वे दिन मे बाग की सैर करते हैं और मेले मे भद्र महिलाओ का सतीत्व नष्ट करते है। पुरोहितों मे मनुष्यता नही है। 'पुरोहिती कर्म से जीनेवाले सौ पचास इकट्ठे किये जायँ तो विरले एक-दो उनमे से ऐसे निकलेंगे जो अवारगी, उजड्डपन और छिछोरे-पन से खाली होगे'। मठ के पण्डे और पुजारी भी ऐसे ही है। वैरिस्टर और

वकील मुवक्किल को उलटे छुरे से मूडते हैं। कोतवाल के लिए '५०० रुपये रोज बिना पैदा किये दातून करना हराम है'। देश की दशा है कि सज्जनों के दर्शन नही होते हैं और दुर्जनो की पूजा होती है। भट्टजी की सामाजिक दृष्टि गत्यात्मक है। उन्होने रईसो के आमोद-प्रमोद, रहन-सहन का वास्तविक वर्णन किया है, पुरोहितो और पण्डो की कटु आलोचना की है तथा तत्कालीन शासन व्यवस्था पर चुभता व्यग्य किया है। उन्होने ऐसे व्यक्ति का निर्माण किया है जिसमे समाज को बदलने की सामर्थ्य है। दो युवक सेठो को एक शुभचिन्तक की सहायता से सुधारक भट्टजी ने यह दिखाया है कि बुद्धिजीवी वर्ग ही पूँजीवादी समाज मे क्रांति कर सकता है।

वे समाज के आलोक मे व्यक्ति को देखते है फिर भी उसके रूप और आकर्षण, सबलता और दुर्बलता पर उनकी पैनी दृष्टि रहती है। वे भले-बुरे, मुख्य-गौण सभी प्रकार के पात्रो का व्यक्तित्व उभारकर सामने रख देते हैं। लाला श्रीनिवासदास की भाँति वे अपने नायको का चित्रण मनोवैज्ञानिक भूमि पर नहीं कर सके हैं पर उन्होने उनका पतन और उत्थान क्रमिक और स्वाभाविक ढंग से दिखाया है। चन्द्रशेखर और पचानन नायको के नायक हैं। चन्द्रशेखर आदर्श का पुतला है। पचानन चतुर, अनुभवी, व्यवहार-कुशल होते हुए भी हँसमुख, मौजी और मिलनसार है इसलिए इसमे वास्तविकता और सजीवता है। घूसखोर हाकिम, कजूस बनिया और लिफाफाबाज हकीम का व्यंग्यचित्र सफल हुआ है। बुद्धू पाण्डे, फहमुआ और मखनिया मे स्वामि-भक्त नौकर और मुँहलगी दाई के दर्शन होते है। कपटी, कजूस बुद्धदास का परिचय इस प्रकार दिया गया है :

जैनधर्म-पालन मे अपने को बडे-बड़े श्रावको का भी आचार्य समझता था— स्वास लेने और छोड़ने मे जीवहिंसा न हो, इसीलिए रातोदिन मुँह पर ढांठा बाँधे रहता था पर चित्त में कही दया का लेश भी न था—पानी चार बार छानकर पीता था पर दूसरे की थाती समूची की समूची निगल जाता था········

बालकृष्ण भट्ट ने पश्चिमोत्तर प्रदेश के प्रति जो प्रेम प्रदर्शित किया है वह ठाकुर जगमोहन सिंह ने मध्यप्रदेश के प्रति किया है। ठाकुर साहब की विशिष्टता यह है कि उनमें उपन्यासकार के साथ कवि मिल गया है। उनका जन्म विजयराघवगढ़ (मध्यप्रदेश) में एक राजघराने मे १८५७ के

विप्लव के समय हुआ। उनके पिता ने विप्लव मे अग्रेजो का साथ नही दिया, इसलिए उनका राज्य जब्त हो गया। ठाकुर साहब बनारस मे शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे गये। वहाँ उन्होंने बारह वर्ष रहकर अग्रेजी, संस्कृत, बगला, उर्दू आदि का अध्ययन और अनेक ग्रन्थो का प्रणयन किया तथा साहित्यिक सम्राट भारतेन्दु से मित्रता की। वे अपने प्रदेश मे तहसीलदार और डिप्टी कलक्टर बनकर रहे। सरकारी नौकरी मे भी उन्होने अपना समय अध्ययन, लेखन और भ्रमण मे बिताया। मुख्यत: और मूलत: कवि होते हुए भी इन्होने अपनी प्रथम गद्य-रचना 'श्यामास्वप्न' (१८८८) मे उपन्यास को माध्यम बनाया।

'श्यामास्वप्न' जीवन का गद्यकाव्य है। उसमे यथार्थ और भावुकता, अनुभूति और कल्पना का सम्मिश्रण है। इसकी नायिका श्यामा एक दरिद्र ब्राह्मण कुमारी है। उसका पडोसी श्यामसुन्दर सम्पन्न क्षत्रिय कुमार है। एक दिन श्यामा अपनी अटारी पर बाल सुखा रही है और श्यामसुन्दर अपने कविताकुटीर मे कविता लिख रहा है। दोनो एक दूसरे के मुख को देखकर और हृदय के भाव को समझकर मुसकरा उठते है। प्रेम का अकुर फूट पडता है। यह अकुर वास्तविकता की भूमि पर रोमानी रग लिए विकसित होता है। प्रेमी प्रेमिका के परिवार से स्नेह-सम्पर्क बढाता है, उसे अपने घर पर कविता-कहानी सुनाकर मोह लेता है और उसकी छोटी बहन के हाथ कमल के कोष में पत्र रखकर भेजता है। वे पास रहकर भी दूर रहते हैं। उनकी आँखें दर्शन के लिए आकुल रहती हैं। उन्हें कुछ दिनो के लिए बिछुड़ना पड़ता है। विदाई की बेला मे आँखो के पानी से हृदय की मिठास मिल जाती है। श्यामा श्यामसुन्दर के नेत्र को आँचल से पोछती है, श्यामसुन्दर उसकी पलकों को चूमकर पोछता है। उसका विश्वास है कि "पाती से आधी भेट होती है" इसलिए वह श्यामा को अपना पता लिखकर लिफाफा दे जाता है। सुप्रसिद्ध अग्रेजी कवि जौन डन का यह कथन यहाँ लागू होता है, "प्राणों के मिलन मे चुम्बन से पत्र अधिक सहायक होते हैं" (मोर देन किसेज लेटर्स मिंगल सोल)। यात्रा से लौटने पर श्यामसुन्दर विवाह का प्रस्ताव रखता है। श्यामा अपनी विवशता प्रकट करती है। वह अधीर होकर आत्महत्या करने पर उतारू हो जाता है। श्यामा हारकर उसे सकेतस्थल पर बुलाती है। नदी-किनारे सायकाल प्रथम समागम होता है। श्यामा माँ बनकर रह जाती है, पत्नी नहीं बन पाती है। स्वच्छन्द प्रेम की कहानी पूरी होकर भी अधूरी

रह जाती है।

ठाकुर जगमोहन सिंह की प्रेम-भावना लौकिक रस मे पली हुई है। उन्होंने दैनिक और पारिवारिक जीवन की सीमा में प्रेम के मधुर प्रसगों की परिकल्पना की है। उनके प्रेमी-प्रेमिका का मिलन परिचित परिस्थितियो मे होता है :

एक दिन श्यामसुन्दर प्रातःकाल स्नान को जाते थे, मैं भी नहा के नदी की ओर से आती थी, हम दोनों गली मे मिले, दिन निकल चुका था, पर उस समय वहाँ कोई न था, ज्योंही उनके निकट पहुँची बदन काप उठा, आँखे भर आईं और पिंडुरी थरथराने लगी— इतने मे मेरी एक और सखी सावित्री नाम की पहुँच गई, हाथ भी कपने लगे और माथे की गघरी गिर पडी, सावित्री ने मुझे थाम्ह लिया नही तो मैं भी गिर पडती, गघरी तो चूर-चूर हो गई, श्यामसुन्दर हँस के चले गये।

उनकी कला चयन मे है। वे विशिष्ट मनोदशाओ, क्षणो और स्थितियों को सामने लाते हैं। इससे प्रभावित होकर पाठक नायक-नायिका के प्रति संवेदनशील होते हैं और उनके सुख-दुख मे सम्मिलित होना चाहते हैं। नायिका के मुँह से नायक-नायिका के भाव की व्यजना कराकर लेखक ने पाठकों के मन मे वैसा ही भाव उत्पन्न कर दिया है।

वस्तु के चुनाव और विन्यास मे उनके दृष्टिकोण का आभास मिलता है। उन्होने तीन कथा-सूत्र गुम्फित किये : दो युवको का एक युवती से प्रेम, दो युवतियो का एक युवक से प्रेम और एक गरीब लड़की का अमीर लडके से प्रेम। इनमें केवल अतिम प्रेम ही उभर सका है। यदि प्रथम दो प्रेम-सम्बन्धो का विकास दिखाया जाता तो नाटकीयता की सृष्टि होती। किन्तु ऐसा नही किया गया क्योकि लेखक के प्रयोजन की सिद्धि दरिद्र स्त्री के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने पर ही हो सकती थी। श्यामसुन्दर श्यामा की छोटी बहन को उपहार और घरवालों को नियत्रण देकर तथा उनकी दरिद्रता दूर कर अपनी सहज उदारता एवं निःस्वार्थ स्नेह प्रकट करता है। शरत और जैनेन्द्र के उपन्यासों ('श्रीकान्त', 'व्यतीत') मे धनवती नायिकाएँ ही विपन्न, नपुंसक नायकों की आर्थिक सहायता करती हैं। 'श्यामास्वप्न' मे ऐसी अस्वा-भाविकता एवं अव्यावहारिकता नही है।

यहाँ प्रेम की समस्या के साथ आर्थिक और सामाजिक समस्याएँ जुड़ी

हुई हैं। एक ब्राह्मण कुमारी से दो क्षत्रियकुमारो का प्रेम दिखाकर अन्तर्जातीय एव गन्धर्व विवाह का समर्थन किया गया है। "पहले ऊँची जाति का आकाक्षी और विशेपकर ब्राह्मणियों पर नेत्र लगाने वाला पापी और हत्यारा गिना जाता था।" कमलाकान्त इसे सामाजिक अन्याय और नैतिक असगति मान कर इसका प्रतिवाद करता है। श्यामसुन्दर लेखक के इस मत का पोषक है कि यदि दरिद्र ब्राह्मण-कुमारी से कोई ब्राह्मण-कुमार विवाह नही करे तो क्षत्रियकुमार को कर लेना चाहिए। दोनो प्रेमी सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करते है। उनका विद्रोह जातिगत सकीर्णता से नही, मानवतावादी आदर्श से प्रेरित है। कमलाकान्त तो ब्राह्मणो द्वारा किये गये अत्याचार पर घृणा प्रकट करते हुए शूद्रो के साथ खुलमखुल्ला भावात्मक सम्बन्ध जोड़ता है।

डा० श्रीकृष्णलाल ने 'श्यामास्वप्न' की भूमिका मे यह मान लिया कि उसमें "यथार्थवादी प्रवृत्ति का पूर्ण अभाव" है। उसमे निश्चय ही कुछ तत्त्व ऐसे हैं जो परम्परागत कहे जा सकते हैं पर समष्टित. उसमे आधुनिकता का स्वर ही प्रबल है। विचार की दृष्टि से जगमोहन सिंह न केवल अपने युग के साथ हैं बल्कि उसका मार्ग-प्रदर्शन भी करते है। नर-नारी के सम्बन्ध की कल्पना में उन्होने युग को भी पीछे छोड़ दिया है। उन्होंने रीतिकालीन वर्जना का तीव्र विरोध किया है। वे यौन-सम्बन्ध को अस्वीकार नहीं करते पर उनकी अमिट पिपासा शारीरिक रस से शान्त होने वाली नही है। उनके प्रेम की तुलना रीतिकालीन मासल प्रेम या छायायुगीन अशरीरी प्रेम से नही की जा सकती है, न ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे यथार्थवाद के नाम पर वर्णित मैथुनवाद से उसकी कोई समता है। डी० एच० लारेंस के समान वे नर-नारी के स्वाभाविक सम्बन्ध के समर्थक हैं। अधोलिखित अवतरण मे जो भावावेश है उसे साधारण पाठक अश्लीलता मान ले तो आश्चर्य नही।

मैंने उनके कर कमल पकर अपने हृदय से लगाये—उनने मेरे हाथ को ले अपने ओठो से लगाया, मैंने झीका भी नहीं, मेरा हृदय तनिक भी उस अपूर्व आनन्द को स्मरण कर न मुड़ा और मुझे उस समय ऐसा सुख हुआ जो मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था, ज्योंही मैं उस समय की तरगो के बल से आगे झुकी उनका अनुपम मुख निरखने लगी—और उनके काले नैनों की गम्भीरता मे उनके उस प्रेम को बाँचने लगी' जो अभी उनके अधर पल्लव से निसरा था—त्योंही उन्होने मुझे गलबांही देकर हृदय से लगा लिया—हम

लोगों के अधर मिले और बडे विलम्ब में चुम्बन का अनुकरण शब्द निकला।

मिलन की यह तीव्र अनुभूति और उसका यथातथ्य एन्द्रिय वर्णन रीतिकाल मे ढूढने पर शायद ही मिलेगा, नये उपन्यासों मे मिले तो मिले। श्यामा के भाव एक प्रेमिका के ही भाव हैं पर वे उसके हृदय की गहराई से आये है। वह अपने प्रेमी की भाँति प्रेम के ससार में किसी प्रकार का बन्धन और व्यवधान पसन्द नही करती। वह पत्र में लिखती है :

आपके बदन और मुख हमारे दोनो आँखो के सामने झूलते रहते हैं पर आपके कुटीर के द्वार की जाली नैनो को तुम्हारे तक पहुँचने को रोक देती है।

श्यामा का प्रेम 'शुद्ध और पावन' है, 'जिससे इन्द्रियों से कुछ सम्बन्ध नही', और 'जो आत्मा के दृष्टिगोचर हो चुका था'। श्यामसुन्दर उससे जब मिलता है तब उसके अधरो पर चुम्बन के रूप मे हृदय की पवित्रता की छाप छोड़ जाता है। उसके सम्बन्ध मे श्यामा कहती है कि 'दिन भर मेरा गुन गाते और रात को मेरा स्वप्न देखते'। वह उसे देवता मानकर पूजती है और कहती है कि 'इस प्रकार की पूजा सबसे उत्तम होती है'। वस्तुतः इनकी पूजा, इनकी पीडा साधना और इनकी प्रतीक्षा आराधना है।

ठाकुर साहब ने नारी और प्रकृति को कवि की आँखो से देखा है। प्रकृति के विविध रूपो के चित्रण मे उनके गहरे अनुभव, सूक्ष्म निरीक्षण और अपार सहृदयता का परिचय मिलता है। प्रकृति मनुष्य का और मनुष्य प्रकृति का शृगार है। जब श्यामा ने श्यामसुन्दर को देखा तब उसके द्वार पर छाई लता से 'उसका मुख कुछ ढका था, ऐसा जान पड़ता था कि उस मण्डप में अकेला गुलाब का फूल खिला हो'। प्रकृति कभी प्रेम का क्रीड़ास्थल बनती है, कभी स्वय उसमे सहयोग देती है। जब गर्मी की रात में श्यामा अटारी पर सोती है तब चाँदनी मे अपनी छत पर सोये हुए श्यामसुन्दर का बिछौना स्पष्ट दीखता है। जब दिनकर अपने हाथ से पश्चिम दिशा के मुख में गुलाल लगा देता है, तब नदी-किनारे संध्याबेला में दोनो का मिलन होता है। वन मे श्यामसुन्दर का विरह-गीत गूँजता है और धीर समीर श्यामा के शरीर का स्पर्श कर आती है एव उसका श्रम मिटाती है। हमारे कवि-उपन्यासकार को विश्वास है कि कुंजगली, शैलवन, नदीनाले में श्यामा श्यामसुन्दर की प्रीति की कहानी गूँजती रहेगी। उन्होंने प्रकृति की गोद में

जीवन के शाश्वत सत्य को स्थान देकर अपनी सीमित पृष्ठभूमि का असीम विस्तार किया है।

दण्डकारण्य का प्रदेश उनके उपन्यास का एक पात्र बन गया है। उसके वन-पर्वत, पशु-पक्षी, नदी-निर्झर, लता-कुंज अपनी सुन्दरता मे सजीव हो उठे हैं। प्रकृति-चित्रण मे कल्पना का रंग है किन्तु मानवीय दृश्य के वर्णन मे यथार्थ का पुट है। श्यामापुर के मन्दिर, सराय, पाठशाला, राजपथ, धूल-भरी गलियाँ, टूटी-फूटी दीवारे उपन्यासकार के स्मृतिपट पर अंकित हैं। वहाँ के कथाकोविद, भोलेभाले निवासी और उनकी लोककथाएँ, ग्रामगीत, वार्तालाप उनके प्राणो मे बस गए हैं। उन्होने ग्रामजीवन की जो झाँकी प्रस्तुत की है वह वास्तविक होते हुए भी आकर्षक है। 'धानो के खेत जो गरीबो के धन है इस ग्राम की शोभा बढाते हैं'। स्थानीय रंग मे अखिल भारतीय दृष्टिकोण की झलक मिलती है। श्यामापुर एक भारतीय गाँव का नमूना है।

सामाजिक उपन्यास

ठाकुर जगमोहन सिंह की भाँति प० राधाचरण गोस्वामी कथासाहित्य के क्षेत्र मे विद्वान के रूप में नहीं बल्कि कवि के रूप मे आए। कवि के समान इन्होंने सुन्दरता को सत्य के प्रकाश में देखा। जीवन मे जो साधारण और परिचित है वह कला में अद्भुत और नवीन हो गया है। इनकी प्रतिभा ने उपन्यास के एक नूतन आयाम का उद्घाटन किया और यथार्थवाद के उस रूप की प्रतिष्ठा की जिसे रोमानी यथार्थवाद कहा जा सकता है। ठाकुर जगमोहन सिंह के रोमांस मे विद्रोह का ताप है, गोस्वामीजी के रोमांस मे सहानुभूति का शीतल लेप।

ये कट्टर सनातनी होकर भी नवीन विचार के उदार व्यक्ति थे। इनमें देश-भक्ति और समाज-सुधार की उमंग तथा साहित्य-सेवा की धुन थी। इन्होने अपने उद्देश्य के सामने कला की आवश्यकता की अवहेलना नही की। भारतेन्दु-मण्डल में कोई विशुद्ध उपन्यासकार था तो ये ही थे। इन्होंने अपने भाव-विचार को अपनी कथाकृतियों मे प्रकट नही होने दिया।

इन्होंने रसवन्ती कविता और ऐतिहासिक नाटक लिखे। इनके उपन्यास १८८३ से 'भारतेन्दु' में प्रकाशित होने लगे। एप्रिल के अंक से धारावाहिक रूप से प्रकाशित 'बाल-विधवा' सिपाही विद्रोह के परिपार्श्व में लिखित

सामाजिक रोमास है। इसमे पात्रो पर परिस्थिति का प्रभाव बडी निपुणता से दिखाया गया है। बागियो द्वारा अपहृत एक युवती दृढतापूर्वक अपने सतीत्व की रक्षा करती है किन्तु एक सम्पन्न परिवार मे आश्रय पाने के बाद भ्रष्ट हो जाती है। उसकी कुसगति मे पडकर गगा-यमुना नाम की बाल-विधवाएँ कुमार्ग की ओर चली जाती है। समाज उनके पुनर्विवाह की व्यवस्था नही कर पाता है और न उन्हे विवशता की स्थिति से मुक्ति दिलाता है। गोस्वामीजी ने पहली बार विधवा की समस्या का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। उन्होने समाज मे जो कुछ देखा उसे साहस और सच्चाई के साथ उपस्थित किया। उन्हे वास्तविकता पर आदर्शवाद का झूठा रग चढाना अच्छा नही लगता। उन्होने विधवाओ को न तो सयमित जीवन व्यतीत करते हुए दिखाया है और न ऐसा करने के लिए उपदेश दिया है। उन्होने उनके गुप्त प्रेम और दमित वासना का खुलकर वर्णन किया है। वे शरीर की भूख को अस्वस्थ एव अस्वाभाविक प्रवृत्ति नही मानते, न ही नर-नारी के सहज आकर्षण को अस्वीकार करते हैं। मनुष्य के पतन की ओर उनकी सहानुभूति है। उन्हे नारी की अवमानना से वेदना होती है और वे आह भरकर कहते है कि 'भारतवासियो का स्त्री से मित्र भाव कहाँ है?' [15] उन्होने बडे घर की बेटी यमुना के यौवन, रूपाभरण और आचार-व्यवहार का वर्णन कर एक भारतीय विधवा की सच्ची मूर्ति खडी कर दी है। यमुना और नवलसिंह का मिलन स्त्री-पुरुष का शाश्वत स्वर्गीय मिलन है। उसका वर्णन सकेत से किया गया है :

नवलसिंह कुछ आगे को सरका। यमुना पीछे को हटी। नवलसिंह ने ज्यो ही उसके कोमल शरीर का स्पर्श किया, त्योही एक पवन का झोका आया तो लैप की बत्ती बुझ गई।

प० राधाचरण विधवाओ की प्रणय-लीला के तटस्थ दर्शक नही थे। उनकी करुण दशा, हीन स्थिति और सामाजिक पराधीनता उन्हे द्रवित कर देती थी। उन्होने 'विधवा विपत्ति' (१८८८) मे युगो से अपमानित एव लाछित बाल-विधवाओ के प्रति समवेदना प्रगट की। उनकी दृष्टि मे एक विधवा के लिए सबसे बडी विपत्ति उस पर समाज द्वारा लगाया गया मिथ्या कलक है। उन्होने यह महसूस किया था कि विधवा के प्रति परिवर्तित दृष्टि-कोण विधवा-समस्या के निराकरण की दिशा मे पहला पग है। उन्होंने नारी-जीवन की विषमता पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए नारीहृदय की

दुर्बलता को दुलार किया है। कहानी मे कही करुणा की मिठास है, कही हास्य का छीटा है, इसलिए उसमे सरसता और साहित्यिक सौन्दर्य है। चिर-परिचित पारिवारिक दृश्य और मानवीय भाव मन को झकझोर डालते है। स्त्रियो की सहज सतान-लालसा रामदेई के रूप मे साकार हो उठी है। वह अपनी सरलता और क्षुद्रता दोनो से प्रभावित करती है। वह स्वय सतानहीन है, इसलिए देवरानी को सतानवती देखकर उसका वात्सल्य ईर्ष्या के रूप मे उमड पडता है। सीधे-सादे शब्दो मे हृदय पर चोट करने की शक्ति है।

लाला बिहारीलाल कोठरी से आये। कपड़े उतार हाथ पाव धोकर रसोई जीमने बैठे तो बहूजी की आँखो से टपटप आँसू गिर्ने लगे बिहारीलाल ने हँसकर पूछा, कहो खैर तो है ? आज हमारे कही चौथे चन्द्रमा तो नही है, रामदेई ने ललकार कहा मुझे यह हँसी अच्छी नही लगती, निगोडी सब वस्त हँसी क्या ? न किसी का दुख देखें न सुख ? बिहारीलाल ने गुस्सा थाली मे रख दिया, कहा पीछे खाऊँगा, पहिले तुम्हारा दुख सुन लूं, रामदेई ने रोते-रोते बडे गम्भीर स्वर से कहा, रम्मी के लडका हुआ, बिहारीलाल खिलखिलाकर हँस पडे और कुछ जवाब नहीं दिया।

'जावित्री' (१८८५) उनकी प्रथम प्रौढ रचना है। यह एक कोमल प्रेमकथा है और इसमें रूप और भाव दोनो के सौन्दर्य का अकन है। उपन्यासकार ने इन्द्रियो को आकृष्ट करने वाली सभी वस्तुओ मे जीवन डाल दिया है तथा मामाजिक परिवेश मे व्यक्तिगत प्रेम का स्वाभाविक विकास दिखाया है। प्रेमी भाव के साथ-साथ क्रिया मे सचेप्ट होने से सजीव नायक बन सका है। जावित्री अपने रूप-यौवन की सहज चपलता में ही नायिका बन गई है। प्रेम की प्रथम अनुभति और उससे उत्पन्न आवेश का वर्णन बहुत रोचक है। प्रणय-विह्वल मन का विश्लेषण आन्तरिक स्वगत कथन के रूप मे किया गया है :

बाबू साहब कमरे मे लिख रहे है। दरवाजे के आगे से एक चीज निकल जाती है। आप सोचने लगे वह कौन थी जो सड़क पर से निकल गई ? कहा कोई होगी अपना क्या काम ? 'पर तिय मातु समान' लिखे चलिये, पर एक दो मिनट के बाद जो सडक की ओर देखा तो फिर वही याद आ गई कि वह कौन थी ! कोई हो, थी अच्छी।

दैनिक जीवन मे रंगीन दृश्यों, रसभरी घटनाओ और मनोरम

परिस्थितियों की उद्‌भावना की गई है। मदिर बाबू साहब और जावित्री के लिए मिलन-स्थान बन गया है। कभी तुलसीमण्डप के काँटे से जावित्री का अचल उलझ जाता है तो बाबू साहब सुलझा देते है, कभी उसे भीड़ के धक्के से बचाते हैं। सारा प्रणय-व्यापार एक क्रीडा है।

पर्व-त्यौहार, रीति-रिवाज और वस्त्राभमण के वर्णन मे सामाजिक यथार्थ है। वेश-विन्यास का सूक्ष्म विवरण दिया गया है .

देखा तो वह सफेद लाल किनारा धोती सिर से ओढ रही है...... महीन धोती मे से कचुकी की छाया भी नजर पडी। धोती कुछ सिकुड़ी हुई थी, एक कान का एक कर्णफूल भी देखा।

'सौदामिनी' (१८८८?) मे गोस्वामीजी ने घर-बाहर के रम्य वातावरण मे स्वच्छद प्रेम का सच्चा स्वरूप उपस्थित किया। सौदामिनी और घनश्याम का प्रेम प्रथम दर्शन से अकुरित होकर सतत मिलन, पत्राचार और मौन सभाषण से परिपक्व होता है। घनश्याम के मित्र की चतुरता मे सौदामिनी का बारहवर्षीय वर गायब कर दिया जाता है और उसका विवाह घनश्याम से हो जाता है।

कहानी गढने मे कारयित्री कल्पना का चमत्कार प्रदर्शित है। घटनाओ और दृश्यो की योजना इस प्रकार की गई है कि कही अस्वाभाविकता का आभास नही है। इलाहाबाद जाते समय घनश्याम का बहरामपुर स्टेशन पर उतरना और सौदामिनी को देखकर मोहित होना एक दिन की बात है। सौदामिनी का पिता घनश्याम के पिता का सहपाठी है, इसलिए दोनो का मिलन सभव होता है। जो जीवन मे होता है उपन्यास मे भी वही हुआ है। उपन्यासकार का कौशल इसमें है कि उसने दक्ष कलाकार की भाँति सामग्री का चयन और विन्यास किया है। अनावश्यक वस्तुएँ छूट गई हैं और साधारण प्रसग भी मार्मिक बन गए हैं। प्रेम की भिन्न दशाओ की कल्पना और व्यजना अत्यत रमणीय है।

नायक-नायिका का मिलन नाटक और कविता का मिलन है। घनश्याम जिस बालिका को स्टेशन पर देखता है उसे ही अपने परिचित के घर मे भोजन परोसते पाता है। यह हर्षमिश्रित विस्मय का अच्छा उदाहरण है। दूसरे दिन वह उसी घर मे जाकर गृहस्वामी को पुकारता है लेकिन भीतर से सौदामिनी निकल आती है और तुरत मुँह ढक कर भाग जाती है। यह दृश्य भी

अविस्मरणीय है। घनश्याम का खिडकी की राह से घुसना और भागना अति-नाटकीय है। जब वह प्रेमिका से बातें करता है, उसकी माँ बैठक मे आती है। वह भाग जाता है। सौदामिनी बहाना करती है, "उरी अम्मा ! बड़ा गजब हो गया, मैंने बैठक मे खटका सुना तो दिया बालकर आई, यहाँ देखा तो चोर है, मेरा गला भर आया, मुझसे बोला न गया, तुझ देखते ही भाग गया"। एक भोली बालिका पुष्पवाण से बिद्ध होने पर अभिनेत्री बन जाती है। वह माँ के कहने पर पिता को बुलाने के लिए स्टेशन की ओर पाँव बढाती है कि दिवाल की आड़ मे छिपा हुआ घनश्याम कहता है, "चोर जाता है, अब आना मुश्किल है, चिट्ठी से मुलाकात होगी"।

उपन्यास मे घटना की प्रधानता होते हुए भी भाव का उत्कर्ष है। प्रेम मे आधुनिकता है पर कुरुचि नही है, प्रगल्भता है पर उच्छृखलता नही है, आवेश है पर निर्लज्जता नही है और व्यथा की सच्चाई है, भावुकता का छिछलापन नही है। सौन्दर्य और शील का ऐसा सयोग सर्वत्र नही होता।

प्रेम-सम्बन्ध मे मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक रूप प्रतिबिम्बित होते हैं। घनश्याम और सौदामिनी का प्रेम उनके व्यक्तित्व का परिचायक है। दोनो मे कुँआरी सरलता और मोहकता है। दोनो शिक्षित और सुसस्कृत हैं। घनश्याम पुरुष की तरह सक्रिय, प्रयत्नशील और प्रगल्भ है; सौदामिनी स्त्री की तरह विवश, मूक और जनभीरु। नायक सुरुचि का उल्लघन नही करता, नायिका मर्यादा का पालन करती है। अनुभूति के आवेग मे नायक मुखर और चाटुकार हो जाता है। उसका प्रणय-निवेदन सुनने योग्य है, "यह मुसाफिर इस स्टेशन पर बेतरह लुट गया, इसका सब जानोमाल आपके पास है अब इसको जीने में मजा नही है, अब आप इसको बेदाम गुलाम बना लीजिए।" नायिका उत्तर मे एक बूँद आँसू टपका देती है। इस एक बूँद मे सागर सिमट आया है। प्रेमी प्रेमिका के आँसू पोछना चाहता है। प्रेमिका स्पर्श को अनुचित समझकर हट जाती है। वह प्रिय मुख को निहारकर अपना मुख नीचा कर लेती है। आरम्भ से ही वह इसी तरह विनत और सलज्ज बनी रहती है। उसका मौन ही मुखर है। उसके हाथ की लिखी हुई दो पक्तियाँ उसके हृदय के सम्पूर्ण भाव को प्रकट कर देती है। केवल एक बार वह अपने को सभाल नही पाई, जब उसने माँ से घनश्याम के चोरी-चोरी आने की बात छिपा ली। फिर भी उसके मुँह से सफेद झूठ सुनना उतना ही अच्छा लगता है जितना किसी बच्चे के मुँह से। उसकी दिलफरेब बातें उसे

और सजीव, सुन्दर और प्रेममयी बना देती है।

राधाचरण गोस्वामी ने बडी सहृदयता से तरुण नायक-नायिका का चित्रण किया है। उनकी भावनाएँ नई पीढी की भावनाओं से घुलमिल गई हैं। उनका उपन्यास समकालीन सभ्यता का प्रतिबिम्ब है। उन्होने प्रेम को सामाजिक भूमिका प्रदान की है। रेल के बाबुओ की दुरवस्था और परवशता उनकी दृष्टि से ओझल नही हुई। उगते हुए मध्यमवर्ग के साथ ही निम्नवर्ग की ओर उनका ध्यान गया। घनश्याम और सौदामिनी के बीच मुलिया को उपस्थित कर उन्होने वातावरण मे वास्तविकता और रोचकता का समावेश किया है। उनकी प्रकृति एक झलक मे शोभा-राशि दिखा जाती है। उसका वर्णन कथा का अभिन्न अग है। वार्तालाप की योजना और शब्दो के प्रयोग मे नवीनता है। शैली प्राजल और प्रवाहमयी है। उपन्यास की सुन्दरता विषयवस्तु मे है, शक्ति कथाकौशल मे। 'सौदामिनी' गोस्वामीजी की प्रतिभा का बिहँसता हुआ फूल है।

वे हमारे प्रथम प्रगल्भ उपन्यासकार हैं। अपने कथ्य को प्रस्तुत करने में वे साहस और सच्चाई दिखाते है। उन्हे घटनाओं और परिस्थितियो के सरस पक्ष का उद्घाटन करना प्रिय है। उनके पात्र प्राय: सम्पन्न वर्ग के हैं और इतने सामान्य नही है कि उनसे तादात्म्य स्थापित किया जा सके। वार्तालाप और वर्णन की अपेक्षा क्रियाकलाप और वातावरण उनके स्वभाव पर विशेष प्रकाश डालते है। वे अनावश्यक या कथा के विकास मे बाधक नही होते। गोस्वामीजी की सामाजिक चेतना नारी-स्वातन्त्र्य के माध्यम से और नारी-स्वातन्त्र्य की भावना मुखर, चचल स्त्री-पात्रो के माध्यम से व्यक्त हुई। उन्होने पृष्ठभूमि का ऐसा वर्णन नही किया है कि पात्र ओट में छिप जाँय। दृश्य चित्रण मे उनकी गीति-प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ है। उनकी शृंगारिकता उनकी सहृदयता से मिलकर मर्यादित हो गई है। उनकी कहानी तन्वी, वार्तालाप चुस्त और वर्णन सयत है। उनकी शैली मे सहज प्रवाह है, केवल प्रारम्भिक रचनाओ में कही-कही आडम्बर है।

रोमानी उपन्यास

गोस्वामीजी की प्रारम्भिक रचनाएँ रोमानी हैं। इनमे उपन्यास की संभवता और रोमास की अस्वाभाविकता है। उन्हे काव्य की कोटि में रखा

जा सकता है। वे सौन्दर्य-सृष्टि हैं। 'भारतेंदु' (१८८३–८४) में प्रकाशित 'सर्वनाश' और 'वीरबाला' की वस्तु और विधान मे पुरानी कथाओ की छाप है। दोनो मे आरम्भिक अश सरल एवं वर्णनात्मक, चरित्रचित्रण अतिरजित और वर्णन अलकृत है। 'सर्वनाश' की कहानी इस तरह शुरू होती है :

मिर्जापुर नगर मे अति धनवान्, बुद्धिवान, हरीहर नाम एक महाजन वास करता था, उसकी स्त्री का नाम पार्वती था, जिसे एकमात्र अतिशय सुन्दर सच्चरित्र, विद्वान मदनदेव नामक पुत्र था। हरीहर ने मदनदेव की सोलह वर्ष की अवस्था मे एक असामान्या, चन्द्रबदनी, मृगनयनी, गजगामिनी, पिकबयनी बारह वर्ष की कन्या से उसका विवाह कर दिया।

'वीरबाला' के नायक का अपनी अनेक प्रेमिकाओ के साथ विहार चन्द्रलोक का दृश्य सामने लाता है :

राजा चन्द्रवर्ण चन्द्रमा के समान सत्ताईस ताराओ को लेकर कभी रगमहल, कभी अनग महल, कभी वन विहार, कभी जल विहार, कभी वसत विहार आदि मे उदित होते थे।

दोनो उपन्यास प्रेम और साहसिकता के तत्त्वो से पूर्ण है। 'सर्वनाश' का मदनदेव पटने मे आकर व्यापार करता है। स्वप्न मे नेपाल की रानी पद्मावती से उसे प्रेम हो जाता है। दोनो का मिलन होता है किन्तु मदनदेव पर नेपाल-नरेश आक्रमण करते हैं। वह महल मे आग लगाकर रानी के साथ मर जाता है। उपन्यास का अंत इन शब्दों मे होता है :

मदनदेव पद्मावती रानी का सर्वनाश
सर्वनाश उपन्यास का सर्वनाश

इसके विपरीत 'वीरबाला' मे दो राज्यो की शत्रुता का अन्त मधुर सम्बन्ध मे होता है। राज चन्द्रवर्ण रानी विन्धेश्वरी के दूत को बन्दी बना लेते हैं। रानी का सेनापति छद्मवेश मे जाकर राजा को पकड़ लाता है। दोनो ओर से युद्ध होता है, जिसमें राजा-रानी अपनी अनुपम वीरता प्रदर्शित करते हैं। उनमें परस्पर आकर्षण का भाव उत्पन्न होता है, जो आत्म-समर्पण का रूप धारण करता है। उनके पद्यमय वार्तालाप से उपन्यास का अन्त होता है। कठोरता पर कोमलता की विजय होती है और तलवारो की झकार के बाद पायल की ध्वनि सुनाई पड़ती है। शौर्य और शृ गारिकता का गठबन्धन इस प्रकार किया गया है कि सौन्दर्य की चिरन्तन प्रभावशीलता उभर आई है।

'कल्पलता' (१८८४) मे गोस्वामीजी की गीति-प्रतिभा के दर्शन होते है। यहाँ प्रकृति की रगभूमि मे मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति क्रीड़ा करती है। जनशून्य सघन वन मे नदी के तट पर भोली-भाली रूपवती किशोरी कल्पलता को देखकर शिकारी राजकुमार मोहित हो जाता है और पास ही एक कुटी मे पथिक बनकर जाता है। दीप के आलोक मे फूलो से लदी हुई कल्पलता 'कुश का आसन पृथ्वी पर और अपना आसन राजकुमार के हृदय मे बिछा देती है' और मधुर फलो से उसका आतिथ्य करती है। उनकी प्रेमलीला मे नदी सहयोग देती है। कल्पलता को उस पार देखकर राजकुमार तैर जाता है लेकिन तट पर पहुँचने के बाद कल्पलता को इस पार खड़ी देखता है। कल्पलता की माँ चिता मे कूदकर उससे हँसती हुई निकलती है और बताती है कि वह विदर्भ की महारानी थी तथा शत्रु से पराजित होकर वनवासिनी एवं योगिनी बनी। राजकुमारी कल्पलता और राजकुमार के विवाह से इस रहस्यमय कथा का सुखद अन्त होता है।

उपन्यास का वातावरण स्वप्निल है। कथावस्तु अतीतकालीन होकर भी कालातीत है और कालातीत होकर भी देश एव युग की सीमा मे बँधी है। गोस्वामीजी पलायनवादी होकर भारतेन्दु-युग के लेखक नही बन सकते थे। उन्हे भारत के वन-बाग, मेघ-नदी, पशु-पक्षी, खेत-बाडी से स्नेह और परिचय है। मिट्टी से उनका जो सबध है उसे उनका वर्णन भी अपने अलकरण मे छिपा नही पाता है। खेत से पक्षियो का उडना उन्हें ऐसा लगता है मानो 'खेत ही आकाश की ओर तो नहीं उड चला'। उन्हे प्रकृति की मोहिनी छवि देखकर देश की दुर्दशा भूल जाने की आदत नही है। उन्हे ऐसा लगता है कि उमडते हुए बादल क्या आए 'मानो काले कपडे पहन कर गोरे लोग ही चढ आए हों'।

रत्नचन्द्र का 'नूतन चरित्र' (१८८३) अनहोनी घटनाओ, नाटकीय स्थितियो और कौतूहलवर्धक प्रसगो से पूर्ण अत्यन्त मनोरजक उपन्यास है। कथा का आरम्भ रेल मे एक अनजान युवती पर एक पुरुष के मुग्ध होने से और अन्त उनके विवाह से होता है। चित्रकला का प्रेम विवेकराम के लिए एक प्रेरणा बन जाता है और उसकी वासना का उन्नयन हो जाता है। वह पहले जितना ही धूर्त था पीछे उतना ही शीलवान हो जाता है। वह चित्रकला की खोज मे फकीर बनकर घूमता है और उसे अपने हाथ से घर बुहारते देखकर खुद बुहारने के लिए बेचैन हो जाता है। उसका चारित्रिक परिवर्तन

किसी हद तक स्वाभाविक है। यह बात चित्रकला के सम्बन्ध मे पूर्णत: सत्य नही है। रेल मे दौलतराम उसे घूरता है तो वह घूघट तान लेती है, उसका हाथ पकडता है तो झटका देकर छुडा लेती है, घूघट हटाता है तो उबल पडती है, लेकिन जब विवेकराम चित्रकला का पक्ष लेने लगता है तब वह घूघट उठाकर उसकी ओर देखती और मुस्कराती हुई कहती है, 'इस दृष्टि से आज तक मैंने किसी को नही देखा और न किसी को देखना चाहती थी……'। यह व्यवहार असगत प्रतीत होता है। इसी प्रकार चित्रकला और चेतराम का वार्तालाप अस्वाभाविक है। बहन भाई को वासना दबाकर रखने का उपदेश देती है और भाई उत्तर देता है कि 'बहन तू नही जानती कि मेरे मन मे कामदेव का कितना असर उत्पन्न हो गया है '।

धूर्तो की बातचीत बडी स्वाभाविक और रोचक है। स्त्री-प्रकृति की परख अच्छी तरह की गई है। रूप की प्रशसा सुनकर बिना दाँतो वाली बूढी भी इतनी हर्ष-विभोर हो जाती है कि उसके शरीर मे युवावस्था के चिह्न प्रकट होने लगते हैं। बालिका पाठशाला की स्त्री ऊपर से इतनी कठोर है कि 'अपने मकान के पास होकर किसी मर्द को कभी नही निकलने देती'। धूर्तो के स्वभाव का सच्चा विश्लेषण किया गया है। दौलतराम उनका वास्तविक प्ररूप है। चालाक भठियारी, चतुर वेश्या आदि के अतिरिक्त कुछ ऐसे पात्र भी है जो अपने चरित्रबल से आदर्श उपस्थित करते है। पाठशाला की दाई और विवेकराम की दासी ईमानदारी और सच्चाई मे सम्पन्न वर्ग को पीछे छोड़ जाती है। चित्रकला की दृढता स्तुत्य है। वह नवाब के प्रणय-निवेदन को अस्वीकार कर उसका प्रतिरोध करने मे अद्भुत साहस का परिचय देती है।

उपन्यास का मुख्य विषय है छल और प्रेम। उस विषय को लेकर अनेक नाटकीय परिस्थितियो की परिकल्पना की गई है जिन पर कथा की रोचकता निर्भर है। चित्रकला के कमरे मे विवेकराम के आगमन का दृश्य खूब रोमानी है विवेकराम चित्रकला के मकान के पिछवाडे की खिडकी तोड-कर उसके शयन-गृह मे छिप जाता है। चित्रकला वहाँ आकर एकात मे विवेकराम के प्रति प्रेमोद्गार प्रगट करने लगती है और वह छिपकर सुनता है। जब वह आँसू बहाकर सो जाती है तब विवेकराम दुपट्टा हटाकर उसका मुँह निहारता है और प्रेमपत्र लिखकर छोड जाता है। चित्रकला जागने पर पत्र देखती है तो चकित रह जाती है।

स्नेह और प्रणय से उत्पन्न भावुकता मे जो सस्ते आँसू बहाए गये हैं

वें मर्म को स्पर्श नही करते। घटनाओ और पात्रो की सृष्टि इस प्रकार की गई है कि पाठक मन बहलाने के साथ-साथ कुछ शिक्षा भी प्राप्त कर सके। युग की भावना के अनुकूल वैवाहिक प्रथा मे परिवर्तन लाने पर जोर दिया गया है। भाषा मुहावरेदार होते हुए भी साहित्यिक अभिव्यक्तियो के कारण कही-कही कृत्रिम हो गई है, जो कथा व्याघात डालती है, जैसे, "जो अक्षर मेरे मन रूपी कागज पर अश्रुपात की स्याही से कामदेव लिखवाता है उनको यह बाला अपनी प्रीति रूपी चक्षु खोलकर पढ सके"।

'हिन्दी प्रदीप' (मार्च—अगस्त १८८७) मे प्रकाशित 'रणधीर सुन्दरी' के केवल तीन परिच्छेद उपलब्ध है। इस अर्ध ऐतिहासिक उपन्यास मे रणधीर नामक जमीदार के साथ अकबर के सघर्ष और अकबर के सेनापति की लडकी के प्रेम का वर्णन है। उस लडकी के हृदय मे पिता की जय एव प्रेमी के मगल के लिए द्वन्द्व है। बकिम की 'दुर्गेशनन्दिनी' का कथानक भी ऐसा ही है। उसमान और जगतसिह, जोहरा और आयेशा मे नाममात्र का अन्तर है। उपन्यास बाबू हरदेवप्रसाद द्वारा सपादित है, अत इसकी मौलिकता सदिग्ध है। यह या तो 'दुर्गेशनन्दिनी' से प्रभावित या उसका रूपान्तर है। 'हिन्दी प्रदीप' की एक ही सख्या (एप्रिल १८८९) मे प्रकाशित परसन का 'परस्पर ठग उपन्यास' उस समय की कहानी सुनाने चला था जिस समय 'बीमारी बडी सस्ती और सोना बहुत मँहगा था' किन्तु अपूर्ण रह गया।

किशोरीलाल गोस्वामी का 'प्रणयिनी परिणय' (१८९०) रोमानी उपन्यास का सुन्दर नमूना है। उसकी कहानी कल्पना से बुनी हुई है। केवल अन्तिम अंश भारतेन्दु की 'अँधेरी नगरी' का स्मरण दिलाता है। एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के महल पर रात मे कमद लगाकर चढते समय चोर मान लिया जाता है और सूली पर चढाया जाता है। अश्वारोही युवक के वेश मे अपनी प्रेमिका के आने पर वह सूली की सजा के बदले परिणय का पुरस्कार पाता है। वस्तु-विन्यास मे नाटकीयता और भाषा-शैली मे काव्य की छटा है। छद्मवेश, सयोग, गलतफहमी, रहस्यमयता के कारण कौतूहल और रोचकता मे वृद्धि हुई है। सूली का दृश्य अविस्मरणीय है। पहले दो मित्रो में सूली पर चढने के लिए होड़ होती है फिर प्रेमी-प्रेमिका का संस्कृत पद मे कथनोपकथन होता है। भाषा संस्कृत गर्भित है। इसलिए जहाँ प्रकृति और नारी के सौन्दर्य का वर्णन है वहाँ भी सहज लालित्य के बदले अलंकृत रुक्षता है :

वो तीक्ष्ण आश्रवणावलम्बित नेत्र युगल, वो मधुर कोकिल स्वर, वो पीनोन्नत । कुचकलश, वो मुष्ठि परिमित लक,वो मत्त मतगगमन, वो हँस पद विन्यास ।

उपर्युक्त पक्तियो मे केवल भाव का प्रवाह है, निम्न पक्तियो मे भाषा का प्रवाह भी है । गोस्वामीजी ऐसी भापा का व्यवहार आगे चलकर करते तो उनके उपन्यास का गौरव कम नही होता ।

आनन्द का सागर उमड पडा, सुख सरिता प्रवल प्रवाह से बहने लगी, आनन्द कादम्बिनी छा गई, मगल वर्षा होने लगी, हृदय भूमि हरी-भरी हो गई, प्रेम वल्ली लहलहा उठी, अनुराग पवन बहने लगा ।

लेखक का उद्देश्य 'अतुल अलौकिक प्रेम' और आदर्श मैत्री का उदाहरण प्रस्तुत करना है । मारशास्त्री की प्रेमिका सुन्दर, चतुर और साहसी है । वह रात मे दीप जलाकर खिडकी खोलकर प्रेमी की प्रतीक्षा करती है और दिन मे उसे मृत्यु के मुख से बचाती है । उसमे पौरुष है, इसलिए विशेष आकर्षण है । उसका मित्र उसे बचाने के लिए अपने को चोर घोषित करता है और सूली पर झूल जाना चाहता है । कथानक में मौलिकता का, वातावरण मे वास्तविकता का, और पात्रों मे विश्वसनीयता का अभाव है ।

हास्यरस का उपन्यास

रोमानी उपन्यास के ठीक विपरीत हास्यरस के उपन्यास होते हैं । श्रृंगार और हास्य साथ-साथ नही चलते । हास्यरस का लेखक बहुधा रोमास-विरोधी होता है । वह श्रृंगार रस का सचार करना नही चाहता । वह मनुष्य की दुर्बलता का उपहास और समाज की बुराइयों की आलोचना करता है । भारतेन्दु-युग के सुप्रसिद्ध हास्यलेखक प० शिवनाथ शर्मा ने 'स्वाहा सर्वस्व' (१८८५) नामक एक मनोरजक उपन्यास लिखा था । कला की दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नही है । इसमे एक वेश्यागामी सेठ और उसके खुशामदी मित्रों पर गहरा व्यग्य किया गया है । उपन्यासकार ने कथाविन्यास चरित्र, विश्लेषण पर ध्यान न देकर पात्रो के नाम, रूपरंग और बातचीत से पाठको को हँसाने की चेष्टा की है । वेश्या को नशीली जान और खुशामदी मित्र को अल्लारखे खाँ की सज्ञा देकर उन्होने उनके स्वभाव का परिचय दे दिया है । हास्यरस का लेखक मनुष्य के बहिरग को देखकर रह जाता है ।

शर्माजी ने बूढ़े लम्बग्रीव का रेखाचित्र बड़े कौशल से अंकित किया है।

दन्तमण्डल के खण्ड हो जाने से गाल पिचक कर फूटा कमण्डल हो रही थी (रहे थे)। ताबूल चर्वण किया क्यो कर जाय ? कुछ लाल लाल लारें अधर के अधोभाग तक आ गई थी, यह देख नशीली जान इनका उपहास करती थी। यह अपने चित्त मे समझे थे कि प्रसन्नता के चिह्न दर्शाती है।[16]

गार्हस्थ उपन्यास

मल्लिका देवी की 'सुहासिनी' (१८९०) आदर्श दाम्पत्य प्रेम की भावपूर्ण कहानी है। रूपवती सुहासिनी अपने पति के साथ दुख सहकर उससे बिछुड जाती है। वियोग मे उसके प्रणय की गम्भीरता प्रकट होती है। अन्त में उसे अपार धन की प्राप्ति और पति से मिलन होता है। उपन्यास ऐसी कई परिस्थितियाँ उपस्थित करता है जो मर्म को स्पर्श करती है। सुहासिनी के सौन्दर्य का वर्णन जितना ही आकर्षक है बिहार के अकाल का दृश्य उतना ही हृदयद्रावक। कथानक सीधा-सादा है। भाषा भाव के अनुरूप ही सुन्दर है।

'सुहासिनी' एक उपन्यास-लेखिका की प्रथम कृति है। उसमें वे विशेषताएँ हैं जो एक महिला की कलम से मिलती हैं। पुरुष की अपेक्षा स्त्री जीवन के अधिक निकट रहती है। मल्लिका देवी को जीवन के गद्य और पद्य दोनो की अनुभूति है और उसे उन्होंने वाणी दी है। श्रद्धाराम फिल्लौरी 'भाग्यवती' लिखकर गार्हस्थ उपन्यास का समारम्भ कर चुके थे। 'सुहासिनी' गार्हस्थ उपन्यास की परम्परा की अनमोल कडी है। भारतेन्दुकाल मे इस प्रकार का कोई दूसरा उपन्यास नही लिखा गया, यद्यपि 'निःसहाय हिंदू' मे नगर के मध्यवर्गीय हिन्दू-मुस्लिम परिवारो के सरल सुख-दुख का दिग्दर्शन कराया गया है और 'परीक्षागुरु' मे दाम्पत्य एवं वात्सल्य का मनोरम रूप प्रस्तुत किया गया हैं। मौलिक गार्हस्थ उपन्यासो का अभाव बँगला के अनुवादों से पूरा हुआ।

धार्मिक उपन्यास

किशोरीलाल गोस्वामी की 'त्रिवेणी' (१८९०) संवेदना की दृष्टि से धार्मिक उपन्यास है, जिसमे धार्मिक महिमा एवं सामाजिक पतन दिखाने के लिए त्रिवेणी-तट के मानवीय दृश्य का वर्णन किया गया है। यह किसी वर्ग, परिवार और व्यक्ति के जीवन का चित्र न होकर पूरे समाज का एक खण्डचित्र

है। त्रिवेणी का सगम पाप-पुण्य का सगम है, जहाँ "कोई जन विरहिनी की डगमगाती चाल पर लोट पोट हो रहे है, कोई प्रमदा नारी की मदमाती चाल-ढाल से मोहित होकर मत्त मयूर की भाँति इधर-उधर गर्दन उठाकर नाचने लग गये हैं ·· ·।" वर्णन के सिलसिले मे नायिका-भेद का छोटा-सा उदाहरण ही प्रस्तुत कर दिया गया है। कुरूप वास्तविकता पर भी प्रकाश डालने में सकोच नही किया गया है, जैसे, "एक दुराचारी नराधम अपने हाथो से कई रुपये लेकर उनकी झनझनाहट से अबोध स्त्रियो को फुसला रहा है।" जीवन के ये कठोर सत्य मनोहरदास नामक एक धर्मभीरु व्यक्ति से व्यक्त करवाये गये हैं। लेखक के लिए यह पद्धति कलात्मक हो सकती है। पाठक को इसमे अस्वाभाविकता का आभास मिलेगा। सुधारात्मक दृष्टि और शृंगारिक चश्मे मे सामजस्य होना कठिन है।

इस छोटी-सी रचना को लेखक ने 'खडोपन्यास' की सज्ञा दी है। इसमे केवल तीन परिच्छेद हैं। छप्पय और दोहे से साढे चार पृष्ठ रगे हैं। मनोहरदास का स्वगत कथन दो परिच्छेदो तक विस्तृत है। चरित्रचित्रण परिचयात्मक स्तर का है। घटनाओ मे वैचित्र्य न होकर सयोग है। मनोहर-दास तीर्थ-यात्रा मे नाव-दुर्घटना के कारण पत्नी से बिछुड जाता है और प्रयाग आकर मिलता है। कथानक और उद्देश्य का समन्वय स्तुत्य है।

पौराणिक उपन्यास

धार्मिक उपन्यास की एक शाखा पौराणिक उपन्यास है। भारतेन्दु-काल मे पुराण की कथा का आश्रय लेकर नाटक तो कई लिखे गए पर उपन्यास के ढग पर लिखित एकमात्र पुस्तक लक्ष्मीनाथ भट्ट का 'सावित्री सत्यवान' (१८९०) है। यह एक नूतन प्रयास होने के कारण उल्लेखनीय है। इसमें उपन्यास-कला का अभाव है। इसकी रोचकता मूलकथा पर निर्भर है।

सामान्य विशेषताएँ

भारतेंदुकालीन लेखक सक्रान्तिकालीन लेखक थे। उन्होने बदलते हुए राष्ट्र, समाज, परिवार और मनुष्य का चित्रण किया। उन्होने व्यक्ति को उसके समग्र परिवेश में प्रस्तुत कर समसामयिक सत्य की व्याख्या और व्यंजना की। यह उनके उपन्यास का मूल आकर्षण है। वे सामाजिक

इतिहासकार थे। उन्होने समाज के विभिन्न स्तरो का स्पर्श किया, यद्यपि उनका तादात्म्य मध्यम मध्यवर्ग से था। उनकी दृष्टि मे व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि का अधिक महत्त्व था। उन्होने जहाँ सामाजिक जीवन के विराट रूप का उद्घाटन किया वहाँ वे पारिवारिक और वैयक्तिक जीवन की झलक ही दे सके। (उनमे राधाचरण गोस्वामी ही ऐसे हैं जिन्होने सामाजिक समस्याओं के सामने व्यक्तिगत सवेदना को कुचलने की कोशिश नहीं की।) यदि वे भावो का सघर्ष दिखाते तो उनका ससार अमर हो जाता। उन्होने व्यक्ति को युग की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया तथा व्यष्टि और समष्टि के भाग्य को सम्बद्ध किया। उनके प्रमुख पात्र विशिष्ट वर्गो के प्रतिनिधि या ऐतिहासिक प्रक्रिया के प्रतीक है। उनके क्रिया-कलाप की प्रेरणा वैयक्तिक भावना नही है।

वास्तविकता यह है कि उनकी रुचि जितनी मानवजाति की ओर है उतनी मानव-स्वभाव की ओर नही। तथापि उन्हे मनुष्य की सम्भावना और दुर्बलता की चेतना एव पुरुष, स्त्री और बालक की प्रकृति की परख है। उनके पात्र परिचित, परिवर्तनशील और मानवीय हैं। वे साधारण परिस्थितियो मे हँसते-बोलते, चलते-फिरते दिखाई पडते हैं इसलिए जीते-जागते हैं। अच्छे पात्रो से बुरे पात्र अधिक विश्वसनीय है। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक सजीव हैं क्योकि उनमे त्याग, बलिदान और साहस है। मनुष्य का आवास उसका परिचायक होता है। श्रीनिवास ने मदनमोहन के बाग, बाग के कमरे और कमरे की सजावट का वर्णन कर उसके व्यक्तित्व का परिचय दे दिया है। इसी प्रकार ठाकुर जगमोहन सिंह के श्यामसुन्दर का कमरा उसके समान ही कुँवारा है। बालकृष्ण भट्ट अपने पात्रो को वेशभूषा से सुसज्जित कर उनका चित्र उतारते हैं। प्राय: सभी उपन्यासकार पात्रो के बहिरंग से अन्तरंग की ओर जाते हैं। वे आकार, चेष्टा, वेश और क्रिया का वर्णन करते हैं तथा आन्तरिक भाव-विचार का गहन विश्लेषण न कर स्वगत कथन का उपयोग करते हैं। दोनों अवस्थाओं में वार्तालाप सहायक होता है और उसका रूप नाटकीय हो जाता है।

मनुष्य और प्रकृति, स्थान और काल, रूप और अवस्था का यथार्थ वर्णन करने मे आदि उपन्यासकार अद्वितीय हैं। वर्णन-सौन्दर्य उनके उपन्यासों का अक्षय वैभव है। उनका वर्णन सूक्ष्म और विस्तृत होता है और वर्ण्य विषय को सजीव बना देता है। वे उसे नाटकीय या प्रतीकात्मक बनाकर कथानक

का वाहन नही बना मके। उनकी विशिष्टता यह है कि उन्होने प्राकृतिक रमणीयता को मानव-जगत का अग बना दिया है। मदनमोहन के दरबारी बातचीत के सिलसिले मे स्थान-काल की "स्वाभाविक शोभा" की चर्चा करते है। हकीम अहमद हुसेन अपने भाव का प्रकाशन इन शब्दो मे करता है, "रात को चाँद अपनी चाँदनी से सब जगत को रूपहरी बना देता है उस समय दरया किनारे हरियाली के बीच मीठी तान कैसी प्यारी लगती है ?"। पृष्ठभूमि को परोक्ष दृष्टि से देखने का यह विलक्षण उदाहरण है।

जहाँ पृष्ठभूमि घटना और चरित्र पर प्रकाश नही डालती वहाँ विविध दृश्यो का निर्माण करती है। ठाकुर जगमोहन सिह प्रकृति के कोमल और भयंकर रूपो को चित्रित कर उसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करने मे अत्यन्त सफल हुए। दण्ड-कारण्य की यह छवि दर्शनीय है .

कुँज मे तम का पु ज पु जित है, जिसमे श्याम तमाल की शाखा निब के पीत पत्रो से मिली है रसाल का वृक्ष अपने विशाल हाथो को पिप्पल के चचल प्रबालो से मिलाता है, कोई लता जम्बू से लिपट कर अपनी लहराती हुई डार को सबसे ऊपर निकालती है, अशोक के ललित पुष्पमय स्तबक झूमते है, माधवी तुषार के सदृश पत्रो को दिखलाती है, और अनेक वृक्ष अपनी पुष्पनमित डारो से पुष्प की वृष्टि करते है, पवन सुगन्ध के भार से मन्द-मन्द चलती है केवल निर्झर का रव सुनाई पड़ता है कभी-कभी कोइल का बोल दूर से सुनाता है और कलरव का कलरव निकटस्थित वृक्ष से सुनाई पड़ता है।

राधाकृष्णदास वातावरण का निर्माण करने मे सिद्धहस्त हैं। बरसात की रात मे 'निःसहाय हिन्दू' के नायक-नायिका के शतरज खेलने का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है :

पानी बरस रहा था, अधेरी छाई थी, चारो ओर सुनसान था, सिवा बूंदियो के शब्द और बीच-बीच मे किश्त और शह की पुकार के।

बालकृष्ण भट्ट मानवीय सौन्दर्य के चतुर चितेरे हैं। स्त्री विधवा हो या विवाहित, युवती हो या अधेड, धनवती हो या निर्धन, वे उसके रूपरग का वर्णन किये बिना नही रह सकते। वे नारी के साथ ही पुरुष की वयः सन्धि का चित्र अंकित करते हैं। उनके नायक युवक और सुन्दर होते हैं। 'सौ अजान और एक सुजान' की ये पंक्तियाँ पठनीय हैं :

कुसुमबान की गरमी शरीर मे पैठते ही नवयुवा और युवतियो के अंग प्रत्यग मे सलोनापन भीजने लगता है—तन मे मन मे नैन मे नई-नई उमगे जगह करती जाती है; एक अनिर्वचनीय शोभा का प्रसार होने लगता है।

भारतेंदुयुगीन लेखको को अपनी जन्मभूमि बहुत प्यारी थी। उनके हृदय का सामजस्य उसके नयनाभिराम रूप से था और वे उसका अकन करना आवश्यक समझते थे। आज जब सिनेमा, रेडियो और यात्रा-साहित्य से दूर देशो का परिचय मिल जाता है, उपन्यासकार वर्णन को विस्तार दिए बिना काम चला सकता है। इन साधनो के अभाव मे पुराने उपन्यासकारो का वर्णन स्वाभाविक और उपयोगी था।

हिन्दी-उपन्यास के पुरस्कर्ता अपने कर्तव्य और दायित्व के प्रति सजग थे। वे कलावादी न होकर सुधारवादी और नीतिवादी थे। उनके लिए उपन्यास मनोरंजन का साधन नही, जीवन-सग्राम का अस्त्र था। उन्होने संस्थाओ की आलोचना की, समाज की बुराइयो का पर्दाफाश किया और विनाश के भग्नावशेष पर आँसू बहाने के बदले निर्माण का सन्देश दिया। रूढिगत नैतिकता के प्रति उनका आग्रह नही था। वे मानव-मूल्यो को महत्त्व देते थे। उन्हें व्यक्ति की दुर्बलता के प्रति सहानुभूति और महानता के प्रति श्रद्धा थी। उन्होने क्रिया-व्यापार की अपेक्षा अन्त प्रेरणा पर विशेष बल दिया और यह प्रमाणित किया कि ऊपर से जो क्षुद्र और बुरा लगता है वह भीतर से महान और भला हो सकता है।

वे एक साथ ही प्रगतिशील और दूरदर्शी थे। उनके विचार समय के अनुकूल होते हुए भी उससे आगे थे। कोई आलोचक उपन्यास को कलाकृति मानकर उसके कला-पक्ष को महत्त्व देता है, कोई उसे जीवन की आलोचना मानकर उसके विचार-तत्त्व को। वस्तुत वह विचार-तत्त्व ही है जो उपन्यास को सार्थक एवं सुन्दर बनाता है। गेटे के 'विल्हम मिस्टर' मे न तो कथारस है न चरित्र-विश्लेषण ही, केवल अपने विचार-दर्शन के कारण वह प्रथम श्रेणी का उपन्यास है। भारतेंदुकालीन उपन्यासकारो की रचनाओ मे यही गुण है। उनकी दुर्बलता यह है कि वे अपने व्यक्तित्व को अपनी कृतियो से अलग नही रख सके। वे अपना मत चरित्रचित्रण और घटनाविन्यास द्वारा प्रकट न कर उपदेश देने के जोश में सन्तुलन बिगाड देते हैं। उनका प्रचारक उनके कलाकार को दबाकर ऊपर आ जाता है। राधाचरण गोस्वामी ही एक

अपवाद हैं।

उपन्यासकार के दो प्रधान कार्य रहे हैं : उपदेश देना और कहानी सुनाना। आदि उपन्यासकारो को दूसरे कार्य मे विशेष सफलता नही मिली। कहानी के लिए उनकी रचनाएँ पढना धैर्य की परीक्षा देना है। वे कहानी को उपदेश के लिए अवसर प्रदान करने का साधन समझते हैं। उनमे अधिकाश विचारो को उत्तेजित करते हैं, भावो का उद्रेक नही करते। वे मनुष्य की सहजात प्रवृत्तियो के उद्घाटन मे रुचि नही लेते। 'परीक्षागुरु', 'नि.सहाय हिन्दू' और 'आश्चर्य वृत्तान्त' शृ गारयुक्त हैं। जहाँ कोमल सवेदनाओ का अभाव है वहाँ हास्य व्यग्य रस-सचार करते है। कथानक जटिल नही होता, इसलिए निर्माण-कौशल की अपेक्षा नही रखता।

भाषा-शैली कहानी कहने मे समर्थ है। उसमे सरलता के साथ ही सौष्ठव है। मुहावरो और कहावतो ने उसमे ताजगी और जान डाल दी है। अत जहाँ वह साहित्यिक है वहाँ भी उसमे स्वाभाविकता है। उसके माध्यम से घटनाओ, वस्तुओ और क्रियाओं का विवरण देकर कहानी कहने की तीन कलाओ का परिचय दिया गया है · भ्रम उत्पन्न करने की कला, प्रत्यक्षीकरण की कला, वर्णन की कला। निम्न पक्तियों मे उनकी एकत्र स्थिति है। 'श्यामास्वप्न' की नायिका अपने प्रियतम के आगमन का हाल सुना रही है :

एक घण्टा दिन चढा, दो घण्टा बीती, तीसरी घडी मे नदी के उस पार कुछ मनुष्य दिख पडे—फिर कुछ घोडे दिखाने—मेरे जी मे तो धक्का सा लगा। मैं हक्का-बक्का हो गई, जी कूद उठा। छिन भर डिरा सी गई, फिर खडी होकर देखने लगी। मेरे घर की अटारी बहुत ऊँची थी, उस पर से बहुत दूर का दिखता था, उसी पर से देखने लगी घोडा ज्योही निकट आता था मुझे यही जान पडता था कि वे ही हैं। अन्त को नदी के उस तीर पर आया, पानी टिहुंनी तक रहने के कारण नाव की अपेक्षा कुछ न थी घोडा पानी में हिला, पानी पीने लगा, फिर सास लेने को सिर उठाया, फिर ग्रीवा झुकाई और कुछ पीपा के आगे चला।

अंशदान

भारतेन्दुकालीन लेखको का अंशदान अमूल्य है। उन्होंने मौलिक, अर्ध मौलिक और अनूदित उपन्यास लिखकर आधुनिक युग के प्रतिनिधि

साहित्य रूप की सृष्टि की तथा उसके अनेक अंगों और उसके लिए उपयुक्त गद्य-शैली को विकसित किया। उन्होने किसान-कन्या ('गुप्त वैरी') को प्रेमिका और निर्धन युवती ('श्यामास्वप्न') को नायिका बनाकर उसे जन-वादी रूप दिया। उनके प्रयास से उसके तीन विशिष्ट धाराओ—यथार्थवादी, रोमानी और भावमूलक—की अवतारणा हुई। बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' से लघु उपन्यास की परम्परा का सूत्रपात हुआ, यद्यपि उसमे उसके अधुनातन शिल्प का अभाव है। राधाचरण गोस्वामी गीति-उपन्यास के जन्मदाता है।

आदि उपन्यास आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास के शिल्प को प्रत्याशित करते है। उनका स्वगत कथन 'चेतना प्रवाह' पद्धति का प्रारूप है। एक प्रकार के स्वगत कथन मे पात्र सोचता कुछ और कहता कुछ है, दूसरे मे कथा प्रथम पुरुष मे कही जाती है और पात्र मुखर चिंतन करता है। दूसरा अपेक्षया अधिक कलात्मक होता है और नये उपन्यासो की आन्तरिक स्वगतोक्ति का स्मरण दिलाता है। प्रथम का उदाहरण 'नि.सहाय हिन्दू' और 'सौ अजान एक सुजान' मे मिलता है। 'सद्भाव का अभाव' मे तो रेवतीदास के स्वगत भाषण को ज्यो का त्यो प्रस्तुत कर पाठक को उसके अन्तर्मन मे प्रवेश करा दिया गया है। 'जावित्री' मे बाबू साहब और 'त्रिवेणी' मे मनोहरदास के स्वगत कथन दूसरी कोटि मे आते है। यदि अज्ञेयजी त्रिवेणी का पुनर्लेखन करें तो वह 'चेतना प्रवाह' शिल्प को ग्रहण कर लेगी। मनोवैज्ञानिक उपन्यास की पूर्वालोक (फ्लैश बैक) पद्धति का भी आभास 'नूतन ब्रह्मचारी' मे बेहोशी की दशा मे डाकू द्वारा कही गई पिछली बातो मे मिलता है।

भारतेन्दु-काल के उपन्यासकार केवल ऐतिहासिक महत्त्व के कारण महान नही हैं। उपन्यास-जगत मे साहित्यिक पिता होने के साथ-साथ वे स्वय अत्यन्त मौलिक, शक्तिवादी और गम्भीर लेखक है। उनकी कला की जड़ जन-जीवन की गहराई मे है। वे अन्य साहित्य-रूपो की सर्जना करने के बाद उपन्यास-लेखन मे प्रवृत्त हुए। उनके अनुभव और प्रौढ़ता ने उनकी रचनाओ को अपूर्व साहसिकता, प्राणोन्मादना और गतिशीलता प्रदान की। उनसे उत्तम उपन्यास लिखे गए हैं पर उनके जोड के नही लिखे गए।

उनकी तुलना विश्व-प्रसिद्ध उपन्यासकारो से की जा सकती है। 'परीक्षागुरु' संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'वार ऐण्ड पीस' की भाँति एक साथ ही व्यक्ति और राष्ट्र की कथा है। इसमे व्यक्तिगत और राष्ट्रीय कथाओ मे जैसा अविभाज्य सम्बन्ध है वैसा टालसटाय की कृति मे नहीं है। यह दुहरी

कथावस्तु इसकी शक्ति भी है और सीमा भी। देशदशा सुधारने के जोश मे श्रीनिवासदास मूलकथा को छोडकर अप्रासगिक बातो मे उलझ जाते है। 'वार ऐण्ड पीस' मे कहानी विविध विषयो के बीच से धीरे-धीरे पर सीधे अग्रसर होती हैं।

बालकृष्ण भट्ट दूसरे रूसी उपन्यासकार तुर्गनेव के समकक्ष हैं। दोनो को अपने देश, देश की जनता और सस्कृति से प्रेम है। दोनो ने समकालीन समाज का यथार्थ चित्रण किया है। तुर्गनेव के 'बाप-बेटे' की तरह भट्टजी ने 'सौ अजान और एक सुजान' मे पुरानी और नई पीढियो मे अन्तर दिखाया है, यद्यपि पुरानी पीढी का साथ दिया है। अपने जमाने के बदलते हुए रईसी जीवन का वर्णन करना दोनो को प्रिय है। तुर्गनेव की भाँति भट्टजी की कथा का बीज घटना मे न होकर पात्र मे रहता है। पहले उनके मन मे किसी की आकृति घूमती है तब उसकी क्रिया। वे अपने छोटे-से आधारफलक पर अनेक रेखाचित्र अकित करते है। दोनो के उपन्यास रेखाचित्रो के सग्रह हैं। उन्होंने अपनी मातृभूमि के नर-नारियो का आकर्षक रूप उपस्थित किया है। प्राकृतिक पृष्ठभूमि सजाने मे वे प्रवीण हैं। उनकी उपन्यास-कला उनकी वर्णन-कला है। उनकी लेखन-शैली मे गद्यकाव्य की छटा है।

भारतेन्दुयुगीन लेखको ने अनुत्पन्न पाठको के लिए लिखा। वे अपने जमाने से आगे बढे हुए थे। उनके प्रगतिशील पात्रो और सामयिक परिस्थितियो मे सामंजस्य नही दीख पडता है। उनकी उपदेशात्मक प्रवृत्ति और सुधारवादी दृष्टि के विरुद्ध प्रतिक्रिया अवश्यभावी थी। किशोरीलाल गोस्वामी और देवकीनन्दन खत्री ने मध्ययुग के प्रेम, शौर्य, तिलस्म और ऐयारी के दृश्यो से तथा गोपालराम गहमरी ने जासूसी पहेलियो से लोगों को मोह लिया। उनका कथाकौशल वस्तुवादी मध्यवर्गीय पाठकों के हृदय को स्पर्श करने लगा। उन्होने वर्तमान से अतीत और यथार्थ से रोमांस की ओर मुडकर नव परिवर्तन उपस्थित किया।

भारतेन्दु के समय नाटक और कविता की जो महिमा थी वह धीरे-धीरे घटने लगी। लेखक नाटक से उपन्यास की ओर मुडे। प्रथम का ह्रास द्वितीय के विकास मे परोक्ष रूप से सहायक सिद्ध हुआ। भारतेन्दु के बाद नाटको का स्तर गिर गया, प्रसाद के आगमन तक अनुवादो की ही प्रधानता रही और रंगमच का अभाव हुआ। इन कारणो से नाटक की ओर लोगों की

रुचि नही रही। दूसरी ओर, पाठकों की संख्या मे वृद्धि हुई और नाटक से उपन्यास का पठन अधिक लोकप्रिय हुआ। उसकी माँग बढ चली। उसकी रचना प्राय. एक खण्ड मे होती थी, अब अनेक खण्डों मे होने लगी। दो प्रकार के लेखक समाने आए : कुछ लोकरुचि से प्रभावित होने लगे, कुछ लोकरुचि को प्रभावित करने लगे। विवेच्यकाल की वृहत्त्रयी गोस्वामी, खत्री और गहमरी ने उपन्यास को कविता और नाटक की पंक्ति मे लाकर खड़ा कर दिया।

टिप्पणियाँ

१– भारत मे एहि समय भई है सब कुछ विनहि प्रमान हो दुइरगी
आधे पुराने पुरानहि मानें आधे भए किरिस्तान हो दुइरगी

भारतेन्दु . वर्षाविनोद (१८८०)

२– 'गद्यकाव्य मीमासा'

३– देखिए 'उपन्यास', 'हिन्दी प्रदीप' (जनवरी १८८२)

४– वही, पृ० ११

५– 'मिश्रबन्धु विनोद', तृतीय भाग, पृ० १२५६

६– 'माधव मिश्र निबन्धमाला', पृ० २३६

७– 'परीक्षागुरु' (द्वि० स०), पृ० १००

८– 'देश की उन्नति अवनति का आधार वहाँ के निवासियों की प्रकृति पर है',—

—वही, पृ० ३०

बड़े-बडे अमीर, सौदागर, साहूकार, जमीदार, दस्तकार जिनकी हानि लाभ का और देशो से बड़ा सम्बन्ध है·········

—वही, पृ० १३४

9– "The bourgeoisie has stripped of its halo every occupation hitherto honoured and looked up to with reverent awe. It has converted the physician, the lawyer, the priest, the poet, the man of science into its paid wage-labourers."

—Literature and Art, p. 37

१०–'आलोचना', उपन्यास-विशेषाक, पृ० ६८

११–'व्यासजी का वैकुंठवास', सुदर्शन, नवम्बर १९००

१२–वही

१३–पं० सुन्दरलाल : 'बालकृष्ण भट्ट', विशाल भारत, जनवरी १९२८, पृ० २८

१४–'सद्भाव का अभाव', दूसरा प्रस्ताव, 'हिन्दी प्रदीप', मार्च १८८९

६

प्रतिनिधि उपन्यास-लेखक

(१८६५-१९३२)

जीवन और रचनाएं

हिन्दी-उपन्यास के इतिहास मे किशोरीलाल गोस्वामी एक स्मरणीय नाम है। उनके समान शायद ही किसी समसामयिक लेखक का सम्मान तथा विरोध हुआ हो। प्रेमचद के पूर्व वे सर्वोच्च उपन्यासकार माने जाते थे। उपन्यास के क्षेत्र में उनका वही स्थान था जो नाटक के क्षेत्र मे भारतेंदु का था। यह सत्य है कि वे प्रेमचंद और उनकी पीढी के लेखको से टक्कर नही ले सके और "उनकी उपस्थिति मे ही उपन्यास-क्षेत्र पर प्रेमचदजी का अधिकार हो गया।"[1] फिर भी उनकी विजय पूरी हो चुकी थी। वे निर्विवाद रूप से बीसवी सदी के प्रथम महान उपन्यासकार हैं।

सौन्दर्य और प्रेम के अवतार कृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन में जन्म लेकर गोस्वामीजी सौन्दर्य और प्रेम के उपासक बन गये। पितामह और पिता सस्कृत के विख्यात विद्वान थे। इन्हे उत्तराधिकार में विद्या का वैभव प्राप्त हुआ। इन्होने सस्कृत मे ज्योतिष से लेकर साहित्य तक का अध्ययन किया। इनके मातामह भारतेंदु के साहित्यगुरु और सितारेहिन्द के पड़ोसी थे। ननिहाल (काशी) मे ये हिन्दी के दो आलोक-स्तम्भो के सम्पर्क मे आये। इनकी रुचि हिन्दी की ओर मुड़ी और ये साहित्य-सृजन मे प्रवृत्त हुए। भारतेंदु और सितारेहिन्द ही की प्रेरणा से इन्होने तरुणाई की उमग में अपना

पहला उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय' (१८९०) लिखा। फिर तो इनका जीवन उपन्यास के लिए हो गया। ये उसकी कला पर उसी तरह मुग्ध हो गए जिस तरह प्रणयी प्रणयिनी पर होता है।

इनका अध्ययन जैसा ही गम्भीर था अनुभव वैसा ही व्यापक। इन्हे उपन्यास की सामग्री पुस्तक और जीवन दोनो से मिली। इनकी दृष्टि मे दोनो मे विशेष भेद नही था और था तो इन्होने रहने नही दिया। पुस्तक से ली गई सामग्री मे इनकी प्रतिभा का स्पर्श है। इन्होने अपने कई उपन्यासो को देखी-सुनी घटनाओ के आधार पर लिखा बताया है। इनके जीवन के अधिकाश क्षण काशी, आगरा और मथुरा मे व्यतीत हुए, अतः इनकी कथाओ का सम्बन्ध नागरिक समाज से है। अनुभव के बल पर कोई उपन्यासकार बनने के योग्य होता है, बनता नही है। अनुभव के साथ-साथ कल्पना भी चाहिए ताकि वास्तविक बीज के आधार पर एक मायावन बसाया जा सके। गोस्वामीजी इस प्रकार की कल्पना के धनी थे। वे किसी के मुँह से कथानक सुनकर तुरत एक लम्बी कहानी लिख सकते थे।[2] उनकी रचनाओ का रसास्वादन वे ही कर सकते है जिनमे पाडित्य है या लौकिकता।

हिन्दी प्रचारक, कुशल पत्रकार, धार्मिक नेता, समाजसुधारक, प्रकाशक, वक्ता और साहित्यसेवी होने के कारण वे अपने समय और समाज को निकट मे देख चुके थे तथा उनके प्रति अपना निश्चित दृष्टिकोण रखते थे। उनके दृष्टिकोण ने उनके उपन्यास का स्वरूप-विधान किया है। उनका आविर्भाव ऐसे समय मे हुआ था जब भारत मे दो भिन्न सस्कृतियो का सघर्ष हो रहा था। उनकी स्थिति उन लेखको से भिन्न थी जिन्हे इस प्रकार के सघर्षकाल मे रहने का अवसर नही मिलता है। उन्हें दो विरोधी शक्तियो को समझने और समझाने का जो अवसर मिला वह भी भिन्न स्थिति के लेखको को प्राप्त नही होता। वे प्राचीन और नवीन का समन्वय नही बल्कि दोनों के मूल्यो मे परिवर्तन चाहते थे। उनकी रूढिवादी भावना उनकी सामाजिक चेतना की देन होने के कारण प्रगतिशीलता से भिन्न नही है। जनवादी लेखक जनता के साथ-साथ जनता की अध परम्परा के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने लगते हैं। गोस्वामीजी की रचनाओं मे विद्रोह का स्वर मन्द होकर भी स्पष्ट है।

वे सौन्दर्यवादी यथार्थवादी कहे जा सकते हैं। वे मूल रूप मे रसवीदा थे, वाह्य परिवेश ने उन्हे यथार्थवादी बना दिया था। उनकी ये प्रवृत्तियाँ

सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासो मे व्यक्त हुई है। ऐतिहासिक रोमास मे यथार्थ का आभास है तो सामाजिक यथार्थ मे रोमास का रग। उनका व्यक्तित्व आकर्षक था। उनके स्वभाव मे सरलता और बातचीत मे वक्रता थी। "बातें करते समय उन्हें जरा भी थकावट नही मालूम होती थी।"[3] ये विशेषताएँ उनके पात्रो मे भी हैं। उन्हे बचपन से ही कविता, विशेषकर रसखान की कविता प्रिय थी।[4] "जिस प्रकार ब्रजभाषा मे आप धाराप्रवाह कविता लिख सकते थे, उसी प्रकार उर्दू जवान मे गजलें कहा करते थे। आप रसिक थे, इसलिए आपने अपना उपनाम 'रसिककिशोरी' रक्खा था।"[5] उनकी सभी रचनाओ मे काव्य-तत्त्व निहित है।

वे उन थोडे-से उपन्यासकारो मे है जिनमे आत्मनिष्ठता के साथ-साथ वस्तुनिष्ठता रहती है। उनका एक भी उपन्यास आत्मकथात्मक नही कहा जा सकता और न यह कहा जा सकता है कि उसका वास्तविक नायक लेखक है। उनका कोई पात्र भी ऐसा नही मिलता जिसका उनसे तादात्म्य स्थापित किया जा सके। उन्होने वस्तु और व्यक्ति को बाहर से देखा, अत. उनके उपन्यास जीवित हैं, अमर नही हैं। वे जिन्दादिल, हँसमुख और मौजी थे। शायद इसलिए वे मानवीय मनोभावो की गहराई मे उतर नही सके, मानवीय व्यवहारो को ही देखते-दिखाते रहे। उनकी शृ गारिकता उनकी सहृदयता की और अश्लीलता सौन्दर्यबोध की देन है। एक महान लेखक की भाँति उनमे सत्य बोलने का साहस है, जो कभी-कभी निर्लज्जता की सीमा को छू लेता है।

"गोस्वामीजी का जीवन साहित्यमय था। इन्होने अपने जीवन में एक ही काम किया और वह था हिन्दी-साहित्य-सेवा।"[6] उन्होने उपन्यास के अतिरिक्त कविता, नाटक, जीवनचरित, कहानी, निबन्ध तथा धर्म एव संगीत-विषयक ग्रन्थो का प्रणयन किया। इनकी बहुमुखी एवं विलक्षण प्रतिभा उपन्यास मे पूर्णता के साथ पल्लवित हुई। वह उनका प्रिय माध्यम था। उनके बहुत-से समकालीन लेखक सयोग से उपन्यासकार बन गये थे। वे सहज उपन्यासकार थे। "जिनका हृदय प्रेम का नवविकसित कानन है उनके लिए उपन्यास हृदयमणि के तुल्य है"[7], उनका यह कथन स्वय उनके लिए सत्य है।

साहित्यिक इतिहासकारो ने इनके उपन्यासो की सख्या ६५ बताई है।

डा० श्यामसुन्दरदास ने उन सबका नामोल्लेख किया है और उन्हे 'पूर्ण अथवा अपूर्ण' बताया है।[8] ऐसा उल्लेख प० रामनरेश त्रिपाठी ने भी किया है।[9] दोनों की सूचियों मे कहानियां और अनूदित उपन्यास भी सम्मिलित है। जहाँ तक अपूर्ण उपन्यासो का प्रश्न है, उनका प्रकाशन कदाचित ही हुआ होगा। गोस्वामीजी को ६५ उपन्यासो का लेखक मानना सदिग्ध है। प० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार उन्होने "६५ छोटे-बडे उपन्यास लिखकर प्रकाशित किये।"[10] शायद छोटे उपन्यास से शुक्लजी का अभिप्राय कहानी है क्योकि उनकी सूचना का आधार श्यामसुन्दरदास और रामनरेश त्रिपाठी के ग्रन्थ हैं। गोस्वामीजी के उपन्यासो मे जो प्राप्य है उनके रचनाकाल और प्रकाशनकाल मे बहुधा अन्तर पाया जाता है। वैसे ही आवरण पृष्ठ और अन्य पृष्ठों पर अकित प्रकाशन तिथियो मे कभी-कभी विभिन्नता देखी जाती है। इसमे सन्देह नही कि उन्होने कविता, नाटक आदि की अपेक्षा उपन्यास लिखने मे अपनी शक्ति, समय और श्रम का अधिक उपयोग किया। इनकी प्रसिद्धि इन्ही पर निर्भर है। समाज और सस्कृति के क्षेत्र में कार्य करते हुए उन्होने जो कुछ लिखा वह केवल परिमाण की दृष्टि से महती उपलब्धि है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास की प्रस्यापना करने का श्रेय उन्हे प्राप्त है। उन्होने अनेक प्रकार के उपन्यासो की रचना की पर सामाजिक उपन्याम में वे विशेष सफल हुए। उनके मौलिक उपन्यास विषयवस्तु की दृष्टि से इन कोटियों मे रखे जा सकते हैं,—रोमानी, ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक, तिलस्मी, सामाजिक और जासूसी।

रोमानी उपन्यास

गोस्वामीजी की सौन्दर्यदृष्टि और देशभक्ति, ऐहिकता और धार्मिकता की अभिव्यक्ति के लिए बीते युग की कथा मे अधिक अवकाश था। उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ हमे प्रेम और साहसिकता के असाधारण लोक में ले जाती हैं। उनके प्रथम उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय' (१८९०) के समान 'कमोदिनी' (१८९१) भी कल्पित प्रेमकथा है। राजकुमार-राजकुमारी में प्रथम दर्शन से प्रेम होकर आरम्भ में वियोग तथा अत में मिलन होता है। प्रेम के इस परम्परागत रूप के साथ खोज की रूढ़ि जुडी हुई है, जो साहसिक यात्रा और प्राकृतिक रमणीयता के वर्णन के लिए मार्ग खोलती है। कोमल प्रेमकहानी को बहुत दिनों तक उपन्यास की संज्ञा दी गई इसलिए उक्त दो रचनाएँ

उपन्यास की परिसीमा मे लाई जा सकती हैं । इनकी वास्तविक उपलब्धि यही है कि हलके मनोरजन के कथानक को साहित्यिक सौष्ठव प्रदान किया गया है ।

भाव-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास

सुदूर अतीत के ऐतिहासिक व्यक्तियो की अपेक्षा निकट अतीत के कल्पित व्यक्तियो की कथा लिखना अधिक आसान होता है । शायद इसीलिए गोस्वामीजी ने आरम्भ मे निकट अतीत की घटनाओ के आधार पर ऐतिहासिक रोमास लिखे । उनकी विशिष्टता यह है कि बाहरी घटनाओ की अपेक्षा आन्तरिक सवेदनाओ को प्रमुखता दी गई है । 'हृदय-हारिणी' (१८९०)और 'लवगलता' (१९०३) का सम्बन्ध सिराजुद्दौला के शासनकाल से है । दूसरा उपन्यास पहले का परिशिष्ट होते हुए भी स्वतन्त्र है । 'हृदयहारिणी' की कहानी रसभीगी है । कृष्णनगर की विधवा महारानी अपनी कन्या कुसुमकुमारी के साथ भेष बदलकर मुर्शिदाबाद मे रहती है । एक दिन सध्या के समय मेले मे फूल की माला बेचती हुई कुसुमकुमारी को देखकर युवक वीरेन्द्र उसकी माला खरीद लेता है और अपना हृदय बेच देता है । वह उसकी माँ से मिलकर उनकी सहायता करता है और एक दिन हाथी से उसकी जान बचाता है । महारानी राजकुमारी को वीरेन्द्र के हाथ सौप कर मर जाती है । वीरेन्द्र उसकी शादी रगपुर के राजकुमार से कराना चाहता है लेकिन उसे यह पसन्द नहीं है । जब यह रहस्य खुलता है कि वीरेन्द्र ही रंगपुर का राजकुमार नरेन्द्र है तब उपन्यास की नायिका और पाठक हर्ष-विस्मय से विभोर हो जाते है ।

इस नाटकीय कथावस्तु में सिराजुद्दौला और अग्रेजो के युद्ध की इतिहास-प्रसिद्ध घटना जोड दी गई है । इतिहास की गौण घटना को मुख्य और मुख्य घटना को गौण बना दिया गया है । ऐतिहासिक पात्रों के चित्रण में नवीनता है । मीरजाफर को 'मुसलमान कुलभूषण' और सिराजुद्दौला को 'बंगाल का रावण' बताया गया है । इनकी अपेक्षा अन्य पात्रो का चित्रण अधिक सफल हुआ है । कुसुमकुमारी राजकुमारी होकर भी प्रतिकूल परिस्थितियो का साहस के साथ सामना करती है । उसकी दासी चंपा उससे भी बढी-चढी है । वह दुर्दिन मे भी अपनी स्वामिनी को नही छोड़ती । कुसुम की शादी मे वह माँ और सास दोनो का स्थान ग्रहण करती है ।

'लवंगलता' मे रंगपुर की राजकुमारी लवगलता और दिनाजपुर के

राजकुमार मदनमोहन की प्रेमकथा है। लवगलता की तसवीर देखकर सिराजुद्दौला उस पर फिदा हो जाता है और उसे पकडकर तिलस्मी कमरे में कैद कर लेता है। लवंगलता अपने प्रेमी की सहायता से मुक्त होती है। वेश-परिवर्तन, गुप्त षडयन्त्र, अपहरण-हत्या आदि से रोमाँचकारी घटनाओ के साथ ही ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि हुई है। जिस सिराजुद्दौला को 'क्रोधी, हठी, अत्याचारी तथा इन्द्रियपरायण' बताया गया है उसी की बहन लवंगलता की सहायता करती हुई दिखाई गई है। अतएव उपन्यासकार का दृष्टिकोण साप्रदायिक नही कहा जा सकता है। लवगलता वीरबाला होते हुए भी आदर्श पत्नी है।

ऐतिहासिक कथानक मे पारिवारिक प्रसग का समावेश दोनो उपन्यास मे किया गया है, जिससे उनका सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा है। स्वच्छन्द प्रेम की परिणति दाम्पत्य प्रेम मे हुई है। प्रेमी-प्रेमिका के हास-परिहास मे घरेलू मिठास है। शुष्क ऐतिहासिक घटनाओं के बदले सरस प्रेम-चर्चा और निर्जीव ऐतिहासिक व्यक्तियो के बदले सजीव एवं वास्तविक नर-नारी को स्थान देकर उपन्यासकार ने कवि का दायित्व निभाया है। भिन्न परिस्थितियों में रहने वाले पात्रो की भावनाएँ हमारी जैसी हैं इसलिए हमारी सहानुभूति सहज ही उनकी ओर हो जाती है। विलासी, धूर्त और निर्मम शासक वर्ग के सामने कुसुम और लवंग जैसी शील एवं सौन्दर्य की प्रतिमाएँ प्रेरणा देती हैं। अपनी आदर्श नायिकाओं का चरित्र-निर्माण उपन्यासकार ने कुशलता से किया है।

'गुलबहार' (१९०२) मे भी ऐतिहासिक व्यक्तियो के मानवीय भाव का उद्घाटन किया है। गुल और बहार मीरकासिम की सन्तान हैं। गुल जैसी ही भोली है बहार वैसा ही वीर है। गुल भाई के लिए बहार पिता के लिए जान दे देता है। भ्रातृभक्ति और पितृभक्ति के ये उदाहरण अनुपम हैं। दुखान्त कहानी, स्पष्ट चरित्र-चित्रण, सजीव वार्तालाप और अविस्मरणीय दृश्य सभी मिलकर प्रभावऐक्य की सृष्टि करते है। घटना और भावुकता के संयोग से कथावस्तु कोमल एव करुण हो गई है। बहार का रात में नाव पर पिता के लिए खाना पहुँचाना और उसकी कब्र पर गुल का मरना ये दो स्थल बड़े मार्मिक हैं। विषय और आकार की दृष्टि से 'गुलबहार' कहानी की कोटि में रखा जाना चाहिए परन्तु लेखक ने उसे उपन्यास की सज्ञा दी है।

'कनक कुसुम' (१९०४) इतिहास के यथार्थ और रोमांस का मिश्रण

है। जब बाजीराव पेशवा निजाम द्वारा कैद कर लिया जाता है तब उसमान नामक एक नौजवान उसे छुड़ाता है। उसमान वास्तव मे निजाम की रखेलिन की बेटी मस्तानी है जो बाजीराव की तस्वीर देखकर उसे अपना देवता बना चुकी थी। बाजीराव अपनी पत्नी के इच्छानुसार मस्तानी को पत्नी बना लेता है। कहानी एक साथ ही नारी के प्रेम का स्वाभाविक एव वक्र रूप प्रस्तुत करती है। एक रखेलिन की बेटी को अनिद्य सौन्दर्य और अनन्य प्रेम की पात्री बनाना उदार दृष्टिकोण का परिचायक है।

सामयिक परिवेश के साथ वैयक्तिक प्रेम का सामजस्य 'मल्लिका देवी' (१९०५) की प्रत्यक्ष विशेषता है। तेरहवी सदी की घटना के आधार पर युद्ध और प्रेम की कहानी सुनाकर इतिहास के एक विस्मृत पृष्ठ को जीवित किया गया है। कथानायक भागलपुर का राजा नरेन्द्र सिंह है, जो बगाल के नवाब तुगरल खाँ के अत्याचार का विरोध करता हुआ मल्लिका देवी को यवनो के चगुल से बचाता है। उसका व्यक्तित्व द्विगुणित आकर्षण लिए उभरता है। वह शासक वर्ग से उत्पन्न होने पर भी अत्याचार से पीडित प्रजावर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास मे ऐतिहासिक यथार्थवाद का पुट है, जो संस्कृतनिष्ठ शैली और पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग से स्पष्ट हो गया है। उसमें पूर्णता तब होती जब स्थानीय रग मे कुछ और निखार होता है।

प्रकृति की छवि मे मानवीय भावो के दर्शन होते है। नरेन्द्रसिंह का निर्जन वन के भग्न मन्दिर मे मल्लिका से मिलना या मल्लिका का रम्य पुष्पोद्यान मे सरोवर के सोपान पर सहेली के साथ माला गूँथना ऐसा मनोरम दृश्य है जो पात्र से अभिन्न होता है। उपन्यास की दो नायिकाओ मे मल्लिका की अपेक्षा मालती अधिक सजीव है क्योकि वह सक्रिय है।

कथानक-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास

'राजकुमारी' (१९०२) और 'लखनऊ की कब्र' (१९०६) जटिल कथानक के उपन्यास हैं। इनमे रोमास, इतिहास और तिलिस्म के सयोग से रहस्यमय लोक की सृष्टि की गई है। प्रथम उपन्यास का घटनास्थल मुंगेर है, दूसरे का लखनऊ। अतः सुरग और तहखाने की कल्पना निराधार नहीं है। 'राजकुमारी' मे प्रेम और भाग्य का सम्बन्ध बड़ी खूबी से दिखाया गया है। सुकुमारी और मानिकचन्द की कथा मुख्य है, जिसमें मोहनदेई और दौलतचन्द का प्रसंग गुम्फित कर दिया गया है। इससे स्वच्छन्द प्रणय के साथ-साथ

दाम्पत्य प्रेम का चित्रण सम्भव हुआ किन्तु इतिहास के साथ न्याय नही किया गया। सेठ अमीचन्द की लड़की मोहनदेई और घरजमाई दौलतचन्द इतिहास से लिए गए प्रनीत नही होते। ऐतिहासिक उपन्यास के गौण पात्र कल्पित हो सकते हैं पर उनका सम्बन्ध जिन घटनाओ से रहता है उनमे सत्यता का आभास होना चाहिए। सुकुमारी का गगास्नान के बहाने आकर मानिक से पुल के पास मिलना रोमानी दृश्य उपस्थित करता है। वह मोहनदेई को जेठानी माक्ती है पर जब वह पति के साथ प्रेमालाप करती है तो छिपकर सुनती है। गोस्वामीजी घटना और पात्र मे सामजस्य स्थापित नही कर सके। उनके उपन्यास की शक्ति सहज सरल भाषा मे और सुन्दरता स्वाभाविक वार्तालाप मे है, जिससे कथानक की उलझन और चरित्रांकन की अस्वाभाविकता अधिक खटकती नही है। दो स्त्रियो की यह विनोद-वार्ता छिपकर सुनने योग्य है .

सुकुमारी—"भई! तुम ऐसी रसीली हो कि मेरा जी तुम्हारे ही साथ शादी करने को चाहता है।'

मोहनदेई—"बहुत खूब! मगर यह तो बताओ तुम जोरू बनोगी या खसम ?"

'लखनऊ की कब्र' (१९०६) लखनऊ के नवाब नसीरुद्दीन हैदर के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए लिखी गई। वह विलासी, लपट और शौकीन है। उसका रहन-सहन अग्रेजी ढग का है लेकिन उसके ख्याल पुराने हैं। वह अपनी स्त्री की दासी दुलारी से ही शादी करता है। दुलारी उसे अपने इशारे पर नचाती है। वह 'जितनी ही खूबसूरत है उतनी ही जालिम भी है'। कजी, डरावनी आँखो वाली आसमानी शाही महल की कुटनी का प्ररूप है। प्राय: सभी पात्र गहरे काले रग मे रगे है।

नवाब के सजे-सजाए कमरे से लेकर गदे और अधेरे तहखाने का वर्णन इस वास्तविकता और कुशलता से किया गया है कि उसमे अविश्वास करना कठिन है। युसुफ नामक मुमव्वर महल की रहस्य-लीला का आँखो-देखा वर्णन करता है। किन्तु अतिरजित विवरण और अनावश्यक वार्तालाप से उपन्यास का कलेवर बढाने की चेष्टा की गई है। कौतूहल की सृष्टि लिए कथा को इतना रहस्यमय बना दिया गया है कि प्रथम दो भागो तक उसे पक्षघात हो गया है। इतिहासकार का काम वर्णन करना है, उपन्यासकार का

से विचलित नही होती। जब वे उसको सहेली के साथ प्रेमालाप करते हैं, वह चोरी-चोरी सुनती है। उसका यह व्यवहार अशोभन लगता है, यद्यपि इसमें उसकी मानवीय दुर्बलता का नही बल्कि उसके स्रष्टा की उन्मुक्त रसिकता का आभास मिलता है। यह सोचना गलत होगा कि वह अपने मुसलमान प्रेमियो की बाते सुनने मे रस लेती है। वह जिस अविश्वास के वातावरण मे साँस ले रही थी उसमे इस तरह का व्यवहार छोड़कर और क्या कर सकती थी ? उसे छिपकर भेद लेना भी तो था। यदि उसे वैसा व्यवहार करते हुआ दिखाया गया है जैसा परिस्थिति मे करना आवश्यक था तो गोस्वामीजी ने ऐतिहासिक उपन्यासकार के दायित्व का ही निर्वाह किया है।

तारा से उसकी सहेली रभा का चरित्र अधिक स्वाभाविक और सजीव है। वह ऐयारा और जासूस है पर उसकी एयारी और जासूसी अपनी सहेली के लिए है। दारा और सलावत से प्रेमालाप कर वह प्रेम का अभिनय करती है। इसे वास्तविक प्रेम का चिह्न नही समझ लेना चाहिए। जहानआरा की सुन्दरता ही उसका अमोघ अस्त्र है, जिससे वह पिता, भाई और दरबारियो को वश में रखती है। उसकी 'हसीन और रसीली' बाँदी जोहरा उससे अधिक मोहनी है। पुरुष-पात्रो मे दारा का चरित्र ही पूरी तरह उभर सका है। वह हिन्दू और हिन्दूधर्म का हिमायती है। तारा से उसका प्रेम राजनीति का अग है पर बहन से प्रेम एक पहेली है।

उपन्यास का वातावरण अतिनाटकीय है। शाहजादे और शाहजादियाँ प्रेम और अधिकार के पीछे पागल हैं। तसवीर देखकर प्रेम किया जाता है, तसवीर प्रेम के उपहार में भेजी जाती है और तसवीर की पीठ पर ही प्रेम की पाँती लिखी जाती है। शाहजादे बाँदियो से आँख लडाते है। शाहजादियाँ नौकरो पर मरती हैं। जहानआरा हकीम से दवा कराते-कराते उसकी मरीजा बन जाती है। रौशनआरा हम्माम मे सुरग की राह से नौकर का बुलाती है। कुटनियो और दूतियो का बोलबाला है। शाही महल और बाग प्रेम के नशे मे झूमते हुए नर-नारी के चुंबन की आवाज, बफादारी की कसम, हास्य, विनाद और गीत से गूँजते रहते हैं।

गोस्वामीजी ने इतिवृत्त के लिए प्रसिद्ध अग्रेज इतिहास-लेखको की रचनाओं से सहायता ली है। व्याख्या और निष्कर्ष उनके अपने है। उन्होने कुछ ऐसे प्रसगों की चर्चा की है जो इतिहास-सम्मत प्रतीत नही होते जैसे, तारा को अमरसिंह की पुत्री बनाकर राजसिंह से उसका ग्रंथिबधन करना।

फिर भी इतिहासकार द्वारा उल्लिखित राजसिंह को पत्र लिखने वाली कोई भी स्त्री वैसी प्राणवती नही हो सकती जैसी गोस्वामीजी की तारा है। ऐतिहासिक तथ्यो की अवहेलना के लिए उन्हे उतना दोष नही दिया जा सकता जितना इस बात के लिए कि उन्होने कुछ दृश्यो और पात्रो को अतिनाटकीय बना दिया है। अतिनाटकीयता ही तारा के चरित्र को झुठलाती है। दारा और जहाँनारा के प्रेम-सम्बन्ध का आधार उन्हे इतिहास मे मिला या यह उनकी कल्पना की उपज थी, यह विचारणीय है। बालमुकुन्द गुप्त ने इस उपन्यास पर आक्षेप करते हुए लिखा था कि 'भाई का विचार बहन के विषय मे इतना सुन्दर होने ही से गोस्वामीजी की 'तारा' साहित्य का चमकता हुआ सितारा है।'[11]

काठियावाड के विशालदेव की रानी कमलादेवी को अलाउद्दीन ने अपनी पत्नी बना लिया था। इस इतिहास-प्रसिद्ध घटना को गोस्वामीजी ने 'हीराबाई' (१९०४) मे नये ढग से प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार कमला देवी वास्तव मे हीराबाई थी जो अलाउद्दीन के एक मुस्लिम फौजी अफसर की स्त्री थी और जिसे विधवा होने पर विशालदेव ने अपने यहाँ आश्रय दिया था। वह विशालदेव के उपकार का बदला अपने शरीर और प्राण को अर्पित कर चुकाती है। उसका अनुपम त्याग एक भारतीय नारी के अनुरूप ही है। उसका चरित्राकन सहिष्णुता और सहृदयता से किया गया है, भले ही अलाउद्दीन की व्याहता होने के कारण उसे मुसलमानिन सिद्ध करने मे लेखक का धार्मिक आग्रह हो।

वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास

गोस्वामीजी ने कुछ उपन्यासों में व्यक्ति को कथा का केन्द्र बनाया परन्तु उसके व्यक्तित्व की अपेक्षा उसके वातावरण पर विशेष ध्यान दिया। 'सुलताना रजिया बेगम' (१९०४) और 'लाल कुँवर' (१९१३) वातावरण-प्रधान उपन्यास है। प्रथम उपन्यास मे शाही महल की प्रेमलीला और राजनीतिक षड्यन्त्र का रोमांचकारी वर्णन है। याकूब और अयूब दो नौजवान गुलाम हैं। याकूब पर रजिया बेगम और उसकी सहेली सौशन तथा अयूब पर उसकी बाँदी जोहरा और सहेली गुलशन लट्टू है। एक पुरुष के साथ दो स्त्रियो के प्रेम से उत्पन्न होने वाली स्थिति गम्भीर नही हो पाई क्योंकि याकूब और अयूब सौशन और गुलशन का ही हृदय मे स्थान देते हैं। उनका

आदर्श प्रेम ही उपन्यास का मुख्य विषय है। आनन्द प्रकाश जैन ने 'पलकों की ढाल' मे रजिया बेगम और याकूब के प्रणय-सम्बन्ध पर ध्यान केन्द्रित कर बेगम के चरित्र को अच्छी तरह उभारने का यत्न किया है। उनकी भाँति गोस्वामीजी ने भी बेगम की दुर्बलता और दृढ़ता पर दृष्टि डाली है पर उनके उपन्यास मे सौशन का व्यक्तित्व ही आकर्षण लिए सामने आता है। वह याकूब की होकर भी उसे सुलताना के प्रणय-निवेदन को स्वीकारने कहती है। पर याकूब उसके सामने सुलताना को ठुकरा देता है। उसका यह निर्णय उतना ही असगत लगता है जितना जोहरा का हुक्का पीना। गोस्वामीजी की विशिष्टता यह है कि उन्होने वासना पर प्रेम की और प्रलोभन पर त्याग की विजय दिखाई है। इस ऐतिहासिक कथावस्तु मे जो नाटकीय सम्भावना थी उसे वे पूर्णतया अनावृत्त नही कर सके। वे यौगिक चमत्कार और तिलस्मी करामात दिखाने मे लगे रहे। उन्होने जहाँ शाही दरबार और बाग का वर्णन किया है वहाँ उनकी कल्पना की सराहना करनी पडती है। उन्होने रजिया बेगम के अवैध प्रेम के साथ-साथ उसकी कठोर न्याय-व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है, जो उनके उदार दृष्टिकोण का परिचायक है।

'लाल कुँवर' गोस्वामीजी का श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास है। उन्होने औरगजेब के पोते जहाँदारशाह की प्रेयसी लाल कुँवर का अवलम्बन कर शाही महल के रहस्य का शानदार उद्घाटन किया है। उसमे सामती सभ्यता के उपकरण बिखरे हुए है : भरी मजलिस, आलीशान कमरे, सजी दीवारें, छत से लटकते हुए बिल्लौरी झाड़, नीचे रेशमी कालीन। कमरे के बीच तख्त पर शाहजादा, उसके अगल-बगल परियो का जमघट, सामने वेश्याओं के नाचगान, हसीन बाँदियो के हाथ मे शराब के छलकते प्याले पद्माकर की कविता की याद दिलाते है। और जब ईद की रात उतरती है तो महल मे वासना खुलकर खेलने लगती है। कही बडी बेगम अपनी बाँदी से ही लिपट कर सोई है, कहीं जनखो और लौंडियो मे छेडखानी हो रही है तथा कहीं कोई शराब पीता है, पिलाता है और मुहब्बत का मजा लूटता है। ह्रासकालीन मुगल साम्राज्य की उन्मुक्त विलासिता का ऐसा चटकीला चित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

उपन्यास का वातावरण क्या है धूप का उमड़ता हुआ धुँआ है, जिसमें पात्र खो गये हैं और पात्रो की भीड़ में नायक-नायिका छिप गये हैं। महल की एक रात का ऐसा सजीव वर्णन किया गया है कि स्थान और काल

भी पात्र बन गये हैं। बड़ी बेगम की मूर्ति एक वाक्य मे खडी कर दी गई है :

इसकी उम्र इस वक्त चौबीस बरस की है और जवानी की पूरी चढाई मे यह बरसाती नदी की तरह हर जगह से लबालब है।

इस रूपाकन मे जो रसिकता है वह भावुकता से उत्पन्न हुई है। उपन्यासकार की दृष्टि बेगम के कुम्हलाये चेहरे, मैले आँचल और डबडबाई आँखो की ओर भी गई है। उपेक्षिता से उसकी सहानुभूति है। लाल कुँवर की जाँघ पर वह "बदकार, फाहिशा" की मुहर दगवा देता है।

अर्ध ऐतिहासिक उपन्यास

गोस्वामीजी के कुछ उपन्याम न तो पूर्णतः ऐतिहासिक हैं न पूर्णतः सामाजिक बल्कि प्रेम की प्रदर्शनी है। उन्होने पूर्वकालीन भारत में समसामयिक व्यवहार और व्यक्ति को उपस्थित किया हैं। 'तरुण तपस्विनी' (१९०५) और 'सोना और सुगन्ध' (१९०९) एक साथ ही मध्यकालीन और आधुनिक भारत के उपन्यास हैं। उनकी कथावस्तु इतिहास से नही ली गई है, न ही उनके पात्र इतिहास-प्रसिद्ध है। 'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' की कहानी दुहराई गई है। प्रथम उपन्यास मे चपला और घनश्याम बचपन के साथी होने के कारण प्रेमपाश मे बँध जाते है और उनका विवाह भी तय हो जाता है। घनश्याम के निर्धन हो जाने पर उससे चपला का विवाह न होकर एक धनी किन्तु बूढे वर के साथ निश्चित होता है। चपला बेहोश हो जाती है, मरी हुई समझ ली जाती है और मरघट पहुँचाई जाती है; संयोग से जलाई नही जाती। उसकी सहेली का पति उसे शेर से बचाकर एक कुटी में रखता है, जहाँ एक दिन उसका प्रेमी आता है। घनश्याम की दूसरी प्रेमिका उसकी पड़ोसिन सौदामिनी है, जो चाहती है कि उसकी शादी चपला से ही हो। अन्त मे दोनो प्रेमिकाओ का विवाह घनश्याम के साथ कर दिया जाता है। उपन्यास को सुखान्त होना था, इसलिए कुछ घटनाओ से विवाह मे विलम्ब हो सकता था, बाधा नही हो सकती थी।

एक ज्वलंत समस्या का यह विचित्र समाधान आधुनिक पाठको को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। प्रेमकथा को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने का प्रयास विफल हुआ। १०० वर्ष पूर्व के जयपुर मे एक अनाथ युवक और धनवती युवती के बीच बन्द कमरे मे "कोर्टशिप" दिखाना हास्यास्पद नही तो क्या

है ? कला की दृष्टि से जो दोषपूर्ण है वह प्रयोजन की दृष्टि से क्षम्य है। गोस्वामीजी अनमेल विवाह का विरोध और बहुविवाह का समर्थन करना चाहते थे। उनका विद्रोह व्यग्य के स्वर मे व्यक्त हुआ है, इसलिए उसमे भावुकता का आवेश नही, विचार की शक्ति है। उनके मत से "इस देश मे वा सारे ससार मे सहस्त्र दुश्चरित्र होने पर भी धनवान के विवाह की कमी नही होती।" उन्होंने बहुविवाह को व्यक्तिगत प्रेम के स्तर पर स्वीकार किया है। सामाजिक प्रथा के रूप मे उसका समर्थन वे निश्चय ही नही करते। सौदामिनी यह अच्छी तरह जानती है कि घनश्याम चपला को प्यार करता है और उसका विवाह उसी से होगा, फिर भी वह मन मन्दिर से उसकी प्रतिमा को हटाती नही है। जब विवाह मे देर होती है तो प्रसन्न होने के बदले वह ज्वर से पीडित हो जाती है। इसी प्रकार उससे विवाह करने के लिए चपला घनश्याम को अनुरोध करती है। दोनो युवतियाँ प्रेम के लिए सौत बनकर रहना पसन्द करती हैं। उनके प्रतीकात्मक चरित्र दाम्पत्य जीवन को जीने योग्य बनाने की प्रेरणा देते हैं। प्रेम की पूर्ति त्याग मे है। केवल स्त्रियो से ही त्याग की अपेक्षा नही की गई है। घनश्याम को चपला से इतना प्रेम है कि "किसी अन्य स्त्री की ओर खोटी नजर उठाकर नही देखता था।" वह पत्नीव्रत होने का आदर्श उपस्थित करता है। 'तरुण तपस्विनी' को प० बालकृष्ण भट्ट ने 'गद्यकाव्य' की श्रेणी मे रखा था। इसमे जैसा ही रमणीय कथानक है, वैसे ही तरुण नायक-नायिका हैं। शैली भी विषय के अनुकूल है। नौवा परिच्छेद रूप-रग की चित्रशाला है। प्रकृति मानवीय सौन्दर्य का श्रृंगार है। दैनिक जीवन के दृश्यो मे स्वप्नलोक की आभा है। कही "एक लतावेष्ठित मनोहर उद्यान मे सरोवर के सोपान पर चपला आर्द्र वस्त्रों को पहिरे खडी-खडी घनश्याम की ओर हँसकर हाथ बढा रही है और घनश्याम झुककर उसके हाथो मे फूल का गुच्छा दे रहा है", कही "चपला प्रणय कुपित होकर पीछे हट रही है और घनश्याम अनुनय करता हुआ आगे बढकर उसका चरण पकडना चाहता है", कही "घनश्याम सघन तरु की शीतल छाया मे बैठकर पुस्तक पढ रहा है और चपला उसके वाम भाग में बैठी हुई पखा झल रही है—" और कही "चपला का एक हाथ घनश्याम की ग्रीवा पर और घनश्याम का एक हाथ उसके गाल पर है।" लेखक नायक-नायिका की वाह्य चेष्टाओ पर इतना मुग्ध है कि उनकी अन्तर्दशा का उसे भान नही है। स्थूल रूप-चित्रण में भी सूक्ष्मता है। एक वाक्य में वस्त्र-

विन्यास की झाँकी खड़ी कर दी गई है, "कंधे पर से घूमकर बाहु के बीच से होता हुआ एक अचल का छोर भूमि मे लटक रहा है।" कवि की भाँति शब्दो के सचयन और प्रयोग से सजीव दृश्यो की योजना की गई है।

'सोना और सुगन्ध' यथार्थ और कल्पना का अनमेल गठबन्धन है। सेठ हीराचन्द अपने स्वर्गीय मित्र के पुत्र मानिकचन्द का पालन-पोषण करता है और अपनी इकलौती लड़की पन्नाबाई के साथ उसकी शादी कर देना चाहता है। मानिकचन्द और पन्नाबाई में प्रेम भी है। रूपसिंह पन्नाबाई की शादी सेठ जगमल से कराने के लिए मानिकचन्द के वेश्यागामी होने की गप्प उडा देता है। हीराचन्द मानिकचन्द को घर से निकाल देता है और जगमल से शादी की बात तय कर लेता है लेकिन उसकी स्त्री पन्नाबाई को लेकर मैके चली जाती है। मानिकचन्द आगरा जाकर अकबर के मुसव्वर निहालचद का दोस्त बनता है और अकबर खुश होकर उसकी शादी पन्ना से करा देता है।

हीराचन्द, जगमल, और निहालचन्द को अकबर का जौहरी, दरबारी और मुसव्वर बनाकर पात्रो को पृष्ठभूमि बना दिया गया है। सरदार के० एम० पणिकर ने अकबरकालीन भारत को पृष्ठभूमि बनाकर 'कल्याणमल' नामक उपन्यास लिखा है किन्तु उनकी कल्पित घटनाएँ भी सम्भव और कल्पित पात्र भी अपने युग के प्रतिनिधि लगते हैं। गोस्वामीजी की पन्नाबाई तो एक ऐसी नवीना है जो मध्यकालीन भारत मे भटक कर चली गई है। उन्होंने पण्डितराज जगन्नाथ को अकबर का समकालीन बनाकर, उनसे गजल लिखवाकर और उसमे अपना नाम जोड़कर इतिहास के साथ खिलवाड़ किया है, जैसे,—

> याद आती है किशोरीलाल उस शब की शनम,
> रूठ जाने की अदा फिर खुद मनाने की अदा।

इस प्रकार की असगति और अस्वाभाविकता के बावजूद गोस्वामीजी की अकबर-सम्बन्धी धारणा कुछ इतिहासकारो की धारणा से मेल खाती है। उसकी विलास-वासना, शाही महल की शान और आगरे की शोभा का जैसा वर्णन किया गया है उसमे पूरी सच्चाई भले ही न हो, सजीवता तो है ही। वर्णन का अंश अधिक नही हैं और जो है वह अन्य अनावश्यक बातो से दब गया है। सच तो यह है कि प्रणय-क्रीड़ा देखने-दिखाने के आवेश मे गोस्वामीजी

देश-काल को भूल गए। उपन्यास के आरम्भ मे ही नायक-नायिका बाग मे अठखेलियाँ करते दिखाए गए हैं :

पन्ना—"हाय ! इस निगोड़े भौंरे ने बडा ऊधम मचाया।"

मानिक—"जरा अपना गाल उसे चूम लेने दो तो वह बेचारा आसूद होकर चला जाय।"

पन्ना—"लेकिन इस बात की तुम्हे शर्म होनी चाहिए कि तुम्हारे सामने मेरे गालो का रस यह मुआ ले।"

ऐतिहासिक उपन्यासों की विशेषताएँ

गोस्वामीजी ने ऐतिहासिक उपन्यास इसलिए नही लिखे कि उन्हे इतिहास मे रुचि थी। बल्कि इसलिए कि ऐतिहासिक विषय उनकी रुचि के अनुकूल था। 'तारा' के 'निवेदन' मे उन्होने अपने इतिहास-सम्बन्धी दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला है। उनके विचार से "जैसे इतिहास की मूल भित्ति सत्य है वैसे ही उपन्यास की मूल भित्ति कल्पना है"। वे ऐतिहासिक उपन्यास की रचना मे सत्य और कल्पना का सयोग आवश्यक मानते है किन्तु उनके अनुसार "जहाँ इतिहास की घटना जटिल, सत्याभास-मात्र और कपोल कल्पित भासती है, वहाँ लाचार हो इनिहास को बाँधकर कल्पना ही अपना पूरा अधिकार फैला देती है"। उनके अधिकाश उपन्यासो का सम्बन्ध मुस्लिम शासनकाल से है। उस काल मे इतिहास मुसलमानो द्वारा लिखे गए, जो गोस्वामीजी को पूर्ण प्रामाणिक प्रतीत नही हुए। अत. उन्होने उपन्यास-लेखन मे अग्रेज लेखकों की पुस्तको एव लेखों से सहायता लेना या फिर कल्पना का आश्रय लेना उचित समझा। उन्होने स्पष्ट कहा है :

> हमने अपने बनाए उपन्यासो मे ऐतिहासिक घटना को 'गौण' और अपनी कल्पना को 'मुख्य' रखा है; और कहीं-कही तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर ही से नमस्कार भी कर दिया है।

इतिहासकारो से असहमत होने और कल्पना को प्रमुखता देने का परिणाम यह हुआ कि गोस्वामीजी ने बहुत-सी बातें ऐसी लिखी जो इतिहास-सम्मत नहीं हैं। फिर भी उन्होने अपने अध्ययन और अनुमान के आधार पर पुरानी घटनाओं की नई व्याख्या की है और ऐतिहासिक व्यक्तियों को नवीन रूप मे उपस्थित किया है। उन्हें भारतीय इतिहास के पुर्ननिमाण और मध्य-युग के साहित्यिक आविष्कार का श्रेय मिलना चाहिए। उनके मत से मुस्लिम

इतिहास लेखको ने हिन्दुओ के गुण और मुसलमानो के दोष छिपाने की कोशिश की है। यही कारण है कि उन्होने अपने उपन्यासो मे हिन्दुओ की वीरता का बखान और मुसलमानो की विलासिता का पर्दाफाश किया है। वे वस्तु का गठन इस प्रकार करते हैं कि इतिहास-प्रसिद्ध पात्र कल्पित पात्रो की ओट मे छिप जाते है और कल्पित पात्र सामने आकर आकृष्ट कर लेते हैं। अपनी पूर्व निश्चित धारणा के कारण उन्होने ऐतिहासिक तथ्य को विकृत कर अपनी कल्पित कथा के अनुकूल बनाने की चेष्टा की है। इससे नाटकीय प्रभाव और काव्यात्मक सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। दोष के गुण ओर लोगो का ध्यान साधारणतः नही जाता।

इसमे सन्देह नही कि उन्होने ऐतिहासिक सत्य की अवहेलना की है। इतिहासकार इनके उपन्यास मे कालदोष पायेंगे। आलोचको को उनका उन्मुक्त कल्पना-विलास खटकेगा। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि उपन्यास इतिहास नहीं है, साहित्य है। इतिहास के आलोक मे शेक्सपियर के विश्वविख्यात नाटक फीके पड जायेंगे। इतिहास के तथ्यो को यथावत अंकित कर देने से ही उच्च-कोटि के ऐतिहासिक नाटक और उपन्यास की सृष्टि नही होती।

यह भी सच है कि इतिहास के प्रति उनका दृष्टिकोण गम्भीर, व्यापक और पूर्ण नही था। उन्होने इतिहास के ऊपरी आवरण को देखा, उसके मूल रूप का दर्शन वे नही कर सके। यह उनके युग की सीमा थी और इसके लिए उन्हे दोष देना उचित नही है। इतिहास वीरो और सुन्दरियो की जयगाथा न होकर जनता के सुख-दुख, जय-पराजय, आचार-विचार की अमर कहानी है। गोस्वामीजी ने इतिहास को इस रूप मे ग्रहण नही किया तथापि उनकी रच-नाओ मे कही-कही उन्ही के शब्दो मे 'कल्पना की छाया मे इतिहास की वास्तविक ज्वलत मूर्ति' का दर्शन हो जाता है। उन्होने मध्यकालीन भारत की भड़कीली किन्तु सच्ची झाँकी प्रस्तुत की है, मुस्लिम शासक वर्ग के पतन का यथार्थ चित्र अंकित किया है और इतिहास के उपेक्षितों को साहित्य का आलबन बनाया है।

हर युग का लेखक बीते युग को नई दृष्टि से देखने का प्रयास करता है। वे अतीत की ओर मुड़े तो वर्तमान को भूल नहीं सके। शायद इसलिए वे भारतीय इतिहास के मध्यकाल तक ही गए और अपने युग का प्रतिनिधि बनकर रहे। उन्होंने सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित होकर

अतीत का अकन किया। वर्तमान के अभाव की पूर्ति अतीत की गरिमा से हुई और अतीत मे नवीन भाव-विचार के आरोप से उसके दोषो का परिहार हुआ। 'तारा' मे उन्होने आधुनिक मानवतावादी विचार प्रकट किया है। उन्हे यह अच्छा नही लगा कि दारा हिन्दुओ को सतुष्ट रखने के लिए तारा से प्रेम करे। उन्हे शहजादे-शहजादियो का जीवन दुखद और हेय प्रतीत हुआ क्योकि उन्हे प्रेम करने की स्वतन्त्रता नही थी। उन्होंने जहानआरा से कहलाया है कि 'शहजादियो के बनिस्वत एक झोपडी की रहने वाली औरतें हजार दर्जे अच्छी और आजाद कही जा सकती हैं।'

वे इतिहासकार नही थे, साहित्यकार थे। इतिहासकार और साहित्यकार की दृष्टि मे भेद होता है। उन्होंने जिस अतीत का पुनर्निर्माण किया वह इतिहासकार का शुष्क, निर्जीव अतीत न होकर कवि का सरस, सजीव अतीत है। वे ऐतिहासिक सत्य के अन्वेषक नही, ऐतिहासिक रस के लोभी थे। अतीत को उन्होने कवि की आंखो से देखा था। जहाँ वे बीते युग की छाया मे जीवन के चिरंतन सत्य का सुन्दर रूप प्रदर्शित कर सके हैं वहाँ ऐतिहासिक रस की उपलब्धि होती है। एतिहासिक घटनाओ एव व्यक्तियो मे नवजीवन का सचार करने में उन्हे पूरी सफलता मिली है। उन्होंने बहुधा ऐतिहासिक घटना को प्रेमकथा की पृष्ठभूमि बना दिया है और पृष्ठभूमि की सृष्टि कुशलता से की है। उनके कुछ पात्र इतिहास की, कुछ कल्पना की सन्तान हैं। उन्होने मुख्यत: कल्पित पात्रों को प्रेमी-प्रेमिका के रूप मे उपस्थित किया है और इसलिए नायक-नायिका का पद प्राय: उन्हें ही मिला है। उनकी कुछ नायिकाएँ प्राचीन भारत की नारी की तरह स्वतत्र प्रकृति की होकर भी परिवार और समाज के घेरे मे रहती है। वे भारतीय परम्परा मे होने के कारण इतिहास की सतान कही जा सकती हैं। उनके पात्र उच्च और निम्न दोनों वर्ग के है। राजा, रानी, नवाब और योद्धा से प्रेमी, प्रेमिका, दासी और नौकर अधिक सजीव लगते हैं। पुरुषो से स्त्रियो मे अधिक महानता है। जिन स्त्रियों मे पौरुष है उनके आकर्षण का कहना क्या? इतिहास-प्रसिद्ध पात्रो के व्यक्तित्व को गोस्वामीजी विशेष प्राणवान नही बना सके। इतिहास मे जिनका नाम नही है वे उनकी कल्पना का स्पर्श पाकर अमर हो गए हैं।

उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास को नमनीय रूप देकर उसके क्षितिज का विस्तार किया। उन्होंने उसमे तिलिस्म, ऐयारी, साहसिकता और प्रेम के

तत्त्वो का मिश्रण किया। उन्होने कल्पना और सत्य, रोमास और इतिहास, अतीत और वर्तमान को मिला दिया। उन्होने हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के आदान-प्रदान के उदाहरण उपस्थित किए। उनकी हिन्दू नायिका फारसी और मुस्लिम नायिका सस्कृत जानती है। उन्होने वर्ग और वर्ण मे भेद नही किया। उनके पात्र विभिन्न सामाजिक स्तरो से आए हैं। उनकी भाषा-शैली में भी उनके उदार दृष्टिकोण की झलक मिलती है। हम ऐतिहासिक उपन्यासो मे उन्हे महान समन्वयवादी के रूप मे पाते हैं। वे विभिन्न रुचियो के पाठक का मनोरजन करने मे समर्थ हैं, यद्यपि उनमे बकिम का स्थानीय रग नही है, कन्हैयालाल मु शी की कहानी-कला नही है, स्काट की रोमानी कल्पना, लिटन की दार्शनिकता और ड्यूमा की की साहसिकता तो निश्चय ही नही है।

तिलस्मी उपन्यास

गोस्वामीजी ने ऐतिहासिक उपन्यास मे कहीं-कही तिलस्मी रग भर दिया है और तिलस्मी उपन्यास को ऐतिहासिक पृष्ठाधार प्रदान किया है। उनके हाथ मे आकर तिलस्मी उपन्यास का रूप बदल गया। उन्होने विशिष्ट काल की पृष्ठभूमि मे तिलस्म का वर्णन कर उसे सभव बना दिया है, यद्यपि उन्होने खोज का सहारा नही लेकर कल्पना से काम लिया है। देवकीनदन खत्री के उपन्यास का घटनाकाल अनिश्चित है, अतः उनका तिलस्म कभी-कभी असभव सा लगता है। गोस्वामी ने 'कटे मूड़ की दो-दो बातें' नामक उपन्यास कम्पनी-काल की घटना के आधार पर लिखा है। भोपाल के नवाब द्वारा निर्मित तिलस्मी शीशमहल पर एक डाकू कब्जा कर लेता है और खूबसूरत लडकियो को फँसाकर बेचता है। जासूस उसका पता लगाने आते हैं तो कैद कर लिए जाते हैं। शीशमहल की सीढ़ियो, सुरगो आदि का वर्णन तथा कटे सिर के बोलने की व्याख्या विश्वासप्रद है। उपन्यास में एक साथ ही इतिहासिक, तिलस्मी, ठगी और जासूसी कथाओ के उपादान मिल जाते हैं।

सामाजिक उपन्यास

गोस्वामीजी ने उपन्यास को मनोरजन का साधन मान कर ग्रहण किया और उसे समाज़-सुधार का साहित्यिक माध्यम बनाया उनके रोमानी-ऐति हासिक उपन्यासों मे अतीत के प्रति आसक्ति और सामाजिक उपन्यासों मे वर्तमान के प्रति असंतोष की अभिव्यजना हुई। उनके कुछ सामाजिक उपन्यास पूरे अर्थ मे सामाजिक नही हैं। उन्हे व्यवहार-सम्बन्धी और पारिवारिक

उपन्यासो की कक्ष मे रखना समीचीन होगा।

'स्वर्गीय कुसुम' (१८९१) एक ऐसा उपन्यास है, जो एक साथ ही घटना-प्रधान और चरित्र-प्रधान होता है। सारी घटनाएँ केवल एक स्त्रीपात्र के चारो ओर घूमती है। कुसुमकुमारी बचपन मे ही देवदासी बना दी जाती है और बाद मे वेश्या के हाथ बेच दी जाती है। बसतकुमार उसे नाव-दुर्घटना से बचाता है तथा उसका प्रियपात्र बनता है। उसके चरित्र का निर्माण बडे कौशल से किया गया है। वह साधारण वेश्या नही है फिर भी वेश्याओ के हृदय मे उठनेवाले चिरतन सघर्ष की प्रतिनिधि है। वह नाचती है, गाती है पर अपना शरीर बेचना नही चाहती। बसत को पाकर उसकी सहज मानवीय लालसा पूरी हो जाती है, साथ ही उसकी नैतिक भावना तुष्ट होती है। वह उसकी ओर इसलिए आकृष्ट होती है कि 'एक तो बसत ने उसकी जान बचाई, दूसरे, उसके तन को देखा'। उसके व्यवहार से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेश्या भी प्रेम करना जानती है और एक व्यक्ति की प्रेमिका बनकर रहना चाहती है। प्रेम उसके लिए एक प्रेरक शक्ति है। बसत से विवाह करने के बाद उसके जीवन मे महान परिवर्तन होता है। वह मखमली सेज पर लेटकर रामायण का पाठ करती है, फर्श पर मुसलमान को चढने नही देती, अमीरो से मिलना छोड देती है और बसत के सुखदुख की सगिनी बन जाती है। इस प्रकार वह पुराने सस्कारो को ढोती हुई प्रेम की उस अवस्था को प्राप्त करती है जहाँ शारीरिक सम्बन्ध अर्थहीन हो जाता है। बसत की तस्वीर उसे अधिक सुन्दर लगती है।

उसका व्यक्तित्व सामाजिक सदर्भ मे और भी उभर आया है। वह बसत का विवाह अपनी बहन से कराती है ताकि समाज उसका उपहास नही करे। वह उसके नाम अपनी सारी सम्पत्ति भी लिख देती है। जिस बहन के लिए वह त्याग करती है वही जब उसके प्रेममाग मे कटक बनती है तब वह आत्महत्या कर लेती है। उसमे 'सेवासदन' की सुमन की-सी असीम सहन-शीलता नही है। उसका व्यक्तिगत प्रेम उसकी सामाजिक भावना का सूचक है। वह प्रेम-सम्बन्ध के सहारे पूर्णता की ओर अग्रसर होती है।

वह देवदासी-प्रथा मिटाने का संकल्प करती है किन्तु नैतिक और सामाजिक बधन को छिन्न-भिन्न करने की सामर्थ्य उसमे नही है। उसके माध्यम से लेखक ने समाज की एक गंभीर समस्या को उठाने का प्रयास किया पर उसका समाधान वह प्रस्तुत नही कर सका। उसने नायिका को सामाजिक

अन्याय से बचाने के प्रयास मे उसे उसका ही शिकार बना दिया। सामंती रूढियों के प्रति उसका विद्रोह सुधारवादी भावना का अग बनकर रह गया। फिर भी उसने इस उपन्यास मे एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है। उसने मानसिक पवित्रता को महत्त्व देकर नारी के सतीत्व के सम्बन्ध में प्रचलित धारणा का प्रतिवाद किया है और नैतिकता के नाम पर किए गए अन्याय को अक्षम्य माना है। वेश्या के प्रति सहानुभूति भावुकता से नही बल्कि उदारता से उत्पन्न हुई है।

कुसुम की कहानी वेश्या-जीवन के यथार्थ चित्रण के लिए नही लिखी गई है। इसके लिए चुन्नी नाम की वेश्या को चुना गया है और उसके माध्यम से वेश्या-गमन का दुष्परिणाम दिखाया गया है। प्रेमचन्द ने 'सेवा सदन' मे ऐसा ही किया है। कुसुम वेश्या बनकर भी वेश्या के समान व्यवहार नही करती है। उसकी कहानी से न तो पाप के प्रति आकर्षण होता है और न वासना को उत्तेजना मिलती है। लेखक ने मानवतावादी विचार से प्रेरित हो-कर देवदासी और वेश्या के जीवन पर प्रकाश डाला है। यही कारण है कि कुसुम का चरित्र आदर्श और प्रेरणादायक है। वह परिस्थिति के सामने पराजय स्वीकार नहीं करती। अपने शील, सकोच, त्याग, निष्ठा और प्रेम से वह अपनी मूक व्यथा को दबाकर आनन्द का अनुभव करती है। उसके भाव और विचार उसे जीवत बनाते है और उसकी कहानी को सार्थकता प्रदान करते हैं। वह ब्राती की नायिका जेनआयर की याद दिलाती है, जो एक मामूली गवर्नेस होकर भी अपने प्रेमी के प्रति ईमानदार है।

कहानी कहने मे ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक और पत्रात्मक तीनो पद्धतियो का उपयोग किया गया है। उपन्यास की अन्विति केन्द्रीय पात्र की जीवन-कथा पर निर्भर है। कथानक के गठन मे कौशल है। वर्णन-शैली से कथा मे सरसता और वातावरण मे मोहकता आ गई है। कुसुम की रूप-सज्जा का यह वर्णन जोला और मोपासाँ की कला का स्मरण दिलाता है .

वह एक स्वच्छ कुसुम्भी रग की बनारसी साड़ी पहिरे थी। साडी का एक कोना कमर से दोनो भुजाओ के नीचे तक फैला था। पीठ खुली, पर कसीली चोली कसी थी। बसतानिल उस उन्नत उरोज के वसनाचल के संग क्रीड़ा करता था। कभी वस्त्र उड़ाकर कभी चिपकाकर उन्नत उरोज की दूनी शोभा कर देता था। साड़ी के भीतर चंपक समान अंक के रूप लावण्य की विभा

फट-फट कर बाहर निकलती थी।

'स्वर्गीय कुसुम' की भाँति 'लीलावनी' (१९०१) मे एक पात्र पर ध्यान केन्द्रित नही किया गया। एक ही विषय की विविधता दिखाने के लिए पाँच जोडियों की कल्पना की गई है। कालिन्दी-प्रमोद कुमार, लीलावती—ललित किशोर, कलावती—बालकृष्ण, लाडिली—गोबिन्द चन्द्र और बतसिया—जगी एक सूक्ष्म सूत्र मे सम्बद्ध है। यदि केवल लीलावती और कलावती के प्रसगो पर प्रकाश डाला जाता तो उच्च कोटि के उपन्यास की सृष्टि होती।

प्रमोद कुमार और कालिन्दी का परिचय प्रेम मे और प्रेम विवाह मे परिणत होता है। कालिन्दी लीलावती को जन्म देने के बाद मर जाती है। उपन्यास मे लीलावनी की कहानी ही मुख्य है और वही लेखक के शब्दो मे 'प्रधान नायिका' है। उसकी मौसेरी बहन कलावती दूसरी नायिका कही जा सकनी है। दोनो की कथाओ मे समानान्तरता होते हुए भी दोनो के चरित्र मे विभिन्नता है। लीलावनी सरल, गम्भीर और लजीली है। वह अपना समय घर के कामकाज और धार्मिक पुस्तको के अध्ययन मे बिताती है। वह किसी पुरुष से बोलने के समय सिर नीचा कर लेती है। कलावती शौकीन, चंचल और शोख है। वह शृगार रस के चुहचुहाते नाटक, उपन्यास और काव्य पढनी है। वह पुरुष के सामने रूप के गर्व से तन जाती है। स्वभाव से एक भली है, दूसरी बुरी पर रूपरग और प्रेमभावना मे दोनों युवती स्त्रियां है।

कलावती की सुन्दरता खिले हुए गुलाब की भाँति है जो जल्दी ही झर जाता है और लीलावनी की सुन्दरता अधखिले कमल की भाँति है जो खिलने पर भी बहुत देर तक ठहरता है।

एक दिन बालकृष्ण के घोड़े से ललितकिशोर दोनो बहनो को बचाता है। लीला ललितकिशोर की ओर और कला बालकृष्ण की ओर आकृष्ट होती है। कलावती अपने प्रेमी के साथ घर से निकल जाती है। लीलावती विवाहित होकर घर मे रहती है। बूढी हो जाने पर वृन्दावन मे दोनो की भेट होती है। कलावती को कोढ़ हो गया है। वह लीलावती को देखकर यमुना मे डूब मरती है। लेखक लीलावती को सुख और सन्तान देता है, कलावती को कोढ और मौत। पर एक पाठक की सराहना प्राप्त करती है तो दूसरी सहानुभूति।

दो भिन्न स्वभाव की बहनो के प्रेमी भी भिन्न प्रकार के हैं। ललित किशोर कर्मठ और स्वावलम्बी है, बालकृष्ण अभिमानी, मूर्ख और स्वार्थी।

एक मध्यवर्ग का और दूसरा उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। गोस्वामीजी उच्च वर्ग के सामान्य युवक के चित्रण मे अधिक सफल हुए हैं। जब लीलावती-कलावती अपने प्रेमियो को बाग मे बुलाती हैं तब बालकृष्ण बाते करता है कला से मगर इशारे करता है लीला की ओर। वह लीला को एकान्त मे पाकर उसकी इज्जत लूटने पर उतारू हो जाता है। वह प्रेमी न होकर प्रेमी होने का दम भरने वाला आवारा, लपट और उजड्ड है।

प्रधान नायिका के चरित्र की उत्तमता और दृढ़ता पर जोर देने के लिए कलावती और बालकृष्ण की अवतारणा आवश्यक थी। पर कहानी में लाडली-गोबिन्दचन्द्र और बतसिया-जगी की कोई भूमिका नही है। गौण पात्रों को अनावश्यक महत्त्व देने से नाटकीयता नष्ट हो जाती है। प्रमुख पात्र बहुधा दर्शन देते हैं तो उनके प्रति पाठको का आकर्षण बना रहता है। एक पात्र के बाद दूसरे को देखते रहने से पाठको की कल्पना और भावना पात्र से हटकर घटना मे केन्द्रित हो जाती है। कुछ पात्रो की उपयोगिता कथानक की दृष्टि से भले ही नही हो, कथा की रोचकता और उद्देश्य की पूर्ति के लिए अवश्य है। लाडली लीलावती की सहेली है। दोनो मे हँसी-दिल्लगी होती है, इसलिए थोडा रस मिलना है। जब लीलावती गोबिन्दचन्द्र को कहती है कि लाडली ने उन्हे रात को निराले मे बुलाया है, लाडलो उसके गाल पर बडी नजाकत से तमाचे मारकर कहती है, "पत्थर पडे इतने बोलने पर"। गोबिन्दचन्द्र के दुपट्टे से लाडली का आँचल बांधकर उसे सजा देने मे भी लीलावती को मजा आता है। लीलावती की लौंडी बतसिया अपने उज्वल चरित्र के कारण लेखक के आदर्श की प्रतीक है। लीलावती के पिता प्रमोदकुमार के लिए भी यह बात लागू होती है। वह बनारस के रईस का लडका है। वह पिता का धन जुएबाजी मे उड़ाकर कगाल बन जाता है। जब वह सड़क पर खडी विपत्ति की मारी एक सुन्दरी को देखता है तब उसका हृदय द्रवित हो जाता है और वह अपनी एकमात्र पूँजी एक सौ रुपये का नोट उसे दे देता है।

वस्तुत: जनवादी भावना से प्रेरित होकर लेखक ने उच्च वर्ग की अर्थ-लिप्सा और प्रेम-लीला का वर्णन किया है। उच्चवर्गीय समाज के व्यक्तिगत सम्बन्ध का आधार वैवाहिक संबध है और वैवाहिक सबंध का आधार आर्थिक सम्बन्ध है। प्रमोद कुमार और कालिन्दी के प्रेम की बात बिपिनबिहारी को

मालूम है। उनके प्रेम मे वह बाधक नही होता है बल्कि उन्हे मिलने की स्वतन्त्रता और अवसर देता है क्योकि वह प्रमोद को दामाद बनाकर उसकी जायदाद हथियाना चाहता है। विवाह के बाद अपने ससुर की चालबाजी का पता चलने पर प्रमोद एक रात गायब हो जाता है और विपिनविहारी अपनी कुल जायदाद अपनी पौत्री (लीलावती) को लिखकर आत्महत्या कर लेता है।

सामाजिक और पारिवारिक जीवन के बीच नीति और शृ गार के सयोग से मार्मिक स्थलो की उद्भावना हुई है। दृश्य वार्तालाप के लिए अवसर प्रदान करते हैं और वार्तालाप दृश्यो मे प्राण फूँकते है। दैनिक जीवन के यथार्थ मे भी रोमास की झलक है। लीलावती पूनो की चाँदनी मे पलंग पर लेटी ललित की तस्वीर देख रही है, ललित आकर उसकी आँखें मू द लेता है .

ललित किशोर—"(आवाज बदल कर) बूझो तो कौन है ?"

लीलावती—"वही जो चोर की तरह घर मे घुसने का अभ्यास रखता है।"

लीलावती के बाग मे बालकृष्ण के आगमन से जो स्थिति उत्पन्न होती है उसमे नाटकीयता भरी है। ललित की प्रतीक्षा मे अकेली खडी लीलावती सहसा बालकृष्ण को मन्द-मन्द मुस्काता हुआ अपने सामने देखकर चौंक उठती है। वह गुस्से मे आकर जैसे-जैसे उसे दूर हटने को कहती है वैसे-वैसे वह पास आकर और हँस कर प्रेम-निवेदन करता है .

बालकृष्ण ने उसकी बात अनसुनी करके और भी ढिठाई के साथ कहा,—"हाय ! दिलवर मैं तुम्हारे इश्क मे इस कदर मर रहा हूँ और तुम यों झिड़कियाँ दे रही हो ?"

लीलावती ने त्यौरी बदल कहा,—छिः। मैं नहीं जानती थी कि तुम ऐसे नीच और कमीने आदमी हो। बस। अगर अपना भला चाहते हो तो अभी यहाँ से दूर हो।"···· ····

बालकृष्ण ने और भी शोखी के साथ कहा,—"प्यारी जान गुस्से मे तो तुम और भी ज्यादः खूबसूरत मालूम देती हो। राजा जरा ! एक बोसा—"

बालकृष्ण ज्योंही उसका हाथ पकड़कर उसका मुँह बन्द करता है और वह छटपटाती है त्योंही ललितकिशोर आकर उसे बचाता है। लीलावती

तुरत सिर झुकाकर तिनका तोडती हुई धीरे-से उससे बोलती है। यह स्थिति लीलावती की दृढता और विनम्रता तथा बालकृष्ण की अशिष्टता ही प्रकट नही करती है, न ही इसकी उपयोगिता केवल कौतूहल और उत्तेजना जगाने मे है। पाठको की सहानुभूति मे सन्तुलन बनाए रखना इसकी मुख्य विशेषता है।

गोस्वामीजी का बहुचर्चित उपन्यास 'चपला' (१९०३) मध्यवर्गीय महाकाव्य है। मुख्य कथा नगर के एक विपन्न मध्यवर्गीय परिवार को लेकर लिखी गई है। उससे चार अन्य परिवारो की कथाएँ भी सम्बद्ध हैं, जो विभिन्नता और विश्राम (रिलीफ) के लिए आवश्यक हैं। उपन्यास का विषय है अर्थ और काम। शकरप्रसाद के चार लडके और चार लड़कियाँ हैं। दो बड़े लडको की कमाई से विशाल परिवार का खर्च नही चलता इसलिए कर्ज लेकर, घर की स्त्रियो के गहने या उनके हाथ के बुने हुए मोजे बेंचकर काम चलाया जाता है। बडी लडकी सौदामिनी विधवा है, उससे छोटी कामिनी का विवाह ही नही होता और चपला का विवाह भी तय होता है जो भावी पति लापता हो जाता है। शकरप्रसाद और उसकी पत्नी एक ही दिन मे मर जाते है। बडा लडका चोर बनकर जेल जाता है। शेष तीन लडके घर छोड देते हैं। महाजनो के तकाजे होते हैं। सुन्दर, सुशील, युवती स्त्रियाँ उपवास करती हैं। उनके प्रति सहानुभूति दिखाकर कुछ लोग विवाह करना चाहते है तो कुछ वासना पूरी करना चाहते हैं। वे इस विषम परिस्थिति मे दूसरी जगह जाकर पेट पालती हैं। अन्त मे भाई-बहनो का मिलन और विवाह होता है, उपन्यास की नायिका को भारत सरकार से रानी की उपाधि मिलती है और गुप्त खजाना हाथ लगता है। बुरे पात्रो को मृत्युदण्ड मिलता है। कथावस्तु मे वास्तविकता होते हुए भी स्वाभाविकता नही है। उसकी योजना यान्त्रिक, कृत्रिम और पूर्व निश्चित है। उपन्यास को विचार का वाहन बनाने का यह स्वाभाविक परिणाम है। संसार में सदा ऐसा नही होता कि सत्य पहले पराजित होकर अन्त में विजयी हो और असत्य हार जाय। पर लेखक की नैतिकता और युग की रुचि इसी से तुष्ट हो सकती थी।

जैसा कि उपन्यास के उपनाम ('नव्य समाज चित्र') से स्पष्ट है, यह नये भारत के नागरिक समाज का चित्र है। इस ससार मे बलात्कार, व्यभिचार, मदिरापान और भ्रष्टाचार के दर्शन होते हैं। जहाँ एक ओर गरीबी और बेकारी के कारण घोर निराशा छाई हुई है वहाँ दूसरी ओर आधुनिक

सभ्यता से उत्पन्न उच्छृखलता और पशुता का प्राबल्य है। नैतिक मूल्यो के ह्रास से सास्कृतिक सकट उपस्थित हो गया है। गोस्वामीजी ने इस सामाजिक अराजकता का विरोध और उपहास किया है। उनके यथार्थ चित्रण और सामाजिक व्यग्य मे वह शक्ति तथा गम्भीरता नही है जो अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करती है। पवित्रता, उद्यम, समवेदना, व्यावहारिकता आदि गुणो को श्रेष्ठ और मान्य दिखाने मे उन्हे सफलता मिली है। उन्होने पात्र कई वर्गों से लिए है पर उन्हे मध्यवर्गीय नैतिक मापदण्ड पर ही परखा है।

यदि चरित्र-निर्माण की शक्ति उपन्यासकार की कला की कसौटी है तो वह शक्ति गोस्वामीजी मे है। प्रस्तुत उपन्यास से यह स्पष्ट है कि उन्हे स्त्री-प्रकृति की परख है। चपला नाम मात्र की नायिका है। उसे नायिका के पद पर आसीन किया जाना केवल इसका द्योतक है कि उपन्यासकार समाज मे नारी को ऊँचा स्थान देना चाहता था। अन्यथा वह आरम्भ से प्राय: अत तक पार्श्वभूमि मे रहती है। प्रथम परिच्छेद मे उसके विवाह का उल्लेख मात्र है। दूसरे भाग मे वह गायब होती है तो कभी कही दर्शन देती है। उसकी बड़ी बहन सौदामिनी का चरित्र सकारात्मक है, जैसे यह बालविधवा भ्रष्टाचार का विरोध करने के लिए ही बनाई गई हो। वह पुरुष की पशुता से सघर्ष करने वाली भारतीय विधवा की प्रतिनिधि है। उसके सृष्टा ने उसे अपनी सृष्टि मे लाने के पहले विधवा बना दिया, फिर उसे असहाय बनाकर दो-दो बार कामुक पुरुषों के चगुल मे फँसा दिया पर वह अपने सम्मान एव सतीत्व की रक्षा करने मे सफल हुई। समाज की आँखो मे उसका शरीर अपवित्र भले हो गया हो, उसकी आत्मा पवित्र बनी रही। सौदामिनी से छोटी कामिनी को बहुत दिनो तक कुमारी रहना पड़ता है क्योकि उसकी जन्मपत्री किसी से नही मिलती और मिलती भी है तो सगाई पक्की होते ही लड़का मर जाता है। पुरुष-रचित नियम की वेदी पर बलिदान होने से उसे बचा लिया जाता है। इस प्रकार इन बहनों के लिए विवाह एक जटिल समस्या है जिसका आदर्शवादी हल किसी तरह ढूँढ़ लिया गया है।

मालती, चमेली और गुलाब विवाहिता है। इनका चरित्रचित्रण अधिक सफल और स्वाभाविक हुआ है। मालती घर की बड़ी बहू है। वह पति की पूजा करती है, ननदो को प्यार करती है और अपना गहना बेचकर परिवार को पालती है। वह पति का प्रेम और विश्वास प्राप्त नही करती। उसे क्षय रोग का शिकार होना पड़ता है। दूसरे को सुख देकर स्वयं कष्ट

सहने वाली यह भारतीय पत्नी देवी है। वह लेखक के आदर्श की नारी है। चमेली और गुलाब मानवीय और मानवी हैं। चमेली हँसमुख, प्रगल्भ और स्वच्छन्द प्रकृति की है। वह कमलकिशोर के साथ भागती है और वेश्या के हाथ बेची जाती है। जोला की "नाना" की भाँति उसका सुन्दर चेहरा जलकर भयकर और कुरूप हो जाता है। वह भिखारिन बनकर अपने घर आती है, अपनी आँखों से पति का पुनर्विवाह देखती है और विष खा लेती है। गुलाब शराब के नशे में झूमते हुए वेश्यागामी पति को लात मारती है और झट एक झटके से लैम्प बुझाकर अपने नौकर सिभू के साथ पलग पर लेट जाती है। वह पति से बदला लेती है, रोने-धोने के बदले जीवन से समझौता करती है, उद्दाम वासना की पूर्ति के लिए नौकर के साथ भाग जाती है, वेश्या बनती है और अस्पताल मे मर जाती है। चमेली और गुलाब के व्यवहार के मनोवैज्ञानिक कारण हैं। गुलाब का नौकर के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करना मनोवैज्ञानिक क्षतिपूर्ति है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों मे दुख या क्रोध के आवेश मे स्त्री या पुरुष का ऐसा व्यवहार आकस्मिक होते हुए भी स्वाभाविक बताया जाता है।

कुछ पात्र आदर्श है, आदर्श बनाये नहीं गये है। हरप्रसाद कर्ज मे दबा है लेकिन अपाहिजो को दान देता है, रिश्वत नही लेता लेकिन फिजूल खर्च करता है, दूसरे से सहायता नही लेता लेकिन अपनी पत्नी को विपत्ति मे छोड जाता है। वह बेफिक्र, मौजी और निर्लोभ है। गोस्वामीजी की सृजन-कला हरिनाथ के व्यक्तित्व-निर्माण मे पूरी तरह निखर उठी है। वह दास्तावेस्की के 'इडियट' के सनकी राजकुमार की भाँति पीडित मानवता की सहायता करता है। उसकी बातचीत और चालढाल निराली है। वह नोट को चुरुट बनाकर पीता है, खाली दावात बजाता है और ऊपर देखकर चलता है। उसमे उदारता, करुणा और त्याग की भावना है। वह शकरप्रसाद के परिवार की ओर सच्ची सहानुभूति दिखाता है और उपेक्षिता कामिनी से विवाह करने का साहस करता है।

कुछ पात्र पशु-सामान्य धरातल से ऊपर नही उठे हैं। श्रीनाथ और कमलकिशोर उस प्रकार के लपट हैं जिन्हें प्राप्ति से प्रयास मे अधिक आनन्द आता है। उनमें शहराती शोहदो की सारी विशेषताएँ है। ये अपनी प्रेमिकाओं के लिए अपना घर छोड़कर उनके घर के पिछवाड़े किराए का मकान लेकर रहते हैं। चमेली को शराब पिलाकर गाड़ी में ही बर्बाद करने वाला कमल-

किशोर शोहदो का सच्चा प्रतिनिधि है। बटुकप्रसाद ढोंगी, कामी और धूर्त है। वह घाट, मन्दिर, मेले, त्योहार मे स्त्रियो के पीछे घूमता है तथा अपने शत्रु की लडकियो को असहाय देखकर उन पर सहानुभूति प्रकट करने का अभिनय करता है।

'माधवी माधव वा मदनमोहिनी' (१९०६) के "विशेष वक्तव्य" मे उपन्यासकार ने बताया है कि यह उपन्यास "सच्ची सामाजिक घटना का अवलम्बन करके" लिखा गया है। घटना सच्ची हो या गढी हुई, उसके वर्णन मे सत्याभास है। उपन्यास आत्म-कथा शैली मे लिखित होने से विश्वसनीय है। नायक कहानी सुनाता है और आरम्भ मे ही कहता है, "मैं अपना सच्चा जीवन चरित लिखने बैठा हूँ तो सारी बाते बिलकुल सच्ची-सच्ची ही लिखूँगा, न कि झूठी या बनावटी।" इस स्पष्टीकरण से पाठक का विश्वास बढ़ता है। उपन्यास जीवनचरित का भ्रम उपस्थित करने मे समर्थ है। प्रायः परिच्छेदो का आरम्भ नायक के जगने पर होता है।

नायक माधव एक अनाथ युवक है। वह दिल्ली के एक सम्भ्रान्त परिवार मे आश्रय पाता है। गृहस्वामी की भाभी जमना और छोटी साली सरस्वती युवती विधवाएँ है। अनाथ युवक पर युवती विधवाएँ मुग्ध हो जाती हैं। सरस्वती तो माधव पर बलात्कार करने लगती है। वह अचल से उसके मुँह का पसीना पोंछती है, उसे सीने से लगाती है और वह छटक कर दूर खडा हो जाता है। इस नाटकीय स्थिति में उस समय और तनाव आ जाता है जब वह माधव के "सामने बैठ और अपना सीना खोल आँचल से" उसे हवा करने लगती है। माधव पत्थर का देवता रहता है। आखिर जब पिछली रात मे सरस्वती उसके पास चली आती है तो वह उसे वैधव्य-व्रत का उपदेश देकर टाल देता है। इससे प्रभावित होकर प्रेमिका प्रियपात्र को अपना गुरू मान लेती है और कहती है कि वह उसे अब भाई समझकर प्यार करेगी। जमना भिन्न प्रकृति की है। वह रात मे दासी द्वारा दीवानजी को बुलाती है, शराब पीती और पिलाती है और एक दिन काशी मे जाकर गर्भपात कराती है। इन दो विधवाओ को देखकर माधव को कवित्त सूझता है :

"जरीदार सारी मे किनारी कामदार टकी
चोली जर तारी में दिखाती गोल छाती को
मांग बिन सेंदुर सुहाती पान खाती खूब
कहिबे को रांड़ कान काटे अहिबाती को।"

उपन्यास के प्रथम भाग मे माधव जितना ही विरागी प्रतीत होता है, दूसरे भाग मे उतना ही अनुरागी। आजीवन अविवाहित रहने का निश्चय करने वाला पुरुष विवाह-बन्धन मे वधता है। वह माधवी के ध्यान मे इस तरह डूबा रहता है कि बन्द घडी उसे चलती हुई मालूम पडती है और कोई कहता है "उठो" तो जवाब देता है "क्या सबेरा हो गया।"

साहित्यिक आलोचक जमना को सामान्य, सरस्वती को विशिष्ट और माधव को असाधारण मानेगे। उन्हे सरस्वती का हृदय-परिवर्तन अस्वाभाविक और उसके प्रति माधव का व्यवहार अविश्वसनीय लगेगा। नीतिवादी आलोचक गोस्वामी को अश्लीलता का प्रचारक कहेगे। सच तो यह है कि ये आरोप नई पीढी के उपन्यासकारो पर भी लगाये जा सकते है। क्या इलाचद जोशी के 'निर्वासित' की तीन बहनें अपने घर मे आने वाले भावुक, निर्धन युवक महीप को प्रेम का खिलौना नही बनाती? इन उपन्यासकारो की भाँति गोस्वामीजी के चरित्र-चित्रण मे सामाजिक असगति नही है, भले ही उसमे मनोवैज्ञानिक सत्य का अश कम हो। उन्होने सरस्वती और जमना के चित्रण में मानव को प्रकृत रूप मे देखा है और माधव को देवता मान कर भी उसे देवता होने से बचा लिया है। उनका दावा है कि "माधव जैसे धर्मात्मा, सच्चरित्र और जितेन्द्रिय व्यक्ति के पास यदि कोई स्त्री लाख बरस भी रहे तो भी उसे पाप या कलक कभी न लगे।" यदि वे उक्त कविता का पाठ माधव के मुँह से न करवाकर अपने स्वर मे करते तो उनका दावा जरा भी झूठा नही होता। माधव का प्रेम-विकल होना और विवाहित जीवन व्यतीत करना नितान्त स्वाभाविक है। सिद्धान्तवादी युवक पहले युवती से दूर रहने का सकल्प करते है, बाद मे उसके नजदीक से उठना नही चाहते।

गोस्वामीजी ने बडे घर की विधवाओ की उत्कट वासना, गुप्त प्रेम, गर्भपात आदि का वर्णन कर क्रूर, सत्य बोलने का साहस किया। सभ्य समाज भ्रूण-हत्या के लिए लज्जित नही होता पर विधवा-विवाह का विरोध करता है। इससे व्यभिचार को बढावा मिलता है। गोस्वामीजी के 'व्यभिचार की तो ऐसी अद्भुत व्यवस्था ससार मे किसी भी सभ्य समाज मे नही सुनी जाती।' वे उच्च वर्ग के नैतिक पतन पर घृणा और क्षोभ प्रकट करते है। उन्हे निम्न वर्ग की महानता मे विश्वास है उनके लिए 'चिखुरी धीवर अपनी सत्यनिष्ठा के आगे बडी-बडी ऊँची जातिवालो से करोड़गुना उत्तम था'।

'पुनर्जन्म या सौतिया डाह' (१९०८) का धरातल पारिवारिक है।

इसमे नारी के प्रेम और सौत के स्नेह का आदर्श उपस्थित किया गया है। बलवे मे एक कर्नल की स्त्री सज्जन नायक जमीदार के यहाँ आश्रय पाती है। वह अपनी लडकी सुन्दरी का हाथ सज्जन को पकडा कर मर जाती है। सज्जन सुन्दरी से विवाह न कर सुशीला से करता है। सुशीला पहले सुन्दरी से डाह करती है, बाद मे सज्जन से उसका विवाह कराती है।

कथावस्तु मे रोचकता होते हुए भी भाव-सौंदर्य की अभिव्यक्ति नही हो पाई है। लेखक की दृष्टि रूप-सौदर्य पर लगी रही। रूप के वर्णन मे भी नवीनता नहीं है।

सुन्दरी का यौवन सम्पुटित कमल के समान अपने सौदर्य को भीतर ही छिपाए हुए था, और सुशीला का यौवन खिले गुलाब की तरह रोम-रोम से अपनी छवि छिटका रहा था।

विशिष्ट दृश्यों और दशाओ का वर्णन बडा सरस है। आरम्भ मे ही सरयू के किनारे बाग मे झुटपुटे की बेला मे नायक-नायिका विहार करते दिखाए गए है। अन्त मे प्रथम समागम की रात का प्रसग भी मनोरम है। शयन-गृह मे सज्जन और सुन्दरी तथा बाहर से सुशीला के बीच विनोद-वार्ता होती है, जो वातावरण मे रस भर देती है। दैनिक जीवन का एक चित्र अत्यन्त रमणीय है :

पुष्करिणी के तट पर सफेद साड़ी पहने हुए सुन्दरी बैठी हुई है। एक पैर उसने जल मे लटका दिया है और दूसरा पैर समेट तथा उस पर अपने दोनो हाथ रखकर वह कुछ गुनगुना रही है। उसकी साड़ी सिर से सरककर पीठ पर आ रही है और बाल बिखरकर पीठ से होते हुए पुष्करिणी के सोपान तक फैल रहे है!!!

सुन्दरी और सुशीला के चरित्र प्रेरणादायक हैं। सुन्दरी एक बार सज्जन की होकर दूसरे से विवाह करने के लिए तैयार नही होती और सज्जन के विवाह करने पर भी उसे प्यार करना नही छोडती। प्यार के आवेश में वह अपनी सौत का शृगार अपने हाथ से करती है। सुशीला का हृदय भी कम उदार नही है। वह सुन्दरी को कुंआरी पाकर जलती है और विवाहित देखकर प्रसन्न होती है। गोस्वामीजी ने अपनी नायिकाओ को देवी बना दिया है। उन्होंने आदर्शवाद के आवरण मे मानवीय दुर्बलता को छिपाकर स्वाभाविकता की हत्या कर दी है। सज्जन का चरित्र असगत और अविश्वसनीय है

वे उसे सुन्दरी के साथ हाथ मे हाथ मिलाकर टहलते और हँसकर बाते करते हुए दिखाते हैं और कहते हैं कि उसमे प्रेम-भाव नही है। उनका कथन उस समय असत्य सिद्ध होता है जब सुशीला के भाव-परिवर्तन के बाद सज्जन सुन्दरी को चूमना शुरू करता है।

जासूसी उपन्यास

गोस्वामीजी ने कुछ जासूसी उपन्यास लिखे जिन्हे अपराधमूलक उपन्यास कहना अधिक उपयुक्त होगा। अपराध के मूल मे अर्थलिप्सा है। उसमे विशेष हाथ स्त्रियो का है। कहानी मे जासूस की भूमिका बहुत गौण रहती है। अपराध का पता लगाने के लिए उसे अपनी बुद्धि और क्षमता का विशेष उपयोग नही करना पडता। अन्य पात्र उसका काम हलका कर देते हैं। गोस्वामीजी के सभी जासूसी उपन्यास नैतिक और सामाजिक आशय के कारण शिक्षाप्रद और सरस लगते है।

'चपा' (१९०४) मे धन से होने वाले पाप और अनाचार का वर्णन किया गया है। एक जमीदार अपनी विधवा लडकी चपा को अपनी सम्पत्ति लिखकर मर जाता है। उसकी रखेलिन की लडकी चन्द्रावली चपा को मरवाकर स्वय चपा बन बैठती है। चन्द्रावली—चपा का रूपरग एक-सा है पर चन्द्रावली अपने गाल के तिल से पहचान ली जाती है और फाँसी की सजा पाती है। गोस्वामीजी ने यह दिखाया है कि किस तरह वर्ग-समाज मे जमीदार वेश्या से प्रेम करते हैं पर उससे उत्पन्न अपनी सतान की उपेक्षा करते हैं और वेश्या की बेटी धन के लिए किस तरह का कुकर्म करती है। उन्होने चपा की दाई बतसिया का चरित्र अत्यन्त उजले रंग मे रगा है। उसकी वफादारी और ईमानदारी उसकी गरीबी का गौरव है।

'चन्द्रिका' (१९०४) एक साथ ही प्रेम का आदर्श और दुर्बलता प्रस्तुत करती है। चन्द्रिका के पिता अपने दानपत्र मे उसके भावी पति चन्द्रशेखर के नाम सम्पत्ति लिख जाते हैं। उसकी चाची उसका विवाह अपने भाई से कराकर भाई को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाना चाहती है। तिलक के दिन चन्द्रिका गायब कर दी जाती है लेकिन अन्त मे वह चन्द्रशेखर को मिल जाती है। चन्द्रशेखर का चरित्र निराला है। उसके अनुपम त्याग का परिचय उसके दानपत्र से मिलता है जिसमे वह लिखता है कि "हमारे स्टेट की आमदनी से उन अनाथ स्त्री-पुरुषो का पालन हो जिन्होंने अपने किसी प्रेमपात्र के वियोग में ससार का त्याग किया है"।

'नौलखाहार' (१९०१) गोस्वामीजी का अत्यन्त रमणीय जासूसी उपन्यास है। सभी जासूसी उपन्यासकार कौतूहल की सृष्टि करते हैं किन्तु उसकी तृप्ति रोचक ढग मे नही करते। गोस्वामीजी ने वस्तु की योजना इस प्रकार की है कि पाठक का उत्कठित होना सार्थक होकर भी उसका अनुमान करना गलत होता है। घनश्याम को ललिता प्यार करती है। उसका पिता यह पसन्द नही करता और उसका असली हार लेकर एक नकली हार घनश्याम की जेब मे डाल देता है। घनश्याम चोर समझा जाता है। उसकी दूसरी प्रेमिका अबालिका वास्तविकता का पता लगाती है। इस प्रकार निर्दोष व्यक्ति पर अपराधी होने का सदेह किया जाता है और सदेह के लिए आधार भी मिल जाता है। रहस्य के निर्माण मे उतना ही आकर्षण है जितना उसके उद्घाटन मे।

एक युवक से दो युवतियो का प्रेम दिखाकर नाटकीय दृश्यो की उद्भावना बडी विलक्षणता के साथ की गई है। जिस समय एक ओर से प्रणय-निवेदन किया जाता है और दूसरी ओर से उपेक्षा की जाती है उस समय सवाद मे अद्भुत नाटकीयता आ जाती है। साधारण परिस्थितियो मे भी सरसता का समावेश किया गया है। अबालिका घनश्याम का हाथ पकड कर उससे बाते करना चाहती है और घनश्याम उसे झिडककर गोकुलदास से प्रेम करने को कहता है। वह उसी समय गोकुलदास को पीछे खडा देखती है और लज्जित हो जाती है।

अबालिका का चरित्राकन अत्यधिक सफल हुआ है। वह स्थूलागी, मुखरा, रूपवती और प्रेममयी है। अपने प्रेमी के सामने वह भोली बालिका बन जाती है पर उसे बचाने के लिए दूसरे के सामने प्रेम का अभिनय करने मे उसे सकोच नही होता। वह स्वाधीन रहकर साहस और चतुरता से सफलता प्राप्त करने वाली स्त्री है।

गोस्वामीजी ने आधुनिक ढग के प्रेम-सम्बन्ध मे सच्चाई एव गम्भीरता का दिग्दर्शन कराया है। उन्होने नई पू जीवादी सभ्यता की एक झाकी देते हुए आर्थिक विषमता की ओर सकेत किया है। उनकी सहानुभूति सम्पन्न वर्ग मे न होकर निर्धन से है। उन्होने दरिद्र चित्रकार घनश्याम के चरित्र मे महानता दिखाई है।

गोस्वामीजी ने जासूसी उपन्यास को साहित्यिक गरिमा प्रदान की।

उनका जासूस 'गीतगोविन्द' पढता है। सुन्दरी के गाल का तिल सूत्र का काम करता है। हत्या-चोरी की भयकरता और निर्ममता के बीच सुन्दरता और प्रेम के दर्शन होते है। कुछ पात्र अपराधी हैं तो कुछ त्यागी भी। उनकी मानवीयता ध्यान आकृष्ट कर लेती है। कथानक की अपेक्षा चरित्र मे जटिलता रहती है।

दृष्टिकोण और कला

गोस्वामीजी मानवतावादी और मानववादी लेखक थे। समाज के विभिन्न स्तरो से उनका सम्पर्क और परिचय था। उनकी सहानुभूति निम्न वर्ग एवं मध्यम मध्य वर्ग से थी। उन्होने नौकर, किसान, मजदूर, दाई आदि को उपहास की दृष्टि से न देखकर सहृदय नर-नारी के रूप मे देखा। वे उन्हे नायक-नायिका नही बना सके, पर उनके व्यक्तित्व की महत्ता दिखाने मे सफल हुए। मध्य वर्ग के अनाथ, दरिद्र युवको ('माधवी माधव', 'नौलखाहार') को उन्होने नायक का पद दिया। उन्होंने सम्पन्न वर्ग के वास्तविक रूप तक पहुँचने की चेष्टा की और उसकी उच्चता के नीचे जो निम्नता और भद्रता के नीचे जो भ्रष्टता छिपी थी उसका पर्दाफाश किया। उनके मत से धन बुराइयो की जड है और उसमे धनियो का पतन होता है। 'लीलावती' के प्रमोद कुमार के चरित्र से यह स्पष्ट है कि धनहीन होने पर मनुष्य का हृदय विशाल हो जाता है और उसमे वास करने वाला देवता जाग उठता है।

कई बातो म मनुष्य पशु के समान है लेकिन कुछ ऐसी विशेषताएँ है जो उसे पशु मे अलग करती है। ये विशेषताएँ किसी वर्ग-विशेष की बपौती नही हैं। शील, शक्ति और सौन्दर्य केवल महलो मे ही नही झोपडियो मे भी है बल्कि महलो की अपेक्षा झोपडियो मे विशेष है। इस सत्य की अभिव्यक्ति गोस्वामीजी के उपन्यासो मे हुई है। 'चपला' का श्रीनाथ मनुष्य के रूप मे पशु है किन्तु बूढे चपरासी भरोस के सम्बन्ध मे कहा गया है कि 'नीच कुल मे कभी-कभी देवता आकर जन्म लेते हैं'। 'लीलावती' की नायिका की लौन्डी बतसिया की युवती विधवा होते हुए भी लेखक के शब्दो मे 'ऐसी नेकचलन है कि शायद ऊँची जात या भले घर की औरतो मे भी इसके ऐसी नेकचलन औरते कम पाई जाएँगी।'

विभिन्न वर्गो, वर्णो और धर्मो के ऊपरी भेदभाव के नीचे मनुष्य का मूल स्वरूप छिपा हुआ है। मनुष्य, मनुष्य है, पशु या देवता नही है। उसके

मूल स्वरूप का दिग्दर्शन प्रेम-सम्बन्ध मे कराया गया है। गोस्वामीजी के मतानुसार 'प्रणय जाति,कुल, धर्म और समाज देखकर नहीं होता'।[12] उनके उपन्यास मे प्रेम जीवन की सबसे बडी घटना है, जिसका आरम्भ प्रथम दर्शन से और अत विवाह से होता है। पुरुष स्त्री को दुर्घटना ('स्वर्गीय कुसुम', 'लीलावती' ('हृदयहारिणी'), अत्याचार ('मल्लिका देवी') और आर्थिक सकट ('चपला') से बचाकर उसके हृदय पर विजय कर लेते हैं। उन्होने प्रेम के उभय रूप . आदर्श और वासनात्मक ... पारिवारिक तथा विश्वजनीन धरातल पर चित्रित किए। उसका विकास करुणा से होता है परन्तु वह विवाह से अभिन्न होने के कारण भावो के घात-प्रतिघात के लिए अवसर प्रदान नही करता।

गोस्वामीजी की करुणा की परिणति स्त्रैण भावुकता मे न होकर व्यापक मानवीय समवेदना मे हुई है। उन्होंने महान, उदात्त और उत्तम की अपेक्षा साधारण, नगण्य और उपेक्षित को विशेष महत्त्व दिया है। 'चपला' के प्रमुख पात्र सनकी, कायर, कामी, जालसाज, शराबी और वेश्यागामी हैं। उनकी करुणा की छाया अबला के जीवन की ओर विशेष रूप से झुकी हुई है।

उनके विचार से नारी की पराधीनता और पीडा का मूल कारण आर्थिक विवशता है। जैसे आर्थिक विवशता पुरुष को चोर बना देती है वैसे ही स्त्री को व्यभिचारिणी बनाती है। यह समाज-व्यवस्था की देन है। गोस्वामीजी समाज-व्यवस्था के परिवर्तन का संकेत नही देते। वे चाहते हैं कि स्त्रियों मे स्वावलबन, साहस और आत्मसम्मान का भाव हो। वे उनकी स्वाधीनता और स्वेच्छाचारिता के पक्ष मे नही है। उनकी दुर्दशा के लिए वे पारिवारिक वातावरण और सामाजिक कुरीति को दोष देकर उनमे सुधार लाना चाहते हैं। उन्होने चमेली और गुलाब के भ्रष्ट होने की जिम्मेवारी उनके कामुक और शराबी पति पर देकर यह दिखाया है कि स्त्री की दुर्गति के मूल मे पुरुष का अनाचार और अत्याचार है। उसके उद्धार के लिए उसके प्रति उदार दृष्टिकोण आवश्यक है।

गोस्वामीजी ने अपने समय के समाज का अपने ढग से चित्रण किया। उनका चित्रण यथार्थ किन्तु किन्चित अतिरजित है। (कला मे जीवन का सत्य अतिरजित प्रतीत होता ही है।) फिर भी उन्होने समस्याओ और समाधानो का सही रूप प्रस्तुत किया है। नगर के फैशनपरस्त समाज का दिग्दर्शन कराने में उन्हें अत्यधिक सफलता मिली। उन्होंने सामग्री कई क्षेत्रो से ली पर उनके

ससार मे विस्तार है, वैविध्य नही। उनके पात्र एक ही परिवार के सदस्य है। उनकी सहानुभूति और घृणा उनके चरित्रचित्रण पर छाप नही डाल सकी। उसमे वे वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण बनाए रहे। फिर भी उच्चवर्गीय पात्रो मे निम्न एव मध्यवर्गो के पात्र अधिक सजीव और प्रभावशाली है। पुरुष-पात्रो मे स्त्री-पात्रो मे अधिक आकर्षण है और स्त्री-पात्रो का आकर्षण शारीरिक सौन्दर्य पर निर्भर है। उन्होने अनेक प्रगल्भ, चचल, मुखर और रूपवती नारियो की सृष्टि की है। उनके नर-नारी सरल और सपाट होते हैं। उनमे रहस्य-मयता नही है। वे पारदर्शी हैं, यद्यपि उनके अन्तरतम के भाव प्रकट नहीं किए जाते। सूक्ष्म मनोविश्लेषण के बिना भी पात्रो को स्पष्ट, जीवन और वास्तविक बनाकर उपस्थित करना गोस्वामीजी की कला की विशिष्टता है। उनकी दुर्बलता के प्रति कोमल भाव रखते हुए भी वे बहुधा उसका अनावरण करने के लिए निराली परिस्थितियों की परिकल्पना करते है।

उनका वार्तालाप कथा और चरित्र के विकास का साधन होने के साथ-साथ रोचक है। यह उपन्यास का अत्यन्त सरस अग है। प्रेमी-प्रेमिका का आलाप मोहक होता है। उनकी वाणी मे उनके व्यक्तित्व की छाप रहती है जब कि अन्य पात्र अपने स्रष्टा के स्वर मे बोलते है। सभी अपनी बातचीत मे अभिज्ञात और जीवित है। उनके हाव-भाव उनके शब्दो से अधिक मुखर होते हैं। गोस्वामीजी कभी-कभी वार्तालाप के लिए अवसर प्रदान करने के लिए ही नाटकीय क्षणो की सृष्टि करते है। रमणीय दृश्यो और दशाओ की उद्भावना करने में वे कुशल है। कुछ दृश्य हास्य से आलोकित हैं, कुछ करुणा से धूमिल। वातावरण गहन, रगीन और विलक्षण होता है। उनकी कहानी-कला मे जो अभाव है वह उनके वर्णन-वैभव से पूरा हो गया है। उनके वार्तालाप और वर्णन दोनो के विवरण में नाटकीयता रहती है। 'लख-नऊ की कब्र' और 'पुनर्जन्म' मे क्रियाशीलता और हाव-भाव के साथ कथो-पकथन प्रस्तुत किए गए हैं इसलिए वे विशेष नाटकीय हैं, जैसे, प्रेमिका के बालो को अपनी अँगुलियो से सुलझाते हुए या उसके गले मे बाँह डालकर प्रेमी का बोलना। 'लाल कुवर' की निम्न पक्तियो मे वर्णनगत नाटकीयता है :

शाहजादा के मुँह के पास एक बात सुनने के लिए लालकुवर अपना कान ले गई और शाहजादा ने बेसाख्ता एक बोसा ले लिया, जिससे बड़े नखरे के साथ लालकुंवर बल खा उठी और कनखियो से शाहजादे को घायल करती हुई बोली ......'आह, जाइये।'

रचना-कौशल की दृष्टि से उनके प्रारम्भिक उपन्यास अधिक सफल हैं। उनके कथा-सूत्रो की अन्विति प्राय. मानवीय सम्बन्ध पर निर्भर रहती है। उनका ध्यान जितना वस्तु के विन्यास की ओर रहता है उतना उसके चुनाव की ओर नही। कला मे सचयन आवश्यक है। वे ऐसी बातो की चर्चा करते है जो अप्रासगिक होती है और कथा को किसी निश्चित लक्ष्य की ओर नही ले जाती। 'माधवी माधव' मे काशी के प्रमुख स्थानो का ऐसा वर्णन है कि उपन्यास काशी की निर्देशिका प्रतीत होता है। वे प्रभाव उत्पन्न करने मे सन्तुलन को नष्ट कर देते है। वे कभी घटनाओ को मनमाना मोड देते है, कभी विभिन्नता के लिए ऐसे पात्रो की अवतारणा करते है जिनकी कोई भूमिका नही होती। उन्होने नाटकीय परिस्थितियो की योजना निपुणता से की है पर आवेशमय क्षणो मे गम्भीरता और हास्य, व्यग्य और वेदना का वे मिला देते है। फलत. उनके उपन्यास के अनेक स्थल अतिनाटकीय हो गये है।

अश्लीलता और भाषा को लेकर उन पर जो आक्षेप किया जाता है वह अर्थहीन तो नही पर अत्युक्तिपूर्ण अवश्य है। उनकी अश्लीलता वस्तु मे नही बल्कि उसे व्यक्त करने वाले शब्दो मे है। प्रेम के प्रसग में अपनी ओर से कुछ कहने मे वे सस्कृतिनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते है और पात्रो से उर्दू-मिश्रित भाषा मे वार्तालाप कराते है मानों उर्दू प्रेम की भाषा हो। भाषा-शैली के कारण भाव मे थोड़ा हलकापन आ जाता है। दूसरी बात यह है कि वे बुराई और दुर्बलता का चित्रण कलात्मक स्तर पर करते है पर जब वे बार-बार और विस्तार मे ऐसा चित्रण करते है तब उसमे अश्लीलता के तत्त्व आ जाते हैं। उनकी कलम पाप को निन्दनीय या उपहास्य बनाने के बदले आकर्षक बना देती है। इसमे नैतिक आशय लुप्त हो जाता है और शृंगारिक प्रवृत्ति उभर आती है। लगता है जैसे लेखक अपने पात्र की दुर्बलता मे साथ दे रहा है, उसकी क्रिया मे रस ले रहा है।

उपर्युक्त स्थापना की पुष्टि के लिए 'चपला' के दो प्रसगो का उल्लेख किया जाता है। प्रथम का सम्बन्ध मदनमोहन और ललिता से है। मदनमोहन ललिता को बहन और ललिता उसे देवता मानती है। एकान्त मे दोनो सभ्य नर-नारी बन जाते हैं।

जाते-जाते अँधेरी गली मिली तो मदनमोहन ने ललिता का हाथ पकड़

लिया और कहा— "ललिता ! बडी अँधेरी गली है।" उनके हाथ धरते ही ललिता के सारे शरीर मे बिजली दौड़ गई, उसने न तो मुँह से कुछ कहा और न अपना हाथ छुडाया।

इस प्रसग में कविता है, दूसरे प्रसग मे नाटक। रूपवती, युवती सौदामिनी को कमलकिशोर चकमा देकर अपने घर ले आता है और उससे यौन-सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है पर वह बल के बदले बुद्धि से काम लेती है।

कमल०— "तो आओ पलग पर आओ।"

सौदामिनी— "बेशक आऊँगी, मगर आज आप मुझे माफ करें।"

कमल०— "क्यो-क्यो ! इसकी वजह ?"

सौदामिनी— "आज मैं इस ‥ ।"

कमल०— "ओ ! समझा हमने, खैर कल ही सही। क्यो तो कल खूब ही गुलछर्रे उडेंगे न ?"

सौदामिनी— "हाँ, हाँ ! —तो आज मुझे रुखसत कीजिए।"

·····छुटकारा पाते ही सौदामिनी प्राण लेकर भागी और घर आकर खाट पर पड रही। पडी-पड़ी वह बडी देर तक रोया की और रोते-रोते बार बार यही कहती रही,— "भैया, भैया ! तुम लोग इस समय कहाँ हो ?"

कमलकिशोर और सौदामिनी के वार्तालाप से कौतूहल बढ़ता जाता है और पाठक लेखक की भाँति ही उसमे रस लेने लगता है पर जब सौदामिनी रो-रोकर भैया की याद करती है तब उसका हृदय सौदामिनी के साथ-साथ नारी जाति के लिए सहानुभूति से भर जाता है।

बात यह है कि गोस्वामीजी मे सुरुचि का अभाव न होकर सयम का अभाव है। वे पुरुष-स्त्री के सम्बन्ध का वर्णन कोमलता से करते हैं, भावुकता से नही। कभी-कभी तो केवल अपनी परिहासप्रियता के कारण वे साहित्यिक मर्यादा का उल्लघन कर देते हैं। 'सोना और सुगन्ध' का अधोलिखित वार्तालाप सरस होकर भी शिष्ट नही है :

पन्ना कला ने कहा— "नीलमनी का दूल्हा जब कोहबर में आवेगा तो मैं उसका कान मल दूँगा।"

पन्ना खुद तुरत बोली— "हाँ, हाँ, तुम ऐसा जरूर करना, पर इतना

याद रखना कि उसके भी हाथ है इसलिए वह भी कुछ न मल दे।"

यहाँ "कुछ" मे "छ" के बदले "च" का भी प्रयोग किया जाता तो कोई आश्चर्य नहीं। डी० एच० लारेंस का कहना है कि अश्लीलता एक सापेक्षिक वस्तु है।[13] इस दृष्टि से निर्णय करने पर गोस्वामीजी के उपन्यास के अरुचिकर अंश अप्रिय प्रतीत नही होगे। और यदि आज के यौवनवादी उपन्यासों से उनकी तुलना की जाय तो उनमे कोई दोष ही नही दिखाई पडेगा। यों गास्वामीजी को "घेरे के बाहर" के लेखक की भाँति नर-नारी के सम्बन्ध की सप्रसंग व्याख्या करने मे सफलता नही मिली है।

उन्होने युग-रुचि से प्रभावित होकर अपनी शैली का चमत्कार प्रदर्शित किया।[14] उनकी भाषा के तीन मुख्य रूप हैं. फारसी-उर्दू मिश्रित, सस्कृत-निष्ठ और सरल व्यावहारिक। तीनो का आदर्श 'लखनऊ की कब्र', 'मल्लिका देवी' और 'राजकुमारी' मे मिलता है। 'लखनऊ की कब्र' मे उन्होंने फारसी-उर्दू के अप्रचलित शब्दो का प्रयोग चुन-चुन कर किया। इससे वह अपाठ्य हो गई है। 'मल्लिका देवी' के वर्णन और वार्तालाप दोनो की भाषा क्लिष्ट है। दैनिक जीवन की बातें भी कृत्रिम रीति से व्यक्त की गई है, जैसे "कर पर कपोल न्यस्त करके वह विचार-सागर का आवाहन कर रही थी", "चारचक्षु होते ही", "अश्व से अवतीर्ण होना।" 'राजकुमारी' की कलाहीन शैली उनके अन्य उपन्यासो में होती तो वे अधिक लोकप्रिय और महान होते। 'उमर', 'प्रान', 'सुभाव' आदि तद्भव शब्दो के प्रयोग से उसकी सुन्दरता बढ़ गई है। भाषा की सादगी ही उसका शृंगार है। दोपहर रात का यह वर्णन जितना ही स्वाभाविक है उतना ही रमणीय भी :

रात आधी से जादे जा चुकी है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। केवल रह-रहकर पहरेवालो की आवाज और कुत्तों के भौकने के अलावे और कुछ सुनाई नही देता है।

जहाँ उनकी भाषा भावानुकूल है वहाँ वह वर्णन को काव्यात्मक, वार्तालाप को नाटकीय और कथन को सरस बना देती है।

गोस्वामीजी मे महान लेखक की शक्ति थी, गम्भीरता नही। उनकी रुचि क्रीडा-कौतुक में रहती थी। वे कथा के तत्त्वों को अतिशयता के स्तर पर ले जाते थे। वे शायद इस बात को पूरी तरह महसूस नहीं कर सके कि कला सकेत में है। उनकी दुर्बलता उनकी रोमानी तबियत और लोकरुचि को तुष्ट

करने की भावना मे उत्पन्न हुई है। उनके उपन्यास की कला नारी की कला है। वह रूप-सज्जा, हाव-भाव, हास-विलास, वार्तालाप और आडम्बर से उत्कठा बढाकर मनोरजन करता है।

गोस्वामीजी रचनात्मक कलाकार थे। उन्होंने शिल्प मे नित नये प्रयोग किये। उनकी 'लालकुँवर' मे आदि-अन्त जैसी कोई चीज नही है। उसे आरम्भ, मध्य, अन्त कहीं से पढ़कर आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने उपन्यास को नमनीय रूप देकर उसकी कलात्मक सम्भावना प्रकट की तथा अनेक लेखक और पाठक तैयार किये। उनके साहित्यिक जीवन के उर्वरकाल मे उपन्यास साहित्य-जगत का उपेक्षित था। उनकी रचनाओ पर व्यग्य की बौछार होती थी। ऐसी स्थिति मे उन्होंने 'उपन्यास' मासिक निकाला था, भारतेन्दु के 'नाटक' की भाँति उपन्यास-कला पर एक पुस्तक लिखना आरम्भ किया था और आलोचको की 'वक्रदृष्टि' की परवाह किये बिना नित नई कृतियो से कथासाहित्य की श्रीवृद्धि की थी। उनके पूर्ववर्ती लेखको के लिए उपन्यास सुधार का अस्त्र था, जो कल्पना और भावना के लिए घातक था। उन्होंने उसे कला के रूप मे अपनाया और उसके माध्यम से सामाजिक आलोचना के साथ-साथ साहित्यिक सौन्दर्य की व्यजना की। उन्होंने उसे उस ऊँचाई पर पहुँचा दिया जहाँ वह महाकाव्य की समानता कर सकता था।

टिप्पणियाँ

१– 'हरिऔध' : 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास', पृ० ७०५
२– मुंशी कन्हैयालाल, एम० ए०, एल० एल० बी० : 'स्व० प० किशोरीलाल गोस्वामी' माधुरी, आषाढ १९८९ वि०, पृ० ८३९-४१
३– वही, "उन्होंने प्लाट सुना और पचास पेज की कहानी लिखा दी—और बहुत सुन्दर कहानी।"
४– किशोरीलाल गोस्वामी 'सुजान रसखान' की भूमिका
५– 'हिन्दी के महारथियों का प्रस्थान', 'चाँद', जुलाई १९३२, पृ० ३३६
६– 'आज', १३ जून, १९३२, पृ० ६
७– 'सुखशर्वरी' का निदर्शन
८– 'हिन्दी के निर्माता' (प्रथम भाग)
९– 'कविता कौमुदी' (दूसरा भाग), पृ० ४८२-९५
१०–'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृ० ५००
११–'गुप्त निबन्धावली', पृ० ५६३
१२–'मल्लिका देवी', पहला भाग, तीसरा परिच्छेद
13– "What is pornography to one man is the laughter of genius to another."

—'D. H. Lawrence', p. 32.

१४–रामशंकर शुक्ल 'रसाल' : हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ७१९

७

उपन्यासकारों के उपन्यासकार

(१८६१-१९१३)

जीवन और रचनाएँ

अनेक अमर उपन्यासो के रचयिता देवकीनन्दन खत्री का जीवन भी एक उपन्यास था। इनका जन्म और लालन-पालन ननिहाल मे हुआ। इनकी चढती जवानी दूकानदारी और पतंगबाजी मे गुजर गई। लगभग २४ वर्ष की आयु के बाद इन्होने जगलो का ठेका लिया और वन्य प्रदेश का भ्रमण किया। इस प्रकार स्वच्छन्दता के वातावरण मे साहसिकता का जीवन व्यतीन करते हुए इन्होंने अपनी और पिता की कमाई फूँक डाली और घर मे बैठ रहे। इन्हे उर्दू, फारसी, सस्कृत, हिन्दी और अग्रेजी की शिक्षा मिल चुकी थी। फारसी कथासाहित्य का रसास्वादन करते-करते इन्हे कथा-लेखक बनने का शौक हुआ। 'इन्होने उसी झोक मे 'चन्द्रकाता' उपन्यास के दस-पन्द्रह पृष्ठ लिख डाले। एक दिन इन्होने श्री अमर सिंह को वह अश दिखाया, पर यह न बताया कि यह किसका लिखा है। अमर सिंह ने उस पुस्तक को पसंद किया। और उन्होने उस अज्ञात लेखक को खूब प्रोत्साहित करने को कहा। तब तो ये समझ गये कि पुस्तक रद्दी नही है। चटपट इन्होने 'चन्द्रकाना' का प्रथम भाग लिख डाला।'[1]

यह सयोग की बात है कि बाबू देवकीनन्दन खत्री उपन्यासकार बन गए। ये साहित्य के क्षेत्र मे अपना अनुभव और अध्ययन लेकर उतरे। जंगल

की ठेकेदारी मे इन्हे पर्वत, गुफा, नदी, वन, खण्डहर आदि निकट से देखने का अवसर मिला और इन्होने उनका सजीव वर्णन अपने उपन्यासो मे किया। अपने सूक्ष्म पर्यवेक्षण के आधार पर इन्होने वन्य जीवन का जैसा चित्रण किया ह वैसा हिन्दी का कोई दूसरा उपन्यासकार नही कर पाया हे। इनकी जवानी के दिन गया, काशी और उनके निकटवर्ती स्थानो मे बीते। इन्होने परिचित स्थानो को पृष्ठभूमि बनाकर अपनी कल्पित कथा को वास्तविकता प्रदान की है। भौगोलिक सम्बन्ध के कारण इनका वर्ण्य विषय विश्वासयोग्य हुआ और उसमे स्थानीय रग भरकर आया। इनका अध्ययन इनके अनुभव का पूरक सिद्ध हुआ। फारसी-उर्दू से कथा का बीज लेकर, अपनी उर्वर कल्पना के सहारे इन्होने अद्भुन ससार की सृष्टि की।

उनका क्षेत्र सीमित है क्योकि उन्होने उन विषयो का वर्णन किया है जिनका उन्हे ज्ञान और जिनसे उनका परिचय था। यही नही, उन्होंने अनुभव की सामग्री मे भी मचयन किया है। उनकी स्मरण-शक्ति अत्यन्त तीक्ष्ण थी। वे घटनाओ का जाल फैलाकर समेटने मे सिद्धहस्त थे। उनकी रचनाओं का स्रोत स्वय उनका जीवन था। फलत: उनमे ताजगी, सहजता और सजीवता है। वे सस्मरणात्मक उपन्यास के सर्वोत्तम निदर्शन है, यद्यपि उनमे स्मृति और कल्पना को एक दूसरे से पृथक करना कठिन है।

वे केवल मनोरजन करने वाले किस्सागो नही थे। उनमे अलौकिक प्रतिभा थी, जिसके बल पर उन्होने तिलस्म और ऐयारी को मोहक और सम्भव बनाने की चेष्टा की। अपनो रोमानी तबियत के कारण वे अतीत की ओर उन्मुख हुए पर अपने देशप्रेम से प्रेरित होकर उन्होने फारसी कथा के उपादानो को नवीन रूप प्रदान किया। वे रसिक, विनोदी और मौजी थे। यही कारण है कि उनके उपन्यास सरस हो सके। उन्होने युग-जीवन की गम्भीर समस्याओ से पाठकों को परेशान नही किया। उनके चरित्र-चित्रण, परिस्थितियों और वार्तालाप की योजना में उनके विनोदी स्वभाव की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। उनके उपन्यास सुखान्त नाटक के निकट है।

कहते हैं, खत्रीजी ने गया मे पाँच हजार रुपये की पतगें उड़ाई। उनके लिए उन्यास लिखना पतंग उड़ाने के समान आसान था। उन्होंने जिस गति से लिखा वह आश्चर्य का विषय है। वे लिखते जाते थे और प्रेस मे भेजते जाते थे। उन्हे बोलकर लिखाने की भी क्षमता थो। 'नरेन्द्रमोहिनी'

की रचना उन्होने एक ही दिन मे कर डाली। उनके मौलिक उपन्यास आठ हैं, चार पूरे और चार अधूरे। इनमे एक अप्राप्य है। उन्होने दो पुस्तकों का अनुवाद भी किया था जो अनुपलब्ध हैं। हिन्दी मे 'चन्द्रकाता' सर्वाधिक लोकप्रिय और 'चन्द्रकाता सतति' सर्वाधिक विशालकाय उपन्यास है। 'चन्द्रकाता' इनकी सर्वोत्तम कृति और सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। इनकी अपूर्व कल्पना-शक्ति 'चन्द्रकाता संतति' मे आकर शेष हो गई है। बाद मे तो वे पुनरुक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए दिखाई पडते हैं। वे अपनी प्रथम रचना को फिर नही पा सके। 'काजर की कोठरी' ही उनका ऐसा उपन्यास है जिसमे वे अतीत से वर्तमान की ओर मुड गए है। कुल मिलाकर उनके उपन्यास कल्पना-प्रसूत साहित्य का अन्यतम निदर्शन हैं।

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास

'चन्काता' (१८९१–९२), 'चन्द्रकाता सतति' (१८९४–१९०५) और 'भूतनाथ' (१९०८–९२) मे एक ही कथा का विकास और विस्तार हुआ है। कुछ पात्र एक उपन्यास मे प्रवेश कर दूसरे मे प्रस्थान करते हैं। कुछ पात्र मानो भिन्न-भिन्न नामो और रूपो मे प्रकट होने वाले एक ही व्यक्ति है। तीनों उपन्यासो की विषय-वस्तु भी एक-सी है। अतः तीनों का अध्ययन एक ही रचना के रूप मे किया जा सकता है।

प्रेम, संघर्ष, ऐयारी और तिलस्म ये चार प्रसग उन चार खभो की तरह हैं जिन पर खत्रीजी की रचना का रेशमी शामियाना खडा किया गया है। ये प्रसंग यो हो रोचक होते है। खत्रीजी ने इन्हे अपूर्व कौशल से प्रस्तुत कर और भी रोचक बना दिया है। 'चन्द्रकाता' मे चन्द्रकाता और वीरेन्द्रसिंह के प्रेम का स्वाभाविक विकास हुआ है। दोनों बचपन मे साथ-साथ खेल चुके हैं। बचपन की याद जवानी मे प्रेम बन जाती है। उनके प्रेम मे बचपन का भोलापन और जवानी का अल्हड़पन है। वीरेन्द्रसिंह पहली बार चन्द्रकाता से रात में मिलते है, जब वह बाग मे संगमर्मर के चिकने चबूतरे पर मोमी शमादान की धु धली लौ के पास सखियो के साथ बैठी रहती है। इस वातावरण मे दो धडकते हृदयों का चोरी-चोरी मिलना रोमांस का रोमांस है। प्रेम के चरम रूप के उद्घाटन और कथा के विकास के लिए नायक-नायिका को एक बार मिलाकर बहुत दिनो तक विरह मे तड़पने के लिए छोड़ दिया जाता है। प्रथम मिलन की सुबोध घड़ियो के बाद वीरेन्द्रसिंह का दर्शन इस

रूप मे होता है।

चन्द्रप्रभा नदी के किनारे उदास बैठे हैं, चन्द्रकाता के विरह मे मौरो की आवाज तीर सी लगती है, लगूरो की किलकारी बज्र सी मालूम होती है, धीमी-धीमी शाम की ठडी हवा लू का काम करती है।

वीरेन्द्र और चन्द्रकाता का प्रेम सोने के पिजरे की उडान है। उनके समाज में विवाह व्यक्तिगत समझौता न होकर सामाजिक बधन है। उपन्यास के प्रथम भाग मे उनके लिए समाज की परिस्थिति अनुकूल हो जाती है। फिर भी वे नदी के दो किनारे की तरह रहते है। वीरेन्द्रसिह के विजयगढ आने के तुरत बात चन्द्रकाता को गायब कर दिया जाता है। कुमार उसकी खोज मे वन-वन भटकते है। इससे साहसिक प्रेम के प्रदर्शन के लिए मार्ग खुलता है। तेजसिह के प्रयास से कुमार को चन्द्रकांता का दर्शन होता है। चन्द्रकाता पहाड पर खडी है, वीरेन्द्रसिह नीचे खड़े है। दोनो एक दूसरे को देखते हैं, आँसू बहाते है और मिलने के लिए छटपटाते है पर मिल नही पाते। यह दृश्य करुण-मधुर है।

चन्द्रकाता तिलस्म मे फँसकर पहाड़ पर चली गई थी। उससे मिलने के लिए वीरेन्द्रसिह तिलस्म तोड़ते हैं और पहाड पर पहुँचते हैं। वह मिलन की मीठी कल्पना में डूबे हुए है :

आज मैं अपने हाथो से उसके बाल सुलझाऊँगा, अपनी चादर से उसके बदन की गर्द झाडूँगा······ अपनी चादर अपनी कमर मे लपेट लूँगा और अपनी धोती उसे पहराऊँगा।

वीरेन्द्रसिह की यह अनुभूति अपनी प्रेमिका से बहुत दिनो पर मिलने वाले एक प्रेमी की सरल, मार्मिक अनुभूति है।

सोलहवें बयान मे तिलस्मी खोह मे दोनो का मिलन इस प्रकार दिखाया गया है कि लौकिक प्रेम अलौकिक स्तर पर पहुँच गया है और शृगार की परिणति शात रस मे हो गई है। दोनो आतुर होकर एक दूसरे से मिलने के लिए बढ़ते हैं कि बेहोश हो जाते हैं। होश मे आने पर उनकी वाणी मौन हो जाती है। उपन्यासकार के शब्दों में 'ये दोनो एक रूप हो रहे थे', उनका प्रेम 'हद्द दर्जे तक पहुँचा हुआ प्रेम' था। उपन्यास के अन्त में, जब उनके प्रेमपथ के कटक दूर हो जाते हैं, उनका विवाह होता है। इस तरह उनके प्रेम की गति कथा की दिशा निर्धारित करती है।

चन्द्रकान्ता और वीरेन्द्रसिंह के प्रेम के समानान्तर ही चन्द्रकान्ता की सखी चपला और वीरेन्द्रसिंह के मित्र तेजसिंह के प्रेम का विकास होता है। वे कुमार-कुमारी के प्रणय-मिलन मे सहायक होते हैं और स्वय अपनी प्रणय-क्रीडा मे भाग लेते हैं। इनका प्रेम सहवास से नही, गुण के आकर्षण से उद्भूत होता है। एक बार उन्हे चाँदनी रात मे सूने वन के बीच पत्थर की चट्टान पर बैठकर मिलन-पर्व मनाने का सुनहला मौका मिलता है पर इस मौके को वे ऐयारी की बातो मे ही नष्ट कर देते है। तेजसिंह के गिरफ्तार होने पर चपला प्रेम-मतवाली बन कर उसकी खोज मे निकल पडती है·

आँखो से आँसू की बूँदें गिर रही है, सारा कुरता आगे से भीग गया है, थोडी-थोड़ी दूर पर ठोकरें खाती है, उँगलियो से खून निकल रहा है मगर उसको इसका कुछ ख्याल नही, आगे एक नाला आया.. ...धम से उस नाले मे गिर पडी, सिर फट गया, खून निकलने लगा, कपडे बदन के सब भीज गये।

आधी रात को भयानक वन मे अकेली भटकने वाली चपला साहित्य मे नई अभिसारिका के रूप मे आती है। वह जैसा प्रेम दिखाती है वैसा एक भारतीय नारी ही दिखा सकती है।

'चन्द्रकान्ता सतति' मे प्रेम-सम्बन्ध कुछ जटिल हो गया है। चन्द्रकाता के पुत्र इन्द्रजीत सिंह और आनन्द सिंह अनेक युवतियों के आकर्षण-केन्द्र हैं। इन्द्रजीत सिंह के पास शत्रु-कन्या किशोरी अपनी अँगूठी मे जड़ी तस्वीर भेजती है, जिसे देखकर वे मोहित हो जाते है। किशोरी की मौसेरी बहन माधवी भी इन्द्रजीतसिंह की ओर आकृष्ट है। अत. एक पुरुष के साथ दो स्त्रियों के प्रेम से नाटकीय स्थिति उत्पन्न होती है। माधवी किशोरी और इन्द्रजीत सिंह को कैदखाने में डाल देती है, जहाँ दोनो का मधुर मिलन होता है। माधवी के दीवान की लडकी कामिनी आनन्दसिंह को प्यार करती है। शत्रुपक्ष की कन्याओ से प्रेम और सहानुभूति प्राप्त करने मे उनके रोमानी व्यक्तित्व की विजय है पर कमलिनी और लाडिली उनका जो प्रेम होता है उसमे पौरुष कोमलता से पराजित होता हुआ दिखाई पड़ता है। कमलिनी इन्द्रजीतसिंह के घाव पर अपने नाजुक हाथों से तेल लगाकर और अपने आंचल का टुकडा बाँधकर उन्हें वशीभूत कर लेती है। कृतज्ञता और आकर्षण से प्रेम का स्वाभाविक विकास होता है। अत मे चारो प्रेमिकाओं का कुमारो से विवाह होता है। वे घर का काज करती हुई पति की सुख-सुविधा का ख्याल रखती है

और दासियो के साथ अच्छा बर्ताव करती हैं। प्रेमिका को पत्नी बनाकर स्वच्छद प्रेम को परिवार की परिधि मे बाँधने की यह पद्धति भारतीय है।

'चन्द्रकांता सतति' मे दाम्पत्य प्रेम आरभ होकर 'भूतनाथ' मे विकसित होता है। पहले हिस्से मे ही इन्दुमती अपने पति से बिछड़ जाती है। बहुत दिनो तक दोनो पास रहकर भी दूर रहते हैं। यह विवशता मिटती है कि इन्दुमती पर झूठा कलक लगाकर प्रभाकर सिंह के मन मे गलत फहमी पैदा की जाती है। ऐसी परिस्थितियों की उद्‌भावना इन्दुमती के अति-प्रेम का द्योतन करने के लिए की गई है किन्तु दैनिक जीवन मे पति-पत्नी के प्रेम-सम्बन्ध पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

कथा मे प्रेम के बाद सघर्ष का स्थान है। संघर्ष का आरम्भ और विकास किसी सुन्दरी को लेकर होता है और अन्त मे वह विजय का उपहार बनती है। संघर्ष के वाह्य रूप मे षड्‌यंत्र की और आतरिक रूप मे सम्मान-बोध की प्रधानता होती है। ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध आदि की प्रवृत्तियाँ उमडती है। इससे उपन्यास में घटनाओ को साथ ही भावो का घात-प्रतिघात होता है।

यद्यपि 'चन्द्रकांता सतति' में 'चन्द्रकाता' के सघर्ष का ही विस्तार हुआ है तथापि उसमें विशिष्टता है। 'चन्द्रकाता' मे स्त्री के लिए पुरुषो मे संघर्ष हुआ, 'संतति' मे पुरुष के लिए स्त्रियों में सघर्ष होता है। इस सघर्ष मे प्रेमी-प्रेमिका और प्रतिद्वंदी की अपेक्षा उनके ऐयार-ऐयारा की भूमिका विशेष महत्त्व रखती है। शतरज के खेलाड़ियो की तरह एक पक्ष के ऐयार विपक्ष के ऐयार को मात देने की कोशिश करते हैं। उन्हें बल से अधिक बुद्धि का भरोसा रहता है। ये 'हरफन मौला' होते हैं : वेश धारण करने मे कुशल अभिनेता, दवा बनाने में निपुण रसायनवेत्ता, गाने-बजाने मे महान कलाकार, अस्त्र-शस्त्र चलाने में वीर सैनिक और भेद का पता लगाने मे सफल जासूस। पर चाल और चालबाजी मे ये अपना सानी नही रखते।

इनका कौशल इसमे है कि ये युद्ध को रोक कर आपसी समझौते से संघर्ष को समाप्त करा दें।[१] इसके लिए ये जिन साधनो का उपयोग करते हैं उनमें रूप-परिवर्तन का अत्यधिक प्रभाव होता है। उस पर उपन्यास का सारा खेल निर्भर रहता है। ऐयार की अपेक्षा ऐयारा में अधिक आकर्षण रहता है। पुरुष का स्त्री-वेश और स्त्री का पुरुष-वेश अपने आप मे एक रोमानी कथा है। 'चन्द्रकांता' के एक ही बयान मे चपला रह-रह कर सिपाही, ऐयार

कलात्मक बना दिया है । फैजी की भाँति उनके ऐयारो को अलौकिक सहायता नही मिलती, न ही उनका तिलस्म जादू का कारखाना है । वे हमे ऐसे मानव-लोक मे ले जाते है जो आदर्श प्रेम के सगीत, शिष्ट हास्य और मधुरालाप से मुखरित है और जहाँ कल्पना ने साधारण वस्तुओ को भी रमणीय एव विश्व-सनीय बना दिया है । फैजी की पुस्तक भारत मे लिखी गई पर उसके घटना-स्थल ईरान, मिश्र आदि देश है । रोमानी कथाओ मे दूर देश का आकर्षण रहता है । उनके उपन्यास मे नौगढ़, विजयगढ, जमानिया, चुनार, गया, काशी आदि परिचित स्थान पृष्ठभूमि के रूप मे है ।

खत्रीजी की विशिष्टता यह है कि उन्होने रोमांस के अद्भुत रस मे उपन्यास की वस्तु और कला को मिश्रित कर दिया है । उनकी कथा—खासकर प्रासंगिक कथा—मे दैनिक जीवन के यथार्थ का रग है । उनकी घटनाएँ अप्राकृतिक शक्ति से सचालित न होकर कार्य—कारण की श्रृ खला मे बँधी है और एक निश्चित लक्ष्य की ओर बढती हैं । उनके नायक-नायिका, ऐयार-ऐयारा मानवीय होने के कारण हमारी प्रशसा और सहानुभूति प्राप्त करते है । उन्होने एक ओर फारसी-उर्दू से अच्छे तत्त्व लिए और उन्हे वास्तविकता की भूमि पर प्रतिष्ठित किया, दूसरी ओर अहित कर तत्त्व—जैसे, मुहावरे-बाजी, अलकृत गद्य, अश्लीलता—छोड़ दिए । इसका कारण यह था कि वे उपन्यास के पास एक भारतीय एव कलाकार के रूप मे आये थे ।

उनकी उपन्यास-कला चयन से आरम्भ होती है । उन्होने स्पष्ट लिखा है, "हम दिलचस्प घटनाओ का ही लिखना पसन्द करते हैं । विस्तार पूर्वक लिखकर पढ़ने वालों का समय नष्ट करना हमारी आत्मा और आदत के विरुद्ध है ।"[4] वस्तु के चयन के साथ ही उसके विन्यास मे वे परम कुशल हैं 'चन्द्रकान्ता' की कथा एक सँवारी हुई जटा है । 'चन्द्रकान्ता सन्तति' मे जटिल कथानक की सृष्टि और व्यवस्था करने मे उनकी कला चरम सीमा पर पहुँच गई है । उसका कसाव विविध कथा-पद्धतियो के उचित उपयोग पर निर्भर है । समष्टित. खत्रीजी स्वय तटस्थ रहकर नाटककार की भाँति पात्रों द्वारा कथा का उद्घाटन कराते हैं । पाठको की उत्कठा बनाये रखने के लिए कुछ रहस्य छिपाकर रखा जाता है और कुछ खोल दिया जाता है, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, "पेचीली बात है, खुलते-खुलते खुल जायगी ।"[5] इससे पाठकों को सशय और विस्मय होता है । सशय उस समय होता है जब पाठक पात्र की दशा से परिचित रहता है किन्तु दोनो को परिणाम का ज्ञान नहीं

रहता है या जब पाठक पात्र की दशा से परिचित रहता है किन्तु पात्र नही रहता। दूसरी स्थिति मे नाटकीय व्यग्य की सृष्टि होती है। रहस्य खुलने पर विस्मय होता है। 'चन्द्रकान्ता' से 'भूतनाथ' तक इस प्रणाली की पुनरावृत्ति की गई है, इसलिए घटनाओ मे एकरसता और उनकी योजना मे कृत्रिमता है।

ये उपन्यास एक ही ढग की कहानी दुहराते रहे तथापि किसी भी भारतीय उपन्यास से अधिक पढे गए क्योकि इनमे कौतूहल के गुण के अतिरिक्त अन्य गुण भी है। एक गुण तो यह है कि ये अत्यन्त रोचक है। पाठक को प्रभावित करने के लिए कथ्य को रोचक बनाना आवश्यक है और रोचकता के लिए विश्वसनीयता की आवश्यकता होती है। जो उपन्यासकार असत्य को भी सत्य बनाकर दिखाता है वह उससे कही अधिक सफल है जो सत्य को भी सम्भव बनाकर नही दिखा पाता है। खत्रीजी वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने मे अत्यन्त सफल हुए है। उनकी घटनाओ और पात्रो मे सभवता है। उपन्यास पढने के समय उनके अस्तित्व मे अविश्वास करना कठिन है।

चन्द्रकान्ता प्रथम उपन्यास की नायिका, उपन्यासकार के शब्दो मे "उपन्यास की ताज" है। वह सुन्दर, सरल और शीलवती है। उसका व्यक्तित्व उसके प्रेम-सम्बन्ध में पूरी तरह उभरता है। वीरेन्द्र सिह के बिना उसे हरा-भरा बाग वीरान लगता है और सहेलियो की चुहल फीकी लगती है। उसे विरह मे प्रकृति या मनुष्य से सात्वना नही मिल पाती। उसका जीवन भार हो जाता है। वह तेजसिह को यह कहकर रोने लगती है, "अब की भी आये तो अकेले ही आये,······ जब उनकी मुहब्बत का यह हाल है तो मैं जीकर क्या करूँगी ?" वह महल मे, कैदखाने मे, वन मे, गुफा मे प्रेम का दीप जलाए रहती है। इस बाल-वियोगिनी को एक पहाड़ पर इस रूप मे खड़ी देखकर किसी लोककथा की प्रेमिका याद आ जाती है, "सिर के बाल खुले हैं, गुलाब सा मुँह कुम्हला गया है, बदन पर मैल चढी हुई है, कपड़े फटे हुए है, आँखो से आँसू जारी है।" उसका करुण-मधुर रूप पाठको पर गहरा प्रभाव छोड़ जाता है।

चन्द्रकान्ता के बाद "दुनियाँ मे कोई खूबसूरत है तो चपला ही है।" वह इतनी सुकुमार है कि उसे "एक फूल से मारना खून करना है।" सगीत एवं नृत्य की कला मे वह निपुण है। तेजसिह के प्रेम से उसके हृदय का

कोना-कोना भीगा हुआ है । जब वह उसकी खोज मे चलती है तब "उसको यह नही मालूम कि वह किस काम के लिए बाहर निकली है, कहाँ जाती है, रास्ता कौन है, आगे पत्थर है या गड्हा, नदी है या नाला ।" स्त्री-सुलभ गुणो के अतिरिक्त उसमे पुरुषोचित वीरता एव साहस है । "दो-चार आदमी से लड जाना और उनको पकड लेना उसका अदना काम था ।" इस पौरुष के कारण वह चन्द्रकान्ता से अधिक सजीव है । वह मध्ययुग की राजपूत-बाला है ।

पुरुष-पात्रों मे वीरेन्द्रसिंह नायक, तथा क्रूरसिंह एव शिवदत्तसिंह खलनायक है । वीरेन्द्रसिंह एक तरुण प्रेमी की भाँति चन्द्रकान्ता की याद मे खोया-खोया-सा रहता है, उसके पत्रो को आँखों से लगाता है और उसके वियोग मे नदी किनारे बैठकर आहे भरता है । वह चन्द्रकान्ता के लिए उसी तरह तड़पता है जिस तरह कोई बच्चा खोये हुए खिलौने के लिए । उसमें प्रेमी की दुर्बलता के साथ ही सैनिक का साहस है । उपन्यास के प्रथम भाग मे उसका रोमांस निष्क्रिय है, चन्द्रकान्ता के गायब होने के बाद उसमे सक्रियता आती है । "लड़ाई उसका धर्म है", वीरता उसकी उपासना है और धैर्य उसका साथी । मध्ययुग के राजकुमार के समान उसे शिकार से उतना ही शौक है जितना राजनीति से । पर उसकी मूल प्रेरणा प्रेम है । "माँ बाप की फिक्र, विजयगढ़ का ख्याल, लडाई की धुन, तेजसिंह की दोस्ती" सबके मूल मे एक चन्द्रमुखी की दो बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें हैं ।

क्रूरसिंह चन्द्रकान्ता के लिए उसके पिता को मारकर गद्दी पर बैठना चाहता है, मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लेता है और अपने बाप को मरवा डालता है । पर उसके हृदय मे प्रेम का प्रकाश नहीं, विलास की मलिन छाया है । वह पतित, निर्मम और ढोगी है । दिन मे अपने पिता की मृत्यु पर आँसू बहाता है और रात मे चन्द्रकान्ता से मिलने का प्रोग्राम बनाता है । क्रूर की भाँति शिवदत्त सिंह भी वासना का पुतला और छल-कपट की मूर्ति है । उसे विवाह मे चन्द्रकान्ता और दहेज मे चपला चाहिए । एक अपरिचित गायिका की "जुल्फ मे भी उसका दिल ऐसा फँस गया था कि निकल नही सकता था ।" वह अपने विपक्षियो से दिखावटी सन्धि कर भीतर-भीतर षड्यन्त्र करता रहता है ।

'चन्द्रकान्ता' में लगभग ३० पात्र हैं । 'सन्तति' और 'भूतनाथ' के

पात्रों की सख्या अपेक्षया अधिक है। उनमे विविधता न होकर पारिवारिक अनुरूपता है। इन्द्रजीत सिंह और आनन्द सिंह वीरेन्द्र सिंह के प्रतिरूप हैं। 'चन्द्रकान्ता' की भाँति 'सन्तति' मे "मुहब्बत का नमूना दिखाने वाली नायिकाएँ" है। कुल मिलाकर खत्रीजी के पात्र या तो बिल्कुल अच्छे हैं या बिल्कुल बुरे। बुरे पात्र अधिक जीवन्त और कुछ अश तक परिवर्तनशील हैं। भूतनाथ ही एक ऐसा पात्र है जो देवता या शैतान न होकर मनुष्य है और इसलिए अत्यधिक विश्वसनीय है। उसके चरित्र का उत्तरोत्तर उद्घाटन कुशलता से किया गया है। परिस्थितियो मे पडकर उसका पतन और उत्थान होता है। रुपये और रूप के लिए उसे महान दुर्बलता है। एक बार की भूल उसे जीवन-भर काँटे-सी चुभती रहती है। उसका सतत पश्चाताप ही उसके पाप का प्रायश्चित है। हाथर्न के 'स्कारलेट लेटर' की भाँति उसके जीवन के माध्यम से यह सत्य प्रकट किया गया है कि पापी को अपने पाप का फल किसी न किसी रूप मे अवश्य भोगना पडता है।

भूतनाथ को छोडकर सभी ऐयार अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं। उनके शील-निरूपण मे उपन्यासकार के आदर्श की छाप है। उनकी गुरुभक्ति अनुकरणीय होती है। वे स्वामीभक्त ऐसे होते हैं कि "चाहे जान चली जाय मालिक का सग कभी न छोडेगे।" कोई भी प्रलोभन इन्हे पथ से विचलित नही कर सकता। सकारात्मक होने के कारण वे महान हैं। उनकी नैतिक भावना बहुत प्रबल होती है। उनके लिए कुँआरी स्त्री बहन और विवाहित स्त्री माता होती है। वे वीर, साहसी और बलवान होते है। अपनी विघ्न-बाधाओ को रौंदते हुए वे विजयी होते है। वे वीर होने के साथ-साथ विनोदी होते हैं। हम उनके साथ हँसते हैं, उन पर नही हँसते हैं। तेजसिंह ऐयार होने के कारण नही बल्कि हँसमुख होने के कारण प्रिय लगता है। 'चन्द्रकाना सन्तति' मे नकली बिहारी सिंह बनकर वह एक हँसोड़ पात्र की भूमिका निभाता है।

चरित्र-चित्रण मे विश्लेषात्मक और अभिनयात्मक विधियो का उपयोग किया है किन्तु तटस्थता नही बरती गई है। सज्जनता या दुर्जनता का उद्घाटन सफलतापूर्वक किया गया है। लम्बे उपन्यास के पात्रों मे जैसी गतिशीलता होनी चाहिए थी वैसी नही है। अनेक पात्र अल्पजीवी और अनावश्यक हैं।

खत्रीजी के तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासो के कथानक और चरित्र की अपेक्षा वार्तालाप मे अधिक स्वाभाविकता एव वास्तविकता है। वह पूर्ण अर्थ मे नाटकीय है। उसके दो ऐसे उदाहरण दिए जाते है। जो सरस और ओज-पूर्ण है और लेखक की विशिष्ट कला के सूचक है।'चन्द्रकाता' के तीसरे हिस्से के पाँचवे बयान मे वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह इस तरह विनोद करते है :

कु० कुछ इनाम दो तो हम चपला का हाल तुम्हे बता दे।

ते० इनाम मे हम चपला ही को आपके हवाले कर देंगे।

'चन्द्रकांता सनति' के पहले हिस्से के आठवे बयान का यह कथोपकथन सुनने योग्य है :

अपना शिकार एक औरत के हाथ से मरते देख भीमसेन को क्रोध चढ आया और आँखे लाल हो गईं। ललकार कर औरत से बोला—"तूने क्यो मेरे शिकार पर बरछी चलाई ?"

औरत० क्या शिकार पर तुम्हारा नाम खुदा हुआ था ?

भीम० क्यों नही ? मेरा जगल मेरा शिकार, मैं इतनी दूर से इसके पीछे चला आता हूँ !!

औरत० वाह रे तेरा जगल और वाह रे तेरा शिकार ! तीन कोस से दौडे चले आते हैं एक सूअर न मारा गया। शर्म तो आती नही उल्टे लाल आँखें करके मर्दी दिखा रहे है !!

भीम० क्या कहूँ तेरी खूबसूरती पर रहम आता है, औरत समझ कर छोड देता हूँ नहीं तो जरूर सजा देता !

औरत० मैं भी छोकडा समझ कर छोड देती हूँ नही दोनो कान पकड के उखाड लेती !

भीम० (दात पीस कर) बस अब सहा नही जाता ! जुबान सम्हाल !

औरत० नहीं सहा जाता तो अपने हाथ से अपना मुँह पीट। जुबान हमेशे यों ही चलती रही है और चलती रहेगी !

यदि वार्तालाप ने उपन्यासो को नाटक के निकट पहुँचा दिया है तो देश-काल के वर्णन से वे 'परिस्थितियो का काव्य' बन गए हैं। नौगढ, विजयगढ, गया, राजगृह की पहाडियो की गोद मे खेलती हुई चन्द्रप्रभा, कर्मनाशा, फल्गू आदि नदियाँ, नदियों के आर-पार दूर-दूर तक फैले हुए सघन और सुनसान वन, वन के हरे-भरे पेड, पेड़ो पर नाचते-गाते पक्षी सभी

विशिष्ट प्रदेश के अग हैं। उनके वर्णन मे ध्वनि, गध, रूप, रंग और रस की अनुभूति कराने की शक्ति है :

ऊपर से पानी गिर रहा जिसकी आवाज बहुत भली मालूम होती है। हवा के चलने से पेडो की घनघनाहट और पानी की आवाज, तथा बीच-बीच में मोरो का शोर और दिल को खीच लेता है। नीचे जो चश्मा पानी का पश्चिम से पूरब की तरफ घूमता हुआ बह रहा है उसके दोनो तरफ जामुन के पेड़ लगे हुए हैं और पक्के जामुन उस चश्मे के पानी मे गिर रहे है।[6]

यह सुन्दर सुहावना और दिलचस्प सुन्दर, सुन्दर गुलबूटो से हरा-भरा मैदान चारो तरफ की हरी-भरी ढालवी पहाडियो से घिरा हुआ था। हरे-भरे तथा खुशबूदार फूलो से लदे हुए पेड तथा लताओं की खुशबूदार फूलो से लदे हुए पेड तथा लताओ की खुशबू बहुतायत से निकल कर और हवा मे मन्द-मन्द मिल कर जिस तरह दिमाग को मुअत्तर कर रही थी उसी तरह रग बिरग की खुशनुमा चिडियो की आवाज तथा गूँजते और फूलो पर न्योछावर होते हुए भौरो की पक्तियाँ कानो और आँखो को भी बहुत ही भली और प्यारी मालूम होती थी। यही जी चाहता था कि यहाँ से क्षण भर भी हट कर कही न जायँ और न इस स्वर्ग तुल्य स्थान को देखने से मुँह मोडे। एक तरफ पहाडी की आधी ऊँचाई से सुन्दर झरना नीचे की तरफ गिर रहा था जिसके साफ सुथरे और बिल्लौर के से जल की बदौलत उस मैदान के गुलबूटो और पौधो की सिंचाई बखूबी होती थी तथा और बहुत से छोटे झरने पहाडी पर से बह रहे थे जिससे यहाँ की तरावट मे किसी तरह की कमी नही आने पाते थी और यहाँ के पेड भी हर वक्त सरसब्ज और शादाब बने रहते थे। दूसरी तरफ पहाडी के ऊपर एक सुन्दर बँगला भी दिखाई दे रहा था और वह अपने चारो तरफ के गुलबूटो और पौधो से ऐसा मालूम पडता था मानो बसन्त ऋतु मे कामदेव के भवन को बाग बगीचों ने चारो तरफसे घेर रक्खा हो।[7]

पृष्ठभूमि का ऐसा यथार्थ चित्रण प्रत्यक्ष अनुभव और समृद्ध कल्पना के आधार पर ही किया जा सकता था। 'चन्द्रकाता सनति' मे लामघाटी का वर्णन इतनी सूक्ष्मता और विस्तार से किया गया है कि अविश्वास करने की इच्छा नहीं होती। विलक्षणता की बात यह है कि जैसी रोमानी घटनाएँ है,

वैसे ही रोमानी घटनास्थल है। प्रकृति मनुष्य की कर्मभूमि से होने सुन्दरतर हो गई है, नायक-नायिका, ऐयार-ऐयारा कभी पैदल, कभी घोडे पर पहाड़ी रास्ते मे भटकते रहते हैं। कही चन्द्रकाता 'पेडो की छाँह मे घूमती जगली बेरों' को तोडकर खाती दिखाई पडती है, कही नदी-किनारे बैठकर 'शाम की धीमी-धीमी ठडी हवा' मे कुमार वीरेन्द्र विरह-विकल मन बहलाता है। "चपला ऐयारी का बटुआ बगल मे लटकाए, कमद कमर मे कसे और खजर लगाए जगल ही जगल कदम बढाए चली जा रही है।" पात्रो ने वातावरण को और वातावरण ने पात्रो को सजीव बना दिया है। पहाड की ऊँचाई पर खडी वियोगिनी और बाग मे बिहार करती सुन्दरी अक्सर आँखो के सामने आ जाती हैं। घाटी मे इन्द्रदेव के बगले का यह दृश्य स्वप्निल है :

बगले के चारो कोनो पर चार मौलसिरी के बडे-बडे दरख्त थे जो इस समय खूब ही हरे-भरे थे और उनके फूलो से वहा की जमीन ढक रही थी........ पेड़ की डाली से रेशमी डोर के साथ एक हिंडोला लटक रहा था। हिंडोले पर एक सुन्दर औरत बैठी हुई दिखाई देती थी।

खत्रीजी ने प्रकृति के विविध रूपो को अपने शब्दो मे स्पष्टतः अकित किया पर उनके साथ मनुष्य के भावो का सम्बन्ध कोमलता से स्थापित नही कर सके। वन, पर्वत, घाटियाँ, लता-कुज आदि मानवीय प्रवृत्तियो का क्रीडा-स्थल बनाना चाहते हैं लेकिन उन्हे वे तिलस्म और ऐयारी का प्रदर्शन-केन्द्र बना देते हैं। भाव-सौन्दर्य से समन्वित होने पर उनका वातावरण विशेष रमणीय होता है और स्थानीय रग मे विश्वजनीन आकर्षण आता। वे हृदय को स्पर्श नही करते, मन को मुग्ध अवश्य करते हैं। भय और रहस्य का वातावरण निर्मित करने मे वे अप्रतिम हैं। 'चन्द्रकांता' के दूसरे हिस्से के बयान का आरम्भ अति रोमाचक है·

दोपहर के वक्त एक नाले के किनारे सुन्दर साफ चट्टान पर दो कमसिन औरतें बैठी है। दोनो की मैली फटी साड़ी, दोनों के मुँह पर मिट्टी, खुले बाल, पैरों पर खूब धूल पड़ी हुई, और चेहरे पर बदहवासी और परेशानी छाई हुई है। चारो तरफ भयानक जगल, खूनी जानवरों की भयानक आवाजें आ रही हैं। जब कभी जोर से हवा चलती है तो पेड़ों की घनघनाहट से जंगल और भी डरावना मालूम पडता है। इन दोनों औरतों के सामने एक तेंदुआ पानी पीने के लिए उतरा[8] .. .. ·

खत्रीजी ने प्रकृति और मनुष्य, अतीत और वर्तमान को एक सूत्र मे बाँध दिया। उन्होने 'चन्द्रकाता सतति' मे यह लिखा कि जब मे आनन्द सिंह ने जगन्नाथ ज्योतिषी के रोहतासगढ का सूबेदार बनाया तब से हुमायूँ के समय तक वहाँ ब्राह्मणों का शासन रहा।[8] यह उपन्यास को ऐतिहासिक रग अथवा पाठक को साहित्यिक धोखा देने का प्रयास था। उन्होने स्वय आगे चलकर स्पष्ट कर दिया कि उनके उपन्यास के पात्रों और स्थानों को ऐतिहासिक समझना 'भारी भूल' है।[9] मध्यकालीन सामती वातावरण का पुनर्निर्माण करने मे उन्हें सफलता मिली। प्रेम के लिए किए गए युद्ध और षड-यत्र; पात्रो की वीरता, साहस, स्वामी-भक्ति, घुडसवारी; किले, बुर्ज, महल, मोमी शमादान, बाग आदि की कल्पना वीर-युग के अनुकल है। राज दरबार के ठाट-बाट, तौर-तारीके का वणन विश्वसनीय है। 'चन्द्रकांता' मे सामती सभ्यता के प्रतीक 'अस्तबल मे घोडे हिनहिना रहे हैं फीलखाने मे बडे-बडे मस्त हाथी झूम रहे है।' इस मध्यकालीन पृष्ठभूमि के बावजूद उपन्यासो के ऐतिहासिक तथ्य नितात गौण हैं। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि वे सामती सभ्यता की उस अवस्था की झाँकी प्रस्तुत करते हैं जब वीरता का स्थान विलासिता और पौरुष का स्थान कूटनीति ने ले लिया था।

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासो मे हम मध्ययुग को छोडकर धीरे-धीरे आधुनिक युग में प्रवेश करते है। तिलस्म नवीन वैज्ञानिक आविष्कारो का आभास देता है। मध्यकालीन सामतवाद के पतन तथा आधुनिक पूँजीवाद के उदय से समाज मे धूर्तो की सख्या बढी। ऐयार उनके अनुरूप ही हैं। भूतनाथ का चरित्र तो इस तथ्य का स्पष्ट द्योतक है क्योंकि उसमे दूसरे ऐयारों की-सी नैतिकता नही है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसके लिए समाज में कोई स्थान नही है। खत्रीजी ने दो प्रकार के राजाओ की कल्पना की है: एक प्रजा के रक्षक हैं, दूसरे उसके भक्षक। एक पुराने राजा थे और दूसरे अँग्रेज शासक के प्रतिरूप है।

कोई भी महान उपन्यासकार अपने समय और समाज से दूर नही रह सकता है। खत्रीजी ने मध्यकालीन शासक वर्ग के जीवन को अपना प्रतिपाद्य बनाया है तथापि उन्होने अपने युग के सत्य को व्यक्त या ध्वनित किया है। नारी के प्रति उनके ऐयारो का दृष्टिकोण वस्तुतः उनका और उनके युग का दृष्टिकोण है। उन्होने जिस काशी का वर्णन किया है वह उस समय को

काशी है जिस समय उनका उपन्यास लिखा गया। वहाँ की वेश्याओं से लेकर साधुओं तक उनकी दृष्टि गई है। मठाधीशो पर व्यग्य करते हुए वे लिखते हैं, "उनकी दौलत, उनका व्यापार, उनका रहन-सहन और बर्त्ताव किसी तरह गृहस्थो और बनियों से कम नही होता।"[10] अर्थ से होने वाले अनथ की चर्चा करते समय उनकी सामाजिक आलोचना गभीर और शैली आवेशमयी हो जाती है।

अहा, दुनिया मे रुपया भी एक अजीब चीज है ! इसकी आँच को सह जाना कोई हँसी खेल नही है। इसे देख कर जिसके मुँह मे पानी न भर आवे समझ लो कि वह पूरा महात्मा है, पूरा तपस्वी है, और सचमुच का देवता है। इस कम्बख्त की बदौलत बड़े-बडे घर सत्यानाश हो जाते है, भाई-भाई मे बिगाड़ हो जाता है, दोस्तो की दोस्ती मे बट्टा लग जाता है, जोरू और खसम का रिश्ता कच्चे धागे से भी ज्यादे कमजोर होकर टूट जाता है, और ईमानदारी की साफ और सुफेद चादर मे ऐसा धब्बा लग जाता है जो किसी तरह छुड़ाए नही छूटता। इसे देख कर जो धोखे मे न पड़ा, इसे देख कर जिसका ईमान न टला, और इसे जिसने हाथ पैर का मैल समझा, वेशक कहना पड़ेगा कि उस पर ईश्वर की कृपा है और वही मुक्ति का वास्तविक पात्र है।[11]

इस समकालीनता के कारण उपन्यास सामाजिक नही बन सके पर अद्भुत और साधारण का एकीकरण सभव हुआ। बीते युग की कथा और वातावरण मे आधुनिक भाव-विचार की झलक दिखाकर वे जनप्रिय हुए।

अन्य उपन्यास

खत्री जी ने 'चन्द्रकाता सतति' के इक्कीसवे हिस्से मे लिखा है कि "हमारे पाठको में से बहुत ऐसे है जिनकी रुचि अब तिलिस्मी तमाशे की तरफ कम झुकती है परन्तु उन पाठको की सख्या बहुत ज्यादे है जो तिलिस्म के तमाशे को पसन्द करते है और उसकी अवस्था विस्तार के साथ दिखाने अथवा लिखने के लिए बराबर जोर दे रहे है। इस उपन्यास मे जो कुछ तिलिस्मी बातें लिखी गई है यद्यपि वे असम्भव नही हैं और विज्ञानवेत्ता अथवा साइन्स जानने वाले जरूर कहेगे कि 'हाँ',ऐसी चीजें तैयार हो सकती हैं।" तथापि बहुत से अनजान आदमी ऐसे है जो इसे बिल्कुल खेल ही समझते हैं और कई इसकी देखा देखी अपनी लिखी अनूठी किताबो मे असम्भव बातें लिख कर तिलिस्म के नाम को बदनाम भी करने लग गये है, इसलिए हमारा

ध्यान अब तिलिस्म लिखने की तरफ नही झुकता मगर क्या किया जाय लाचारी है, एक तो पाठको की रुचि की तरफ ध्यान देना पडता है दूसरे चुनारगढ के चबूतरे वाले तिलिस्म की कैफियत लिखे बिना काम नही चलता जिसे इस उपन्यास की बुनियाद कहना चाहिये और जिसके लिए चन्द्रकाता उपन्यास मे वादा कर चुके है। अस्तु, पाठको की रुचि को ध्यान मे रखकर उन्होने तिलस्मी तमाशा दिखाने के लिए तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास भी लिखे और दूसरे प्रकार के उपन्यास भी । 'नरेन्द्र मोहिनी' (१८९३) प्रेम और प्रतिशोध की भावनाओ से भरी अत्यत रोचक कहानी है। नरेन्द्र मोहनी की प्राण-रक्षा करता है और उस पर मुग्ध हो जाता है। उसकी मगेतर रभा के जीवित रहने की बात मालूम होने पर मोहिनी का सद्भाव प्रतिशोध मे परिणत हो जाता है और वह रभा और नरेन्द्र को मारने की कोशिश करती है लेकिन वे बच जाते है। आदि से अन्त तक उपन्यास मे भय, आशका, विस्मय, भ्रम और छद्मवेश के कारण उत्कठा बनी रहती है। सवाद के माध्यम से रहस्य का उद्घाटन होता है। आरम्भ मे ही एक युवक चाँदनी रात मे अकेले जगल मे घूमता हुआ दिखाई पडता है। वह किसी के रोने की आवाज सुनकर आगे बढता है और देखता है कि पेड़ की डाल से एक औरत की लाश लटक रही है। युवक कौन है? वह क्यो रात मे भटक रहा है? वह किसकी आवाज सुनता है, किसकी लाश देखता है? आदि प्रश्न कौतूहल की वृद्धि करते हैं।

मनोरम दृश्यो और मार्मिक स्थलो की उद्भावना सफलता के साथ की गई है। कभी हवा का झोका आकर पीपल की डालियो को छितरा देता है और चाँदनी में नायक-नायिका के दर्शन होते हैं। कभी वे नदी मे नाव पर चन्द्रमा की पूर्ण किरणो के बीच मुस्कुराते और डाँड चलाते हुए दीखते हैं। चाँदनी रात और अन्य प्रांतर के वर्णन मे विशेष रुचि प्रदर्शित की गई है। जहाँ पहचान की भूल से नाटकीय व्यग्य की योजना की गई है वहाँ कथा की रमणीयता बढ गई है। इस तरह की भूल खासकर नायक मे हुई है इस-लिए पाठको को विशेष आनन्द मिलता है। श्यामा नरेन्द्र के सामने रभा के प्रेमभाव का बखान करती है, यद्यपि वह स्वय रभा है।

घोड़े पर चढ़ना, वेश बदलना, तलवार चलाना और सकट मे साहस एव चतुरता दिखाना स्त्री-पात्रो का सामान्य गुण है। वे पुरुषोचित विशेष-ताओ से सपन्न होने के कारण पुरुषो से अधिक आकर्षण रखती हैं। रंभा

एक बार नरेन्द्र की होकर पिता के कहने पर भी दूसरे से शादी करना मजूर नही करती। वह नरेन्द्र की खोज मे घर से निकल पडती है और छद्मवेश मे उसके पास रहकर उसे विपत्ति से सावधान करती है। इसके विपरीत, केतकी और मोहिनी विलास-वासना की पूर्ति करना चाहती है। मोहिनी प्रेम मे विफल होने पर प्रतिशोधन की मूर्ति बन जाती है। वह प्रेम मे इतनी मत-वाली हो जाती है कि प्रेमी को मारकर सती बनने मे उसे सकोच नही होता। उसके चरित्र का विकास बडे कौशल से दिखाया गया है। नरेन्द्र के रोमानी व्यक्तित्व की रेखाएँ प्रेम और युद्ध दोनो मे उभरती है। उसका भाई जगजीत सिह रूप और गुण मे आदर्श सामत युवक है। खलनायक प्रतापसिह बिगडे हुए रईस का प्ररूप है। नरेन्द्र बाल-सगी बहादुर सिंह मसखरा और चालाक है। वह खुद बेवकूफ बनकर दूसरे को बेवकूफ बनाता है। वह कथानायक को सहयोग देते हुए कथा को सरस बनाता है। उसके रूपरग और चालढाल का वर्णन हृदयग्राही है। उसकी बातचीत विनोद से भरी हुई है। वह नरेन्द्र के साथ जाना चाहता है लेकिन नरेन्द्र मोहिनी की ओर सकेत करते हुए कहता है —

तो इनके पास कौन रहेगा ?

बहा०। तुम

नरेन्द्र०। और तुम किसके साथ जाओगे ?

बहा०। तुम्हारे साथ

खत्रीजी ने अभिजात वर्ग के जीवन को अपनी रचना का विषय बनाया है किन्तु उससे उनकी सहानुभूति नही है। उन्होने उसके अधःपतन की ओर संकेत किया है। उन्होने बहादुर सिंह और चमेली दाई के चरित्र की महानता दिखाकर मध्यम और निम्न वर्ग में अपनी आस्था प्रकट की है। उनके उपन्यास के घटनास्थल बिहार, गया और हाजीपुर है। इसलिए कल्पित कथा विश्वास योग्य बन गई है।

'कुसुमकुमारी' (१८९४) प्रेम और शौर्य की मार्मिक गाथा है। इसमे प्रेम के विकास पर विशेष ध्यान नही दिया गया है। उससे उत्पन्न समस्याओ को जटिल बनाकर शौर्य-प्रदर्शन के लिए अवसर निकाला गया है। कुसुम-कुमारी की शादी रनवीरसिंह से बचपन मे ही हो जाती है। जब वह तेजगढ की महारानी बनती है तब बालेसिंह उसके पास अपनी तस्वीर भेजकर विवाह

का प्रस्ताव रखता है। प्रस्ताव अस्वीकृत होने पर बालेसिंह रनवीरसिंह को कैद कर लेना है। रनवीरसिंह का साथी जसवन्तसिंह कुसुमकुमारी की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसके शत्रु मे मिल जाता है। कुसुमकुमारी अपनी मृत्यु की झूठी खबर फैला देती है। रनवीरसिंह मुक्त कर दिया जाता है। सच्ची बात मालूम होने पर बालेसिंह कुसुमकुमारी पर आक्रमण कर देता है। कुसुमकुमारी के दीवान की लडकी कालिन्दी अपने प्रेमी जसवन्तसिंह को महल मे प्रवेश करने की गुप्त राह बता देती है। युद्ध में कुसुमकुमारी जीत कर भी बालेसिह के हाथ में पड जाती है पर रनवीरसिंह उसे छुड़ा लेता है।

रनवीरसिंह मध्यकालीन वीर नायक का और बालेसिंह खलनायक का प्रतिनिधि है। रनवीरसिंह के मत से "क्षत्रियों के लिए लड़ाई का नाम ही ताकत और हौसला बढाने वाला मन्त्र है।" वह क्षत्रियोचित नैतिकता का पालन करने मे अद्वितीय है। कुसुमकुमारी और कालिन्दी प्रेम के आवेश मे नैतिकता को भूल जाती है। कालिन्दी नारी-हृदय की दुर्बलता की प्रतीक बन कर अधिक मानवीय और सजीव हो उठती है। उपन्यासकार ने इस रूपवती युवती को कुरूप बनाकर मृत्यु-दण्ड दिया है, जो उसके साहित्यिक न्याय का निष्ठुर उदाहरण है। उसका कौशल इसमे है कि नायक के व्यक्तित्व के सामने अन्य पात्र बौने नही बन सके।

वातावरण, वार्तालाप, वर्णन सभी कथावस्तु के अनुकूल है। पालकी, घोड़े, किले, सुरग, महल, बाग आदि सामन्ती सभ्यता के परिचायक हैं। स्थानो के नाम ऐतिहासिक सम्बन्ध के कारण अतीत का स्मरण दिलाते है। पाठकों के सामने मध्यकाल के वातावरण का रेखाचित्र उभर आता है। वार्तालाप ओजपूर्ण और पात्रोचित है। वर्णन-शैली मे सरलता होते हुए भी कही-कही सुन्दरता है। कालिन्दी के रूप का चित्रण इस प्रकार किया गया है :

यह औरत बला की खूबसूरत थी, इसके हर एक अंग मानो साँचे मे ढले थे, इसकी बड़ी-बड़ी आँखो से रस ढला पडता था, इसके गालो पर गुलाब के फूल की सी रंगत थी ....

'काजर की कोठड़ी' (१९०२) मे खत्रीजी ने जमीदार और वेश्या के जीवन पर प्रकाश डालकर समाज की गम्भीर समस्या और उसका समाधान प्रस्तुत किया। धन के लिए शहर मे वेश्या अपनी मुस्कान और गाँव मे

जमीदार अपना ईमान बेचते है, इस सत्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति उपन्यास में हुई है। जमीदार लालसिह अपनी इकलोती लडकी सरला की शादी हरनन्दन सिह से ठीक करते है और इस आशय का वसीयतनामा लिखते हैं कि यदि सरला किसी दूसरे व्यक्ति से शादी करेगी तो जायदाद का आधा हिस्सा उसके पति को और आधा उसके चचेरे भाइयो को मिलेगा। सरला का चचेरा भाई पारसनाथ उसका विवाह अपने मित्र से कराकर कुल सम्पत्ति का स्वामी बनना चाहता है। जिस दिन सरला की शादी हरनन्दन से होने वाली थी उसी दिन उसे गायब करवाकर एक अँधेरे कमरे मे बन्दिनी बनाकर रखा जाता है। पारसनाथ के इस षडयन्त्र मे बाँदी नामकी एक वेश्या का भी हाथ है जो हरनन्दन के विवाह की रात मे नाचने-गाने के लिए आई थी। इस षडयन्त्र का उत्तर षडयन्त्र से बडी चतुरता के साथ दिया जाता है। जब पारसनाथ के एक साथी के साथ सरला की शादी हो जाती है तब इस रहस्य पर प्रकाश डाला जाता है कि वर के वेश मे आने वाला पारसनाथ का साथी नही बल्कि हरनन्दन था।

वर-वधू को घर विदा कर और पारसनाथ तथा उसके सहयोगियो को जेल भेजकर उपन्यासकार ने कथानक को एक अनोखा मोड दिया है और अपने इस कथन को सार्थक बनाया है कि "जैसा मुँह वैसी थपेड।" घटनाएँ रहस्य और रोमांच से भरी हुई हैं। कथानक काफी पेचीदा है। पाठको के मन में कौतूहल बनाए रखने के लिए दूसरे बयान मे सरला गायब कर दी जाती है और फिर आठवे बयान मे उसे सामने लाया जाता है।

उपन्यास के उद्देश्य और चरित्र मे बडे कौशल से सामजस्य उपस्थित किया गया है। जमींदारो और वेश्याओ की धूर्तता का समान रूप से पर्दाफाश किया गया है। लालसिह क्रूर और क्रोधी जमीदार का प्रतिनिधित्व करता है। पारसनाथ इस तथ्य का द्योतक है कि एक जमीदार लोभ मे पड़कर पतन के गर्त मे गिर जाता है। लेखक ने एक जमीदार पात्र के मुँह से ही कहलाया है, 'क्या' "जमींदार लोग कम धूर्त और चालाक तथा फरेबी होते हैं।" वैसे ही, वेश्यायें अपने नाज-नखरे से काम लेती है। पारसनाथ कहता है, "रुपया पैसा तो हाथ-पैर का मैल है।" इसी प्रकार बाँदी कहती है, "मुझे रुपये की लालच नहीं है, मैं तो मुहब्बत की भूखी हूँ।" वास्तव में उसका प्रेम उसके आँसू के समान ही बनावटी है। वह पान लगा रही थी कि पारसनाथ के आने की खबर मिली। बस, वह झट "पानदान को किनारे कर एक बारीक

चादर से मुँह लपेट सो रही।" पारस उसके पास आकर उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

बाँदी। (लेटे ही लेटे) कौन है ?

पारस०। तुम्हारा एक ताबेदार

बाँदी। (उठकर) वाह वाह ! मैं तो तुम्हारा ही इन्तजार कर रही थी।

पात्रो के मानसिक भाव के साथ ही उनके बाह्य रूप का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। हरिहरसिंह का यह चित्रण रेखाचित्र की कला का उत्कृष्ट निदर्शन है .

सवार की अवस्था लगभग चालीस वर्ष की होगी, रग काला, हाथ-पैर मजबूत और कसरती जान पडते थे, बाल स्याह छोटे-छोटे मगर घूँघर वाले थे, सर बहुत बडा और वनिस्वत आगे-पीछे की तरफ से बहुत चौडा था, भौंवे घनी और दोनो मिली हुई, आँखे छोटी-छोटी और भीतर की तरफ कुछ घुसी हुई, होठ मोटे और दाँतो की पक्ति बराबर न थी, मूँछ के बाल घने और ऊपर की तरफ चढे हुए थे।

पात्र पहचानी हुई परिस्थितियो मे अपनी मानवीय भावनाओ के साथ साँस लेते हैं। स्थानों के नाम तक परिचित हैं। आरम्भ में ही लेखक अपने प्रिय पाठकों के साथ दरभगे के पास एक गाँव के सड़क पर सैर करने के लिए निकल पडता है। धनखेतो मे बरसात की साँझ उतर रही है :

बर्सात का मौसम, मजेदार वदली छाई हुई, सडको के दोनो तरफ दूर-दूर तक हरे-भरे धान के खेत दिखाई दे रहे हैं, पेड़ो पर से पपीहे की आवाज आ रही है‥ ‧ ‥‥।

चौथे बयान में लेखक दरभगे के उस बाजार मे लौट आता है जहाँ बाँदी का तिमजिला मकान है। वह इस मकान का पूरा ब्योरा एक यथार्थ-वादी की कलम से देता है। उसे मनुष्य की दुर्बलता से लाभ उठाकर कुरुचि का पोषण नहीं करना है। वह चुम्बन-आलिंगन का दृश्य दिखाये बिना वेश्याओं के प्रति घृणा और उपेक्षा उत्पन्न करने मे सफल हुआ है। उसने सुधार के नाम पर वेश्यालय का चित्राकर्षक वर्णन नही किया है। वह ताले की सूराख से काजर की कोठरी की झाँकी दिखाकर उस कलात्मक तटस्थता

का परिचय देता है जिस पर हेनरी जेम्स बहुत जोर देता था।[12] एक निर्दोष, सुन्दर युवती को बन्दिनी के वेश मे देखकर उसकी सहानुभूति इन मार्मिक पक्तियो मे फूट पडी है :

सरला मकान की एक अँधेरी मगर हवादार कोठरी मे अपनी बद-किस्मती के दिनो को नाजुक उँगलियो की पोरो पर गिनती और बड़ी-बडी उम्मीदो को ठडी साँसो के झोको से उडाती हुई जमाना बिता रही थी।

खत्रीजी की 'काजर की कोठरी' प्रेमचन्द के 'सेवा सदन' की भूमिका है। दोनो का सम्बन्ध वेश्याओ से है और दोनो मे उन्हे कोठे पर ही नहीं महफिल मे भी दिखाया गया है। 'काजर की कोठरी' मे कल्याणसिंह के यहाँ महफिल जमती है और खत्रीजी कहते है, "जब वेश्या महफिल मे आ खडी होगी, उस समय नखरे के साथ अधखुली आँखो से जिधर देखेंगी उधर ही चौपट करेंगी।" इसी प्रकार, 'सेवासदन' मे पर्द्मसिंह की बैठक मे "भोली की दृष्टि जिस पर पड जाती थी वह आनन्द से गद्-गद् हो जाता था।"

दोनो मे वेश्याओं का किसी के साथ शारीरिक सम्बन्ध दिखाया नही गया है। बादी की तुलना भोली के साथ ही की जा सकती है। सुमन तो वेश्या बन कर भी वेश्या नही बनी। बाँदी के सामने केवल धन सिर झुकाता है, भोली के सामने धन और धर्म दोनो सिर झुकाते है। प्रेमचन्द की भाँति खत्रीजी ने भी वेश्या-समस्या पर विचार किया है। वे एक वाक्य मे वेश्याओ की बुराई और उपयोगिता का संकेत देते है, "इस दुनिया मे जितनी बातें ऐब मे गिनी जाती हैं उन सबो मे निपुणता भी इन्हीं की कृपा का फल होता है।' 'सेवासदन' मे नगरपालिका का कोई सदस्य वेश्याओ को 'काली नागिन' मानता है, कोई मकान मे नाली के समान समाज के लिए उन्हे आवश्यक समझता है। दोनो उपन्यासकार स्वय कह कर, पात्रों से कहलाकर और वेश्या जीवन की झलक दिखाकर अपने सुधारवादी लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। खत्रीजी ने व्यंग्य किया था कि वेश्यायें "लक्ष्मी के कृपा पात्रों को तो लक्ष्मी का वाहन ही बनाकर दम लेती हैं।" सो, सुमन सेठ चम्मनलाल को बेवकूफ बनाकर छोड़ती है। सेठ जी हाँफते आये, "कुरसी पर बैठे, लेकिन तीन टाँग की कुरसी उलट गई, सेठ जी का सिर नीचे हुआ पैर ऊपर और वह एक कपड़े की गाठ के समान औंधे मुँह लेट गये।"

वर्ण्य विषय के अतिरिक्त चरित्र-चित्रण मे भी साम्य दीख पड़ता है।

सदन और शान्ता हरनन्दन तथा सरला की परम्परा मे हैं। हरनन्दन के समान ही जमीदार का लडका सदन-सुडौल, सुन्दर और कसरती जवान हैं। दोनो अपनी-अपनी मगेतर को सम्पूर्ण भावना से प्यार करते हैं। सरला और शान्ता एक-सी कुँआरी विधवाएँ है। सरला की शादी के दिन उसे गायब कर दिया गया। शान्ता के दरवाजे से वर-सहित बारात लौट आई। पारसनाथ सरला को दूसरे व्यक्ति के साथ विवाह करने को कहना है तो वह जवाब देती है—"क्या हम लोगो मे किसी औरत का दूसरा ब्याह भी होता है। मैं तो दिल से समझे हुई हूँ कि मेरी शादी हो चुकी।" शान्ता के लिए दूसरे वर की खोज होती है तो प्रेमचन्द कहते हैं, 'ससार चाहे जो कुछ समझता हो पर वह अपने को विवाहिता ही समझती थी।'

खत्रीजी की शैली कही-कही प्रेमचन्द की कलम की याद दिलाती है: कोई तम्बाकू पी रहा था, कोई गाँजा मल रहा था, कोई इस बात की शेखी बहार रहा था कि फलाने मुजरे मे हमने वह बजाया कि बडे-बड़े सफरदाओ की मिर्गी आ गई।

खत्रीजी की दो अपूर्ण कृतियाँ 'वीरेन्द्रकुमार' (१८९५) और 'गुप्त गोदना' (१९१०) अपने ढग की अच्छी हैं। 'वीरेन्द्रकुमार' मे एक गुलाम की काली करतूतो का वर्णन किया है। राज्य और सुन्दरी के लिए मनुष्य कितना पतित हो सकता है, इसका आभास इस उपन्यास में मिलता है। कथा मे काफी रहस्यमयता है, जो रोमास की मुख्य विशेषता है। रहस्य बडे कौशल से गुप्त रखा जाता है और धीरे-धीरे इस ढग से प्रकट किया जाता है कि उत्सुकता बनी रहती है। अनेक पात्रो द्वारा बीती हुई घटनाओं पर प्रकाश डलवाकर लेखक उन बातो को गुप्त रखने मे सफल हुआ है जिनकी जानकारी वह पाठको को देना नही चाहता था। कथावस्तु के अनुरूप ही वातावरण रहस्य और रोमांच से पूर्ण है। कुछ दृश्य बडे निराले हैं, जैसे तहखाने मे मोमी शमदान के सामने कटोरा भरा खून, सिर पर घड़ा औंधकर जल में आदमी बहना। सुरंग, तहखाना, नकाब आदि वस्तुएँ उपन्यास को मध्ययुगीन पृष्ठभूमि प्रदान करती हैं परन्तु घटनाकाल विशिष्ट नही है।

'गुप्तगोदना' भी लेखक की रोमानी तबियत की देन है, यद्यपि इसकी रचना मे उसने इतिहास-ग्रंथो से सहायता ली है। इसका सम्बन्ध शाहजहाँ के शासन के उस काल से है जब शाहजादों में राजगद्दी के लिए सघर्ष हुआ था। इसे ऐतिहासिक उपन्यास न कहकर ऐतिहासिक रोमांस कहना उचित

होगा। इसमे प्रेम और साहसिकता का रमणीय रूप उभर कर आया है। ऐतिहासिक घटना की अपेक्षा ऐयारी और जासूसी को विशेष महत्व दिया गया है। कथानक मे कल्पना का पुट होते हुए भी ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण कुछ अश तक सफलतापूर्वक किया गया है। वर्णन मे सजीवता और शैली मे सुन्दरता है। 'चन्द्रकाता' की तुलना मे भाषा-शैली परिमार्जित है, जो स्वाभाविक विकास का सूचक है। पहले हिस्से के पहले बयान का यह लच्छेदार वाक्य देखिए :

बरसात मे उमग के साथ बढ़कर दोनो किनारो पर लगे हुए सायेदार पेड़ो को गिराकर भी सतोष न पाने वाली पहाड़ी नदी आज किसी की जुदाई मे दुबली भई हुई बड़े-बडे ढोको से सर टकराती शिथिलता के कारण डगमगा कर चलती हुई भी प्रेमियो के हृदय को प्रफुल्लित कर रही है।

मूल्यांकन

देवकीनन्दन खत्री विशुद्ध उपन्यासकार हैं। उन्होने 'लोगो के मनो-विनोद के लिए' लिखा। उनकी रचनाओ की मूल विशेषता उनकी मनोरजकता है और मनोरजकता का मूल कारण कहानी-कला है। कहानी कहना उनका स्वभाव है जैसे गीत गाना पक्षी का स्वभाव है। वे तटस्थ रहते हैं और उनकी कहानी स्वयं कहती जाती है। यह वस्तुनिष्ठता प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो प्रणा-लियों मे रहती है। वे गल्प को तथ्य और तथ्य को गल्प के रूप मे प्रस्तुत करते हैं। 'भूतनाथ' के प्रारम्भ में भूतनाथ से यह कहलाकर उन्होने कलात्मक झूठ बोलने का उदाहरण दिया है.

आज मै श्रीमान महाराज सुरेन्द्रसिंह जी की आज्ञानुसार अपनी जीवनी लिखने बैठा हूँ परन्तु मैं इस जीवनी को वास्तव में जीवनी के ढग और नियम पर न लिखकर उपन्यास के ढग पर लिखूँगा।

उनका उपन्यास पढना क्या है, अदृश्य कथावाचक की बाते सुनना है। पात्रो के सवाद या आत्मकथा के माध्यम से कहानी सुनाने की विधि उन्हे बहुत प्रिय है। इससे वे बातें प्रकट नही होती जिन्हे वे पाठको से छिपाकर रखना चाहते हैं किन्तु कथानक का स्वाभाविक विकास होता जाता है। वे रहस्य को गुप्त रखने और खोलने मे अत्यत सिद्धहस्त हैं। वे रह-रह कर ऐसी रोचक घटनाओ और परिस्थितियो की उद्भावना करते है जो पाठक की आशा के विपरीत होती हैं। आदि से अन्त तक उनका मन अनुदर्शन

और प्रत्याशा मे उलझा रहता है। उस पर ऐसा जादू डाल दिया जाता है कि कहानी से उसका ध्यान हटता नहीं है।

उनकी सरल, आडबरहीन भाषा उनका कहानी के सर्वथा उपयुक्त है। उसमे प्रवाह, स्वच्छता और अम्लानता है। उसकी शक्ति उसकी स्वाभाविकता मे निहित है। उस पर उनका असाधारण अधिकार है। उनका एक भी वाक्य कथारस मे व्याघात नही डालता। उनकी शैली की मुख्य विशेपता यह है कि वह कथ्य मे पाठको को तन्मय कर देती है। वे विवरण उसी अश तक देते है जिस अंश तक भ्रम की सृष्टि के लिए आवश्यक होता है। 'चन्द्रकाता' मे कलावती की नीद-भरी सुन्दरता का चित्रण इस तरह किया गया है :

तमाम बदन शबनमी से ढँका था मगर खूबसूरत चेहरा खुला हुआ था, करवट के सबब से कुछ हिस्सा मुँह का नीचे मखमली तकिए पर होने से छिपा हुआ था। गोरा रग, गालो पर सुर्खी, जिस पर एक लट खुल कर आ पडी थी जो बहुत ही भली मालूम होती थी। आँख के पास शायद किसी जख्म का दाग हो मगर वह भी भला मालूम होता था।

उनके कथन मे नाटकीय प्रत्यक्षता और वर्तमानता रहती है। 'भूतनाथ' के पाँचवे हिस्से का यह दृश्य दर्शनीय है :

दोपहर का समय है, घर के सरदार लोग औरत मर्द सभी कोई खा पीकर अपने अपने कमरे मे आराम कर रहे हैं परन्तु वह बेचारी अपनी मलिन चारपाई पर बैठी हुई तलहत्थी पर गाल रक्खे इन्ही सब चिन्ताओं मे निमग्न है, तनोबदन की कुछ भी खबर नही है, कुछ भी नही मालूम कि मेरे पास कौन खड़ा है और क्या कह रहा है परन्तु उसकी नेक लौंडी कुछ देर से उसके पास खड़ी है और कुछ कहने की इच्छा से उसे तीन बार संबोधन कर चुकी है। कुछ देर बाद उसने आप ही आप एक लम्बी साँस लेकर सर उठाया और दर्वाजे की तरफ देखने की इच्छा की। उस समय उनकी निगाह लौंडी पर पडी और उसने ताज्जुब के साथ उससे पूछा, 'वेला, तू कब से यहाँ खड़ी है ?'

वे उपमाओ और उत्प्रेक्षाओं का उपयोग करते है तो दृश्य एवं पात्र को सजीव बनाने के लिए, न कि अलकार की छटा दिखाने के लिए।

बडे-बड़े पत्थर के ढोके मस्त हाथी की तरह दिखाई देते हैं ।[13]

...　　...　　...　　...

पहाड की चोटी पर लालिमा की सुनहरी लकीर इस प्रकार की खिच गई है मानो सूर्य भगवान ने इस काले पहाड को सोने का यज्ञोपवीत पहिरा दिया है ।[14]

.　　...　　..　　..

सुबह के सुहावने समय मे उसका चेहरा दिन की तरह दमक रहा था ।[15]

..　　...　　...　　...

उनकी आँखें डबडबा आईं और गरम-गरम आंसू उनके गुलाबी गालो पर मोतियों की तरह लुढकने लगे ।[16]

लोक-साहित्य के लिए खत्रीजी ने लोक-भाषा का प्रयोग करना उचित समझा । उनका कहना था कि 'किसी दार्शनिक ग्रन्थ वा पत्र की भाषा के लिए यदि किसी बडे कोष को टटोलना पड़े तो कुछ परवाह नही परन्तु साधारण विषयो के लिए भी कोष की खोज करनी पडे तो निस्सन्देह दोष की बात है ।[17] उनकी सफलता और लोकप्रियता का रहस्य उनकी निर्दोष भाषा है । आलोचको ने उसे 'देहाती'[18] और 'भद्दी'[19] कहकर अपनी सुरुचि का नही अपितु अनुदारता का परिचय दिया है । उनकी भाषा-शैली मे क्रमिक किन्तु सूक्ष्म परिवर्तन होता गया और स्वाभाविकता के साथ सुन्दरता का सामावेश हुआ । 'चन्द्रकान्ता संतति' मे भाव के अनुकूल भाषा मे आवेश या गभीर्य है । जहां कुछ विचार व्यक्त किए गए है वहाँ वाक्य लम्बे और शब्द सस्कृत-निष्ठ हो गए हैं, फिर भी खत्रीजी पहले कथाकार हैं तब शैलीकार ।

उन्हे कहानी कहने के अलावा कुछ और कहना था । उन्होने उपन्यास को मनोरजन का साहित्य मानकर ग्रहण किया और विचारो के प्रचार का साधन बनाया ।[20] फिर भी वे प्रचारक न होकर कलाकार बने रहे और उनकी रचनाएँ राजनीति, इतिहास, दर्शन आदि का अग नही बनी । उनके विचार उनकी कथा के अतिम मोड़ और पात्रो के आचार, व्यवहार एव वार्तालाप मे व्यजित हैं । उन्होंने साहित्यिक न्याय भी स्वय न कर राजा सुरेन्द्रसिंह के दरबार मे करवाया है, यद्यपि राजा सुरेन्द्रसिंह का निर्णय उनका ही निर्णय है । सज्जन

को पुरस्कार और दुर्जन को दण्ड देना वे आवश्यक समझते हैं। उनके अनुसार "बदो के साथ नेकी करना वैसा ही है जैसा नेको के साथ बदी करना।"[21] वे सत्य-असत्य के सघर्ष मे सत्य की जय और असत्य का विनास दिखाते है। कर्मफलवाद मे विश्वास रखते हुए भी उन्होने रूढिगन और सकीर्ण नैतिकना का समर्थन नही किया है। वे महसूस करते है कि समार मे सदा नेकी का फल अच्छा और बदी का फल बुरा नही होता। उन्होने 'चन्द्रकाता मतात' के पहले बयान मे इन्द्रदेव से कहलाया है, "कभी-कभी ऐसा भी होना है कि अच्छी राह चलने वाले तथा नेक लोग भी दुख के कीचड मे फँम जाते है और दुर्जन तथा दुष्ट लोग आनन्द के साथ दिन काटते दिखाई देते है। इसे लोग ग्रहदशा का कारण कहते हैं मगर नही, इसके सिवाय कोई और बात भी जरूर है। परमात्मा की दी हुई बुद्धि और विचार-शक्ति का अनादर करने वाले ही प्राय: सकट मे पड़कर तरह-तरह का दुख भोगते हैं।" उनके अनुसार मनुष्य की विचार-बुद्धि उसे पशु से अलग कर मनुष्य बनाती है।

वे नीतिबादी से अधिक मानववादी है। उनके उपन्यास की महानता उनके मानववाद पर निर्भर है। उनके पात्र अपनी नैतिकता या अनैतिकता के कारण नही बल्कि अपनी मानवीय सबलता या दुर्बलता के कारण प्रभावशाली हैं। उनकी नैतिकता का आधार वे पदार्थ हैं जो मानव-जीवन को जीने योग्य बनाते हैं। वे धन को घृणा की दृष्टि से देखते हैं क्योकि वह व्यक्ति को अनीति की राह पर ले जाता है और समाज मे सघर्ष उत्पन्न करता है। रुपये के बारे में उनका कहना है कि 'पाप पुण्य के विचार को तो यह इस तरह उड़ा देता है जैसे गन्धक का धुँआ कनेर पुष्प के लाल रग को।"[22] उनके कुछ पात्र (दरोगा, नानक, मनोरमा, जौहर) रुपये के पुजारी होने के कारण उनकी सहानुभूति प्राप्त नही कर सके। वे मानवीय संबध के पवित्र एव मधुर रूप का उद्‌घाटन कर मार्मिक स्थलो की सृष्टि करते है। पति-पत्नी, साली-बहनोई, देवरानी-जेठानी, स्वामी-सेवक आदि का सम्बन्ध मर्यादा के घेरे में प्रभावशाली ढग से दिखाना उनकी निजी विशेषता है। 'भूतनाथ' मे जमना-सरस्वती का पति-प्रेम, प्रभाकर सिंह का साली के प्रति स्नेहभाव और उनके साथ साली का निर्दोष परिहास भारतीय परम्परा के अनुरूप ही है। युगों से जिस आचार-व्यवहार का पोषण होता आया है उसकी खत्रीजी अवहेलना नही कर सकते थे।

वे मानव-मूल्यो के उपासक हैं। उन्होने अपने प्रमुख पात्रो के जीवन

मे अच्छी तरह दिखा दिया है कि दया, धर्म, क्षमा, धैर्य, साहस आदि मनुष्य को मनुष्य बनाए हुए है। उन्हे यथार्थवादी की भांति जीवन मे आस्था और आदर्शवादी की भाँति मानवता मे विश्वास है। वे बुरे पात्रो का भी हृदय-परिवर्तन करा देते है। उनके ऐयार दुष्ट राजाओ को छोडकर प्रजापालक राजाओ के पक्ष मे आ जाते है। भूतनाथ के पतन मे भी एक गरिमा है। बुदफिरोश का डटकर सामना करने वाली चम्पा ('चन्द्रकाता'), पर पुरुष के स्पर्श को भी पाप समझकर उसका प्रणय-निवेदन ठुकराने वाली किशोरी ('चन्द्रकाता सतति'), तथा सतीत्व की रक्षा के लिए 'जान लेने और देने पर तैयार' इन्दुमती ('भूतनाथ') पीडित किन्तु अपराजित मानवता की प्रतीक हैं। इन सकारात्मक स्त्री-पात्रो के समान उनके अनेक पात्र उनके आदर्शों के मूर्त रूप बनकर चेतना मे छा जाते हैं और प्रेरणा प्रदान करते है। प्रेम, द्वेष आदि चिरन्तन मानवीय भाव तो उनके प्रिय विषय ही है। वे प्रेम-चर्चा को अश्लीलता के स्तर पर जाने नही देते। जहाँ दूसरे लेखक विस्तार मे जाते है वहाँ वे सकेत या सयम से काम लेते हैं। उनके उपन्यास मे वासना की मौत हो गई है। वे मनुष्य को पशुत्व और देवत्व से समन्वित मानकर उसके देवत्व को प्रश्रय देते। प्रेमचन्द के विचार से साहित्य मे जो गरिमा होनी चाहिए वह उनके उपन्यास में है :

> साहित्य को मनुष्य के देवत्व को जाग्रत करना चाहिए अर्थात् कोमल और उच्च भावनाओं को पुष्ट करना चाहिए। उसकी महत्ता इसमे है कि उसमें आदर्श चरित्र हो। Positive Character से प्रेरणा मिलती है।[23]

कभी-कभी लोकप्रिय लेखक के साहित्यिक गुण की ओर ध्यान नही जाता है। आचार्य शुक्ल जैसे मर्मी आलोचक ने उनके लिए साहित्य का द्वार बन्द कर किशोरीलाल गोस्वामी के लिए खोल दिया क्योकि उनके उपन्यास "घटना-प्रधान कथानक या किस्से है जिनमे जीवन के विविध पक्षो के चित्रण का कोई प्रयत्न नही"[24] है। शुक्ल जी का यह कथन सत्य होते हुए भी एक पक्षीय है। खत्रीजी की रचनात्मक कला, नैतिक चेतना और मानववादी दृष्टि उनकी रचनाओं को उच्च साहित्यिक स्तर पर प्रतिष्ठित करती है। उनमे महान उपन्यासकार की तीन उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं : विन्यास-कौशल, कहानी-कला और हास्य-बोध। रूढ़िवादी आलोचकों को उनकी रचनाओं में

सामयिक समस्या और ललित भाषा का अभाव बहुत खटकता है। पर कला और लोकरुचि की दृष्टि से यह एक विभूति है। यदि उनमे सामयिक समस्या रहती तो शाश्वत आकर्षण नही रहता। उपन्यास गद्यकाव्य नही है। वह जैसी भाषा की अपेक्षा रखता है खत्रीजी ने वैसी भाषा का व्यवहार किया है। उनकी शैली कथा और पात्रो की ओर से पाठको का ध्यान हटाती नहीं है बल्कि शब्दो का ऐसा ससार बसाती है कि वे उसमे खो जाते हैं। उनके उपन्यास जीवित है, स्थायी साहित्य के अग है। उनकी मृत्यु उस भाषा के साथ ही हो सकती है जिसमे वे लिखे गए हैं।

उनकी प्रतिभा उपन्यास की प्रतिभा है। वे विश्व के यशस्वी उपन्यासकारो की पक्ति मे स्थान पाने योग्य है। वे कालिन्स के समान कथानक के गठन मे कुशल है। उनके ऐयार ड्यूमा के नायक के समान शूर और साहसी हैं। वे रैडक्लिफ की भाँति वातावरण का निर्माण करते हैं। विविध परिस्थितियों की परिकल्पना करने मे वे डिकेन्स से टक्कर ले सकते है। कहानी-कला मे उनके सामने डिफो को ही खड़ा किया जा सकता है।

उनके साहित्यिक महत्व से उनका ऐतिहासिक महत्व बढकर है। वे उन गिने-चुने लेखको मे हैं जो उपन्यास के साथ ही उपन्यासकार का निर्माण करते हैं। उन्होंने अपने उपन्यास को लोककथा बना दिया और लोक-मानस में उपन्यास पढने-लिखने की अमिट पिपासा भर दी। फलत. कुछ लोग शौक से, कुछ माँग पूरी करने के लिए उपन्यास की रचना करने लगे। उनके व्यापक प्रभाव का आकलन करना प्रायः तीन दर्शको के गौण एव मुख्य लेखको के नामो का उल्लेख करना है। वे युग-प्रवर्तक थे। 'चन्द्रकाता' से लेकर 'सेवासदन' तक हिन्दी-उपन्यास का खत्री-युग है। तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास की परम्परा उनके उपन्यास की परम्परा है। उनकी पुस्तक के नाम तक का अनुकरण किया गया। बालमुकुद खत्री की 'सूर्यकाता', नन्दलाल वर्मा की 'स्वर्णकांता', गगाप्रसाद गुप्त की 'कृष्णकाता' और 'कृष्णकाता सतति', शंभुप्रसाद उपाध्याय की 'प्रेमकाता' और 'प्रेमकाता सतति' इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास-लेखक तो उनसे सीधी तरह प्रभावित थे ही, शायद ही कोई ऐसी धारा हो जो उनके प्रभाव से अछूती रही हो। ब्रजनन्दन सहाय की 'आरण्यबाला' में भी अद्भुत रस का पुट है। खत्रीजी की भाषा-शैली ने भी लेखको के एक वर्ग को आकृष्ट किया। बलदेवप्रसाद मिश्र ने उनकी शैली के आदर्श पर 'अनारकली' लिख कर उन्हे

समर्पित की और उसकी भूमिका मे लिखा कि "आपकी लेख प्रणाली ने गद्य-साहित्य का मुख एक नये मार्ग की ओर मोड दिया है। आजकल तो बहुत से लेखक-गण आपकी भाषा-शैली का अनुकरण करने लगे हैं।" खत्रीजी ने प्रत्यक्ष और परोक्ष अंशदान से हिन्दी-उपन्यास और हिन्दी की श्री-वृद्धि की। यदि लोकप्रियता महानता की कसौटी हो तो उनसे अधिक महान उपन्यासकार हिन्दी तो क्या भारतीय भाषाओ मे अब तक उत्पन्न नहीं हुआ है।

टिप्पणियां

१– सूर्यनाथ तकरू · "स्व० देवकीनन्दन खत्री", विशाल भारत, मई १९३४, पृ० ५८३

२– "ऐयार का यही काम है कि अपने मालिक के लिए छिपे हुए मामले का पता लगावे, दुष्टो चोरों और खूनियो का पता लगावे, राजाओं और रईसो को जिनमे बहुत से आदमियो का खून होना सभव है अपनी कारीगरी से रोके और सहज ही में मामले को तै कर डाले।"

—'भूतनाथ', ६।६

३– "जब तक समझ मे न आवे तब तक उसे चाहे कोई जादू कहे या करामात कहे मगर हम लोग सिवाय कारीगरी के कुछ भी नही कह सकते और पता लगाने तथा भेद मालूम होने पर यह बात सिद्ध हो जाती है।"

—'चन्द्रकांता सतति', २१।१७

४– 'चन्द्रकाता संतति', २२।१३

५– 'चन्द्रकाता सतति', १।८

६– 'चन्द्रकाता', २।६

७– 'भूतनाथ', ५।१०

८– वही ५।१२

९– 'चन्द्रकांता संतति' का अन्त

१०–'चन्द्रकाता सतति', १५।१०

११–'भूतनाथ', १।१२

12– "The role of the novelist in the house of fiction is, if not that of the peeper through keyholes, at least that of the watcher at the window.

—Henry James : The Art of the Novel, p.46

१३–'चन्द्रकाता', १।६

१४–'भूतनाथ', ६।११

१५–'चन्द्रकाता सतति', १८।५

१६–'भूतनाथ', ३।५

१७–'चन्द्रकाता सतति' का अन्त

१८–डा० श्यामसुन्दर दास : हिन्दी-साहित्य, पृ० ३२४

१९–'समालोचक', नवम्बर १९०३, पृ० ७४

२०—चन्द्रकाता के आरम्भ के समय मुझे यह विश्वास न था कि उसका इतना अधिक प्रचार होगा, यह मनोविनोद के लिए लिखी गई थी पर पीछे लोगो का अनुराग देखकर मेरा भी अनुराग हो गया और मैंने अपने उन विचारो को जिनको मैं अभी तक प्रकाश नही कर सका था फैलाने के लिए इस पुस्तक को द्वार बनाया और सरल भाषा में उन्हीं मामूली बातो को लिखा जिसमे मैं उस होनहार मण्डली का प्रिय पात्र बन जाऊँ जिनके हाथ में भारत का भविष्य सौंप कर हमे इस असार ससार से विदा होना है।

—'चन्द्रकाता सतति' का अन्त

२१—'चन्द्रकांता संतति', २३।५

२२—'चन्द्रकाता सतति', १३।७

२३—'साहित्य का उद्देश्य'

२४—'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', पृ० ४९९

८

जासूसी उपन्यास के पिता

(१८६६–१९४६)

जीवन और रचनाएँ

जासूसी उपन्यास के पिता गोपालराम गहमरी का जीवन संघर्ष और सफलता की एक लम्बी कहानी है। प्रचार से दूर और प्रसिद्धि से उदासीन रहकर उन्होंने अर्ध शताब्दी तक हिन्दी-साहित्य की साधना की। उनकी आँखों ने हिन्दी-उपन्यास की तीन पीढ़ियाँ देखीं। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का आदर किये बिना उनके प्रति न्याय नहीं किया जा सकता।

एक मध्यवित्त परिवार में जन्म लेकर वे छह महीने की अवस्था में ही पिता के स्नेह से वंचित हो गये। मिडिल पास करने के बाद उन्हे शिक्षक का पेशा अपनाना पड़ा। अध्यापन के साथ अध्ययन भी जारी रहा। उनके साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश १८९० से हुआ, जब वे बम्बई के सेठ खेमराज कृष्णदास के पास कलम-मजदूर बनकर गये। बम्बई, कालाकाकर और मांडला मे हिन्दी के कई प्रसिद्ध पत्रों का सम्पादन करने के बाद उन्होंने अपनी जन्म-भूमि लौटकर, मई, १९०० से मासिक 'जासूस' निकालना आरम्भ किया। इस एक दशक में उन्होंने जो उपन्यास लिखे उनमें अधिकांश वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुए। उनकी याद करते हुए उन्होंने लिखा था :

गार्हस्थ उपन्यास मैंने दस बारह लिखे थे, जिनको वेंकटेश्वर प्रेस की सेवा के समय की रचना कहकर मैंने उक्त सेठ साहब को सौंप दिया। उन्होंने

उन्हे छापा है और अब तक छाप रहे हैं।[1]

यह एक अद्‌भुत बात है कि उन्होने प्रवास मे गार्हस्थ उपन्यास लिखे और घर पर जासूसी। उन्होने अपने नाम से अपने गाँव गहमर के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया है। वे ग्रामवासियो को जानते-पहचानते थे। ग्रामीण जीवन से उनका सम्बन्ध था। अतः उनके कुछ उपन्यासो मे स्थानीय रग है। वे अपने को "गवार गोपाल" मानते थे। उनके समान उनके प्रमुख पात्रो मे ग्राम्य सरलता है। विश्व के लोकप्रिय उपन्यासकारो की भाँति उन्हे अक्षय तरुणाई मिली थी। कहते हैं, विक्टर ह्यूगो बिना छिलका छुड़ाये नारगी चबा जाता था। गहमरीजी बुढापे मे भी हर रोज बेनिया बाग से दशाश्वमेध घाट पैदल आते थे। उनकी जवानी उनकी रचना, खासकर भाषा-शैली मे लिपटी हुई है।

वे गरीबी की बजह ऊँची शिक्षा प्राप्त नही कर सके पर बगला, उर्दू और अग्रेजी के अच्छे जानकार तथा खड़ीबोली हिन्दी के भक्त एव सेवक थे। वे हिन्दी-जगत मे कवि, निबन्धकार और नाटककार के रूप मे भी आये। उन्होने मासिक 'भाषा भूषण' (१ अगस्त १८९३) की सम्पादकीय टिप्पणी मे लिखा था :

सोचे थे कि हम महीने के महीने आवेंगे......कविता के फव्वारे छोड सूखे हिन्दी रसिको को सचेत कर उठावेंगे, साहित्यवाटिका मे नवीन नाटक और उपन्यासो का पौधा लगाकर उसकी छवि बढावेगे।

वे हिन्दी-साहित्य का सर्वागीण विकास चाहते थे। उनकी प्रतिभा में तेज कम, चमक अधिक थी, जो जासूसी उपन्यास मे विशेष रूप से निखरी। प्रतिभा का एक लक्षण यह होता है कि वह अपने लिए एक क्षेत्र खोजकर या चुनकर उसे घर बना लेती है।

जासूसी कथासाहित्य उनकी प्रतिभा के साथ-साथ उनकी सहज प्रकृति, सूक्ष्म दृष्टि और व्यावहारिक बुद्धि की देन है। वे स्वय जन्मजात जासूस थे। उन्होने १८९४ में माडला से 'गुप्तकथा' नामक जासूसी कहानियों का मासिक निकाला। शायद उसका स्वागत नही हुआ इसलिए वह शीघ्र बद हो गया। १८९८ में उन्होंने नगेन्द्रनाथ गुप्त के 'हीरार मूल्य शेखर धूली' का अनुवाद किया। पाठको ने इसे खूब पसन्द किया। इससे उत्साहित होकर उन्होंने जासूसी उपन्यास लिखने और तत्सम्बन्धी पत्र निकालने का निश्चय

किया। इस दिशा की ओर मोडने मे उनके जीवन की एक घटना भी सहायक हुई। बम्बई के एक मन्दिर के महन्त की चाल-ढाल देखकर उन्हे यह सन्देह हुआ कि वह धोबी है। बात सही थी, वह धोबी था और किसी की हत्या कर महन्त बन गया था। उन्होने लिखा है :

उस समय सन् १८९८ मे 'हीरे का मोल' का पसन्द किया जाना और बम्बई मे ही महालक्ष्मी के मन्दिर मे एक खूनी धोबी जो महन्त बना बैठा था मेरी प्राइवेट मुखबिरी से पकडा जाना, इन दोनो के प्रभाव से मेरी रुचि जासूसी उपन्यास लिखने मे बढी और तब से कोई १५० छोटे-बडे उपन्यास (जासूसी) लिखे और अनुवाद किये।[2]

जिन डेढ सौ जासूसी उपन्यासों के नाम गिनाये गये हैं उनमे अनेक कहानियाँ हैं। बहुत-सी रचनाएँ बगला और अंग्रेजी मे अनूदित है। किसी मे मूल का उल्लेख है किसी मे नही है। कुछ अनुवाद न होकर अर्ध अनुवाद हैं। फिर, एक ही पुस्तक दो नामो से प्रकाशित हुई है या दो पुस्तके एक नई जिल्द में निकली है। कुछ आलोचको ने गहमरीजी की रचनाओं का उल्लेख करते हुए कहानियो को उपन्यास मान लिया है। कहानियों तथा अनूदित और रूपान्तरित उपन्यासो को छाँट देने पर भी मौलिक उपन्यासो की जो सख्या शेष रहती है वह एक लेखक की सृजन-शक्ति सूचित करने के लिए पर्याप्त है। जिसने इतना दिया उसने उधार लिया था अपहरण ही किया तो आश्चर्य और दुख नही होना चाहिए।

प्रारम्भिक प्रयास

गहमरीजी का पहला उपन्यास 'चतुर चचला' (१८९३) है, जो शायद मौलिक है और जिसका उपनाम 'प्रेम पूरित एक उत्तम उपन्यास' है। इसमे चतुर और चचला की सीधी-सादी प्रेमकहानी है। प्रकृति के रमणीय वातावरण में गंगा-तट पर सहेली के साथ स्नान के लिए राजकुमारी चचला आती है और युवक पथिक के रूप मे चतुर आता है। दोनों एक-दूसरे को देखते हैं, अर्थ-भरी कविता मे बातें करते हैं और हृदय में प्यार की पहली धडकन लिए अलग हो जाते हैं। मन्त्रीकुमार राजकुमारी को बुरी निगाह से देखता है। चतुर उसे मार डालता है। चतुर को उपहार मे चचला मिल जाती है। वीर पुरुष के लिए सुन्दर स्त्री बनी ही है। सुन्दरता राजकुमारी में है लेकिन आकर्षण है उसकी सहेली में, जो प्रगल्भ, निर्भीक और चंचल है। भाषा कहीं

राजकुमारी की तरह भडकीली, कही उसकी सहेली की तरह चपल है। प्रथम प्रयास की सीमा न देखकर सम्भावना देखनी चाहिए। इसमे लेखक के भविष्य का स्पष्ट सकेत है। चतुर जासूसी उपन्यास के अपराधी पात्र को प्रत्याशित करता है।

१८९३ मे प्रकाशित 'हेमप्रभा' भी कोमल प्रेमकथा है। वीर भूपेन्द्र और हेमप्रभा मे प्रथम दर्शन से प्रेम होता है। बलवे मे भूपेन्द्र कैदी होकर अपनी प्रेयसी की याद मे आँसू बहाता है। जूलियाना नाम की एक यूरोपीय बालिका उसके प्रति सहानुभूति दिखाती है और अपने प्रेमी काराध्यक्ष को कहकर उसे मुक्त करवाती है। पाप की पराजय और पुण्य की जय दिखाने के लिए उपन्यास लिखा गया है। इसकी मौलिकता सदग्धि है। 'नये बाबू' (१८९४) विषय और शैली से किसी बगला उपन्यास का रूपान्तर प्रतीत होता है। इसमे विदेशी सभ्यता की नकल करने वाले दो भारतीय युवको का उपहास किया गया है। सुधारवाद के जोश मे विपिन अपने मित्र छेदी के साथ अपनी विधवा बहन का विवाह कराना चाहता है और छेदी उसकी पत्नी पर बलात्कार कर बैठता है। लेखक स्त्री-स्वाधीनता का विरोध और पुराने विचारों का समर्थन करता है। 'सौभद्रा' (१८९६) 'क्षुद्र उपन्यास' है। इसका वर्ण्य विषय भी प्रेम है। प्रकृति की गोद मे पली हुई सौभद्रा मानव-जगत की मोह-माया मे बँध जाती है। निर्जन वन मे एक अज्ञात युवक से उसका परिचय होता है, जो प्रेम में परिणत हो जाता है। दोनो के विवाह से पुस्तक का अन्त होता है। एक किशोरी के हृदय मे उठने वाले भाव का उद्घाटन बड़े कौशल से किया गया है।

गहमरीजी की ये रचनाएँ प्रारम्भिक होने के कारण उल्लेख योग्य हैं। इनमें कल्पना और भावना की प्रधानता है। जीवन की कठोर वास्तविकता से इनका सम्बन्ध नहीं है। इनकी घटनाएँ असाधारण, चरित्रचित्रण स्थूल और वातावरण रोमानी हैं।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक गहमरीजी ने कई गार्हस्थ और जासूसी उपन्यास बंगला के आधार पर लिखे। 'हीरे का मोल' और 'अजीब लाश' का उल्लेख करना आवश्यक है। बंगला मासिक 'प्रदीप' मे प्रकाशित नगेन्द्रनाथ गुप्त की कहानी का अनुवाद 'हीरे का मोल' नाम से पहले 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' मे और फिर पुस्तकाकार निकाला। यह उपन्यास नही है, एक छोटी

कहानी से कुछ बडी है। इसमे एक नवाब की नई बेगम चुराये हुए हीरे को अपनी स्वाधीनता का मूल्य मानकर महल मे छोड जाती है और अपने प्रेमी से मिलती है। इस सरस कहानी की ओर अनुवादक और पाठकों का आकृष्ट होना स्वाभाविक था। 'अजीब लाश' की रोचकता अपराध मे न होकर उसके अन्वेषण मे है। काफी जाँच-पडताल के बाद भी हत्या और चोरी के मामलो मे केवल चोरी का पता उपन्यास के अन्त मे लगता है, जब खौलती हुई हाँडी म घडी बरामद होती है। इस कौतूहलवर्धक उपन्यास को भी पाठको ने बड़े चाव से पढा। एक ग्राहक ने गहमरीजी को लिखा :

रेल मे बैठकर अजीब लाश पढने लगे। उसमे जी इतना लगा कि जहाँ उतरना था, उसकी सुधि जाती रही। जब पूरा पढ चुके और गाडी आगे के स्टेशन मे ठहरी तो नाम स्टेशन का पूछने पर मालूम हुआ कि हम सात आठ स्टेशन आगे बढ आये हैं। लाचार उतर कर दूसरी गाडी से आने जाने का दो रुपया नुकसान करके अपने स्टेशन को पहुँचे।[3]

'हीरे का मोल' और 'अजीब लाश' की लोकप्रियता देखकर गहमरीजी जासूसी उपन्यास लिखने लगे तो फिर जीवन भर लिखते ही रहे। उन्हे आरम्भ मे ही उसकी आवश्यकता और उपयोगिता के सम्बन्ध मे पूरा विश्वास हो गया। उन्होने देखा कि इससे लोगों का मनोरंजन होता है और उन्हे शिक्षा भी मिलती है।

उनकी प्राय. सभी प्रारम्भिक रचनाएँ बगला का अनुवाद या छाया-नुवाद है। इनकी लोकप्रियता का रहस्य मूल के विषय मे उतना नही है जितना अनुवाद की भाषा मे है। गहमरीजी बगला के उन इने-गिने अनु-वादको मे हैं जिन्होने अपनी भाषा को सस्कृतनिष्ठ पदावली से बचा लिया है और बगला हिन्दी बनने नही दिया है। इस दृष्टि से उनके अनुवादो का स्थायी महत्व है। काल की दृष्टि से उनकी रचनाओं को दो भागो मे रखा जा सकता है। उन्नीसवी शताब्दी अनुवाद-काल है। मौलिक रचनाओ का वास्तविक आरम्भ वर्तमान शताब्दी मे होता है। अधिकाश जासूसी उपन्यास 'जासूस' मे निकले। उनकी सख्या देखकर सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'जासूस' ने प्रति वर्ष एक से अधिक रचनाएँ भेंट की। १९१७ तक प्रकाशित प्रतिनिधि मौलिक उपन्यासो का विवेचन किया जाता है।

मौलिक जासूसी उपन्यास

'बेकसूर की फाँसी' (१९००) साधारण जासूसी उपन्यासो से कुछ

भिन्न है। इसमें न तो जासूसी की प्रधानता है और न इसका घटनास्थल नगर है। इसमें भारत के एक सामान्य गाँव की सामान्य घटना का वर्णन है। एक माँझी नदी मे तैरती हुई लाश को देखकर दारोगा को खबर देता है। दारोगा उससे घूस लेकर उसे चालान कर देता है और उसकी लडकी को गायब करवाकर उस पर इल्जाम लगाता है कि उसने अपनी लडकी को मार कर नदी मे फेंक दिया है। माँझी जब फाँसी पर चढने जाता है, ठीक उस समय जासूस उसकी लडकी को लेकर उपस्थित होता है। इधर माँझी छूटता है, उधर जासूस नदी की लाश की तहकीकात करने जाता है। जहाँ अन्य जासूसी उपन्यासों का आरम्भ होता है वहाँ इसका अन्त हुआ है, इसलिए कौतूहल बना रहता है। इसमे अपराध है, उसकी छानबीन नही है।

दारोगा भारत का एक प्रतिनिधि दारोगा है। वह शैतान, बेईमान, दगाबाज और घूसखोर है। उसके कुकर्म का साथी उसका कान्सटेबल है जो लेखक के शब्दो मे 'शिकारी कुत्ता' है। न्यायाधीश भी ऐसे है कि निरपराध को फाँसी की सजा सुना देते है। लेखक का उद्देश्य पुलिस और अदालत की धाँधली पर प्रकाश डालना है। उसने घटना और पात्र के कथन से अपने उद्देश्य की कलात्मक व्यजना की है। दारोगा के सम्बन्ध मे एक दूकानदार कहता है कि वह "यहाँ से बदला जाता तो मै चिनगिया पीर को सवा पैसे की रेवड़ी चढाता।" यह कथन स्वय वक्ता पर एक चुभता व्यग्य है। माँझी की बेटी सोहिनी के रूप मे गाँव की सुन्दर चचल युवती का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। उसकी जवानी के वर्णन मे सुन्दर सरलता है .

जब बारह बरस की चढ़ती जवानी पर पहुँची, सोहिनी के सब अग ऐसे भर आये जैसे बरसात पाकर नदी नाले भर उठते हैं।

आर्थिक अवस्था और सामाजिक कुरीति के कारण इस ग्रामबाला को शहर की गलियो मे रूप और यौवन बेचना पड़ता है। लेखक को इसके लिए दुख है कि "अनसूँघा फूल दामो पर सूँघा जाने लगा।" वह युवती है, उसका पति बालक है। उसकी शादी हो गई है, गौना नही हो रहा है। इस सामाजिक और आर्थिक विवशता मे व्यक्ति का पतन अस्वाभाविक नही है।

जिस समाज मे सोहिनी को पेट के लिए शरीर का सौदा करना पडता है और उसके पिता को सच्ची बात के कहने से अपनी नाव—अपना सर्वस्व—बेचकर पुलिस अधिकारी की पूजा करनी पडती है वहाँ सुन्दरता और सच्चाई

का क्या मूल्य हो सकता है ? गहमरीजी ने मांझी के जीवन की झांकी प्रस्तुत कर अपनी मानवतावादी दृष्टि का परिचय दिया है। विषय के अनुरूप ही उनकी उपमाएँ ग्राम्य जीवन से ली गई हैं। चढ़ती जवानी की तुलना बरसाती नदी से की गई है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयोग भी हैं : "शहर भर के खेत मे सोहिनी ही का शरीर मानो पोस्ते की हजारों कलियों में एक लाला था", "सोहिनी का सुहावना शरीर बाजार की मिठाई बन गया।"

'जमना का खून' (१९०१) भी सुन्दरी की विवशता की कथा सुनाता है। जमना वेश्या की बेटी है। उसके प्रेमी का दरवान उससे अनुचित सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। वह राजी नहीं होती इसलिए उसका खून कर दिया जाता है। पाप और अनाचार के वातावरण मे सौन्दर्य का वर्णन करना गहमरीजी नही भूलते।

सिर के बिखरे बालो की शोभा सुन्दर गुलाबी गालों से नीचे उतर कर नितम्ब देश तक ऐसी दीखती है मानो सुघराई का सोता सुविशाल मस्तक से निकल कर नितम्बो के बीच की उपत्यका मे जा छिपा है।

'जमना का खून' में वास्तविक हत्या होती है पर 'जासूस पर जासूस' (१९०३) मे हत्या तो नहीं होती, नकली लाश से उसका भ्रम उत्पन्न किया जाता है। इसमे गगू नामक एक बाल-जासूस का परिचय मिलता है। वह बडी चतुरता से अपराध का पता लगाता है और जासूस को सूचना देता है।

'खूनी की खोज' (१९०३), 'डाका पर डाका' (१९०३), 'केतकी की शादी' (१९०४) मनोवैज्ञानिक जासूसी उपन्यास हैं। 'खूनी की खोज' की शक्ति कथाविन्यास मे नहीं बल्कि चरित्रचित्रण में है। गहमरीजी के अनेक उपन्यासो की भाँति इसमे कामिनी और कचन को हत्याकाड का मूलकारण बताया गया है। निहालदास की प्रेमिका लीला का विवाह रसिकलाल से होता है। रसिकलाल वेश्या के पास जाता है, शराब पीता है और घरवाली को पीटता है। जब निहाल देखता है कि "लीला का वह चाँद सा उज्वल मुख आज घाम के सूखे कमल" के समान हो गया है और "बालपन मे खेलती बेरा दालान की धूल को अन्न महुआ और पलास के पत्ता को थाली और ठीकरों को तरकारी कहकर परोसने वाली लीला आज बच्चे की माँ बनी है" तब उसके हृदय मे मीठी कसक-सी उठती है। वह अपनी बचपन की प्रेमिका को बर्बादी से बचाने के लिए उसके पति से मित्रता करने को विवश होता है

और उसे रास्ते पर लाना चाहता है। रसिक को यह मालूम है कि निहाल उसकी पत्नी का प्रेमी है। फिर तो दोनो मे अनबन होती है और लीला का खून होता है। रसिक हवालात मे बन्द कर दिया जाता है जहाँ वह लीला पर किये गये जुल्म को याद कर रोता, पछताता है। वह उसे पीटता था तो पीटने के बाद प्यार भी करता था। जब पाठक की सहानुभूति निहाल की ओर मे रसिक की ओर होने लगती है, ठीक उस अवसर पर यह भेद खुलता है कि लीला का खूनी रसिक नही, निहाल है। कहानी निहाल के मुँह से इस प्रकार कहाई गई है और लीला के प्रति उसकी प्रेम भावना का ऐसा वणन कराया गया है कि उस पर उसकी हत्या का सन्देह भी नही किया जा सकता था। खूनी बेकसूर और प्रेमी खूनी सिद्ध होता है। यदि पाठक केवल यह जानना चाहे कि हत्या कैसे हुई तो उसकी जिज्ञासा साधारण कोटि की समझी जायेगी। उसे यह अनुमान करना है कि हत्या क्यों हुई। निश्चय ही इसका मनोवैज्ञानिक कारण है। निहाल प्रेम की विफलता मे जो करता है वह नितान्त स्वाभाविक है। यह ठीक है कि लेखक ने उसकी क्रिया का उल्लेख किया है, उसकी प्रवृत्ति पर प्रकाश नही डाला है। (इस प्रकार के उपन्यास मे इसके लिए अवकाश भी नही रहता।) हत्या के पहले के उसके व्यवहार से उस पर तनिक भी अविश्वास नही होता। हत्या होने के बाद उसका वास्तविक रूप प्रकट होता है। उपन्यास की विशेषता इसमे है कि पात्रों की क्रिया से उनकी प्रवृत्ति पर अधिक ध्यान दिया गया है। रसिक और निहाल दोनो मे मानवीय दुर्बलता है। चरित्रचित्रण की दृष्टि से "डाक पर डाका" एक सफल कृति है। डाक बाबू के व्यक्तित्व का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। वे शकी मिजाज के है, सन्दूक मे ताला बन्द करने के बाद दस कदम आगे जाकर लौट आते है और ताला पकडकर खींचते हैं कि वह खुला तो नहीं है। वे ऊपर से रूखे-सूखे मालूम पड़ते हैं पर हृदय में वेश्या का प्रेम भरा हुआ है। जब डाक के थैले की चोरी होती है, उन पर सन्देह किया जाता है। जो खुद चोर के डर से काखता रहता है वही चोर मान लिया जाता है। वास्तविक अपराधी दूसरा है, जिसका पता लगने पर आनन्दमय विस्मय होता है।

'केतकी की शादी' मे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओ का मिश्रण है। युवती केतकी एक व्यक्ति के घर पर पलती है। उस पर व्यक्ति और उसके भतीजे की बुरी निगाह रहती है। व्यक्ति के खून होने पर उसके

भतीजे और केतकी पर सदेह किया जाता है। वास्तव मे खून करनेवाली उसकी अपनी ही पगली स्त्री है। उसके पगली और खूनी होने का मनोवैज्ञानिक कारण है। केतकी भी मानसिक रोग से पीड़ित है। उसे स्वप्न में चलने की आदत है। उपन्यास का सौन्दर्य अपराध की छानबीन में न होकर उसकी मूल प्रवृत्ति के उद्घाटन मे निहित है।

'चक्करदारी चोरी' (१९०४) उच्चकोटि का साहित्यिक जासूसी उपन्यास है। इसमे जासूसी तत्त्व गौण है। वस्तु-विन्यास, चरित्रचित्रण और वर्णन शैली मे साहित्यिक सौदर्य है। इसमे तीन अविस्मरणीय स्त्री-पात्रों की सृष्टि हुई है। रुक्मिनी गरीब विधवा की बेटी होने के कारण युवावस्था मे भी कुँआरी रहती है। गुप्त प्रेम के फलस्वरूप वह मां बनती है और अपने पुत्र को एक अहीरिन के यहां छोड देती है। अपनी मां के कहने से वह एक धनी व्यक्ति से विवाह करना स्वीकार कर लेती है। कुल-मर्यादा और लोक-लज्जा की रक्षा के लिए वह सर्वस्व समर्पित कर देती है। उसे कलक से बचाने के लिए सुलोचना उस व्यक्ति से विवाह करती है जिसके "मुँह पर लात मारकर भी अपना पाँव अपवित्र करना नही चाहती"। वह अपने प्रेमी को प्रेम की पिछली बात भूल जाने का अनुरोध करती है और भाई कहकर पुकारती है। फिर भी उसके हृदय की गहराई मे प्रेम प्रवाहित रहता है। कर्त्तव्य की वेदी पर भावना का बलिदान करनेवाली यह नारी देवी है। उसका जीवन त्याग और उत्सर्ग का जीवन है। गहमरीजी नारी की महिमा मातृत्व मे देखते है। सुलोचना उनके दृष्टिकोण की उज्वल परिचायिका है। एक पतिता के हृदय मे भी प्रेम का स्थान होता है, इसका उदाहरण उन्होने वेश्या चदन के जीवन मे दिया है। चदन का प्रेम प्रेमी को सुख मे अभिमान की किरणें बन जलाता है और विपत्ति मे इन्द्रधनुष की तरह उसका दुख दूर करता है। गहमरीजी का नारी के प्रति जो स्वस्थ दृष्टिकोण था उसकी सफल अभिव्यजना इस उपन्यास मे हुई है। उसकी चिरतन परवशता, मूक व्यथा और अनुपम उदारता की उन्हे सच्ची परख है।

वासना, प्रेम, त्याग और साहसिकता ने मिलकर मार्मिक स्थलो की सृष्टि की है। रुक्मिनी और धरमसिह के रोमास का वर्णन कवि की कलम से किया गया है। भाव के अनुरूप भाषा कोमल और सुन्दर है। उपमाएँ अनूठी हैं। "धरमसिह के आलिगन मे आकर रुक्मिनी हवा के मारे लता की तरह काँपने लगी।" "रुक्मिनी धीरे से बैठ गई मानो किसी हवा के जोरदार झोंके

से अशोक का एक फूल गिर पडा ।"

"रूप सन्यासी" (१९०४) मे कथा रोचक और रोमाचक बनाने के लिए तत्र और प्रेतविद्या का समावेश किया गया है। दो पात्रो के चित्रण मे कौशल प्रदर्शित किया गया है। दलसिगार स्त्री की मृत्यु के बाद वेश्या से प्रेम करता है और दूसरा विवाह भी करता है। बामाचारी रूपसन्यासी के कहने पर वह नई पत्नी को मार डालता है। वह पछताता है पर कापालिक के समझाने पर फिर वही काम करता है और पाँच स्त्री-पुरुषो के सिर उसे अर्पित करता है। फुलिया सियाराम शरण गुप्त की "नारी" की नायिका जमुना से मिलती-जुलती है। वह अपने स्वामी और सतान के लिए जीती है। उसका पति परदेश मे है और लडकी बीमार है। इस दशा मे दलसिगार उसकी ओर सहानुभूति दिखाकर उसके हृदय को जीत लेता है। जब वह उसकी बेटी की हत्या करता है तब वह उससे घृणा करने लगती है। प्रणय और वात्सल्य मे नारी-हृदय की दुर्बलता की यह अभिव्यक्ति मधुर भी है और करुण भी। चिरतन नारी सिर पटक कर कहती है : "हाय ! बेटी तू कहाँ गई ! एक ही बार पुकारने से दौड़ कर गोदी मे आ जाती थी अब क्यों नही सुनती ।"

बामाचार की वीभत्सता और विवाह के अपव्यय पर हलका व्यग्य किया गया है। रूपसन्यासी को पागल तथा दलसिगार को कोढी बना दिया गया है। नैतिक आशय से उपन्यास मे शुष्कता नही आने पाई है। उसमे मनोरजन की भरपूर सामग्री है। घटनास्थल आरे और पटने के परिचित अचल हैं, जहाँ परदेशी की प्रिया लिखती है कि "प्यारे ! घर ही बैठकर चिट्ठी लिखते रहोगे या मुँह दिखावोगे ?"

"मेरी और मेरीना" (१९०५) मे बाल-जासूस वशी की बुद्धि देखकर चकित रह जाना पडता है। वह अपराधियो की गाडी के पीछे चुपके-से बैठ जाता है, रात मे उनके घर मे बेधड़क घुस जाता है, जीने पर पजे के बल चढ़ता है और टीन की बाल्टी से टकरा जाता है। घरवालो को यह मालूम नही होता, उलटे वशी उनका भेद लेकर जीने से उतरने लगता है कि एक स्त्री जीने पर चढने लगती है। खैर, वह देखती नही है। वह फिर दबे पाँव ऊपर चढ़ता है कि कुछ लोग नीचे उतरते दिखाई पड़ते है। अबतक वशी बच-कर निकलता रहा, अब बचने का उपाय नही देखकर आप ही आप बकने लगता है। आखिर, वह पकड़ा जाता है लेकिन इस तरह बातें बनाता है कि

निर्दोष समझ कर छोड दिया जाता है। साहस, सूझ-बूझ, चतुरता और धैर्य से वह स्वय सफल होता और पाठको को भी पुलकित कर देता है। उसके छिपने, फँसने और बचने मे जो नाटक है उसकी चरम सीमा उस समय आती है जब वह जीने पर एक स्त्री को देखता है। उपन्यास का आकर्षण अपराध मे न होकर अपराधियो की खोज मे है। धन के लोभ मे अपनी बहन को पागलखाने मे भेजकर उसे मरी हुई घोषित करनेवाली मेरीना का चरित्र अद्भुत है। जिस वशी से उसके षडयत्र का भडाफोड हो सकता है उसे वह मरने से बचाती है। जो बहन को सताती है वह दुश्मन पर दया करती है। वह अपनी बुराई और अच्छाई मे पूर्ण एव मानवीय है।

'हम हवालात मे' (१८०५) का नायक जासूसी उपन्यास का लेखक है। उसके हस्तलिखित आत्मकथात्मक उपान्यास का नायक दिलीप नारायण हत्यारा है। वह एक क्लब मे अपना नाम बताने के बदले अपने नायक का नाम बता देता है। उसके उपन्यास के कुछ पन्ने उड जाते हैं। उनके आधार पर लेखक को हत्यारा मान लिया जाता है और हवालात मे डाल दिया जाता है। सच्ची बात खुलने पर सारी घटना एक दिल्लगी बन जाती है। यह भूलो के प्रमोद का अच्छा उदाहरण है। गहमरीजी के नायक का उपन्यास और गहमरीजी का उपन्यास दोनो आत्मकथा-शैली मे लिखित है, इसलिए पात्रो के साथ-साथ पाठको के मन मे भी भ्रम उत्पन्न होता है। पढ़ने के समय ऐसा लगता है कि लेखक और नायक एक ही हैं और यह घटना सचमुच लेखक के साथ घटी है। गल्प को सत्य के रूप मे प्रस्तुत करने की यह कला स्तुत्य है। गहमरीजी ने लिखा है'

एक बार हमने एक उपन्यास 'हम हवालात मे' नाम का लिखा था, जो जासूस मे छपा और उसको पढकर बहुतेरे कृपालु महशायो ने लिखा कि आप पर तो बड़ा सकट पड़ा था, उपन्यास लिखने के कारण हवालात मे जाना पड़ा।[4]

कथा-कौशल के अनुरूप ही वर्णन-शैली है। वर्णन की सूक्ष्मता और सरसता से रेलवे-प्लेटफार्म का यह दृश्य जीवन्त हो उठा है:

पीतल के बरतन सिर पर सुधारती हुई ग्वालिन दूध ले दूध मीठे दूध कहती हुई अठिलाती चली जाती है, कही विच्छू के डक की तरह मरोड़ खाती हुई वेनी उमेठे हुए माथ उघारे महाराष्ट्र ललनागण नाक मे छाजदार सुन्दर

छोटी सी नथ लगाये चली आती है। कही पेडू तक उघारे किन्तु छाती के नीचे घूघट लटकाए घुटने के नीचे तक नीबी छटकाए मारवाड महिला गहनो से लदी छमाछम करती जाती है, किसी ओर गुजरातिन गुजरियाँ कसी कसायी अगिया पर सुन्दर सूहा साडी पहने झलक दिखाती है, किसी ओर पारसिन झकाबोर सुहावनी रेशमी पहने बहुत छोटी खुरी के बूटो से प्लेटफार्म का पत्थर खटखटाती आती है ·· · ······

जीवन का यह खण्ड-चित्र अत्यन्त मोहक होकर भी विश्वसनीय है। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि उपन्यासकार नारी की सुन्दरता के सामने मनुष्य पर मनुष्य द्वारा किए गए अत्याचार को भूल नही सका है। वह शोषण का विरोध करता है :

जिस तीसरे दरेज के मुसाफिरो से कम्पनी की थैली भरती है जिनके दम से बडी-बडी तोदवालो की तनख्वाह चुकती है जिनके पैसे से पहले और दूसरे दरजे के यात्रियो के लिए मौज का सामान मुहय्या होता उन्ही की यह दुर्गति !

प्रेमकथा पर आधारित 'नेमा' (१९१२) बुद्धि से अधिक भाव को अपील करती है। पात्रो के सौन्दर्य मे शील और प्रेम मे त्याग है। तरुण नायक-नायिका अपने व्यक्तित्व और विचार से प्रेरणादायक सिद्ध होते है। कथानक के गठन और चरित्र के निर्माण मे कौशल है पर वातावरण अति-नाटकीय लगता है। कहानी सम्भवता के घेरे से बाहर चली गई है। नायिका जितनी सुन्दर है उतनी ही शिष्ट है : "लुनाई मे गुलाब की छवि को जैसे लजा देती थी, विनय और नम्रता मे भी वैसे ही लज्जावती लता को लजाती थी।" नायक को उसे गहरी प्रीति और सहानुभूति है। वह उसे पढने का खर्च और अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकार देकर बहुत बडा त्याग करता है। लेखक के शब्दो मे वे "जैसे स्वभाव के अच्छे थे वैसे चेहरे के भी सुन्दर थे।" घटनाओ का विन्यास मनमाने ढग से किया गया है। नेमा और निरजन के माँ-बाप को मारकर उन्हे एक ही मेडिकल कालेज में पढने के लिए भेजा जाता है। उन्हे प्रेमपाश मे बाँध दिया जाता है और विवाह के दस दिन पहले निरजन की हत्या कर दी जाती है। नेमा पर हत्या का सदेह किया जाता है और वह कैद कर ली जाती है। वास्तविक हत्यारा कोई और है जो निरजन और नेमा को मारकर दोनो की जायदाद हथियाना चाहता था। पाठक और लेखक जिसको दोषी मानते हैं वह निर्दोष होती है।

भी दोषी ही ठहरता है। एक के बाद दूसरी उलझन पैदा होती जाती है और पाठक के साथ-साथ जासूस की बुद्धि चकरा जाती है। जब समाधान उपस्थित किया जाता है तब पाठक को उससे सन्तोष होता है, लेखक के कौशल का कायल होना पडता है और अपने ऊपर दया आती है कि मामूली बात भी उसकी समझ मे नही आई। एक और नवीनता यह है कि जहाँ अन्य उपन्यासों मे जासूस का सहायक बाल-जासूस होता है वहाँ इसमे उसकी सहायता एक दूती करती है।

गहमरीजी की कला कथानक के गठन और वातावरण के निर्माण मे समान रूप से समर्थ है। प्रकृति का यह मानवीकरण अत्यन्त रमणीय है :

प्रकृति सुन्दरी ने वसन्त की अवाई मे लज्जा के मारे मुँह कुछ घूँघट मे कुछ बाहर किया है। पेड माथे पर नयी कोंपलो का मुकुट धर मानो वसन्त का गीत गा रहे है।

विशेषणो के समुचित प्रयोग से दृश्य का प्रत्यक्षीकरण किया गया है : आज सजे सजाये कमरे की खुली खिडकी से शीतल मद समीर शरीर मे शीत के सुनील शशि की स्वच्छ चाँदनी सर्वांग मे लपेटे हुए छडो की ठोकरें लेता भीतर आ रहा है।

'बेबादल का बज्र' मे ठेठ भोजपुरी गाँव की मनोरम झाँकी है। विहावलपुर मुकदमाबाजो का अड्डा है। "सेर भर पूरी पर जिस इजलास मे चाहिए जिस तरह की गवाही ले लीजिए।" यहाँ के निवासियो की शत्रुता अपने भाइयो से है, मित्रता अपनी लाठी से। उनके कंधे की लाठी तीन कामो मे आती है : बोझा ढोने, दतवन तोड़ने और रास्ता टपने मे। यहाँ के दारोगा खाऊ खाँ है। उनके और उनके वश के लिए यह कहना ठीक ही है कि "थानेदार होना और लखपति होना एक ही बात है।" वे जब जिले मे पधारते हैं तो भाई के साले के ससुर के घर मे ठहरना पसन्द करते हैं। यह नहीं कि वे निर्लज्ज हैं। उनके इलाके की चोरी उनके लिए चुनौती है। उन्हे चोरी का उतना डर नहीं जितना उससे होने वाली बदनामी का है, इसलिए उन्होंने उसका हाल सुना और "सुनते ही सूखकर सोठ हो गए"। वे पूरी मुस्तैदी और ईमानदारी से मामले का पता लगाते हैं पर जिसे अपराधी बताते हैं वह निरपराध है, अतः उन्हें थाना छोड़ने का हुक्म मिलता है। गहमरीजी अपने पात्र के दोष को देखते हुए भी उसके गुण को छिपाते नही हैं। उस पर

हँसते हैं तो आँसू भी टपकाते हैं। वे समझते हैं कि रिश्वतखोर से रिश्वत को बढ़ावा देने वाली व्यवस्था अधिक दोषी है।

'मत्तो और पत्तो' (१९१४) उस प्रकार के उपन्यास का उत्तम उदाहरण है जिसमे अपराव नही रहता है, अपराव का आभास रहता है और जिसका आकर्षण अपराध में न होकर अपराधी की खोज मे होता है। मत्ता की शादी सयमलाल से पहले तय होकर फिर विजय से तय होती है। मयमलाल के कहने पर डाकू विजय का खून करने आते है लेकिन खून नही करते, बकरे का खून डाल कर विजय को बाँधकर ले जाते हैं; यह रहस्य पीछे खुलता है। डाकुओ की 'पातालपुरी' मे रहने वाली मत्तो की शक्ल की एक लडकी को जासूस मत्तो समझ बैठता है लेकिन वह मत्तो नहीं, उसकी बहन पत्तो है जिसे डाकू ले गए थे, यह भी एक रहस्य है जो बाद मे प्रकट होता है। खून के निशान और रूप की समानता से विविध भ्रमों की उत्पत्ति होती है। एक ही रूप-रग की दो लडकियो से जो धोखा होता है उसमे अधिक नाटकीयता है। अन्त बडा सुखद है। जासूस के प्रयास से विजय और पत्तो अपने-अपने पिता से मिलते है। दोनो बहनो का विवाह होता है। पिता-सतान के सजल मिलन के बाद पति-पत्नी का मधुर मिलन देखने योग्य है। बीच में प्रकृति की छटा चमकती रहती है।

सभी पात्र प्राणमय हैं पर झण्डासिह और रामचरण अविस्मरणीय हैं। झण्डासिह निराला डाकू है। वह कंजूस बनियो को लूटता है, गरीबो का पालन करता है और अकाल-पीडितो की सहायता करता है। लूट के माल को देश की सेवा मे लुटाने वाला यह डाकू अपनी निम्नता मे महान है। वह डाका डालता है, खून नही करता है; दुश्मन को पहचानता है, पकड़ता नही है। उसके साध्य की महत्ता साधन की कठोरता को ढँक देती है।

रामचरण का व्यग्यमय चित्र अनूठा है :

रामचरण गाँजा भाँग, अफीम चरस चण्डू सब चढ़ाते थे। शराब देशी नही किन्तु विलायती जाहिरा नही बहुत छिपकर लेकिन कायदे से ढालते थे। उन्होंने गला गहरा कर चिलम पर जो दम खीचा तो गज भर की लहर निकल ऊपर छत छूने लपकी।

गहमरीजी पण्डे के ढोंग का पर्दाफाश कर नहीं रह जाते। उसकी उदारता का भी परिचय देते हैं उसे अपनी बेटी के खून से अपने भावी दामाद

के खून का इसलिए अधिक दुख है कि वह उसकी बेटी का पति नही बल्कि दूसरे का लड़का है।

'मत्तो और पत्तो' तथा 'जासूस की बुद्धि' (१९१४) के कथानक मे बहुत समानता है। दोनो के जासूस भी साँवलसिंह ही है। इसमे एक नये ढग के जासूस—स्त्री-जासूस-का दर्शन होता है, जिसका नाम सोना है और जो अपने बल तथा बुद्धि मे सावलसिंह को भी पीछे छोड़ जाती है। उसके पास पिस्तौल है, जहर है, रूप का जादू है। वह अकेली घूमती है, जासूस को सहायता देती है और अपने प्रेमी के साथ सोती है। वह जैसी सुन्दर है वैसी ही साहसी है किन्तु जब हम उसे 'सिहासन बत्तीसी' और 'बैताल पचीसी' पढते हुए देखते हैं तब ऐसा लगता है कि अग्रेजी उपन्यास की किसी स्त्री-जासूस को भारतीय वेश मे उतारने का असफल प्रयास किया गया है। कहाँ पिस्तौल, कहाँ बैताल पचीसी !

निम्नलिखित वार्तालाप रोचक और कौतूहलवर्धक होने के अतिरिक्त कथा-सूत्र और सामूहिक चरित्र का परिचायक है।

"किसका खून हुआ ? दुलहिन जी का ?

"नही दुलहिन जी वह क्या रो रही थी। तुमने सुना नही बडकी बबुई का कोई सिर काट ले गया है।

"नही जी ! कौन कहता है कि बड़की बबुई का सिर काट ले गया है। छोटकी बबुई की कोख मे कोई छुरा भोककर भाग गया है।

'अजी सिर कटा न छुरा भोका। न जाने कहाँ के डाकू आए थे बहुत सा माल मारकर भाग गए हैं।

"कहाँ का माल कहाँ डाकू जी ? सुनते तो हैं कि कोई बबुई को जबरदस्ती उठा ले गया है।

"अजी लड़की बबुई क्या चन्दन की जड़ाऊ डिबिया है कि बगल मे लेकर कोई चलता हो जाएगा।

अन्य जासूसी उपन्यासो की अपेक्षा "जासुस की बुद्धि" और "तीन जासूस" (१९१५) अधिक बडे हैं। दो भागों में विभाजित "तीन जासूस" की कथावस्तु शैतान की आँत की भाँति पेचीदी है। फिर भी तीन कथा-सूत्रो को निबद्ध करने मे अपूर्व निर्माण-कौशल है। पत्र और आत्म-स्वीकारोक्ति से वास्तविकता का आभास होता है। चरित्र, वार्तालाप, वर्णन और भाषा की

सजीवता और विविधता उपन्यासकला की नमनीयता प्रकट करती है। निर्विवाद रूप से यह गहमरीजी की एक सुनियोजित और सुलिखित कृति है। विशेषता की बात यह है कि साहित्यिक छटा के सामने जासूसी रग फीका नही पडा है। भाव-व्यजना, नैतिक दृष्टि और सामाजिक आलोचना मे विशिष्टता है।

हत्या, चोरी और जालसाजी का पता लगानेवाले तीन जासूस अपने-अपने असामियो के पीछे परेशान है। भागने और पीछा करने की पुरानी कहानी नये ढग से कही गई है। जासूसो का पीछा करने का तरीका निराला होता है। यह एक कला है जिसकी व्याख्या स्वय जासूस सुजान सिह करता है:

तेजी मे किसी का पीछा करना और उससे तेज दौडकर पकड़ने का इरादा रखना जासूसी नही है इस काम के वास्ते तो मामूली पुलीस मौजूद है। हमलोग आदमी को ढील देते हैं और जब वह हाथ पाँव पीट कर ढीला पड जाता है तब देखता है कि कोई खोज पूछ नही करता साधारण पुलीस थक कर इनक्वायरी बन्द कर चुकी है तब हमलोग बेखबर असामी की गर्दन पर पीछे से जाकर हाथ रखते है।

इस उपन्यास मे भाग-दौड़, धड़-पकड से पैदा होनेवाली सनसनी नही है। घटनाओं मे गति और प्रवाह है। रहस्य और उसके उत्तरोत्तर उद्घाटन मे आकर्षण केन्द्रित है। वार्तालाप और वर्णन की भाषा पात्र, अवसर और भाव के अनुकूल रग बदलती रहती है। वृन्दावन और उसकी माता के सम्वाद में घरेलू बोलचाल की मिठास है। मैनेजर के धमकाने पर किशनलाल जो जवाब देता है उसमे फूल की चोट भरी हुई है, "अरे हम भी क्या तुम्हारी बीबी हैं कि नाराज होकर कहोगे कि लड़का नही होता और दूसरी शादी कर लोगे"।

इस उपन्यास के बीच मे कही-कही बयानो का आरम्भ बहुत सुन्दर ढग से हुआ है। दूसरे भाग के ग्यारहवें बयान का प्रथम वाक्य वातावरण और पात्र का विलक्षण रूप खडा कर देता है:

तहसीली कचहरी के पास जो सडक जाती है उसके कुछ दूर शहर की ओर रन्डियो के मुहल्ले के एक गली के पास उदास चेहरेवाली एक सुन्दरी को शहर मे नया आया हुआ समझकर एक कोठेवाली ने हाथ के इशारे से बुलाया।

ऐसी ही शब्द-शक्ति बेनी के रूप-चित्रण मे प्रकट हुई है। यह सूक्ष्म सविस्तार वर्णन यथार्थवादी प्रवृत्ति क द्योतक है। जोला ने दर्पण के सामने निरावरण खडी होकर अपने रूप पर आप मुग्ध होनेवाली नाना का चित्रण इसी प्रकार किया है। बेनी का रूप-चित्रण इन शब्दों मे किया गया है :

आइने के सामने एक युवती सुन्दरी अपना बिम्ब देखती सुई अपने निचले ओठ दाँतो से लगाती हुई मुसकुरा रही है। आँखें कनपटी के किनारे तक फैली हुई है नीचे के उभरे हुए गालो की लुनाई पर मुखमडल से उतरते हुए आब की गाढी छवि का सजाव देखते ही मन हाथ से निकल जाता है।

कहानी से केवल मनोरजन ही नही होता है। उससे समाज की वास्तविक दशा और समस्या का ज्ञान भी होता है। मूल समस्या प्रेम और विवाह की है। वृन्दावन बेनी के रूप का लोभी और प्रेम का प्यासा है। वह उसे जुए के अड्डे पर भुलाकर ले जाता है और विवाह का प्रस्ताव रखता है। बेनी के अस्वीकार करने पर वह उलटे उसे बदनाम करने की धमकी देकर राजी कर लेता है। स्वेच्छा से विवाह करने की नई रीति का समर्थक वृन्दावन बेनी की इच्छा का आदर नही करता। जिस समाज मे स्त्री की पसन्द का कोई मोल नही है और "स्त्रियो का चरित्र इस तरह कोरा कागज है जिस पर लोग छीटा डाल कर गला देने को तैयार हैं उसकी मान मर्यादा भगवान ही बचायें"। समाज मे स्त्रियो के दुख, अपमान, उपेक्षा और दुर्दशा का मूल कारण अर्थ-व्यवस्था है। वर्ग-समाज मे स्त्री खरीद-विक्री की वस्तु होती है। ऐसे समाज को देखकर लेखक का हृदय ग्लानि, क्षोभ और विद्रूप के भाव से भर गया है।

जिन्दगी भर ऐयाशी मे बिता कर हमारे मुल्क के सफेद बाल वाले साठ सत्तर मे बारह-बारह की छोकरियो से शादी करके जिन्दगी भारी कर देते है ·… यहाँ के नासमझे रुपये के लोभ से अपनी लडकियो को भाड मे झोंक कर आप तोंद फुलाए फिरते है।

समाज मे स्त्रियो के सम्मान का समर्थक होकर भी गहमरीजी पुरुष-स्त्री के लिए दुहरी कसौटी का प्रयोग करते है। उन्होने जासूस सांवलसिंह से कहाया है कि स्त्री देवी होती है या दानवी, उसके लिए बीच की स्थिति नहीं है। पुरुष के लिए ऐसी स्थिति हो सकती है। इसे लेखक का स्त्री के प्रति मौलिक दृष्टिकोण नही बल्कि स्त्री-चरित्र को समझने का प्रयास मानना चाहिए। 'जासूस की बुद्धि' मे सोना ने सावलसिह को काशी जाकर 'तिरिया

चरित्र' पढने को कहा था क्योंकि वह 'पांचवा वेद' है। प्रेम के मामले मे तो नारी और भी रहस्यमयी होती है। "प्रेम की डार से गिरायी हुई स्त्री बाघिन से भी भयकरी होती है। अपने प्रेमी को यम के हाथ वह दे सकती है लेकिन दूसरी स्त्री को नही दे सकती।" लेखक नारी-हृदय के अन्तर मे झाँकने की कोशिक करता है।

सरल, निश्छल सुभागी देवी है। भोलेपन के कारण बार-बार ठगी जा कर भी वह सत्पथ से विचलित नही होती। वह लक्ष्मीनारायण लाल की नायिका सुभागी ('बया का घोसला और साप') से नाम और स्वभाव दोनों मे मिलती-जुलती है। वह वृन्दावन के सामने झुकती नही है लेकिन जब उसे यह समाज मे कलकित करने का भय दिखाकर विवाह करने लिए विवश कर देता है तब वह विवाह कर लेती है। आत्म-रक्षा के लिए आत्म-समर्पण करने का यह उदाहरण अद्भुत है। विवाह करने के बाद वेनी अपने पति का मुँह भी नही देखना चाहती और उसे छोड़कर भाग जाती है। वह देवी भी है, मानवी भी, सावलसिह की (स्त्री को देवी या दानवी की कोटि मे रखने की) परिभाषा उसके लिए लागू नही होती। सोना दानवी कही जा सकती है लेकिन पूर्ण रूप से नही। गले मे सोने का साँप पहनने वाली यह स्त्री खुद सुन्दर सांपिन है। अन्य उपन्यासो मे आने वाली जुमेलिया, मोतीबीबी आदि स्त्रियों मे भी ऐसी ही सुन्दरता है। सोना चिडिया को तरह चारों ओर गरदन फेर सकती है, साँप के फन की तरह गला चौडा कर सकती है। उसकी आवाज मे कोमलता और हृदय मे भावुकता है। वह पुरुष के मुँह मे अपने रूप की प्रशसा सुनकर पसीज जाती है। फिर भी, कोई उसे प्यार नही करता है और न वह किसी को प्यार करती है यह रहस्यमयी नारी भारतीय जीवन मे नही बल्कि विदेश के जासूसी साहित्य से आई है।

सावलसिह, सुजानसिह और मुहम्मद सरवर गहमरीजी के प्रिय सरकारी जासूस हैं। ये कई उपन्यासो मे प्रधान पात्रो के रूप मे दर्शन देते है। उन्हे अपने पेशे मे दिलचस्पी है, अपनी जिम्मेवारी का पूरा ख्याल है। उनके लिए अपराध की समस्या बड़ी चुनौती है, उसे सुलझाना सबसे बडा आनन्द। इस उपन्यास मे उनकी भूमिका विशेष महत्व रखती है। सांवलसिह अपराध-मनोविज्ञान का पण्डित है। वह चेहरे से भाव की परख करता है। उसका नाम सुनकर ही चोर, डाकू, खूनी काँप उठते हैं। उसे गुरु मानने वाला सुजानसिह उससे ज्यादा उस्ताद है। वह किसी की तस्वीर के टुकड़े से उसके

चेहरे, कद और स्वभाव बता सकता है। नजीवन के लापता होने पर उसकी तस्वीर के तीन टुकड़े मिलते है और वे सुजानसिंह के लिए सूत्र का काम करते है। एक टुकडे मे आँख है, दूसरे मे नाक, तीसरे मे गाल। इनके आधार पर सुजानसिंह पूरा अनुमान कर लेता है। बोली, वेश नाम बदलने में वह बेजोड है। उसकी एक स्वाभाविक आवाज है। दूसरी आवाज वह जीभ घुमाकर, गला दबाकर निकालता है। वह हँसमुख, चचल, जिदादिल और जवामर्द है। उसकी नकली बोली और वेश-भूषा उसे समय पर काम देती है और पाठको का मन मोहती है।

मुहम्मद सरवर गहमरीजी के वास्तविक मित्र का नाम है, जिसे अपनी रचनाओ मे स्थान देकर उन्होने अमर कर दिया। मित्र ने भी उन्हे "अपनी चालीस वर्ष की सुराग रसानी के नोट से" काफी कच्चा माल दिया था। कानन डायल ने अपने पुराने शिक्षक डा० वेल के आधार पर शरलाक होम के चरित्र की कल्पना की थी। गहमरीजी ने अपने जासूस मित्र को ही अपना पात्र बनाया। होम का चित्रण स्वतन्त्र जासूस के रूप मे हुआ है, सरवर सरकारी नौकर है। १९१५ मे प्रकाशित 'मुहम्मद सरवर की जासूसी' और 'घडे मे थाली' मे मुहम्मद सरवर का परिचय मिलता है। निर्दोष को बचाना और अपराधियो को दण्ड दिलाना उसका कर्त्तव्य है। उसमे बुद्धि और चतु-राई के साथ-साथ ईमानदारी और देशभक्ति है। उक्त दो रचनाओ मे वह ग्रामीण वातावरण मे दिखलाई पडता है। प्रथम मे वह सर्वे के कर्मचारी का और द्वितीय में सन्यासी का भेष धारण करता है। गाँवो मे चोरी और हत्या के मामले का भेद लेने के लिए इस भेष मे जाना कितना स्वाभाविक है! सर्वे के कर्मचारी को देखकर कुछ लोग घर मे घुस जाते है, कुछ लोग आदर-सत्कार करते है। सन्यासी बाबा पनघट की बातूनी युवतियो की चर्चा का विषय बन जाते हैं। सरवर साहब पूरी विश्वसनीयता के साथ सन्यासी का अभिनय करते हुए कहते है :

जा चल जा! उठ! उठ! काला भूत दूत का पूत, भाग जमदूत, दूर हो रजपूत! भूल कर पीछे मत ताक रे नापाक कमडल का पानी चपोट कर छाक!

'मुहम्मद सरवर की जासूसी' में गांव और गाँव वालो का यथार्थ चित्रण है। हत्यारा शिवदत्त सर्वे के कर्मचारी को देखकर डर जाता है।

पटेल, लूटन लाल परवारी, पचावन पाण्ड पुरोहित उमें ढाढ़स बाँधते हुए अपनी निर्भीकता दरशाते है :

पचावन— अरे तू तो लुगाई ही होत रहा रे शिवदत्ता ! नाहक मर्द तो को तो जो अउत है वही पुलिसवाले हो जात है ।

पटेल— नही डरना तो चाहिए जरूर । ·· ··

लूटनलाल—तुम हूँ पटेल पूरो हिजडा आव । अरे हम लोग केतने खून पचाय डारे तुम ये ही एक ठैयाँ छोटी सी बात के लाने मरे जात हो !

पटेल, पटवारी, पुरोहित सभी प्रस्प है । इनकी स्वाभाविक बातचीन मे इनके झूठे बडप्पन का भाव झलक रहा है । इनकी पोल उस समय खुल जाती है जब सर्वे का कर्मचारी नकली बाल हटाकर असली रूप दिखाना है । फिर तो उसके आगे सभी नाक रगडते हैं और घूस का नीलाम बोलते हैं ।

पनघट पर बातें करती, पानी भरती ग्राम युवतियो का झुण्ड चिर-परिचित दृश्य है, जो गहमरीजी की कलम का स्पर्श पाकर सजीव हो उठा है :

नरवदा की धार मे अठखेलियाँ करती हुई लडकियाँ कहती हैं—अरी दान बड़ो विकट साधू आओ है । ·······

साथ की नवेली कहती है—हम सोऊ चल है विन्ना बाबा को दरसन कर आहें ।

घर से माथे पर जल का भरा घडा सभालती हुई केतकी कहती है—ऐसो बाबा तो कहूँ नही देखे हते बहन !

दूसरी हाथ चमकदार मूँड का गगरा सम्हाल कर कमर से बल खाकर दो जवान छोकरियों की ओर इशारा करके कहती है—ये ही बाबा के आये से तो बडे बड़ेन के कोख खुलिगा ।

एक तीसरी छैल चिकनियाँ चेहरा चिकनाये, आँख मचकाये, बाल सम्हाले, साड़ी सुधारे कहती है—······जौन के मुँह मे दाँत नहियाँ वोहू बाबा के गुफा मे दौड़ी जात हैं ।

क्रियाशीलता और भाव भगिमा के सयोग से वार्तालाप साधारण होते हुए भी प्रभावोत्पादक है । यहाँ कथा और पात्र को प्रकाशित करने की दृष्टि से

उसकी उपयोगिता स्पष्ट है। इस प्रकार के वार्तालाप यो ही बड़े रोचक लगते हैं। भारतीय गाँव के पनघट पर तरुण स्त्री-कठ से निकलती हुई बातचीत से भी मधुर क्या कोई कविता होती है ? पात्रानुकूल भाषा और भाव-भगिमा ने वार्तालाप को और भी सजीव और सरस बना दिया है। पनघट की भाँति पाठक भी उसका रस पीकर धन्य हो जाता है।

कुछ पात्र ऐसे हैं जो अपनी बातचीत, चालढाल से हास्य रस का सचार करते है। एक डाक्टर है जिसका तकिया कलाम है "समझो कि"। एक साहब हैं जो त कोट कहते हैं। जासूस का दूत रामलखन 'मूली' और 'राधाकृष्ण' सुनकर चिढ जाता है। सबसे दिलचस्प हैं बगाली बाबू जो शेर देखकर पेशाब कर देते हैं, बेहोश हो जाते है और होश मे आने पर मरे शेर को लात मार कर कहते हैं, "ओफ ! यही हमको बेहोश किया बदमैश !"

'चक्करदार खून' (१९१५) मे हम एक दूसरे ही प्रकार का जासूस पाते हैं, जो अपराध का पता लगाने का नया तरीका अपनाता है। इन्दरसिह एक जवान कान्स्टेबिल है। हत्या होने पर वह घटनास्थल की जाँच करता है और केवल पाँव के निशान देखता है। उसकी सूझ इतनी पैनी और समझ इतनी अनोखी है कि वह केवल एक सूत से सारी गुत्थियो को सुलझाता है। पैरों के बीच की दूरी से वह यह अनुमान लगा लेता है कि कौन स्त्री का पैर है कौन मर्द का। अँगुलियो के निशान की गहराई से वह झट जान लेता है कि लौटती बार स्त्री तेज से भागी है। वह आगे बताता है कि दो स्त्रियाँ आई थी, उनमे एक मालकिन है, एक लौडी, पहले छोटे पाँव वाली भागी है तब बड़े पाँव वाली, इसलिए छोटे पाँव वाली मालकिन है, बड़े पाँव वाली लौंडी। यहाँ तक कि वह खूनी की उम्र, कद, पोशाक का भी सही-सही अन्दाज कर लेता है। वह कहता है, "जैसे अक्षरो से पोथी पढ़ी जाती है वैसे ही इन निशानो से मैं इस मामले का बहुत कुछ पढ़ गया हूँ।" सूक्ष्म निरीक्षण से युक्तियुक्त निष्कर्ष निकालने की यह पद्धति उस लोककथा की याद दिलाती है जिसमे एक ओर की खाई हुई घास, धूल पर पड़े हुए निशान से ऊँट के काने और लंगड़े होने का अनुमान किया गया था।

साहसिक उपन्यास

गहमरीजी की मौलिक प्रतिभा का प्रकाश 'भोजपुर की ठगी' (१९१२) में मिलता है। यह उनका जीवित उपन्यास और भोजपुरी अंचल का अमर

काव्य है। इसका आरम्भ ही हिन्दी-उपन्यास का एक सुन्दर, मोहक और व्यंजक आरम्भ है।

अगर आकाश की शोभा देखना चाहते हो तो शरत ऋतु मे देखो, अगर चन्द्रमा की शोभा देखना चाहते हो तो शरत ऋतु मे देखो, अगर तालाब की शोभा देखना चाहते हो तो शरत ऋतु मे देखो, अगर खेतों की शोभा देखना चाहते हो, अगर सब शोभा एक साथ देखना चाहते हो तो शरत ऋतु मे देखो। आकाश मे चन्द्रमा की खिलखिलाहट, तालाब मे कमल की खिलखिलाहट, खेतो मे हरियाली, घर मे नवरात्र की धूम, शरत ऋतु मे सभी सुन्दर हैं, मनोहर हैं। इसी मनोहर समय मे दुर्गापूजा की छुट्टी पाकर मुशी हरप्रकाशलाल नाव मे घर आ रहे थे।

लेखक पाठक और पात्र को देहाती दुनिया मे ले जाता है, जहाँ प्रकृति और मनुष्य स्नेह-सूत्र मे आबद्ध है। मुंशीजी नाव से उतरे, मैदान होकर आगे बढ़े और :

अनगिनित तारो से जड़ा हुआ आकाश, चाँदनी मे शराबोर खेतो की हरियाली और शीतल मन्द बयार उनकी खुशी चौगुनी करने लगी। मुंशीजी चलते-चलते गाने लगे—अगर हम बागवाँ होते तो गुलशन को लुटा देते ..."

उपन्यास का वातावरण गीतमय है। प्रकृति का रूप इस प्रकार अंकित किया गया है कि वर्णन कथा का अंग हो गया है। २७वें परिच्छेद मे चाँदनी को इस तरह शब्दो मे बाँधा गया है, "पेडो पर चाँदनी, फुलवारी मे चाँदनी, हरी-हरी घासो पर चाँदनी—चारो ओर चाँदनी ही चमक रही है।" मानवीय नाटक का सजीव दृश्य बनने मे प्राकृतिक सौन्दर्य की सार्थकता है।

पृष्ठभूमि के यथार्थ चित्रण मे स्थानीय रंग का उभार है। "डुमराव का तीन कोस तक फैला हुआ मैदान धू-धू कर रहा है।" "पलास के पेड़ो से घिरी हुई पोखरी", "गढ़ के किनारे एक पैर उठाये चुपचाप जल की तरफ ताकने वाला बगुला", नदी-किनारे निर्जन वन, वन के बीच ताल, ताल के आसपास बाँस और बेंत का झुरमुट, रात मे जुगनुओ से जगमगाते पीपल के पेड़, "चाँदनी मे शराबोर खेतो की हरियाली",—ये सभी किसी स्वप्न-लोक के चित्र नही है।

आजकल के आंचलिक उपन्यासकार स्थानीय रंग का उपयोग करते

हैं, गहमरीजी ने उसका निर्माण किया है। उन्होने एक ठेठ भोजपुरी गाँव और उसके पडोस को कथा का केन्द्र बनाकर वहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता, माँझियो की बोल-चाल, लोकोक्ति, पर्व-त्योहार, उल्लास, उमग, लोक-विश्वास आदि का सच्चा वर्णन किया है। एक स्थान पर एक ऋतु की सारी शोभा-सुषमा सिमट आई है। देहात मे दशहरे के दिनो मे जमीदार के नौबतखाने मे शहनाई बजती हैं, ठाकुरबाडी मे शख-घडियाल बजते है और महफिल मे गुलाबजल छिडका जाता है और उधर गरीबो मे राम-लीला की धूम मची हुई है।

यथार्थ और रोमास की धूप-छाँह अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करती है। खडहर के पास जल-लताओ से भरी बावली मे गूँजरी डेंगी पर डाँड चलाती हुई मीठे-मीठे गीत गाती है। उसका प्रेमी भोला डाकू बाँस-वन मे तालाब के बीच ताड के पत्ते से ढके मचान पर रहता है, जहाँ एक चिराग टिमटिमा उठता है और काले-काले आदमियो की भयावनी शक्लें चमक जाती है। गूँजरी के आस-पास का वातावरण हृदय मे मधुर वेदना भर देता है। भोला डाकू का निवास उसके अनुरूप ही भयंकर है। अँधेरा स्थान उनके प्रेम का साम्राज्य है। प्रकृति की गोद मे नर-नारी की आदिम प्रवृत्ति खेलती है। तारों-भरी रात मे ताड के पेड़ो के बीच तालाब के घाट पर जब गूँजरी पैर फैलाये गाती है तब पास से गुजरता हुआ भोला गीत की गूँजती हुई कड़ी सुनकर ठिठक जाता है, मुस्कुरा उठता है और चुपचाप आकर पीछे से उसकी आँखें बन्द कर देता है। कभी गूँजरी खुद पानी में कूद पड़ती है, कभी भोला को पानी मे धकेल देती है। उसकी शोखी, शरारत, चंचलता और निर्भीकता मे एक अजीब आकर्षण है। दोनों प्रेमी-प्रेमिका की बातचीत मे मधुर ओज का पुट रहता है, जो गोर्की के पात्रो के प्रेमालाप का स्मरण दिलाता है।

गूँजरी और भोला का स्वच्छन्द प्रेम स्वच्छन्द वातावरण मे पलता है, मुशी हर प्रकाशलाल और पार्वती का दाम्पत्य प्रेम जो लेखक के शब्दों मे "स्वर्गीय प्रम" है, परिवार की सीमा मे अभिव्यक्ति पाता है। सच्चे प्रेमियो की भाँति गहमरीजी की व्यापक दृष्टि यथार्थ जीवन मे ही रोमानी रंग खोज लेती है। पूजा का वर्तन साफ करती हुई पार्वती मुंशीजी को सुन्दर और सुकुमार लगती है। "उसके मांग के दोनो ओर घूंघरवाले बाल लटक कर मद पवन से धीरे-धीरे हिल रहें हैं और ललाट तथा नाक पर दो एक

बूँद पसीना और गालो पर ललाई आ जाने से मुँह की शोभा अपूर्व हो गई है।" पार्वती का यह साधारण लौकिक रूप उन्हे "अपूर्व अलौकिक" लगता है।

उपन्यास मे समकालीन समाज की समस्या नहीं है किन्तु विशिष्ट स्थान और विशिष्ट काल की पृष्ठभूमि के कारण समाज और पात्र परस्पर सम्बद्ध हैं। मुख्य वर्ण्य विषय डकैती और चोरी है। भोला पछी को कार्न-वालिस के समय का डाकू बताया गया है। इससे उपन्यास का घटनाकाल अठारहवी शताब्दी होता है। कम्पनी के शासन-काल मे ठगी और डकैती का दौर-दौरा था। इनसे उत्पन्न होने वाली अराजकता और अव्यस्था का जो वर्णन किया गया है उसके मूल मे कोई महत्त्वपूर्ण उद्देश्य परिलक्षित नही होता है। ऐसा लगता है कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उपयोग कहानी को रोचक और रोमानी बनाने के लिए किया गया है। किंवदतियो के आधार पर भोला पछी के अड्डे और नौरतन के खण्डहर के साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध जोडा गया है। साहसिक उपन्यास को ऐतिहासिक रग देने का प्रयास सफल नही हुआ है। सच तो यह है कि लेखक का ध्यान तथ्यो के आधार पर अतीत के पुनर्निर्माण की ओर नही है। उसने खडहर मे पीपल की डाल पर बाल सुखाने वाली भूतनी के सम्बन्ध मे लोक-चर्चा का उल्लेख लोमहर्षक वाता-वरण की सृष्टि के लिए ही किया है। कुछ उपन्यासकार वातावरण से, कुछ घटना से कथानक को रोचक बनाते हैं। गहमरीजी दोनो से सहायता लेते हैं।

कहानी मे साहसिकता और प्रेम, रहस्य और रोमाच, करुणा और हास्य रह-रह कर पाठको का मनोरजन करते हैं। भाषा, घटना, क्रिया और भाव का प्रत्यक्षीकरण कर देती है। शैली मे सौन्दर्य, शक्ति और प्रवाह है। उसका चमत्कार वर्णन, वार्तालाप, कथा तीनो मे समान रूप से देखने को मिलता है।

इस प्रकार उपन्यास की खूबी कहानी मे ही नही, कहानी कहने की कला मे भी है। कविता की सुन्दरता इसमे है कि अर्थ न तो पूरा खोला जाय और न पूरा छिपा रखा जाय बल्कि कुछ खोल दिया जाय और कुछ छिपा लिया जाय। इस कहानी मे भी कुछ रहस्य खोल दिया गया है और कुछ गुप्त रखा गया है। गूँजरी भगवती है और भोला पछी भोला राय है। भोला राय की शादी भगवती के साथ हुई थी। उसने अपनी पत्नी को देखा नहीं था केवल यह सुना था कि वह काली है इसलिए वह घर छोड़कर डाकू बन गया था।

भगवती उसकी खोज मे आई थी और गूँजरी नाम रखकर बिद की लड़की के रूप मे रहती थी। इन बातो की जानकारी अन्त में होती है। गूँजरी की बातचीत और व्यवहार से यह मालूम नही होता कि वह भगवती है। भोला पछी की भाँति पाठक भी भ्रम मे रहता है। पात्र और पाठक दोनो को इस तथ्य से अपरिचित रखा गया है और उस समय अवगत कराया गया है जब उसकी आवश्यकता थी। उपन्यास के अन्तिम पृष्ठो मे यह भेद मालूम होने पर पाठक पीछे मुड कर देखता है तो पाता है कि गूँजरी और भोला पछी की बातचीत मे उनके सम्बन्ध की थोडी झलक पहले ही दी जा चकी थी। इसके विपरीत भोला पछी का पण्डित बनना पाठक को पहले से ही ज्ञात रहता है लेकिन पात्र (हरप्रकाशलाल) को ज्ञात नही है। इसलिए भोलापछी और हरप्रकाशलाल का वार्तालाप सुनने मे बडा मजा आता है। भोला पछी का पण्डित रघुवीर दुबे बनकर 'राम जी की इच्छा से' बार-बार कहना नाटकीय व्यग्य का अच्छा उदाहरण है। बनावटी वेशभूषा से बनावटी बातचीत अधिक प्रिय है। भोला कैसे डाकू बना, भगवती कैसे उसके पास आई और उससे मिलकर कहाँ चली गई, हीरासिंह और उसके नौकरो का क्या हुआ आदि बाते पाठको के अनुमान के लिए छोड दी गई हैं।

रहस्य के उद्घाटन मे नैतिक-सामाजिक दृष्टिकोण निहित है। गूँजरी और भोला पछी का जो प्रेम डाकू और ग्रामयुवती का प्रेय था वह रहस्य खुलने पर पति-पत्नी का प्रेम बन जाता है किन्तु अन्तिम अश पढने पर पूर्वांश का रस फीका पड़ जाता है। कथानक और चरित्र का सन्तुलन स्तुत्य है। एक भी पात्र ऐसा नही है जो फालतू हो और घटना को लक्ष्य की ओर ले जाने मे महायक न हो। माँझी और दासी जैसे पात्र भी अपनी बातचीत और क्रिया से परिस्थिति को सत्याभास प्रदान करते हैं।

प्रधान पात्रो का प्रधान गुण साहस है, इसलिए वे सजीव है। भोला पंछी का चरित्र परिवर्तनशील है। वह निर्मम डाकू होकर भी पागल प्रेमी है। वह गूँजरी के लिए हार चुरा कर लाता है, उसकी निठुराई पर खीझ कर उसकी झोपडी में आग लगा लेता है और बच्चे की तरह फूट-फूट कर रोने भी लगता है। जो इतना साहसी, वीर, और बलवान है वह प्रेम के चरणों मे सिर नवा देता है। वह गूँजरी की प्रेरणा से डकैती छोड़ देता है और पश्चाताप की आग मे जलकर पवित्र बनता है। उससे अधिक भयकर हीरासिंह है। वह कहने के लिए नामी जमीदार, महान दानी, परम वैष्णव

और पक्का भक्त है डाकुओं का सरदार, निष्ठुर, धूर्त, कपटी और लोभी। उसके डाकू बनने का कारण धन का अभाव नही बल्कि धन का लोभ है। भोला पछी के शब्दो मे "हीरासिह नर रूपी राक्षस है और हरप्रकाश लाल मनुष्य देहधारी देवता है"। हरप्रकाशलाल मे बल के साथ-साथ बुद्धि भी है। वह देश को डाकुओ से छुटकारा दिलाना चाहता है। कष्ट भोगने के बदले उसके मूल का उच्छेद कर देने मे उसे विश्वास है। उपन्यासकार को मानवता में आस्था है। उसने अच्छे पात्र की सृष्टि की है और बुरे पात्र को अच्छा बना दिया है। साधारणत: अच्छे पात्र कठपुतले होते हैं पर हरप्रकाश लाल उपन्यासकार के आदश का प्रतीक होकर भी प्राणमय है। साहसिक उपन्यास का नायक बहुधा अपराधी होता है। इस उपन्यास का नायक हरप्रकाश लाल है, यद्यपि भोला पछी अपनी भावुकता और उदारता के कारण नायक के निकट आ गया है।

अर्ध मौलिक उपन्यास

गहमरीजी के कुछ उपन्यासों के सम्बन्ध मे कभी-कभी यह अनुमान करना कठिन हो जाता है कि वे मौलिक हैं अथवा अर्ध मौलिक। पात्रो मे नाम वर्णन की भाषा और वातावरण के स्वरूप पर ध्यान देने से ही कुछ निर्णय किया जा सकता है। अर्ध मौलिक जासूसी उपन्यासो मे 'मायावी', 'जादूगरनी', और 'मायाविनी' केवल इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि इनमे कामरूप की चिर-युवती जादूगरनी जुमेलिया का चित्र है। अन्तिम दो उपन्यासो में जुमेलिया और जासूस देवेन्द्र का घात-प्रतिघात चलता है, जो उनका प्रधान आकर्षण है। जासूसी से अधिक रोचकता प्रतिकार मे है।

जुमेलिया जितनी ही भयंकर है उतनी ही सुन्दर है। उसे शराब पीने और मनुष्य के खून से होली खेलने में मजा आता है। वह एक रात में अनेक बार हत्या-उत्सव मनाती है। वह जासूस से ही प्रेम की भीख माँगती है और उसी की स्त्री को चुराकर लापता कर देती है। कभी वह अपने प्रिय शत्रु को मारकर भूल जाना चाहती है, कभी उसके हाथ से मरना चाहती है और अन्त मे इसे दुख की मौत समझकर आत्महत्या कर लेती है। जब वह देवेन्द्र के हाथ से मरने के लिए तैयार होती है उस नाटकीय क्षण मे उसके प्रेम का उदात्त रूप दर्शनीय है :

निर्दयी, निष्ठुर देवेन्द्र ! मेरी सुन्दर छाती मे अपना हथियार पार करो हाजिर हूँ··· ·····। इतना कहकर जुमेलिया ने छाती का कपड़ा और चोली उतार कर अलग किया और घुटने के बल बैठकर उघारी छाती देवेन्द्र

को दिखाने लगी।······जो थोड़ी देर पहले पिशाचिनी थी उसका इतना परिवर्तन देखकर देवेन्द्र काँप उठे, मुँह से बात नहीं निकली।

निरूपण

गहमरीजी के उपन्यास की जान उनकी भाषा है। उनकी शैली उनके व्यक्तित्व का हस्ताक्षर तो है ही, उनके विषय के सर्वथा उपयुक्त भी है। यदि प्रेमचन्द की कलम से लिखने का दावा कोई उपन्यासकार कर सकता है तो गहमरीजी ही कर सकते हैं। उनकी शैली मे सहज सरलता भी है और साहित्यिक सुन्दरता भी। उसकी सरसता का स्रोत लोक-जीवन है, मुद्रित पुस्तक नही। वह ग्रामीण शब्दो, मुहावरो और उपमाओ से शृंगार कर नाचती, गाती है और कहानी तथा पात्रो मे जीवन डालती है। उससे वार्तालाप मे स्वाभाविकता और वर्णन मे चित्रमयता आती है। खत्रीजी की भाषा सरल किन्तु रसहीन है, गोस्वामीजी की भाषा मे रस है तो प्रवाह नहीं है।

यदि उपन्यास की कला झूठ बोलने की कला है तो इस कला मे गहमरीजी निपुण हैं। उनका कहना था कि "जिसका उपन्यास पढ़कर पाठक ने समझ लिया कि सब सोलहो आने सच है उसकी लेखनी सफल-परिश्रम हुई समझना चाहिए।"[5] वे झूठ को सच बनाकर साहित्यिक धोखा देते हैं, जिसमे आत्मकथा-शैली से उन्हें विशेष सहायता मिलती है। अनेक पात्रो से कहानी कहवाने से ऊब पैदा होती है। गहमरीजी अपने पात्रो से बातचीत करवाकर कहानी को आगे बढाते है। वे पहले पहेली प्रस्तुत करते हैं और उसे उपयुक्त अवसर पर उपयुक्त पात्र की सहायता से सुलझाते हैं। वे नाटकीय क्षण में खोज की प्रक्रिया को स्थगित कर वर्णन करने मे उलझ जाते है। कथा के क्रमभग से जो कमी होती है वह वर्णन द्वारा पूरी हो जाती है। उनकी वर्णन-शक्ति शब्दचित्र प्रस्तुत करने मे स्पष्ट है। वे सूक्ष्म विवरण से भय और रहस्य का वातावरण निर्मित करने मे कुशल है। वे अन्त को स्थगित करने के लिए अप्रासगिक बातो की चर्चा नही करते। इससे कथा का प्रवाह अनवरुद्ध रहता है। उनके उपन्यास का आरम्भ अत्यन्त रोचक होता है। वे अक्सर किसी रोमाचक दृश्य के मध्यभाग से आरम्भ करते है।

उनका कथानक विशेष जटिल नही होता है, यद्यपि वे जटिल कथानक के निर्माण मे विफल नही होते। उन्हें छोटी कहानी अधिक प्रिय है। उनके

उपन्यास छोटे-छोटे है । उन्होने अन्य भाषाओ के उपन्यासो के कथानक लिए हैं पर उनके गठन मे अपनी कला का उपयोग किया है । उन्होंने एक ही कथा को दुहराया है । इस दोष का परिहार लेखन-शैली से कुछ अशो मे हो गया है । सनसनीखेज मामलो के बीच भावात्मक वातावरण, नाटकीय स्थिति और प्राकृतिक दृश्य मन को मुग्ध कर लेते हैं । पाठक का ध्यान केवल कथा के विकास पर नही रहता । दैनिक घटनाओ मे शाश्वत भावो का स्थान रहने से एकरसता टूट जाती है ।

उनके पात्र साधारण परिस्थितियो मे रहने वाले साधारण नर-नारी है । वे उनके प्रति आत्मीयता रखते हुए भी एक कलाकार की तटस्थता के साथ उनकी दुर्बलता और सबलता का उद्घाटन करते है । उनके जासूस वास्तविक, जीवन्त एव मानवीय होते हैं । वे कठपुतले न होकर अपना व्यक्तित्व रखते हैं । उनकी बातचीत और क्रिया मे रस भरा होता है । वे जादूगर नहीं होते कि उनका अनुमान सही ही हो । एक ही जासूस कई उपन्यासों मे प्रकट होकर भी प्रिय लगते है । सुजानसिंह जासूस होने के कारण नही बल्कि हँसमुख होने के कारण प्रभावशाली है । स्त्री-जासूसो को देखकर विश्वास नही होता, यद्यपि उनका अपना आकर्षण होता है ।

गहमरीजी उपन्यास को "अपने समय का इतिहास"[6] मानते थे । उनकी रचनाएँ समकालीन समाज का स्पष्ट और वास्तविक परिचय देती है । उन्होने विशिष्ट सामाजिक समस्याओ एव पारिवारिक जीवन के सामान्य रूप पर प्रकाश डाला तथा मध्यम और निम्न वर्गों के आचार-व्यवहार, आशा-आकाक्षा एव भय-विश्वास का चित्रण किया । उन्होंने नारी जाति के सुख-दुख को समझने की चेष्टा की और उन्हे वाणी दी ।

उनके उपन्यास से अपराधियो के रहस्यमय ससार की झाँकी मिलती है और समकालीन शासन-व्यवस्था का ज्ञान होता है । उनके घटनास्थल गाँव और शहर दोनो है । गाँव के प्राकृतिक और मानवीय दृश्य विशेष आकर्षक हैं । उन्होने पास-पड़ोस की घटनाओ का वर्णन किया है और बंगला-अंग्रेजी उपन्यासो के कथानक और पात्रो को हिन्दी-प्रदेश मे लाकर उनका अजनबीपन दूर कर दिया है । परिचित पृष्ठभूमि कथा को विश्वसनीयता के साथ-साथ सामाजिकता प्रदान करती है ।

गहमरीजी ने अपराध से सम्बन्धित सामाजिक और नैतिक प्रश्नो की

उपेक्षा नही की। उन्होने यह दिखाया है कि अपराध के मूल मे अर्थ, धर्म और काम है। उनका उद्देश्य केवल अपराधी की खोज करना और पहेली सुलझाना नही है। उनकी रचनाओ मे सामाजिक आलोचना है। वे न्याय और कानून पर व्यग्य तथा कुरीतियो और कुप्रथाओ पर प्रहार करते है। उन्होने केवल मनोरजन के लिए नही लिखा।

उनकी सोद्देश्यता उन्हे कानन डायल जैसे विदेशी लेखको से अलग करती है। कानन डायल का दृष्टिकोण शुष्क और वैज्ञानिक है। वह अन्याय से तटस्थ रहता है। वह अपराधी को अदालत मे लाकर सजा नही देता। गहमरीजी की नैतिक भावना दण्ड और पुरस्कार के वितरण मे अभिव्यक्ति पाती है। डायल की भाँति वे भी अपनी भाषा मे जासूसी उपन्यास के जादूगर हैं पर वे शरलाक होम जैसा अमर जासूस नही दे सके। दुबला-पतला, कोकीन और वायलिन का शौकीन तथा वेश बदलने में बेजोड होम अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप पाठक के मन पर छोड जाता है।

गहमरीजी के जासूसी उपन्यास मे उस उपन्यास की सभी विशेषताएँ तो हैं ही, साहित्य के सामान्य गुण भी हैं। वे बौद्धिक आनन्द प्रदान करने के अतिरिक्त भाव को उत्तेजित करते हैं। उनमे कौतूहल, आशका और भय के साथ-साथ प्रेम, भावुकता, करुणा और हास्य का पुट है। वे शक्ति और सौन्दर्य दोनो की अनुभूति तीव्र बनाते हैं तथा उत्कठा के साथ-साथ सद्प्रवृत्तियो को जगाते हैं। कहानी की उलझन मस्तिष्क को और जीवन की समस्या हृदय को प्रभावित करती है। कथानक और चरित्र के रहस्य का वह अश जो प्रकाशित नही किया जाता बल्कि पाठक के अनुमान के लिए छोड दिया जाता है अत्यन्त आकर्षक होता है क्योकि "साहित्य वह है जो व्याख्या के बाद शेष रहता है।"[7] उनके उपन्यास अपनी लेखन-शैली, कथा-कौशल, चरित्र-चित्रण के कारण साहित्यिक मूल्य रखते हैं। उनके सम्बन्ध मे प्रेमचन्द का यह कथन सार्थक है :

जासूसी उपन्यास अद्भुत होता है, लेकिन हम उसे साहित्य उसी वक्त कहेंगे जब उसमें सुन्दर का समावेश हो, खूनी का पता लगाने के लिए सतत उद्योग, नाना प्रकार के कष्टों का झेलना, न्याय मर्यादा की रक्षा करना, ये भाव रहें जो इस अद्भुत रस की रचना को सुन्दर बनाते हैं।[8]

हिन्दी के जासूसी उपन्यासकारों में गहमरीजी का अन्यतम स्थान है।

इन्होने सबसे अधिक और सबसे सुन्दर जासूसी उपन्यास लिखे। इनका अंशदान प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इन्होने इस प्रकार के उपन्यास का विकास किया, उसकी सामान्य प्रवृत्तियाँ स्थिर कीं और सम्भावनाओ का विस्तार किया। इनके प्रयास से उसकी दो मुख्य धाराएँ प्रवाहित हुई। एक धारा वस्तु को प्रमुखता देकर चली, एक शिल्प को। प्रथम मे घटनाओ का जाल बुना जाता है, द्वितीय मे एक के बाद दूसरे सूत्र का क्रम आता रहता है।

टिप्पणियाँ

१– 'साहित्य-सन्देश', उपन्यास-विशेषांक, अक्टूबर-नवम्बर, १९४०, पृ० १७३

२– वही

३– 'बेकसूर की फाँसी' की भूमिका

४– 'नाटक और उपन्यास', प्र० हि० सा० स०, कार्य-विवरण–२, पृ० ९५

५– वही

६– 'गेरुआ बाबा' की भूमिका

7– "Literature is what is left when the explanations are over."

—"द आइडिया इन फिक्शन" मे उद्धृत, पृ० १४३

८– 'साहित्य का उद्देश्य'

१

मूल धारा

यथार्थवादी परम्परा

हिन्दी-उपन्यास की मूल और मुख्य धारा सामाजिक यथार्थ की धारा है। श्रद्धाराम फिल्लौरी से लेकर यशपाल तक अधिकाश उपन्यासकारो ने समाज और उसमे रहने वाले नर-नारी का यथार्थ चित्रण किया है। कुछ उपन्यासकारो ने समाज को इतनी महत्ता दी है कि वह एक पात्र बन गया है। हमारे श्रेष्ठ और सुन्दर उपन्यास सामाजिक उपन्यास ही हैं। अन्य प्रकार के उपन्यासो मे भी सामाजिक यथार्थ का अभाव नही है।

उद्‌गम

कला अनुकृति है और अनुकरण करना मनुष्य का स्वभाव है, अतः कला और यथार्थ का सम्बन्ध बहुत पुराना है। परन्तु आधुनिक अर्थ मे यथार्थवाद का जन्म उन्नीसवी शताब्दी मे हुआ। भारतेन्दु-युग यथार्थवाद का युग था, जब साहित्य के सभी विभागो में उसकी प्रतिष्ठा हुई और उपन्यास में तो उसने अपना स्थान ही पा लिया। यह नवल, नमनीय साहित्यांग उसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त था। उसे अबाध गति और नया रूप उपन्यास से ही मिला। दोनो परस्पर इतने सम्बद्ध हैं कि एक के बिना दूसरा जी नही सकता।

कथा साहित्य की पुरानी परम्परा मे जीवन की वास्तविकता का अभाव नहीं था। उसमें समकालीन समाज का रेखाचित्र ('दशकुमारचरित'), अतृप्त वासना का चटकीला रंग ('शुक बहत्तरी'), समाज के निम्न स्तर के पात्र ('दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता'), सजीव वर्णन ('नासिकेतोपाख्यान)

और स्वाभाविक वार्तालाप ('रानी केतकी की कहानी') आदि यथार्थता के तत्व है तथापि उसे यथार्थवादी नही कहा जा सकता। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि यथार्थवाद ही वह रेखा है जो आधुनिक उपन्यास को पुरानी कथाओ से अलग करती है। आधुनिक उपन्यास मे यथार्थ ही नही है, रोमास भी है परन्तु जहाँ वह रोमानी है वहाँ भी पुरानी रोमानी कथाओ से भिन्न है। उसमे समकालीन समाज की गम्भीर समस्याओ और पारिवारिक जीवन के विविध पक्षो का प्रतिबिम्ब है और उसका आकर्षण परिचित परिवेश मे साधारण नर-नारी के क्रियाकलाप पर निर्भर है।

यथार्थवादी प्रवृत्ति अन्य भाषाओ की भी देन नही है। हिन्दी का सम्बन्ध विशेषतया अग्रेजी एव बगला उपन्यासो से था। बगला उपन्यास की आत्मा भावुकतावाद है, जो यथार्थवाद का प्रतिलोम है। उसके प्रभाव का प्रश्न ही नही उठता। जब हिन्दी-उपन्यास का उदय हो रहा था, अग्रेजी उपन्यास का विक्टोरियाकाल समाप्तप्राय था। हिन्दी मे उपन्यास-लेखन अग्रेजी ढग पर ही शुरू हुआ पर विक्टोरिया काल के उपन्यासो के सामाजिक तत्त्व गृहीत नही हुए। अंग्रेजी से रोमानी उपन्यासो के अनुवाद बहुत हुए, सामाजिक उपन्यासो के कम।

यूरोप मे उन्नीसवी सदी के मध्य मे यथार्थवाद का आन्दोलन उठा था। वह जिस वेग से आगे बढा, उसी वेग से उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। शताब्दी के अन्तिम दशक मे रोमांस की ऐसी हिलोर उठी कि उसके अन्त तक चरम सीमा पर पहुँच गई। हिन्दी-उपन्यास की प्रारम्भिक विकास-रेखा ऐसी ही है। उसमे यथार्थवाद का आगमन पूर्व की रोमानी कथा-कहानी की प्रतिक्रिया मे हुआ। भारतेन्दु-युग के उपन्यास-लेखक रोमानी न होकर यथार्थवादी थे। लगभग एक दशक तक यथार्थवाद की प्रधानता रही, उन्नीसवी सदी के अन्तिम दशक मे रोमानी उपन्यास लिखने की ओर रुचि हुई। हिन्दी-उपन्यास के इस परिवर्तन मे समकालीन पश्चिमी उपन्यास के परिवर्तन की प्रतिध्वनि नही है। यूरोप मे यथार्थ से रोमास की ओर लौटने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि यथार्थवादी भी रोमानी उपन्यास लिखने लगे। यहाँ भारतेन्दु-काल मे सामाजिक यथार्थ की जो धारा चली वह अर्ध ऐतिहासिक, तिलस्मी-ऐयारी और जासूसी धाराओ मे कुछ मिल गई, कुछ दब गई और अलग होकर भी बहती रही। सामाजिक यथार्थ के रूप मे हिन्दी-उपन्यास का प्रथम एव महान वेग फूटा था, इसलिए उसकी धारा मंद होने पर भी जीवित रही।

हिन्दी उपन्यासकार समकालीन पाश्चात्य साहित्यिक गतिविधि से प्रभावित नही हो सके। उनमे कुछ ऐसे अवश्य हैं जिनकी रचनाओ मे प्रकृत-वाद की कुछ प्रवृत्तियाँ हैं किन्तु उनके और पश्चिम के प्रकृतवादियो के कला-गत आदर्श भिन्न हैं। हिन्दी पर यूरोपीय यथार्थवाद का प्रभाव अंग्रेजी माध्यम से ही सभव था परन्तु अंग्रेजी उपन्यास ने स्वय उसका विशेष स्वागत नही किया। अत उससे हिन्दी-उपन्यास का प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध नही है।

यदि सामाजिक यथार्थवाद की परम्परा हिन्दी-लेखको को उत्तरा-धिकार या उधार के रूप मे प्राप्त नही हुई तो कहाँ से आई ? उपन्यास की विधा विदेश मे निश्चय ही आई पर उसकी स्वस्थ परम्परा और प्रेरक सिद्धात राष्ट्रीय देन हैं। दूसरे शब्दो मे, सामाजिक यथार्थ लेखक की चेतना, पाठक की रुचि और युग की परिस्थिति की उपज है।

उपन्यास का नवविकास सामाजिक युग मे हुआ। उस युग के लेखकों ने समाज की दशा देखी थी, देश का भ्रमण किया था और उनके विषय मे चिन्तन-मनन किया था। फलतः उन्हे स्वस्थ सामाजिक दृष्टि मिली। जब व्यक्ति यह सोचता है कि वह सामाजिक प्राणी है, उसे समाज के साथ हँसना-रोना है और समाज के बाहर उसका अस्तित्व कोई अर्थ नही रखता है तब उसमे सामाजिक जीवन के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण का उन्मेष होता है। रीतिकाल के कवि महलों के कवि थे। वे अपने आश्रयदाताओ के समान जन-जीवन से दूर रहने मे अपनी सार्थकता समझते थे। उनका कोई दृष्टि-कोण भी था तो वह सीमित और रुग्ण था। उनकी कविता समाज को सदेश देने के बदले सपन्न वर्ग के इन्गित पर नवरगिनी वारांगना की तरह थिरकने आई थी। अलकार एवं छंद के प्रति उनका मोह उनकी सामाजिक उदासीनता का परिचायक था। वे बँधी हुई लीक पर चलनेवाले थे, इसलिए उनकी अभिव्यक्ति मे व्यक्तिगत विशेषता नही थी। उनकी ऐहिकता में भी एकांगिता थी। नवयुग के लेखक व्यक्ति के रूप मे जिन्दादिल और फक्कड होते हुए भी साहित्यकार के रूप मे सोद्देश्य एव सजग थे। उन्हे जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त था, जिससे उनमे सच्चाई और गम्भीरता थी। उनमे अधिकाश निर्भीक पत्रकार थे तथा लोकजीवन के निकट रहने के कारण लोक-दृष्टि से परिचित और उसके सच्चे प्रतिनिधि थे। वे महान सुधार-आन्दोलनो के बीच पले और पश्चिमी विचारो के जीवित सम्पर्क मे आये। उन्हें युग की भावगति का पूरा ज्ञान था। वे सामयिक विचार-प्रवाह मे पड़कर

अपने व्यक्तित्व का विसर्जन नही कर सके बल्कि बौद्धिक क्रांति के अग्रदूत बनकर रहे। वे विशुद्ध साहित्य के उपासक न होकर समाज, धर्म और राजनीति के क्षेत्रो को अपनी प्रतिभा से उद्भासित करते रहे। इस प्रकार आरम्भिक उपन्यासकार तीव्र सामाजिक चेतना से सवलित थे।

सामाजिक चेतना किसी साहित्यकार के लिए आवश्यक है तो उपन्यासकार के लिए अनिवार्य है यथार्थवादी प्रवृत्ति सामाजिक चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति है। युग की परिस्थिति से उसे पोषण मिला। सामंतवाद के भग्नावशेष पर मध्यवर्ग के उदय से जनवादी भावना पल्लवित हुई, जिसका साहित्यिक प्रतिफलन उपन्यास मे हुआ। भारतीय नवजागरण ने ईश्वर, धर्म और दर्शन की अपेक्षा मानवता, ऐहिकता और बौद्धिकता को अधिक महत्त्व दिया। दिनकरजी के मत मे "उन्नीसवी सती का नवोत्थान भारत मे प्रवृत्तिवाद का ही अनुपम उत्थान था"।[1] नवोत्थान यथार्थवाद के लिए अनुकूल सिद्ध हुआ। लोकरुचि जीवन के यथार्थ की ओर थी, अत शाश्वत और उदात्त के बदले सामयिक और साधारण को स्थान मिला। यथार्थवाद साहित्य को समय के अनुकूल बनाने का प्रयास था और इसके लिए साहित्य के विभिन्न रूपो में उपन्यास अत्यधिक समर्थ था। काव्य शाश्वत समस्या लेकर चलता है, उपन्यास सामयिक समस्या को प्रधानता देता है। लोकरुचि मे परिवर्तन होने से साहित्य-सम्बन्धी सिद्धान्तों मे परिवर्तन अवश्यभावी था। भारतेंदु का यह सिद्धान्त[2] कि "स्वाभाविकी रचना ही इस काल के सभ्यगण को हृदयग्राहिणी है, इससे अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकीय दृश्य-काव्य का प्रणयन करना उचित नहीं है" नाटक के लिए ही नही, उपन्यास के लिए भी मान्य हुआ। तदनुसार उपन्यास मे मानव-समाज का दिग्दर्शन आवश्यक समझा गया। नये समाज के लिए नये साहित्य की आवश्यकता ने सामाजिक उपन्यास को जीवन दिया। साहित्य की सामान्य प्रवृत्ति वस्तुवाद की ओर थी। यही कारण है कि उपन्यास का आरम्भ मे ही वस्तुवाद से सम्पर्क हो गया।

यथार्थवादी दृष्टिकोण

अनेक लेखको ने यथार्थवाद के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किए हैं और उसे अपनी रचनाओ में रूपायित भी किया है। पं० गौरीदत्त की "देवरानी और जेठानी की कहानी" पहली कथा-रचना है जिसमे यथार्थ के

प्रति आग्रह है। उसकी भूमिका मे कहा गया है कि "इस पुस्तक में ठीक-ठीक वही लिखा है जैसा आजकल बनियो के घर मे हो रहा है"। श्रद्धाराम फिल्लौरी ने "भाग्यवती" के वार्तालाप की योजना मे स्वाभाविकता पर ध्यान दिया है और भूमिका मे लिखा है, "जो कोई जैसे बोला उसी की बोली भरी हुई है"। श्रीनिवासदास ने "परीक्षागुरु" मे अपने नायक को "जैसा का तैसा" दिखाने के लिए बोलचाल की भाषा का व्यवहार करना आवश्यक समझा। भुवनेश्वर मिश्र के 'बलवत भूमिहार' की भूमिका से स्पष्ट है कि वे व्यक्ति और वातावरण का वस्तुनिष्ठ चित्रण करना चाहते हैं, "मैने उस चरित्र मे दोषारोपण नही किया है और न उसकी उत्तमना प्रकट करने की चेष्टा की है—पर जैसा मैंने उसे पाया है इस पुस्तक मे लिख दिया है"। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'चपला' मे' निवेदन' किया है कि वे "वंतमान शिथिल उच्छृंखल और बधविहीन समाज को यथावत चित्रित" कर रहे हैं। ज्यो का त्यो या 'यथावत चित्रित' करना वस्तुवाद का लक्ष्य होता है।

इन उक्तियो से स्पष्ट है कि उपन्यास-लेखको की रुझान यथार्थ की ओर पहले से ही रही है। उन्होने 'यथार्थवाद' शब्द का प्रयोग नही किया है पर 'ठीक-ठीक वही लिखा है', 'जो कोई जैसे बोला', 'जैसा का तैसा', 'जैसा मैंने पाया वैसा लिखा दिया है', 'यथावत चित्रित' ये वाक्याश उसके ही पर्याय है।

उनकी यथार्थ-सम्बन्धी धारणा, व्यापक स्वस्थ और सतुलित है। उनकी दृष्टि मे यथार्थ विषय और व्यजना दोनो मे है। उनकी रुचि यथातथ्य चित्रण में न होकर स्वाभाविक चित्रण मे है। वे कल्पना का झूठा रग चढाए बिना समाज का सच्चा रूप अकित करना चाहते हैं। वे व्यक्तिगत अनुभूति की अपेक्षा सामाजिक समस्या को विशेष महत्त्व देते हैं। वे अतीत या वर्तमान की रोमानी कथा लिखने के बदले अपने समय और समाज की परिस्थिति का वास्तविक अध्ययन प्रस्तुत करना चाहते है। उन्हे कठोर सत्य बोलना प्रिय है, घृणा का प्रचार करना अप्रिय। उन्होंने जहाँ बुराइयो और कुरीतियो का पर्दाफाश किया है, वहां मनुष्य की अच्छाई मे आस्था और भविष्य मे विश्वास प्रकट किया है। वे समाज की व्यवस्था के बदलते व्यक्ति के हृदय मे परिवर्तन करना चाहते है। वे समाज की प्रवृत्तियो को कल्याणकारी दिशा प्रदान कर सर्वोदय का स्वप्न देखते हैं, जो साहित्य का प्रयोजन होता है। उनके उपन्यास सुखांत और आशावादी हैं। वे घटनाओ और पात्रो के प्रस्तुतीकरण मे

वस्तु-निरठता रखते हुए भी अपने भाव-विचार को व्यक्त करते चलते हैं। उनका दृष्टिकोण नीतिवादी और सुधारवादी है। वे सत्य की विजय और असत्य की पराजय दिखाते हैं, यद्यपि वास्तविक जीवन मे ऐसा नही होता। उनका यथार्थ आदर्श से अभिन्न है। सच्चा यथार्थवाद आदर्शवाद का विरोधी नहीं होता। यथार्थ आदर्श को सजीव बनाता है और आदर्श यथार्थ को सार्थकता प्रदान करता है।

आधुनिक यथार्थवाद सिद्धान्त और प्रवृत्ति दोनो का रूप लेकर प्रकट हुआ। उसने उपन्यास की वस्तु और शिल्प मे महान परिवर्तन उपस्थित किया। वस्तु-पक्ष मे उससे ये विशेषताएँ मिली . नूनन विषयो का प्रतिपादन, साधारण परिस्थिति मे सामान्य नर-नारी का चित्रण, उपेक्षितो के प्रति सहानुभूति, स्थानीय रंग का गौरव और असुन्दर एव अपदार्थ की महत्ता। सूक्ष्म-सविस्तार वर्णन, पात्रोचित वार्तालाप, स्वाभाविक चरित्राकन, सरल भाषा-शैली और सामाजिक आलोचना उसकी कलात्मक देन है। उसने शिल्प की अपेक्षा वस्तु को अधिक महत्त्व दिया।

सामाजिक यथार्थवादियो ने जीवन को निकट से देखा और उसका वास्तविक रूप अकित किया परन्तु उसमे अपनी नैतिकता, रसिकता और भावुकता का समावेश किया। अत. उनकी रचनाओ मे तटस्थ विश्लेषण के साथ व्यक्तिगत प्रतिक्रिया मिली हुई है। उनका यथार्थ अतिरजित और आदर्शोन्मुख है। उन्होने कला की अपेक्षा सोद्देश्यता पर विशेष ध्यान दिया है। उनका उद्देश्य समाज का सुधार, निर्माण और कल्याण करना है अतः वे कलाकार न होकर प्रचारक हैं। जिस उपन्यास मे उन्होने मध्यवर्ग पर विचार किया है वह सही मानी मे सामाजिक दस्तावेज है। उन्होने कथा-सामग्री समाज के वर्गों से ली है पर मध्यवर्ग से उनका तादात्म्य है। निम्न वर्ग के प्रति भिन्नता का भाव होते हुए भी उनकी हार्दिक सहानुभूति है। उच्चवर्ग को उन्होने घृणा या उपहास की दृष्टि से देखा है और उससे खल-नायक का चुनाव किया है। उनके नायक-नायिका मुख्यतः उस वर्ग के हैं जिससे वे स्वय आए हैं। निम्नवर्ग के पात्र नायक-नायिका न होकर धूर्त या वफादार दास-दासी हैं। उन्हे प्रतिनिधि के रूप मे नही बल्कि व्यक्ति के रूप मे स्थान मिला है।

सामाजिक बनाम व्यक्तिवादी उपन्यास

सामाजिक उपन्यास में एक विशिष्ट काल के समाज का ही चित्र है।

उससे हमे समाज की रूपरेखा और समाज मे व्यक्ति के स्थान का बोध होता है। उसके पात्रो की सार्थकता इसमे है कि वे वर्ग के प्रतिनिधि है। वे परिचित और स्मरणीय हैं किन्तु उनका चित्रण सतही है। उपन्यास समाज मे व्यक्ति का साहित्यिक अध्ययन है, अत: सामाजिक उपन्यास उसका मानक रूप है। सामाजिक व्यक्तिवादी उपन्यास का अन्तर स्पष्ट है। सामाजिक उपन्यास मे व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक स्थान मिलता है और दोनो मे सक्रिय सम्बन्ध रहता है। उसकी विशिष्टता यह है कि उसमे समाज का सीधा और स्पष्ट प्रतिबिम्ब रहता है। व्यक्तिवादी उपन्यास मे व्यक्ति के मनोभाव और अनुभूति का विश्लेषण रहता है और समाज का चित्रण सीधा न होकर व्यक्तिगत जीवन के माध्यम से होता है। ब्रजनन्दन सहाय का 'सौदर्योपासक' पहला व्यक्तिवादी उपन्यास माना जा सकता है। उसकी परम्परा भावमूलक उपन्यास से आरम्भ होकर प्रेमचन्दोत्तर काल के मनोवैज्ञानिक उपन्यास मे परिणत हुई। जब कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास मे पात्र समाज से विछिन्न है तथा सामाजिक समस्या गौण और मनोवैज्ञानिक समस्या मुख्य हो गई है, आलोच्यकाल के भावमूलक उपन्यास मे व्यक्तिगत भाव के साथ सामाजिक सत्य भी है और पात्र परिस्थिति से प्रभावित है, इसलिए उन्हे सामाजिक उपन्यास की परम्परा मे भी रखा जाय तो अनुचित नही।

व्यवहार-सम्बन्धी उपन्यास

स्वरूप और जन्म

सामाजिक उपन्यास का एक रूप व्यवहार-सम्बन्धी उपन्यास है। उसमे सामाजिक यथार्थ और नैतिक आदर्श का समन्वय किया गया, समाज या परिवार के वातावरण मे व्यक्ति के आचरण पर दृष्टि डाली गई तथा नैतिक चेतना से घटनाओ और पात्रो की उद्‌भावना की गई। यह सूक्ष्म से स्थूल की ओर अग्रसर होने का प्रयास था। पात्रो के आचार-व्यवहार पर इतना ध्यान दिया गया कि उनके भाव-विचार का यथेष्ट प्रकाशन नही हो सका। आचार-सम्बन्धी वैयक्तिक मान्यता को मानदण्ड नही माना गया बल्कि पुराने मूल्यो को ही महत्त्व दिया गया। व्यक्ति और समूह की भावनाओं मे विरोध होने से जो सघर्ष उत्पन्न होता है और जिससे उपन्यास मे नाटकीयता आती है उसका वर्णन मार्मिकता के साथ नही हुआ परन्तु समकालीन समाज की परिस्थिति और विभिन्न वर्गों के नर-नारी के क्रियाकलाप का वास्तविक

रूप अंकित किया गया। चरित्र-चित्रण सतही हुआ पर कथानक की अपेक्षा पात्र और उसके परिवेश को प्रधानता मिली। पात्र प्ररूप न होकर प्रतीक हुए। पुरानी समाज-व्यवस्था के विघटन और नये समाज के उदय से नैतिक सकट उपस्थित हो गया था। ऐसी स्थिति मे सामाजिक व्यवहार के उभय पक्ष दिखाए गये, जो था और जो होना चाहिए था। मिथ्या आवरण को चीरकर सत्य का दिग्दर्शन कराया गया। आदर्श के निरूपण मे अतिवाद की अपेक्षा मानवतावाद को महत्त्व दिया गया।

प्रथम मौलिक उपन्यास 'मालती' (१८७५) प्रथम व्यवहार-सम्बन्धी उपन्यास भी है। उससे हिन्दी-उपन्यास की केन्द्रीय धारा का उद्घाटन हुआ। उसमे कुसगति से बिगडे हुए एक सेठ की कहानी कही गई है, जो 'परीक्षागुरु', 'सौ अजान एक सुजान', 'धूर्त रसिकलाल' आदि मे दुहराई गई। यह छोटी-सी अधूरी रचना उस दिशा का स्पष्ट सकेत करती है जिस ओर सामाजिक उपन्यास का विकास हुआ।

महाजनी सभ्यता के उदय से नगरो में भ्रष्टाचार, विलासिता, आडबर और धूर्तता की वृद्धि होने लगी तथा व्यक्ति समाज से कटकर अलग होने लगे। यही कारण है कि उपन्यासो मे पूजीपतियो की स्वेच्छाचारिता और रूपाजीवाओ की लीला की विशेष रूप से चर्चा हुई। सेठो और साहूकारो की दिनचर्या का वर्णन किया गया और अर्थ से उत्पन्न अनाचार का वास्तविक रूप दिखाया गया। 'मालती' से लेकर 'मेरी दुख गाथा' (१९१५) तक महाजनो के जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया।

वेश्याओं का चित्रण

उपन्यास-लेखको ने वेश्याओ को पात्र बनाकर उपस्थित किया है अथवा उनके जीवन का गम्भीर अध्ययन किया है। समष्टितः उन्होने तीन प्रकार के दृष्टिकोण व्यक्त किए हैं, नैतिक, सामाजिक और मानवतावादी। तदनुरूप उनका चित्रण अतिरजित, वस्तुपरक और आदर्शवादी हुआ है। उनमे से अधिकाश ने वेश्या को नारी न मानकर नागिन माना है और उसके रूप-रग, वेश-भूषा, हाव-भाव का वर्णन विस्तार से किया है पर उसके दुख-दैन्य के निदान और निराकरण की ओर कम ध्यान दिया है। उनकी सुधार-वादी भावना कहीं भी दबी नहीं है। उन्होंने वारागनाओ के बनावटी रूप, वाणी और प्रेम, का वर्णन इस उद्देश्य से किया है कि पाठक मनोरंजक शिक्षा

ग्रहण कर सकें।

अनेक उपन्यासों मे वेश्या और वेश्यागामी के मम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया। उनमे मेहता लज्जाराम शर्मा का 'धूर्त रसिकलाल', लाल कृष्णलाल की 'माधवी' और जयरामदास गुप्त का 'जहर का प्याला' उल्लेखनीय हैं। इनमे सेठ के लड़के मित्रो की कुसगति मे पडकर वेश्याओं की ओर आकृष्ट होते हैं। 'धूर्त रसिकलाल' का सोहनलाल जिस मित्र के फेर मे पड़कर अपनी सुन्दर, साध्वी पत्नी को छोड देता है वही उसकी पत्नी से प्रेम-निवेदन करता है और विफल होने पर उस पतिव्रता पर झूठा कलक लगाता है। सोहनलाल धूर्त मित्र के हाथ की गुडिया बनकर रोग मोल लेता है और एक दिन आत्म-हत्या करने के लिए तैयार हो जाना है। अन्त मे उसे स्त्री बचाकर सुमार्ग पर लाती है। उपन्यासकार का दृष्टिकोण सुधारवादी है किन्तु वेश्याप्रेम का दुष्परिणाम दिखाने के लिए दाम्पत्य जीवन पर उसका दूषित प्रभाव दिखाकर ही वह नही रह जाता, वेश्या के झूठे हाव-भाव का भी मोहक वर्णन करता है·

सोहनलाल पर महताब का कामवाण छोडना, कभी रूठना, कभी लज्जित होकर आँखे नीची कर लेना, कुचों का आधे से खोलकर छिपा लेना सोहनलाल को अधिक पीडित करता जाता था।

इस प्रकार के वर्णन से पाठको को विरक्ति के बदले आसक्ति होने की सम्भावना रहती है। 'माधवी' अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में सफल हुई है। इसका वेश्यागामी सेठ यौवन और धन दोनों से हाथ धोता है। वेश्या आग मे जल जाती है, जिससे उसके चेहरे पर दाग हो जाता है तथा बाल सफेद हो जाते हैं। सेठ का चाटुकार मित्र सेठ और वेश्या दोनो को बेवकूफ बनाकर स्वार्थ सिद्ध करता है और अन्त मे कोढी बनता है। कथा को एक निश्चित उद्देश्य से मोड़ दिया गया है, फिर भी चरित्र-चित्रण और वार्तालाप मे सजीवता है।

"जहर का प्याला" का नायक वेश्या के मोहजाल मे फँसकर कर्ज लेता है, मा-बाप के दिल पर चोट पहुँचाता है, पत्नी के गहने चुराता है, उसे मार डालता है और जेल जाता है। वह गिरता है, सँभलता है, फिर गिरता है और होश मे आता है। उसका मानसिक परिवर्तन स्वाभाविक ढंग से परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के बीच होता है। जेल जाने के समय वेश्या

के मुँह से उसे उपदेश दिलाकर उसका अपमान किया जाता है। उसका अन्त दुखद और शिक्षाप्रद है। गुप्तजी ने एक वेश्यागामी का वास्तविक चरित्र चित्रित किया है, उसे प्रमुख स्थान दिया है पर वेश्या के चरित्र का विश्लेषण करना भी वे नही भूल सके है। राजराजेश्वरी उपन्यास की नायिका बन गई है। नकली आँसू, बनावटी प्रेम, मीठी बातचीत उसके अमोघ अस्त्र है और वह उनका प्रयोग करना जानती है। वह जिससे एक बोसे के लिए पाँच सौ रुपये लेती है उसे ही दस रुपये माँगने पर दुतकार देती है। उसमे करुणा और ममता नही है। उसके हृदय मे प्यार की कुछ बूँदें शेष रह गई है जो वह अपने चिलमभरवा नौकर पर बरसाती है। यह एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक क्षतिपूर्ति है।

परम लोकप्रिय उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री और अवध नारायण ने वेश्या के मनोभाव का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। खत्रीजी की 'काजर की कोठरी' (१९०२) की बाँदी अपनी जिन बातों से अपने भाव को छिपाना चाहती है वे बातें ही उसके भाव को अच्छी तरह प्रकट कर देती हैं। वह प्रेम का अभिनय करना खूब जानती है। वह पारसनाथ को कहती है, "मैं तुम्हारी कसम खाकर कहती हूँ कि मुझे धन दौलत का कुछ भी ख्याल नही है, मैं तो केवल तुमको चाहती हूँ और तुम्हारे लिए जान तक देने को तैयार हूँ......मगर क्या करूँ अम्मा के मिजाज से लाचार हूँ इसी से जो कुछ तुम देते हो ले लेना पडता है।" पारसनाथ के जाने के बाद जब बाँदी की माँ उससे पूछती है "गया" तो झट जवाब देती है "हाँ, गया, कमबख्त जब आता है उठने का नाम ही नहीं लेता।" खत्रीजी की 'चन्द्रकान्ता सतति' की वेश्याएँ अविस्मरणीय हैं। वे जितनी ही सुन्दर हैं उतनी ही धूर्त भी।

'विमाता' की सोहाग और उसकी बूढ़ी माँ 'काजर की कोठरी' की बाँदी और उसकी बूढी माँ से मिलती-जुलती हैं। वे बडी चतुराई के साथ राजेश्वर से रुपये ऐंठती हैं और उसके धन से धनी बनती हैं। सोहाग एक सामान्य वेश्या है, जिसका प्रेम-व्यापार पैसे पर निर्भर है। जब राजेश्वर से पैसे नही मिलते, वह मजीद से नाता जोड़ लेती है। वह पहले राजेश्वर को जितना ही प्यार करती थी बाद मे उससे उतनी ही नफरत करने लगती है। राग और विराग दोनों मे वह आकर्षक लगती है। उसकी नैतिकता इसमे है कि वह जिससे पैसे लेती है उसके प्रति वफादार रहती है। उसका प्रेम एक जरूरत है, जिसमे कोमल भावना के लिए स्थान नही है। राजेश्वर उसे

अपने सम्पूर्ण हृदय से प्यार करता है लेकिन वह राजेश्वर को कितना प्यार करती है यह उसका हृदय जानता है। निम्नलिखित वार्तालाप मे वेश्यागामी और वेश्या के भाव तथा वेश्यालय-वातावरण की सच्ची झाँकी है :

राजेश्वर ने उसको अपने हृदय मे लगाकर उसके मुँह को चूम लिया। उसका बदन गर्म था, कलेजा वेग से धडक रहा था। राजेश्वर ने उसकी ठुड्डी पकडकर कहा—चौबीस घटे मे यही पाँच-छ. घन्टे जिन्दा मालूम पडता हूँ। जुदाई की घडियाँ काटे नही कटती हैं। किसी काम मे जी नहीं लगता। मिलने के लिए दिल तड़पता रहता है।

सोहाग उसके हाथो को अपनी मुलायम हथेलियो मे दबाकर बोली—और मैं तो यही चाहती हूँ कि दिन भर मरी रहूँ, और जब तुम आओ, तब जिन्दा हो जाऊँ। मैं मूर्दा हूँ, तुम मेरे मसीहा हो।

'विमाता' की जूही एक दूसरे प्रकार की वेश्या है। वह एक साथ ही सच्ची प्रेमिका, दुर्बल नारी और ममतामयी माता है। वह महफिल मे रघुनन्दन को देखते ही मुग्ध हो जाती है और उसकी ओर मुँह कर गाने लगती है। जो इतनी प्रगल्भ हो सकती है वही एक नववधू की भाँति लिफाफे मे प्रेमपत्र बन्द कर चोरी-चोरी रघुनन्दन के पास भेजती है। रघुनन्दन का नीरस उत्तर पाकर वह युवक के वेश मे आकर उससे मिलने का अवसर भी निकाल लेती है और लोगो का मनोरजन भी करती है। उसके व्यक्तित्व को उसकी नारी-सुलभ भावना स्वाभाविक तथा उसका पुरुषोचित गुण मोहक बनाता है। लखनऊ मे वह भूले-भटके रघुनन्दन की सुख-सुविधा के लिए जो कुछ करती है वह एक देवी से ही सम्भव है। उसकी वासना श्रद्धा और व्यथा करुणा मे परिणत हो जाती है। वह रघुनन्दन का गाल चूमकर अपने उदात्त प्रेम का चिह्न प्रकट करती है। पैसे से प्रेम करने वाली सोहाग का सम्बन्ध राजेश्वर से और प्रेम के लिए पैसे को ठुकराने वाली जूही का सम्बन्ध रघुनन्दन से स्थापित कर लेखक ने उनके चरित्र को प्रभावोत्पादक बना दिया है।

कुछ उपन्यासकारो ने वेश्यावृत्ति को सामाजिक प्रश्न के रूप मे देखा और उसके मूल मे जाने का प्रयास किया। किशोरीलाल गोस्वामी के 'स्वर्गीय कुसुम' मे पहली बार वेश्या-समस्या नारी-पराधीनता की समस्या बनकर सामने आई। गिरिजानन्दन तिवारी की 'विद्याधरी' (१९०४) में एक

वेश्यागामी की पत्नी को वेश्या बनाकर नारी की परवशता एव दुर्बलता प्रकट की गई है। सुन्दर, युवती, पुत्रवती और बडे घर की विलासिता मे पली चम्पा अपने पति से उपेक्षित होकर पडोस के माली से मधुर सम्बन्ध जोड़ लेती है और गहने लेकर उसके साथ भाग जाती है। एक महीने बाद माली उसे किराये के मकान मे सोती हुई छोड जाता है और मकान मालिक बाहर निकाल देता है। वह विवश, असहाय और निराश्रित हो जाती है परन्तु गुण्डो के बहकावे मे नही आती। एक वेश्या सहानुभूति दिखाकर उसे मायाजाल मे फँसा लेती है। वह वेश्या बन जाती है। "पेट बड़ा पापी है। जितने कार्य है सब पेट कराता है।" गया की यह चम्पा काशी मे विद्याधरी नाम की वेश्या बनकर पटने आती है। एक दिन उसका पुत्र ही उसके पास आ जाता है। उसका हृदय एक साथ ही पुत्र-स्नेह और आत्म-ग्लानि से भर जाता है। वह सारी सम्पत्ति पुत्र के नाम लिखकर आत्महत्या कर लेती है।

हमारे उपन्यासकार महसूस करने लगे कि स्त्रियाँ परिस्थिति से लाचार होकर वेश्या बनती है और तब वे वेश्या-जीवन को साहित्यिक वर्णन के योग्य समझने लगे। उन्हे पतिताओ के सुख-दुख से सहानुभूति हुई। चन्द्रशेखर पाठक का 'वारागना रहस्य' (१९१४-१७) और माधव केसोट का 'अद्भुत रहस्य' (१९१७) खासकर वारागनाओ के जीवन पर लिखे गये उपन्यास हैं। 'वारांगना रहस्य' छ· भागो मे विभाजित है। इसमे विभिन्न प्रकार की वारांगनाओ का वास्तविक और विश्वसनीय परिचय है। कुन्दन और मानिक भिन्न वर्ग और स्वभाव की वेश्याओं की प्रतिनिधि हैं। कुन्दन धन की भूखी है, मानिक प्रेम की प्यासी। कुन्दन एक के बाद दूसरे को शिकार बनाती है। दो धनी युवको को दरिद्र बनाने के बाद वह थियेटर मे नौकरी कर लेती है और मालिक के अनुचित प्रस्ताव पर नौकरी छोड देती है। एक नवाब की बेगम बनती है और उसके मुसाहब से नेह लगाकर भाग जाती है। कलकत्ते आने पर लडकियो को फँसाने के अपराध में वह जेल जाती है। जमीदार की बेटी मानिक अपने पति को वेश्या मे मग्न देखकर समझती है कि वेश्या उससे अधिक सुखी है और वेश्या बनने की कामना करने लगती है। उसके मन में पति से प्रतिशोध लेने का भाव भी जाग उठता है। वह एक युवक के साथ भाग जाती है, जो उसका सतीत्व नष्ट कर उसे छोड़ देता है। अब वह पुरुष जाति का सर्वनाश करने का सकल्प करती है। वह एक बुढिया के फन्दे मे पड़कर जमीदार के हाथ बेची जाती है, जो उसे

घर से निकाल देता है। वह वेश्या बनने के लिए बाध्य होती है। वह दो युवकों को निष्ठा के साथ प्यार करती है पर वे उसे भिखारिन बनाकर छोड देते हैं। एक प्रेमी को दूसरी वेश्या के साथ देखकर वह ईर्ष्या में जल उठती है। वह पहले वनिता है, तब बारबनिता। नारी-हृदय की दुर्बलता और कोमलता उसके चरित्र में अच्छी तरह प्रकट हुई है।

पहले कुन्दन के प्रति घृणा और मानिक के प्रति दया होती है पर अन्त में दोनो पाठकों की सहानुभूति समान रूप से प्राप्त करती है। रूप, यौवन, धन से विहीन कुन्दन दलित और पीडित नारी की प्रतीक बन जाती है। चन्द्रशेखर पाठक का उद्देश्य वेश्यावृत्ति के दोषो और गृहस्थ जीवन के सुख-सौभाग्य की ओर ध्यान दिलाना है। इसके लिए उन्होंने वेश्याओ के क्रियाकलाप और व्यवहार का यथार्थ किन्तु संयत वर्णन किया है एव परपुरुष का प्रलोभन ठुकराने वाली सुशीला जैसी पतिव्रता स्त्री का आदर्श उपस्थित किया है।

'अद्भुत रहस्य' का उपनाम 'विचित्र वारांगना' है। इसकी नायिका सूरजभान वास्तव मे एक विचित्र वारागना है। उसके हृदय में प्रेम की आग है, जो किसी को देखकर भडक उठती है। उसमे नारी-सुलभ लज्जा, सुकुमारता और भावुकता है। उससे यह कहवाकर कि "क्या रंडियाँ औरतें नहीं होतीं ?" लेखक ने अपना मानवतावादी दृष्टिकोण व्यक्त किया है।

व्यक्ति और परिवेश

कुछ उपन्यासकारो ने सामाजिक परिवेश मे व्यक्तिगत प्रेम का चित्रण किया है। उनकी रचनाएं ऐतिहासिक प्रक्रिया के साथ-साथ मनुष्य के रूप पर प्रकाश डालती हैं। भुवनेश्वर मिश्र का 'बलवन्त भूमिहार' (१९०१) जमीदारो के जीवन का तटस्थ विश्लेषण है। घटनास्थल मुजफ्फरपुर का ग्रामीण अचल है। आरम्भ मे वातावरण का वर्णन किया गया है, जो स्थानीय रंग से भरपूर है। मिथिला की हरी-भरी भूमि, सघन आम्र-कुञ्ज, निर्मल सरोवर अपनी स्वाभाविक सुन्दरता मे दर्शनीय हैं :

एक विस्तृत मैदान के बीच में एक बहुत बड़ा तालाब है। आनाज के हरे-भरे खेत, सुन्दर सुहावने वृक्षो के कुञ्ज, छोटे अनगढे मिट्टी के ढेर आदि के यहाँ वहाँ रहने के कारण जैसे निर्जन होने पर भी मैदान शोभायमान होता है, वैसे ही बड़े ऊँचे भिण्डो से घिरा, स्वच्छ निर्मल जल से भरा और

अनेक जल जन्तुओ से पूरा रहने के कारण कवल और हंस से रहित होने पर भी वह तालाब अति मनोहर मालूम होता है ।

आरम्भ काव्यात्मक है क्योकि यहाँ प्रकृति मनुष्य से अभिन्न है। तालाब के किनारे मन्दिर मे एक युवती आती है, जो रूपरग, वेशभूषा और चालढाल मे मिथिला की कुमारी जैसी लगती है :

......गोरी, पतली, कुछ लम्बी, नवयौवन सम्पन्ना एक अति सुन्दरी बालिका कौंधे से पीली सारी ओढे, लम्बे भीगे बालो को पीठ तथा कधे पर फैलाए, एक हाथ में जल से भरा लोटा और दूसरे मे फूल अच्छत की डलिया लिए ....।

मन्दिर की शोभा बढाने वाली यमुना रूप-यौवन से सम्पन्न है, इसलिए उसे नायिका होना चाहिए। यमुना और बलवन्त मन्दिर मे एक दूसरे को देखते है, फिर उनमे प्रेम क्यो न हो ? उनका विवाह एक समस्या है क्योकि जमुना के पिता रणपालसिंह बलवन्त की जमीदारी हडप चुके हैं। दुश्मन को दामाद बनाना उनकी शान के खिलाफ है। लेकिन उनकी दाई उनके साथ-साथ अन्य विरोधियो को इस तरह मोड देती है कि अन्त मे विवाह हो ही जाता है। दो हृदयो के मधुर मिलन के पूर्व परिवार के मनोरम दृश्य प्रस्तुत किये जाते है। फुलवाड़ी मे कुँआरी ननद और भौजाई का विनोद होता है :

"एह ! जब देखो तब फुलवाडी मे, जब देखो तब फुलवाड़ी मे—न जाने इस साल की लगन मे क्या होगा ?" यमुना—"मालूम होता है भैया घर नही है इसी से तुम यहाँ आई। न तो—"

नायिका से उसकी सकुनी दाई कम आकर्षक नही है। वह चतुर, मधुरभाषिणी और व्यवहार-कुशल है। स्वामी के घर मे उसका आदर होता है। दुलहिन उसे देखकर घूँघट काढ लेती है। उसके चरित्रांकन मे उपन्यास-कार की जनवादी दृष्टि व्यक्त हुई है। उसने जमीदारों को उपन्यास मे स्थान दिया है किन्तु उसकी सहानुभूति उनके साथ नही है। वह जमीदारी-प्रथा की बुराइयो का खुलकर वर्णन करता है। जमीदार गाँव के देवता होते हैं और मनुष्य के साथ पशु का-सा व्यवहार करते हैं। रणपालसिंह अत्याचारी क्रोधी और हठी जमीदार का प्ररूप है। वह अपने गुमाश्ते को कहता है :

सरकार-सरकार कहता है तो समझता है कि हम अपने बाप के यहाँ

पहुँच गये। अरे बरियारपुर मौजे क्या तुम्हारी जोरू की मुँह दिखौनी मे दिया गया था,तुम्हारे दादा नरका छोड गये थे कि पोता मेरा वसूल कर खायगा ? कोई है रे इसको पचास जूते लगा।

'बलवन्त भूमिहार' मे व्यक्तिगत कथा के सामने सामाजिक समस्या गौण हो गई है, जब कि लाला भगवानदीन की 'अघट घटना' (१९१८) मे व्यक्ति का भाग्य समाज के भाग्य से बँधा है। इसमे पहली बार देशी रियासत की आर्थिक दुरवस्था और देशी नरेशो की विलासिता पर प्रकाश डाला गया है। विन्ध्याचल की तलहटी में बज्रपुर नामक एक कल्पित रजवाड़ा पृष्ठभूमि के लिए चुना गया है। राज्य का एक कर्मचारी देहात की एक विधवा अहीरिन को प्यार करता है और जब वह अँधी हो जाती है तो उसे छोड़ देता है। उसकी बेटी कमलिया एक भगिन के यहाँ पलकर वेश्या के हाथ बेची जाती है। वेश्या एक दिन राजरानी बन जाती है। यह उपन्यास के नाम के अनुकूल ही है। उपन्यास "विचित्र और सच्ची घटना पर आधारित" बताया गया है। कहते हैं सत्य गल्प से अधिक अद्भुत होता है। कमलिया यशपाल की सोमा ("मनुष्य के रूप") की याद दिलाती है, जो पहाड़िन विधवा से सिनेमा की अभिनेत्री बन जाती है।

वर्ग-समाज मे प्रेमिका और वेश्या मे विशेष अन्तर नही होता है तथा माँ के अपराध का फ़ल सतान को भोगना पडता है, यह सत्य 'अघट घटना' मे व्यक्त हुआ है। यह उपन्यास भारत के देशी रजवाड़े का इतिहास है। राजा-महाराजा देश मे धन लूटकर विदेश मे व्यापार करते हैं, प्रजा की बहू-बेटी को अपने उपभोग की सामग्री समझते है, और अकाल मे भी शादियाँ करते हैं। यह तो प्रजा के साथ उनका सम्बन्ध है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध और भी भयकर है। अपने पुत्र को राजा बनाने के लिए छोटी बडी रानी को छल से दवा खिलाकर उसका गर्भपात करा देती है। राजा दरबारियों के हाथ के कठपुतले होते हैं। राजकुमार से लेकर राजकर्मचारी तक 'बोतल-वासिनी और मदनमजरियो' के भक्त होते हैं।

कुंवर हनुमन्त सिह की 'मेरी दुख गाथा' (१९१५) और छबीलेलाल गोस्वामी की 'जावित्री' (१९१६) का सम्बन्ध वर्ग-विशेष से न होकर पूरे समाज से है। उन्होंने अपने समय के समाज और नर-नारी का पूर्णतर चित्र दिया है। कुंवर हनुमन्त सिंह अपनी रचना के सम्बन्ध मे 'निवेदन' करते हैं

कि "इसका बहुत कुछ अंश वास्तविक घटनाओ पर ही निर्भर है"। इस उपन्यास के नायक की भाँति आपत्तिग्रस्त पुरुषो की संख्या भारतवर्ष में कम नहीं है। उन्होने नायक के व्यक्तिगत जीवन के माध्यम से युग की अभिव्यक्ति की है। उनकी परिधि में नगर और गाँव दोनो आ गए है। उन्होने अधिकारियो के भ्रष्टाचार, पूँजीपतियों के शोषण और साधुओ के ढोंग पर प्रकाश डाला है।

छबीलेलाल गोस्वामी के नायक-नायिका ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। वे अपने युग के साथ चलकर आर्थिक विषमता और सामाजिक अन्याय पर आघात करते है। उपन्यास का प्रतिपाद्य प्रेम है पर उसका स्वरूप परम्परागत नहीं। जावित्री का विवाह अपने प्रेमी से न होकर पराये के साथ हो जाता है। इसमें माँ-बाप का दोष नही है, भाग्य का भी हाथ नही है, यह समाज-व्यवस्था की देन है। जावित्री के माँ-बाप हृदय से चाहते हैं कि उसकी शादी उसके प्रेमी यदुनाथ से हो जाय। पर राय मक्खनलाल जावित्री को पत्नी बनाने के लिए उन सभी हथकण्डो का इस्तेमाल करते हैं जो एक धनी निर्धन को पराभूत करने के लिए करता है। वे यह कह कर कि उनकी सगाई जावित्री से पक्की हो चुकी है और वे सगाई मे बारह हजार के गहने और तीन हजार के कपडे दे चुके हैं। जावित्री के पिता पर झूठा इल्जाम लगाते हैं और उसे जाति से बहिष्कृत करने की धमकी देते हैं। मुँह देखकर न्याय करने वाले पंचायत के सदस्य उनके पक्ष मे निर्णय देते हैं। इस सकट मे भी जावित्री के माँ-बाप कर्त्तव्यच्युत नही होते। स्वय जावित्री और यदुनाथ उनकी चिन्ता और पीड़ा देखकर अपना निर्णय बदल लेते हैं। उनके सम्मिलित विचार से जावित्री का विवाह राय मक्खनलाल से हो जाता है। पूँजीवादी समाज मे समाज की वेदी पर व्यक्ति का बलिदान होता है।

गोस्वामीजी नई पीढी के साथ हैं। उन्होने जावित्री और यदुनाथ का निर्माण बड़ी सहृदयता और गम्भीरता से किया है। जावित्री पिता-माता के स्नेह के आगे अपने क्वाँरे प्रेम को भूल जाती है। विवाह के बाद वह शरीर अपने पति को देती है लेकिन हृदय अपने पुराने प्रेमी के लिए संजोए रहती है। उसकी सहनशीलता और सुकुमारता, त्याग और अनुराग का गहरा प्रभाव पाठकों पर पड़ता है। वह वेश्यागामी पति की मार सह लेती है पर चुप नहीं रहती। उस पर उसे क्रोध आता है पर वह जावित्री और उसके परिवार को सुखी देखने के लिए विवाह का हठ छोड़ देता है। उसका यह

महान सामाजिक बलिदान है। वह पत्र के मालिक के प्रलोभन मे नही पडता है और अपना स्वार्थ छोड हिन्दी के हित के लिए प्रयत्नशील रहता है।

नायक-नायिका के व्यक्तित्व की सच्ची परख उनके प्रेमभाव से होती है और उनका प्रेमभाव उनके सामाजिक दृष्टिकोण का परिचय देता है। राय मक्खनलाल के आचार-विचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिसे समाज महान समझता है वह वास्तव मे पतित होता है। रायसाहब ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, म्युनिस्पल कमिश्नर और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर हैं। वे जैसे पत्नी और वेश्या मे कोई भेद नही रखते वैसे ही झूठ-सच, धर्म-अधर्म मे भी नही रखते। वे रुपये से सब कुछ खरीद सकते हैं, कुंआरी लडकी की इज्जत, पचों का ईमान, वेश्या की मुसकान।

गोस्वामीजी ने सत्ताधारी और सम्पन्न वर्ग के भ्रष्टाचार का भंडा-फोड किया है पर विद्रोह या क्रांति का स्वर ऊँचा नही किया है। यदुनाथ की एक राजकुमारी से शादी कराकर और मक्खनलाल को कगाल बनाकर उन्होने साहित्यिक न्याय अवश्य किया हैं। आदर्शवाद के आग्रह से उन्होंने यदुनाथ-जावित्री को भाई-बहन बना दिया है और मक्खनलाल को सुधार दिया है। यदुनाथ-जावित्री को विवाहित देखकर पाठकों को सन्तोष होता किन्तु इससे यथार्थ की उपेक्षा होती और आदर्श पर आघात पहुचता। 'सेवासदन' मे सुमन और सदन को इसी उद्देश्य से अविवाहित रखा गया।

प्रकृतवादी उपन्यास

व्यवहार-सम्बन्धी उपन्यास का एक प्रकार प्रकृतिवादी उपन्यास है। समाज की गतिविधि और उपन्यास के रूप-रग मे कितना गहरा सम्बन्ध है यह प्रकृतवाद से ज्ञात होता है। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'चपला' की भूमिका मे जिस 'बन्धविहीन समाज' को 'यथावत चित्रित' करने की घोषणा की थी वह प्रकृतवाद के प्रवर्तन के लिए उत्तरदायी था। दोनो के विकास मे समा-नान्तरता है। प्रकृतवादी उपन्यास मे उस समाज का प्रतिबिम्ब है जिसकी वह उपज है। प्रकृतवादी समाज के सच्चे रूप का उद्घाटन कर उपहास, विरोध और संस्कार करना चाहते थे। उनका लक्ष्य महान था। वे मनोरजन या उपदेश प्रदान करने की भावना से नही बल्कि सुधार का जोश लेकर आगे बढ़े थे। गोपाललाल खत्री ने 'सुलोचना' के सातवें परिच्छेद में बताया था

कि "यदि कोई रोग या ऐब हो जो छिपा लिया जाएगा तो ढेर दिना होकर असाध्य हो जाएगा और जो खुलासा बता दिया जाएगा तो उसका यत्न शीघ्र हो जाने से अच्छा हो जाएगा"। अस्तु, प्रकृतवाद मनुष्य को प्रकृत रूप मे देखने का साहित्यिक प्रयास है।

वह यथार्थवाद का उत्कट रूप है। उसमे ऐसे विषयो का वर्णन किया गया है जो साहित्य के लिए वर्जित रहे हैं। वह व्यक्ति, वर्ग, सस्था, प्रथा आदि की बुराइयों का पर्दाफाश करता है। वह व्यक्ति के मनोविश्लेषण से वातावरण के वर्णन को विशेष महत्त्व देता है और विस्तार मे जाना चाहता है। वह वस्तु-जगत का यथातथ्य चित्रण करता है और इसमे कोमलता और सुरुचि के बदले निर्ममता और साहस से काम लेता है। जहाँ उसने कुत्सित और कुरूप के वर्णन तक अपने को सीमित कर लिया है वहाँ उसे अर्ध यथार्थ-वाद कहना उचित होगा।

प्रकृतिवादी दुर्बलता और बुराइयो के अतिरंजित चित्रण से उनके प्रति सहानुभूति, उपेक्षा और विद्रोह की भावना जगाकर सुधार का निर्देश देता है अथवा निम्न वासना भड़काकर पतन की राह दिखाता है। जब तक दोषों को गर्हित बनाने के प्रयत्न में मोहक बना देता है तब पाठकों की उनमें आसक्ति हो जाती है और कुरुचि का पोषण होता है। वह भूल जाता है कि कला संयम मे है।

प्रथम प्रकृतवादी उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी हैं। उनके अनुगामियों मे गोपाललाल खत्री, गिरिजानन्दन तिवारी और चुन्नीलाल ज्योतिषी उल्लेखनीय हैं। इनका प्रकृतिवाद वैभव-विलास के प्रति विद्रोह की वाणी है। इन्होंने सम्पन्न वर्ग के नैतिक पतन का निर्भीकता से निरावरण किया है किन्तु यथार्थवाद के नाम पर नग्नवाद को प्रश्रय दिया है। इनकी अश्लीलता न रीतिकालीन परम्परा की देन है, न इनकी रुग्ण मनोवृत्ति की। उसमें इनका यौवन-सम्बन्धी वस्तुवादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। इनकी रचनाओं मे पहली बार नर-नारी के सम्बन्ध का यथार्थ रूप प्रदर्शित किया गया। इन्होंने यौन-वर्जनाओं की उपेक्षा कर नये उपन्यासकारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। ये यथार्थ और रोमास, कुरूप और रूप को एक साथ लेकर चलते हैं। ये रोमाटिक प्रकृतिवादी हैं।

गोपाललाल खत्री ने 'अलबेला रागिया' (१९०५) की भूमिका में

भीतरी खोखलेपन की ओर गई और उन्होने उन पर प्रकाश डाला है। विपिन बिहारी अपनी साध्वी पत्नी को छोड़कर वेश्याओ के पीछे रहता है, गणेश दुर्बल होने के कारण सन्तानहीन है और हनुमान जालसाजी मे उस्ताद है। ये सभी आततायी, विलासी और धूर्त जमीदारों का प्रतिनिधित्व करते है। लेखक इनके प्रति निर्मम है। वह गणेश की स्त्री चन्दा की उद्दाम वासना का खुलकर वर्णन करता है। उसका अपने पति के चौदह वर्षीय ममेरे भाई के साथ यौन-सम्बन्ध कैसे होता है इसका विवरण स्पष्टता और सूक्ष्मता से दिया है :

चन्दा ने जब समझ लिया कि रमानाथ सोता है तो रोशनी बुता दी। आहिस्ते-आहिस्ते जाकर उसी सेज पर पड रही कि जिस पर रमानाथ पडा था। यह अभी स्त्रियो के छलचन्द से अनभिज्ञ था इससे घबड़ा गया कि चन्दा उसके साथ सोई है पर कुछ बोला नही। चुपचाप पडा रहा। चन्दा भी थोडी देर तक चुपचाप पडी रही। सात आठ मिनट के बाद चन्दा ने रमानाथ की चादर जिसको वह ओढे था खैच लिया। दो एक मिनट के बाद रमानाथ ने फिर उसे ठीक कर दिया। चन्दा ने उसे फिर खैचा रमानाथ ने फिर ओढ लिया। तीसरी बार चन्दा ने चादर खैचकर सेज के नीचे फेंक दिया तो भी रमानाथ नही उठा। थोड़ी देर चन्दा फिर चुपचाप पड़ी रही। इसके बाद उसने रमानाथ का हाथ पकड़ कर अपने बदन पर रख दिया।

चुन्नीलाल ज्योतिषी के 'शेखावटी-रहस्य' (१९०९) मे समाज के विकृत अग का नग्न दर्शन कराया गया है। पुजारियो और सेठानियो के व्यभिचार का ऐसा यथातथ्य वर्णन शायद ही किसी उपन्यास मे किया गया हो। एक महात्माजी अधेड सेठानी और उसकी तरुणी बहू दोनो के शरीर-रस का पान करते है। पुत्र की कामना करने वाली बहू के सामने बैठने पर "महात्माजी ने ओढने के अन्दर हाथ बढ़ाया, पहिले पेट फिर कलेजे पर छातियो पर ऐसा जमाया कि तरुणी मन ही मन सकुचाती हुई सब कृत्रिम जान प्रसन्न हो गई"। सेठानी और महात्मा की बातचीत अश्लीलता की सीमा पर पहुँच गई है। महात्मा की विवाहिता पत्नी उसे छूट दे देती है क्योंकि वह खुद खुलकर खेलती है। वह स्पष्ट कहती है "मुझको तो सन्तोष है चाहे तुम कुछ करो मुझे तो एक लड़की ईश्वर ने दी है, चाहे तुम्हारी कृपा का फल हो चाहे अन्य किसी की"। लेखक सत्य बोलने के प्रयास मे यौन-विकार का उदाहरण प्रस्तुत कर देता है। उसने सुरुचि और संयम का ख्याल

नहीं किया है। एक नपुंसक की सुन्दर स्त्री कहती है, "जब मेरा पति ही नवयुवको को टटोलता है तो फिर मैं उसका अनुकरण क्यो नही करूँ ?"। वह रात मे वैष्णवजी की सेवा मे हाजिर होती है और खुला संकेत करती है, "मेरा पति ही नपुंसक है तो फिर आपका अनुष्ठान कैसे होगा ?"

उपन्यास मे निर्मम वस्तुनिष्ठता के बावजूद उपन्यासकार की सुधारवादी दृष्टि व्यंजित है। वह सुविधाप्राप्त वर्ग पर व्यंग्य और सामाजिक रूढियो का विरोध करता है। उसका लक्ष्य मठाधीशो के ढोंग का पर्दाफाश करता है। लेकिन उसने सुधारवाद की ओट मे मैथुनवाद को बढावा देकर अपने दायित्व की अवहेलना की है। उसके कथन मे कलात्मक वक्रता और शैली मे शक्ति है पर उसके कई पृष्ठ अपाठ्य है। उसका उपन्यास उत्तेजक उपन्यास है।

समस्यापरक उपन्यास

सचेतन उपन्यासकार अपने समय और समाज की दशा से परिचित थे और उसमे सुधार लाना आवश्यक समझते थे। उन्होने विशिष्ट समस्याओ को अपनी रचनाओ मे स्थान दिया और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया। उनके युग मे समाज की समस्याएँ देश की अन्यतम समस्याएँ थी और साहित्य समाज से सम्बद्ध था, अत. उन्होंने उपन्यास को सामाजिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। सामाजिक समस्याओ मे मध्यवर्ग की समस्याओ को और मध्यवर्गीय समस्याओ मे वैवाहिक समस्याओ को प्रधानता मिली। सामान्यतः समस्याएँ वास्तविक हैं किन्तु उनका हल आदर्शवादी है। ऐसा लगता है कि उन पर व्यावहारिक दृष्टि से विचार नहीं किया गया है। उपन्यासकारो ने समकालीन समाज के गम्भीर प्रश्नो को उठाया, कुरीतियों और कुप्रथाओ की आलोचना की और सुधार का सन्देश दिया। उनका ध्येय शाश्वत साहित्य का निर्माण करना नही था। किन्तु उनकी समस्या किसी न किसी रूप मे आज भी समाज मे मौजूद है और उन्होने सामयिक समस्या के अतिरिक्त चिरंतन समस्या का भी उद्‌घाटन किया, अतः उनकी रचनाओ मे स्थायी साहित्य के गुण भी हैं। उन्हे केवल ऐतिहासिक महत्त्व देना अनुचित है।

प्रेमचन्द की 'प्रेमा' (१९०७) प्रतिनिधि समस्यापरक उपन्यास है। इसका उपशीर्षक है, 'दो सखियो का विवाह'। इसमे विधवा-विवाह के प्रश्न

पर विचार किया गया है। शिवनाथ शर्मा का 'चंडूलदास', रामफेरन सिंह की 'चम्पा दुर्दशा' (१९०४), कृष्णलाल वर्मा का 'बूढे बाबा का विवाह' (वी० नि० सवत् २४४५) और गगाप्रसाद गुप्त की 'लक्ष्मी देवी' (१९१०) भी साधारणतः अच्छे उपन्यास हैं जिनमे क्रमश. बाल-विवाह, दहेज-प्रथा और नारी-स्वाधीनता की चर्चा है।

प्रतिनिधि रचना : 'प्रेमा'

'प्रेमा' की समस्या के स्वरूप और प्रत्यक्षीकरण मे वास्तविकता है। उसका समाधान भी सामाजिक सत्य है। प्रयोजन की सिद्धि के लिए की गई कथा की योजना मे अस्वाभाविकता होते हुए भी रचनाकौशल है। प्रेमा से विवाह करने के पूर्व अमृतराय समाजसुधार का व्रत लेता है और इसके फल-स्वरूप उससे सम्बन्ध-विच्छेद होने पर पूर्णा के साथ विधवा-विवाह करता है। अमृतराय के मित्र दाननाथ की पत्नी बनने के बाद भी प्रेमा उसके लिए वियोगिनी बनी रहती है। दाननाथ अमृतराय की हत्या करने जाता है लेकिन पूर्णा उसे मारकर खुद मारी जाती है। अन्त मे अमृतराय के साथ प्रेमा का विवाह होता है।

कथानक में जटिलता या शिथिलता नही है पर ऐसे नाटकीय मोड हैं, जिनसे उद्देश्य और कला दोनो की आवश्यकताएँ पूरी हो गयी है। दूसरे के हाथ मे पडकर वह अतिनाटकीय हो जाता है। अमृतराय सुधारवादी आवेश मे अपनी प्रेमिका की तसवीर फाड डालता है, बाद मे पछताता है, फिर भी अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहता है। प्रेम और कर्त्तव्य के कारण उसके हृदय मे द्वन्द्व होता है उसमें मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। द्वन्द्व के उद्घाटन मे मार्मिकता और उसके निराकरण मे अपूर्व कौशल है। विधवा पूर्णा के साथ अमृतराय का प्रेम और विवाह कराकर भावना और आदर्श दोनो की रक्षा की गयी है। व्यक्तिगत प्रेम की परिणति समाजसुधार मे और समाजसुधार के के लक्ष्य की पूर्त्ति व्यक्तिगत प्रेम से हुई है।

प्रेमचद को विधवा की दुर्दशा दिखाकर उसका विवाह करना था। इसके लिए बनारस की एक ब्राह्मणी को परम सौभाग्यवती दिखाने के बाद असहाय विधवा बनाकर उसका विवाह कराना सर्वथा उपयुक्त था किन्तु जिस ढग से उन्होंने पूर्णा को विधवा बना दिया वह अस्वाभाविक लगता है। क्या उसके पति को गंगा मे डुबो देना समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान देना

नहीं है ? इसी प्रकार उन्होने प्रेमा का रास्ता साफ करने के लिए पूर्णा और दयानाथ दोनो की हत्या कर दी। इसका दूसरा पक्ष भी है। प्रेमा का पुनर्विवाह विधवा-विवाह का उदाहरण देने के लिए अथवा उपन्यास को सुखान्त बनाने के लिए किया गया प्रतीत नही होता। प्रेमचद ने उसके पक्ष में कथा की गति को मोडकर अपने को प्रचारक होने से बचा लिया है और अपनी व्यापक जीवन-दृष्टि का आभास दिया है। प्रेमा का विवाह तय होकर सम्पन्न नही हुआ। वह अपने को 'कुवारी विधवा' मानने लगी और अपने खोये प्यार की मीठी याद मे मूक वेदना सहती रही। वह भारत की पराधीन नारी की प्रतिनिधि है। उसके प्रति प्रेमचद का सवेदनशील होना स्वाभाविक था।

पात्र लेखक के विचार और विषय के वाहक होकर भी निजी व्यक्तित्व रखते हैं। प्रेमचन्द के मत से आदर्शवाद मे यह शका रहती है कि "हम ऐसे चरित्रों को चित्रित न कर बैठे जो सिद्धान्तो की मूर्ति मात्र हों—जिनमे जीवन न हो।"[3] उन्होने ऐसे पात्रो की सृष्टि की है जो न केवल नवजात और प्राणमय लगते हैं, अपनी वर्गगत और व्यक्तिगत विशेषताओ के कारण हँसाने-रुलाने मे भी समर्थ हैं। अमृतराय एक साथ ही भावुक, क्रान्तिकारी और रईस प्रेमी है। उसका सामाजिक सघर्ष व्यक्तिगत आदर्श का और मानसिक सघर्ष सामाजिक यथार्थ का परिचायक है। उसका विद्रोही व्यक्तित्व उसे दुहरा नायकत्व प्रदान करता है और दाननाथ से पृथक करता है। उसकी सक्रियता और रोमानी प्रवृत्ति हमारी सहानुभूति प्राप्त कर लेती है। प्रेमा का दर्शन बहुधा नही होता और जब होता है तब उसका उदास, मलिन चेहरा बडा सुन्दर लगता है। उसकी एक झलक उसे पूरी तरह प्रकट कर देती है। वह दास्तावेस्की के 'इडियट' की नायिका की याद दिलाती है, जो "उस शिशु के समान है जिसका खिलौना छीन लिया गया है" (लाइक ए चाइल्ड हूज ट्वाइ इज टेकेन अवे)। पूर्णा को देखकर यह विश्वास करना कठिन है कि कुमारी से विधवा मे कम आकर्षण होता है। उसमे स्त्री की भाँति पुरुष के प्रेम और प्रशसा की भूख, दुर्बलता, शील और सौन्दर्य है और पुरुष की भाँति आत्म-सम्मान, साहस और वीरता भी। इसलिए वह विशेष मोहक हो गयी है। जब वह सीढ़ी पर गिरते हुए अमृतराय को कोमल हाथ का सहारा देती है और पिस्तौल से उसकी रक्षा करती है तब वह रोमांटिक बन जाती है और कुछ अविश्वसनीय-सी है। उसकी महरी बिल्लो अपनी लघुता मे ही महीयसी है।

वह उसके प्रेम-सम्बन्ध का विरोध नहीं करती है पर उसका विवाह अनुचित समझती है। बिल्लो की उदारता और रूढिप्रियता दोनों से आनन्द मिलता है।

पूर्णा और रामकली दो भिन्न प्रकार की विधवाएँ हैं। उनकी विशेषता का सकेत एक वाक्य मे दिया गया है "अगर पूर्णा पके हुए आम के समान पीली हो रही थी तो वह गुलाब के फूल की भाँति खिली हुई थी।" रामकली पूर्णा के चरित्र निखारने के साथ-साथ युग-युग से उपेक्षित, लाछित और पीड़ित भारतीय विधवा का प्रतिनिधित्व करती है। प्रेमचद ने उसके माध्यम से मूक को वाणी दी है। वह स्पष्ट कहती है, "जब भूख लगे और खाना न मिले तो हारकर चोरी करनी पडती है।" प्रेमचन्द ने उसे चोरी करते नहीं दिखाया है, समाज को यह कह कर सचेत कर दिया है कि उसके पास भी हृदय है।

उनके विचार प्रकट न होकर कहानी मे छिपे है। उन्हे जो कुछ कहना है, पात्रो से सरल और प्रभावशाली ढंग से कहवा दिया है। उनका उपन्यास सोद्देश्य होकर भी सरस साहित्य का अंग है। उनका विश्वास था कि "बिना उद्देश्य के तो कोई रचना हो ही नही सकती।"[4] वे साहित्य के माध्यम मे सामयिक विचार का प्रचार करना चाहते थे, साथ ही "मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियो की छटा दिखाना साहित्य का परम उद्देश्य"[5] मानते थे। उन्होने ऐसी घटनाओ और परिस्थितियो की कल्पना की है जो हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रहती। इससे अधिक मार्मिक स्थिति क्या हो सकती है कि एक युवक अपनी प्यारी पत्नी के झुमके के लिए बहता हुआ फूल पकड़ने के समय डूब जाए ? पति के डूबने की खबर प्रेम-मतवाली पत्नी को उस समय मिले जब वह दर्पण देख रही हो ? इससे गम्भीर नाटकीय क्षण कब हो सकता है कि किसी स्त्री का पति उसके प्रेमी की हत्या करना चाहे तो वह प्रेमी को सूचित कर दे ? प्रेमचन्द ने दैनिक जीवन के यथार्थ मे भी रोमांस की रगीनी भर दी है और आश्चर्य तो यह है कि जहाँ अत्यन्त यथार्थता है, वहाँ अत्यन्त रमणीयता है। शाम को प्रतीक्षा करती हुई पूर्णा के घर पर अमृतराय के आगमन से जो दृश्य उपस्थित होता है उसमे वार्तालाप जीवन डाल देता है :

बिल्लो हँसती हुइ अन्दर गई और पूर्णा से बोली—

"बहू उठोगी या वह आप ही मनाने आते हैं।"

पूर्णा— "तुम्हारे हाथ जोडती हूँ जाकर कह दो बीमार हैं।"

बिल्लो—"बीमारी का बहाना करोगी तो वह डाक्टर को लेते चले आएँगे।"

पूर्णा— "अच्छा कह दो सो रही हैं।"

बिल्लो—"तो क्या वे जगाने न आएगे ?"

पूर्णा— "अच्छा बिल्लो तुम ही कोई बहाना कर दो जिसमे मुझे जाना न पडे।"

बिल्लो—"मैं जाकर कहे देती हूँ कि वह आपको बुलाती हैं।"

पूर्णा और अमृतराय का मधुर सम्बन्ध रोमानी किन्तु स्वाभाविक ढग से दिखाया गया है। अमृतराय की सहज सवेदना धीरे-धीरे प्रेम का रूप धारण कर लेती है। पूर्णा उसकी ओर कुछ कृतज्ञता, कुछ स्वाभाविक दुर्बलता के कारण आकृष्ट होती है। अमृतराय उसे गजरा भेंट करता है तो उसे उस गजरे की याद आती है जो उसने पति के लिए होली मे बनाया था। वह गजरा लेने से इनकार करती है पर उसका हाथ लेने के लिए बढ जाता है। पति की याद आते ही वह उसे उतारने लगती है कि हाथ काप उठता है। उसके हृदय में एक अनजान आग सुलग उठती है। वह बदनामी से डरती भी है और यह भी चाहती है अमृतराय उसको देखे, वह अमृतराय को देखे। वह धीरे-धीरे लोक-लाज छोड़ कर सुकुमार सपनो मे खो जाती है और अपने को अर्पित कर देती है। विवाह के बाद तो वह प्रसन्नता के मारे जैसे पुराने पति को भूल जाती है। सियारामशरण गुप्त की यमुना ('नारी') मे वह अधिक वास्तविक और आकर्षक है। प्रेमा तो प्रेम की ऐसी देवी है जिसमे लौकिक प्रेम की तीव्रता के साथ अलौकिक प्रेम की गम्भीरता है।

प्रेमचन्द सुख-दुख, प्रेम-द्वेष, व्यग्य-वेदना की भावराशि से कहानी को सरस, पात्रो को मानवीय और उद्देश्य को स्वीकार्य बनाते है। उनके उपन्यास मे साहित्य का सौंदर्य भी है और मनोरजन की सामग्री भी। उनका वर्णन कथा का अभिन्न अश है। उनकी विलक्षण कहानी-कला को उनकी अनुपम वर्णन-शक्ति से और वर्णन-शक्ति को सरल, सुन्दर भाषा-शैली से बल मिलता है। शब्दों मे चित्र अकित करने की कैसी क्षमता है यह इस वाक्य मे मालूम होता है—"उसकी आँखो मे इस समय एक घडे का नशा समाया हुआ है।" इन विशेषताओ के कारण उपन्यास के दुर्बल पक्ष की ओर पाठकों

का ध्यान नही जाता ।

यह छोटी-सी कलाकृति अबलाओ के जीवन की करुण-मधुर कहानी सुना कर नही रह जाती, व्यक्ति और समाज के सघर्ष की भी गाथा सुनाती है और महाकाव्य की कोटि मे आ जाती है । शहर के कुछ पढ़े-लिखे प्रतिष्ठित रईस अमृतराय के सुधार-कार्य मे मौखिक सहानुभूति दिखाकर उसे आगे बढाते है और बाद मे बाधा देने का सगठित प्रयास करते हैं । जब वह एक अनाथ, असहाय विधवा से विवाह करने के लिए तैयार होता है तो सारा सभ्य समाज उसके विरुद्ध खडा हो जाता है । वह "विरोधियो का विरोध" करता हुआ अपने उच्चादर्श की ओर अग्रसर होता है । प्रतिक्रियावादी शक्तियो पर प्रगतिशील शक्तियो की विजय होती है । प्रेमचद ने अपने समय की महान राष्ट्रीय घटना के सदर्भ मे व्यक्तिगत जीवन का चित्रण किया है । उन्होने सामती सस्कारो से भरे हुए ससार मे एक देशभक्त और समाजसेवी तरुण को जन्म देकर यथार्थ के साथ आदर्श को मिला दिया है ।

यह ससार वास्तविक ससार से कम वास्तविक नही है क्योकि यह निश्चित विचार के कण से ही नही प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर भी बना है । घटना-स्थल बनारस का नगर है, जहाँ धार्मिक पाखड, सामाजिक रूढि और नैतिक पतन के बल पर जर्जर पुरातन को जीवित रखने की चेष्टा की जाती है । महन्त का मन्दिर क्या है, नाच घर है । भोर मे विधवा का मुँह देखना मना है पर गगा-किनारे उससे छेड़खानी करने की छूट है । प्रेमचद ने सुधारवादी आवेश किन्तु कलात्मक तटस्थता के साथ शहरी समाज की बुराइयों, ढकोसलो, अधविश्वासो और दुर्बलताओ का पर्दाफाश किया है और यह दिखा दिया है कि इनके मूल मे वैभव का सचय है । उन्होने रईसो, सेठों और पंडितो के प्रति सहानुभूति नही दिखाई है और न नगर-जीवन का सतही चित्रण किया है बल्कि मूलभूत सत्य का उद्घाटन किया है । यह सच्चे अर्थ मे सामाजिक यथार्थ है ।

विभिन्न वर्ग के नर-नारी अपने वेश, वाणी और व्यवहार से पहचाने जा सकते हैं । उनके चित्रण मे मानवीय यथार्थ है । ढोगी वकील, मिथ्यावादी विद्वान, सत्यानाशी सेठ, मुफ्तखोर पंडित, चालाक बनिया, रंगीला महन्त सभी अपनी वर्गगत विशेषताओ के साथ जीवित हैं । पंडे और तमोली के बिना बनारस की कहानी अधूरी रहती । सो, कही चन्दन रगड़ता हुआ

पडा सुन्दरी विधवाओ को देखकर उनकी उपमा चंदन मे देता है और कही टेढी दुपल्ली टोपी वाला तमोली उन्हे पान खाने का निमत्रण देता है। अमृत-राय के कहार तो क्षणजीवी होते हुए भी अविस्मरणीय है। वे व्यक्ति के रूप मे नही बल्कि समूह के रूप मे प्रभाव डालते है। उनका हृदय इतना खुला है कि उसका आर-पार देखा जा सकता है। वे सरल, स्वामीभक्त किन्तु जन-भीरु हैं। प्रेमचद पाठको को घर आगन मे भी ले जाते है और गहनो मे लदी भद्दी सेठानी, मदेमिल चोबाइन और कर्कशा पडाइन मे परिचय कराते है। उनका उपन्यास मानव-जीवन का उमडता हुआ पारावार है।

अन्य रचनाएँ

'चण्डूल दास' एक सामाजिक व्यंग्य है। लेखक ने विभिन्न प्रकार के पात्रो का व्यग्यचित्र प्रस्तुत करते हुए समाज की कुप्रथा का खुला विरोध किया है। लाला चकलामल ६० वर्ष का बूढा होकर वेश्या और विधवा से सम्बन्ध रखता है। लेखक के शब्दो में "वह भक्ष्याभक्ष्य का भी विचार नही करता।" उसे ४ वर्ष की बालिका से शादी करने का शौक होता है। बालिका का पिता रुपये के लोभ से राजी हो जाता है पर उसका भाई प्रतिरोध करता है, फलत शादी नही हो पाती है। समस्या और उसका समाधान निपुणता से प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक रूढि के प्रति विद्रोह का स्वर ऊँचा किया गया है। एक पात्र द्वारा बाल-विवाह की निन्दा कराई गई है, "रुपया होय तो मुर्दे की लाश को कन्या विवाह देनेवाले मिल जाते हैं।"

'चपा दुर्दशा' मे तिलक, दहेज की कुरीतियो के कारण नायक-नायिका का प्रेम विवाह मे परिणत नहीं हो पाता है। नायिका को विवश होकर विषपान करना पडता है। समस्या हल नही होती है। लेखक रूप और प्रेम के परम्परागत वर्णन मे उलझकर रह गया है, समस्या की गम्भीरता की ओर पाठको का ध्यान आकृष्ट नही कर पाया है। 'बूढे बाबा का व्याह' जिस सामाजिक यथार्थ का चित्रण करता है वह पाठकों के मन को उत्तेजित करने के बजाय लेखक के व्यंग्य को तीखा बनाता है। उदाहरण के लिए बाल-वधू के प्रति बूढे पति का यह व्यवहार देखिए :

उसने पलग पर बैठकर रामकुमारी का सिर अपनी गोद मे रख लिया, और धीरे-धीरे उसके गालो को थपथपाया! बालिका की नीद उड़ गई। उसके शरीर मे रोमाच हो आया। मधुरता प्राप्त होते देख चंपालाल

अधीर हो उठा और एक युवती के समान उसने बालिका के साथ व्यवहार करने की चेष्टा की। अधखुली नीद मे बालिका ने जाना कि किसी जानवर ने काट खाया है। जानवर को गाल से हटाने के लिये उसने हाथ मारा। हाथ तडाख से चम्पालाल के मुँह लगा। चम्पालाल ने मुख हटा लिया। बालिका फिर सो गई।

'लक्ष्मीदेवी' की श्यामा और लक्ष्मी नये और पुराने विचारो का प्रतिनिधित्व करने वाली दो बहने हैं। दोनो डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त करती है किन्तु श्यामा समाज मे मुक्त होकर विहार करती है और लक्ष्मी पर्दे के भीतर रहकर सुखमय विवाहित जीवन व्यतीत करती है। श्यामा छात्रावास मे एक चरित्रहीन पडोसी को प्यार करने लगती है। डाक्टर बनने पर वह एक अनाथ किन्तु हँसमुख काश्मीरी युवक को फँसाकर अपने पास रख लेती है। फिर जब उसका सम्पर्क एक धनी बगाली से होता है, काश्मीरी युवक दाँत से उसकी नाक काट लेता है। नारी के स्वतत्र जीवन और अनुचित प्रेम-सम्बन्ध का दुखद परिणाम दिखाकर लेखक ने पर्दा-प्रथा का समर्थन किया है। श्यामा की कहानी मे वास्तविकता का अश अपेक्षया अधिक है, यद्यपि कही-कही अतिरंजना भी है। लक्ष्मी भारतीय आदर्श के साँचे मे ढलकर सचमुच देवी बन गई है। समानान्तर कथाओ और भिन्न प्रकार के पात्रो द्वारा उद्देश्य को प्रभावशील बनाने का प्रयास किया गया है।

विचार-प्रधान उपन्यास

कतिपय लेखक उपन्यास को मनोरंजन का साधन न मानकर विचार का वाहन मानते थे। उनकी रचनाओं मे पुराने और नये विचारो के सघर्ष की प्रतिध्वनि मिलती है। उन्होने अपना मत कुछ कथा के स्वरूप और कुछ पात्रो मे आरोपित किया। उनके पात्र दो ही प्रकार के हैं, भले या बुरे। पहले भले की हार और अत मे बुरे की जय होती है। नायक-नायिका की सृष्टि एक निश्चित विचार का खडन-मडन करने के लिए और कथा की योजना उस विचार का निष्कर्ष निकालने के लिए की जाती है। अतः कथानक का स्वाभाविक विकास नहीं होता। लेखक का विचार-दर्शन उसकी रचना के रूप-विधान के लिए उत्तरदायी है।

गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य के 'भीषण भविष्य' (१९०९), रामदत्त ज्योतिर्विद के 'ठनठन बाबू' (१९१०) और शालिग्राम गुप्त की 'आदर्श रमणी'

(१९११) मे आर्यसमाज के सिद्धान्तो का विरोध और सनातन-धर्म का पक्ष लिया गया है। 'भीषण भविष्य' मे स्त्रियो की शिक्षा और स्वतन्त्रता का दुष्परिणाम दिखाया गया है। उसकी नायिका सुखदा एक आर्यसमाजी की पुत्री है। वह घर पर अपने शिक्षक से प्रेम करती है और बाहर जाकर पुरुष मे मिलती है। उसका विवाह एक अधेड से होता है, जिसकी मृत्यु होने पर वह दूसरा विवाह करती है और एक दिन नौकर के साथ भाग जाती है। 'ठनठन बाबू' आधुनिक शिक्षा और सभ्यता पर हल्का व्यग्य है। 'आदर्श रमणी' मे पुराने विचारो की भारतीय नारी और सनातन धर्म के आधार पर निर्मित समाज का आदर्श उपस्थित किया गया है, यद्यपि इसकी कहानी अतिनाटकीय है। आर्यसमाजी मोहन अपनी पत्नी के जीवित रहने पर भी एक विधवा से विवाह करता है और विलायत जाकर एक वेश्या के जाल मे फँस जाता है। वह वेश्या उसे अपने साथ विवाह करने को मजबूर करती है और उसे दयनीय स्थिति मे छोड जाती है। उसकी दूसरी पत्नी भी उसे धोखा देती है। केवल पहली पत्नी ही तन-मन-धन से उसकी सेवा करती है। अन्त में मोहन कट्टर सनातनी बन जाता है। उसके द्वारा सचालित पाठशाला मे वेद का अध्ययन, औषधालय मे आयुर्वेद का प्रचार, पुस्तकालय मे सस्कृत-हिन्दी ग्रथो का स्थान और मिल मे स्वदेशी वस्त्र का निर्माण होता है।

सकल नारायण शर्मा की 'राजरानी' (१९१२) और मेहता लज्जाराम शर्मा का 'आदर्श हिन्दू' (१९१५–१६) हिन्दू धर्म एवं भारतीय सभ्यता का विजय-स्तवन है। 'राजरानी' मे अग्रेजी शिक्षा और नारी-स्वाधीनता की निन्दा की गई है किन्तु लेखक की सहानुभूति नई पीढ़ी के साथ है। 'भीषण भविष्य' की भाँति इस उपन्यास मे भी नायिका और उसके गृह-शिक्षक में प्रेम-सम्बन्ध दिखाया गया है। 'आदर्श हिन्दू' का आधारफलक विस्तृत है। इसमे तीर्थ-यात्रा के वर्णन के माध्यम से आधुनिक भारत की धार्मिक और सामाजिक अवस्थाओ पर प्रकाश डाला गया है। नायक-नायिका आदर्श हिन्दू हैं। उनके विचार उनके सृष्टा के विचार हैं। जैसा कि उपन्यास की भूमिका मे बताया गया है, उसमे उपन्यास लेखक ने "अपने विचारो की बानगी प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है।" समाज-सुधार, देशोन्नति आदि के सम्बन्ध मे उनके विचार नायक द्वारा व्यक्त किए गये हैं। उन्होंने स्थान-स्थान पर हास्य और शृ गार-रस का सचार किया है, जिससे उपन्यास नीरस नहीं हो पाया है। मथुरा के चौबे का रेखाचित्र मनहरण है।

चाँदकरण शारदा ने 'कालेज होस्टल' मे छात्र-जीवन को वर्ण्य विषय बनाकर आर्यसमाज के मतो का प्रतिपादन किया है। कथानक और चरित्र मे कोई जटिलता नही है। एक आदर्शवादी विद्यार्थी धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह करता है, विदेश मे उच्च शिक्षा प्राप्त कर व्यापार मे लग जाता है और वैदिक रीति से विवाह करता है। वह स्वधर्म, स्वदेश और स्वभाषा के प्रेम का मूर्तरूप है।

गार्हस्थ उपन्यास

सामान्य विशेषताएँ

सामाजिक उपन्यास की परम्परा की एक कड़ी गार्हस्थ उपन्यास है। उसमे सामाजिक चेतना की ही अभिव्यक्ति हुई है। साहित्य मे गृह-जीवन की झाँकी बहुत प्राचीनकाल से मिलती है। महाकाव्य और रीतिकाव्य मे गृह-जीवन के बडे मार्मिक चित्र हैं, यद्यपि उनमे पूर्णता का अभाव है। उपन्यास मे उसका चित्रण समग्रता और वास्तविकता के साथ किया गया। आधुनिक काल मे कौटुम्बिक भावना शिथिल पड़ने लगी, फिर भी उसकी अभिव्यक्ति उपन्यास मे हुई। उपन्यासकारों ने मुख्यत: मध्यवर्गीय हिन्दू-परिवार का स्वरूप अंकित किया है। उन्होने सम्मिलित परिवार के सुख-सौन्दर्य का या भिन्न होते हुए परिवार के दुख-दैन्य का या दोनो का वर्णन किया। उनका लक्ष्य दो बातो की ओर अवश्य रहा है। उन्होने मानवीय सम्बन्धों के विभिन्न रूपो का उद्घाटन किया है तथा सुखद और सपन्न गार्हस्थ जीवन का आदर्श उपस्थित किया है।

आर्थिक परिवर्तन के फलस्वरूप परम्परागत पारिवारिक व्यवस्था का ह्रास और नई पारिवारिक व्यवस्था का विकास हुआ। पितृसत्तात्मक परिवार का स्थान दाम्पत्य परिवार होने लगा। इस सामाजिक परिवर्तन का प्रतिबिम्ब उपन्यासो मे मिलता है। अधिकांश उपन्यासकारों ने परम्परागत पारिवारिक प्रथा को अक्षुण्ण रखने के लिए व्यक्ति-स्वातंत्र्य का विरोध और पारिवारिक बन्धन को स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि मे सयुक्त परिवार एक वरदान है। वे उसे शाति, सुख और सुव्यवस्था का केन्द्र मानते हैं। उनका दृष्टिकोण सामाजिक से अधिक नैतिक है।

गार्हस्थ उपन्यासकारों का संसार छोटा है। उनकी रुचि पारिवारिक

प्रश्नो और परिस्थितियो मे है। परिवार से बाहर समाज की समस्याओ और सघर्षों से उनका सम्बन्ध नही है। सीमित दायरे मे ही उन्होंने विविध प्रसंगो और गहरी अनुभूतियो का समावेश किया है। प्रतिदिन की घटनाओं और साधारण दृश्यो को सरस, सुन्दर बनाकर यथार्थ मे रोमानी रग भर दिया है। पारिवारिक धरातल पर उन्होने स्मरणीय पात्रों की सृष्टि की है। उन्हे व्यक्तिगत जीवन पर प्रकाश डालने का अवसर मिला, अतः व्यक्ति के चरित्र का सूक्ष्म, स्पष्ट विश्लेषण होना चाहिए था। पर इसमे वे अधिक सफल नहीं हुए। उनके पात्र उनके विचार और आदर्श के मूर्त रूप बन गए हैं। नायक पुरुषोचित गुणो का निदर्शन है, नायिका नारी-सुलभ गुणों की। बाल-मन मे प्रवेश करने का उन्होने प्रयास नही किया है, न ही उल्लेखनीय बाल-चरित्र का निर्माण किया है। मानवीय भावों और मनोविकारो के उद्घाटन मे उन्हे निश्चय ही सफलता मिली है। कहीं सास-बहू, देवरानी-जेठानी के ईर्ष्या-द्वेष की, कही पति-पत्नी के प्रेम और माँ-बेटे के स्नेह की व्यंजना हुई है। मधुर जीवन के सरल सुख-दुख के चित्र हृदय को स्पर्श करते हैं। पारिवारिक जगत मे पति-पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त मधुर और पवित्र होता है जिसका मार्मिक चित्रण इने-गिने लेखक कर सके।

स्त्रियो को गृहकार्य की शिक्षा देने के उद्देश्य से पारिवारिक उपन्यासो की रचना शुरू हुई। उनका विकास तिलस्मी-ऐयारी तथा अन्य घटना-प्रधान उपन्यासों की प्रतिक्रिया मे हुआ। मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त बंगला मे अनूदित या छाया लेकर अनेक उपन्यास लिखे गए। इनमें दैनिक जीवन के विभिन्न पक्षो की जो झांकियाँ प्रस्तुत की गई वे तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों की घटनाओ से कम रजक नही थी। गार्हस्थ्य उपन्यास-लेखको ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रतिदिन के जीवन मे भी अनूठी परिस्थितियो और आकर्षक पात्रो का अभाव नही है। लज्जाराम शर्मा ने तो परिवार की परिधि मे ही अतिनाटकीय प्रसंगो की उद्भावना की।

आरम्भ

प्रथम पारिवारिक उपन्यास 'भाग्यवती' मे यह स्पष्ट दिखाया गया है कि आर्थिक व्यक्तिवाद सयुक्त परिवार के विघटन का कारण भी है और परिणाम भी। भाग्यवती का भाई लालमणि पढ़-लिखकर कमाने लगता है और अपने माँ-बाप से अलग हो जाता है। वह बड़े दावे के साथ कहता है, "अलग रहना अच्छा होता है।.........ईश्वर ने हमको चार अक्षर दिये हुए

हैं उनके प्रताप मे रोटी कमा खाते हैं।" भाग्यवती अपने ससुर द्वारा घर मे निकाली जाकर आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करती है।

कार्तिकप्रसाद खत्री लिखित 'दीनानाथ' (१७९९) में भी आर्थिक कारण से सम्मिलित कौटुम्बिक प्रथा टूटती हुई दिखाई गई है। कहानी कहने वाला दीनानाथ है, जो उपन्यास का नायक और अपने परिवार का होनहार युवक है। यह उपन्यास मध्यवर्ग के परिवार का इतिवृत्त होने के साथ-साथ एक युवक का आत्मचरित भी है। इसमे सुशीला और कर्कशा भाभी की चारित्रिक विभिन्नता पूरी तरह उतारी गई है। दीनानाथ की पहली भाभी का स्वभाव अत्यन्त सरल और मिर्मल है। वह उसके परदेश जाने के समय उसे अच्छी तरह खिलाती है, सुपारी कतर देती है और दही का टीका लगाती है। वह उसे दवा की दूकान खोलने के लिए अपने गहने दे देती है और बदले मे गहना लिए बिना उसके व्याह के लिए गहने बनवाने की चिन्ता करती है। नई भाभी घर मे पांव रखती है कि दोनो सगे भाई अलग हो जाते हैं पर उसकी अनुपस्थिति मे साथ हो जाते हैं। लेखक ने सयुक्त परिवार के वातावरण मे भाभी के स्नेह का मर्मस्पर्शी रूप सीधी-साधी भाषा मे प्रकट किया है।

भुवनेश्वर मिश्र की 'घराऊ-घटना' (१८९३) उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ गार्हस्थ उपन्यास है। वस्तु-योजना, चरित्राकन और कथाशिल्प मे उनकी मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उन्होने एक मध्यवर्गीय दम्पत्ति के दैनिक जीवन के कुछ मधुर दृश्य अकित किए हैं और उनके माध्यम से मिथिला की सस्कृति की अभिव्यक्ति की है। उनकी कलाकृति गीतकाव्य और महाकाव्य के बीच स्थान पाने योग्य है। स्थानीय रग की ऐसी सच्ची और सुन्दर झलक हिन्दी-उपन्यास मे विरल है। पृष्ठभूमि की विशिष्टता रहने पर भी प्रणय और वात्सल्य का चित्रण सार्वभौमिक स्तर पर हुआ है। पति-पत्नी के प्रथम मिलन का दृश्य जिस उत्कृष्टता से अकित किया गया है वह लेखक के सूक्ष्म पर्यवेक्षण और वर्णन-कौशल का सूचक है।

पलग पूरब सिरहाने रखा हुआ था और वह उससे दक्खिन तरफ पश्छिम मुंह बैठी थी। वह अपना सिर घुटने के ऊपर दिए, घुट्टी तक लटकते घूंघट मे छिपाए बैठी थी। ज्यो ही मैंने उसका घूंघट उठाया कि वह झट से घूमकर मेरी ओर पीठ करके दक्खिन मुंह बैठ गई और घूंघट फिर साबिक बदस्तूर गिर गया।...... थोड़ी देर के बाद फिर हिम्मत करके मैंने

एक बार और भी हाथ बढ़ाया और घूंघट उठा दिया। इस बार वह घूमी नहीं सिर्फ घूंघट खींचकर ज्यो की त्यो बैठी रही। मुझे इससे कुछ साहस हुआ फिर घूंघट उठाया। निदान मैं दो तीन बार घूंघट उठाता गया और वह गिराती गई। साथ ही साथ वह मुझसे कुछ दूर भी खसकती गई।...... तब मैं नीचे उतरा। एकदम उसके बदन मे सटके बैठा। फिर बाये हाथ से घूंघट उठाकर दाहिने हाथ से उसकी टुड्डी पकड ली। ज्योंही मैं उसका मुंह अपने मुंह की ओर करना चाहता था कि उसने अपना सिर नीचे यहाँ तक झुका लिया कि मेरा हाथ उसके घुटने और बदन के बीच पिसने लगा। तब मैंने टुड्डी छोड़ दिया पर हाथ दूसरी ही जगह रुक गया।

यह उपन्यास-जगत मे सोहागरात का अन्यतम दृश्य है। प्रथम समागम का ऐसा वर्णन अन्य उपन्यासकार नही कर सके। कुछ उपन्यासकारो ने स्वय वर्णन करना अनुचित मानकर पाठको को अनुमान करने के लिए छोड दिया। उदाहरण के लिए, लज्जाराम शर्मा ने 'सुशीला विधवा' के नायक-नायिका के प्रथम मिलन के समय यह लिखा, "मैं यहाँ इतना ही लिखना उचित समझता हूँ कि इसके बाद वही हुआ जो प्रथम समागम के समय युवा-युवतियों मे—दम्पति मे—हुआ करता है। इस दम्पति के प्रथम सुख के समय उनके आनन्द मे दखल डालने के लिए न तो चोर की तरह मेरी लेखनी घुसना चाहती है और न मैं एकान्त के सिवाय अपने पाठक-पाठिकाओ को इस बाद मे घुमने की सलाह देता हूँ।" प० किशोरीलाल गोस्वामी जैसे लेखको ने वर्णन किया भी तो सूक्ष्मता और स्वाभाविकता प्रदर्शित नहीं की। गोस्वामीजी की नववधू मुखर और चचल होती है। भुवनेश्वर मिश्र ने स्वाभाविक रमणीय परिस्थिति मे नववधू की लाज-भरी सुन्दरता और वर की प्रगल्भता का चित्रण किया है।

उनके उपन्यास का अत्यन्त मार्मिक स्थल वह है जहाँ दो कोमल रस—शृंगार और वात्सल्य—मिल गए हैं। पिता ने पुत्र के लिए सिकडी नहीं बनवाई। इसलिए पत्नी रूठ गई है और पुत्र को पिता के पास जाने नही देती है।

जब वह इधर आने लगे तब वह उसे गोद में उठा लें; वह रोने लगे, मैं इधर से पुकार दूँ, वह और जोर से रोने लगे, फिर नीचा उतार दिया जाय। जब किसी तरह बच्चा न रुका तब लाचार होकर उसने बड़े झोंक मे उसे गोद मे उठा लिया, लपक कर चौखट के पास आई; और बडे ही झोक से उसे मेरे देखते चौखट के भीतर बिठलाकर यो कहती चली गई। "दुर हो

ऐसा जिद्दी लडका कही नही देखा, जैसा बाप वैसा बेटा।"

पारिवारिक जीवन से चुन कर लिए गये ऐसे अनेक दृश्यो का प्रत्यक्षीकरण कुशलता से किया गया है। उनके बीच कभी लज्जावती वधू, कभी मानिनी पत्नी और कभी स्नेहमयी जननी की सजीव मूर्ति झाँक उठती है।

आचार-व्यवहार, हाव-भाव, पर्व-त्योहार, और भाषा-शैली में स्थानीय रग है। भाव के अनुरूप भाषा रस-स्निग्ध है। कवि की भाँति शब्दो के समुचित प्रयोग से अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न किया गया है। कथा प्रथम पुरुष मे कही गई है अतः आत्मानुभव की अभिव्यक्ति मे प्रत्यक्षता और आत्मीयता है।

लज्जाराम शर्मा के उपन्यास

गार्हस्थ उपन्यास-लेखको मे मेहता लज्जाराम शर्मा का नाम आदर से लिया जाना चाहिए। उनकी 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' (१८९९), 'हिन्दू गृहस्थ' (१९०३), 'आदर्श दम्पति' (१९०४), 'सुशीला विधवा' (१९०७) और 'बिगड़े का सुधार' (१९०७) अपने समय के लोकप्रिय उपन्यास हैं। 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' मे केवल दो सगी बहनो की कहानी है बल्कि दाम्पत्य परिवार और सयुक्त परिवार का यथार्थ और किसी हद तक अतिरंजित अंकन है। रमा अपने बैरिस्टर पिता के साथ रहकर पाश्चात्य सभ्यता मे रंग जाती है, लक्ष्मी अपने पुरानपंथी दादा के साथ रहकर गृहलक्ष्मी के गुणो से सम्पन्न होती है। एक को स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने के लिए प्राण तक देने के लिए तैयार होना पड़ता है, दूसरी पुरानी मर्यादाओ का पालन करती हुई सफल दाम्पत्य जीवन व्यतीत करती है। लज्जाराम शर्मा स्त्री को अंग्रेजी शिक्षा, स्वतन्त्रता और समान अधिकार प्रदान करने के पक्ष मे नही हैं। उनके मत से उसका उपयुक्त कार्यक्षेत्र गृह है। लक्ष्मी उनकी कल्पना की स्त्री है। उसका अपना व्यक्तित्व नही है। रमा में सजीवता और स्वाभाविकता है। उसके पतन और उत्थान मे परिस्थिति और सस्कार का योग है। लेखक की सहानुभूति रमा के प्रति न होकर लक्ष्मी के प्रति है किन्तु उन्होने चरित्रचित्रण मे कलात्मक तटस्थता का निर्वाह नही किया। वह रमा की "चीते की सी पतली कमर और उठी हुई छातियाँ" चित्रित करता है तो उसे लक्ष्मी के सम्बन्ध मे यह कहने मे सकोच नहीं होता कि उसका पति उसकी "लाज भरी आँखें, कटि की क्षीणता, अगों का सुडौलपन और उभरी हुई कठिनता मे नारियल को लज्जित करने वाली

छातियाँ देखकर सब भूल जाता था।" शर्माजी सुधारवादी होते हुए भी रसिक हैं। कहीं-कहीं उनका वर्णन और वार्तालाप असगत और कुरुचिपूर्ण हो जाता है। मथुरादास लक्ष्मी से प्रेम-निवेदन करता है, "मैं रतिशास्त्र जानता हूँ। साधारण पुरुष की अपेक्षा मुझमे विहार करने मे असाधारण आनन्द होगा।" लक्ष्मी उससे कहती है, "तैंने जितनी बार मुझसे "प्यारी" और "प्रेम" कहा है उतनी बार तेरे कलेजे मे छुरी भोकूँगी।"

'हिन्दू गृहस्थ' एक आदर्श हिन्दू-परिवार का नमूना प्रस्तुत करता है। एक जमीदार के दो लडके है, नयनसेन और हरसहाय। नयनसेन स्कूल-कालेज मे पढता है, विलायत से बैरिस्टरी पासकर आता है और वेश्यागामी बनता है। हरसहाय घर पर ही शिक्षा प्राप्त कर आदर्श ग्राम का निर्माण करता है और समाज के कल्याण मे लगा रहता है। नयनसेन की पत्नी सती-साध्वी है, हरसहाय की पत्नी कर्कशा और गर्विता। अपने उद्देश्य को ग्राह्य बनाने के लिए उपन्यासकार ने विभिन्नता (कन्ट्रास्ट) का उपयोग किया है। उसने पारिवारिक कलह और प्रेम का समान रूप से वर्णन किया है। उसकी मान्यता है कि परिवार, समाज और देश के अभ्युदय के लिए आधुनिक शिक्षा अनावश्यक ही नही अवांछनीय भी है।

शर्माजी की सर्वाधिक प्रसिद्ध और रोचक कृति 'आदर्श दम्पति' है। उन्होने एक सुन्दर स्त्री को विविध परिस्थितियो मे रखकर उसके नैतिक बल का दिग्दर्शन किया है। उसका पति-प्रेम घर मे नही बल्कि घर से बाहर परपुरुषो के सम्पर्क मे आने पर प्रकट हुआ है। अत: उपन्यास मे पारिवारिक जीवन से अधिक रोमांचकारी घटनाओं को स्थान मिला है। सुन्दरी पर अनेक पुरुष बलात्कार करने की चेष्टा करते है पर वह अपने सतीत्व की रक्षा करने में सफल होती है। कथा का बीज एक स्त्री-पात्र मे निहित है। उसका विकास इस प्रकार हुआ है कि पाठको की रुचि उस पात्र के चरित्र मे न होकर घटनाओ में रहती है। सुन्दरी को पहले एक कुटनी बहका कर वन मे ले जाती है, जहाँ एक दारोगा उसे वासना का शिकार बनाना चाहता है। प्रयाग जाने के समय नाव-दुर्घटना होने पर वह पति से बिछुड जाती है, एक मल्लाह के पंजे मे फँसती है लेकिन निकल भागती है। उसे एक वीर राजपूत अपने घर लाता है, जहाँ से उसे डाकू ले जाते हैं और वेश्या के हाथ बेचते हैं। वह वेश्या के घर में अपमान और दुख सहकर एक सज्जन के आश्रय मे आती है लेकिन उसके पुत्र द्वारा बलात्कार किये जाने पर जगल की राह लेती

है और कुएँ मे गिर जाती है। एक ग्वाला उसे बचाकर अपने घर मे रखता है और उस पर बुरी निगाह डालता है। वहाँ से अपनी इज्जत बचाकर वह एक गूजर के पास जाती है, जहाँ अपने पति से उसकी भेट होती है। पति उसे ग्रहण कर मानो उसकी पवित्रता पर स्वीकृति की मुहर लगा देता है। उपन्यासकार ने सुन्दरी की विपत्तियो के लिए प्रारब्ध को दोष दिया है पर जिस क्रम मे घटनाओ और प्रसंगो की उद्भावना की गई है उसके मूल मे निश्चित योजना है। नारी-विवशता की यह कहानी नरेश मेहता के 'डूबते मस्तूल' और कृष्णा सोवती के 'डार से बिछुडी' उपन्यासो मे दुहराई गई है। परन्तु जहाँ इनकी नायिकाएँ अनेक पुरुषो की उष्ण वामना की पूर्ति के लिए बनाई गई है वहाँ लज्जाराम शर्मा की नायिका कामातुर पुरुषो का सामना करने के लिए आई है। सकारात्मक नायिका की सृष्टि शर्माजी की विशिष्ट देन है। वे सोद्देश्य लेखक है, इसलिए उनके कथानक की अस्वाभाविकता उतनी खटकती नही है। उनकी नायिका हमारी सहानुभूति प्राप्त करती है और उनकी कहानी हमे प्रेरणा देती है।

'आदर्श दम्पति' मे पति-पत्नी का पारस्परिक प्रेम वर्णित है, 'बिगडे का सुधार' पति द्वारा उपेक्षित पत्नी के अक्षय प्रेम की कथा है। वनमाली बाबू अग्रेजी शिक्षाप्राप्त उच्चाधिकारी हैं। वे अपनी सुशीला पत्नी पर नाना प्रकार के अत्याचार करते है और एक मेम से प्रेम तथा विवाह करते है। उनकी पत्नी सुखदेवी सब कुछ सहती है, उनकी सुख-सुविधा के लिए अपने आभूषण तक बेच डालती है और अन्त मे उन्हे सुमार्ग पर लाती है। उसके त्याग का वास्तविक परिश्रम उस समय मिलता है जब वह पतिगृह छोडकर पितागृह जाना अस्वीकार कर देती है। उपन्यासकार ने यह विचार प्रकट किया है कि "स्त्री का पहला काम घर को सभालना है" और इसके लिए "जिन गुणो की स्त्रियो मे आवश्यकता है वे सब हिन्दू रमणियों मे मेमो से हजार दर्जे अधिक होते हैं।" भारत मे सुखदेवी जैसी रमणी का कभी अभाव नहीं रहा है किन्तु उपन्यासकार उसमे प्राण नहीं फूँक सका है। वह आदर्श हिन्दू नारी की प्रतिमा बनकर रह गई है।

'सुशीला विधवा' भारतीय विधवा का उदात्त चरित्र उपस्थित करती है। शर्माजी ने विधवा की पराधीनता और पीडा की मर्मान्तिक गाथा सुनाई है पर उसे इनसे मुक्त करने के लिए पुनर्विवाह का अधिकार न देकर सात्त्विक जीवन बिताने की सम्मति दी है। कुछ दिनों तक सुखमय विवाहित जीवन

बिताने के बाद सुशीला विधवा हो जाती है और मैके मे भाभी तथा ससुराल मे ननद के अत्याचारो को सहती है। उसकी दुर्दशा आर्थिक विवशता और सामाजिक कुरीति से हुई। उपन्यास में पारिवारिक अत्याचार के वर्णन के साथ-साथ क्रूर एव निर्मम ननद के चरित्र का चित्रण किया गया है।

लज्जाराम शर्मा ने गाँव और शहर के अच्छे खाते-पीते हिन्दू परिवारो का स्पष्ट रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। उनके मत से "गृहस्थाश्रम मे सुख थोडा और दुख बहुत है। सुख की बातें स्वप्न की तरह आती हैं और यों ही चली जाती हैं किन्तु दुख दिन-रात लट्ठ लिए तैयार रहता है।" फिर भी उन्होंने सुख-दुख दोनो की झाँकी दी है। वे अपने पात्रो का हृदय प्रायश्चित या पश्चाताप मे परिवर्तित कर देते हैं और उपन्यास को सुखान्त बना देते हैं। कथा और पात्रो के विकास मे स्वाभाविकता नहीं रह पाती। वे निर्विवाद रूप से एक मौलिक लेखक हैं। मनोरञ्जक प्रसगो की उद्भावना और वार्तालाप की योजना मे उनकी कल्पना सशक्त है। उनके उपन्यास नाटकीय क्षणो और दृश्यो से पूर्ण हैं। उन्होंने 'आदर्श दम्पति' की भूमिका मे लिखा है कि "उपन्यास अवश्य ही मनोरजन के लिए हैं परन्तु मेरा यह सिद्धान्त है कि इसके साथ-साथ पाठक-पाठिकाओं को किसी न किसी तरह की शिक्षा भी मिलना चाहिए।" उनकी सभी रचनाएँ पठनीय और शिक्षाप्रद हैं। उनका दृष्टिकोण सुधारवादी होते हुए भी प्रतिक्रियावादी नही है। वे प्राचीन मान्यताओ और मूल्यो के प्रति आस्थावान है। उनका उद्देश्य भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता और भारतीय जीवन पर आधुनिक सभ्यता का घातक प्रभाव दिखाकर सांस्कृतिक और नैतिक चेतना उत्पन्न करना है। यह उद्देश्य विषय के चुनाव और प्रतिपादन एवं चरित्रचित्रण मे स्पष्ट व्यक्त है। उसके फलस्वरूप उनकी वस्तु और पात्र मे पुनरावृत्ति हुई है।

लज्जाराम शर्मा स्त्री को शिक्षा और सस्कृति से वचित रखकर बन्दिनी बनाने के पक्ष मे नही है किन्तु उसकी स्वतन्त्रता का वे समर्थन नही करते। उमराव सिह गुप्त ने 'प्रेमलता' (१९१२), 'भाई बहन' (१९१३) और 'आदर्श बहू' (१९१३ वि० स०) मे नारी की स्वतन्त्रता और अधिकार के लिए स्वर ऊँचा किया है। फिर भी वे प्रचारक न होकर कलाकार हैं। 'प्रेमलता' का नायक सोमप्रकाश उनके भाव-विचार का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपनी पत्नी सुमित्रा की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह नहीं करता है और न पड़ोस की लड़की लक्ष्मी का विवाह बूढ़े वर से होने देता है। लक्ष्मी की

श्रद्धा और कृतज्ञता प्रेम का रूप धारण करती है पर वह सोमप्रकाश को विवाह के लिए विवश कर उसके सकल्प को भग करना नही चाहती। ससार से विदा होने के समय वह उसे सामने खडा देख असीम सुख का अनुभव करती है, "लक्ष्मी ने आँखें बन्द कर ली। उसने सासारिक सुख की अन्तिम घूँट पी ली है। उसका विवाह हो चुका। अब वह सदा के लिए विदा हो गई······।" इन शब्दो मे प्रेम का स्वर्गीय रूप झलक रहा है। ये दोनो पात्र लेखक की भावुकता के हाथ से निर्मित हैं। सुमित्रा मे सतीत्व होने के साथ-साथ साहस है। जब पडे उस पर बलात्कार करते हैं तब वह उन्हे छुरी दिखाती है। वह लक्ष्मी की भाँति वेदना सह सकती है, अपमान नहीं सह सकती।

उपन्यास का वातावरण उपन्यासकार की सवेदना के अनुकूल है। दम्पत्ति के कमरे की दीवार पर निर्जन वन में पेड के तले सत्यवान का सिर अपनी गोद में रखे हुए सावित्री का चित्र टगा है। बाह्य प्रकृति का वर्णन भी वैसा ही है "जिस प्रकार मैले कुचैले बच्चे प्रेम से अपनी माता के हृदय से लिपट कर दूध पीने लगते है इसी प्रकार काले-काले मेघ इस पर्वत की स्तन रूपी चोटियो पर लिपटे हुए हैं।" नारी के प्रति सवेदनशील होकर भी लेखक उसकी दुर्बलताओ को छिपाने की कोशिश नही करता है। वह व्यंग्य करता हुआ कहता है, "स्त्रियाँ गहनो से सिर से पैर तक लदी हुई है। किन्तु पैरो मे जूता नही है।" 'भाई बहन' भाई और बहन के स्नेह की करुण-कोमल कहानी है। 'आदर्श बहू' कर्कशा सास और सहनशील बहू के परस्पर सम्बन्ध का मार्मिक चित्र है। सास गाली देती है, बहू रो-रोकर बर्तन धोती है।

उमरावसिंह गुप्त की भाँति कुछ उपन्यासकारो की सहानुभूति नई पीढ़ी से है। लाला देवराज ने 'कर्कशा सास' (१९०४) मे मूर्खा सास द्वारा पढ़ी-लिखी बहू पर किए गये अत्याचार का वर्णन किया है। मणिराम शर्मा ने 'सुकुमारी' (१९१८ वि० सं०) मे जेठानी दुर्व्यवहार और देवरानी की सहनशीलता दिखाकर सयुक्त पारिवारिक प्रथा के दोषों की ओर सकेत किया है।

जयरामदास ने 'राजदुलारी' मे और ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने 'स्वर्णमयी' (१९१०) मे सयुक्त परिवार की पृष्ठभूमि मे आदश प्रेम की कहनी लिखी है। राजदुलारी पति के साथ पितागृह मे ही रहती है और पति के वेश्यागामी होने पर भी उसे हृदय-मन्दिर से नही निकालती। ईश्वरी प्रसाद शर्मा हिन्दू

समाज के नियमानुसार विवाह के बाद प्रेम का विकास दिखाते हैं, जो गार्हस्थ उपन्यास की एक सामान्य विशेषता है। उन्होंने 'स्वर्णमयी' में वेश्यागमन का विरोध करते हुए दाम्पत्य प्रेम का गुणगान किया है। जब साध्वी प्रभावती अपने वेश्यागामी पति से मिलने जाती है और उसका पति अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए उसे आलिंगनबद्ध कर गंगा में डूब जाता है उस समय मार्मिक दृश्य उपस्थित होता है। कथा को रोचक बनाने के लिए तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास के उपकरणों का उपयोग किया गया है, जो अस्वाभाविक है। शर्माजी की दूसरी कृति 'मागधी कुसुम' (१९११) वास्तविक घटना पर आधारित है क्योंकि उसकी कथा का बीज उन्हें एक मित्र की बातचीत में मिला। व्रजनन्दन सहाय के 'सौन्दर्योपासक' की कथावस्तु भी ऐसी ही है। उपन्यास का नायक जगदीश्वर प्रसाद अपनी पत्नी की चचेरी बहन मालती की ओर अपने कोहबर में ही आकृष्ट हो जाता है किन्तु मालती का विवाह उससे न होकर उसके मित्र से होता है। वह अपनी प्रेमिका और मित्र के सुख से सुखी होता है। उसकी वासना का उन्नयन होता है। प्रेमिका की स्मृति और पत्नी का प्यार उसके जीवन का संबल है। मालती के रूप में एक भोली-भाली किशोरी का चित्र उतारा गया है। वह जगदीश्वर का प्रेमपत्र उसकी पत्नी को निःसकोच दिखा देती है।

भावात्मक पारिवारिक उपन्यास

कार्तिक प्रसाद खत्री के 'दीनानाथ' की परम्परा में कुछ भावात्मक पारिवारिक उपन्यास लिखे गये, जिनमें अमृतलाल चक्रवर्ती की 'सती सुखदेई' (१९०९), अवधनारायण की 'विमाता' (१९१५) और कृष्णलाल वर्मा की 'चंपा' (१९१६) का विशिष्ट स्थान है। 'सती सुखदेई' सरल गृह-जीवन की सरस कहानी है। उसकी नायिका सुखदेई आदर्श वधू है। वह मैके में पति के अपमानित होने पर वहाँ से रूठकर ससुराल चली आती है। बड़े घर की बेटी होकर भी वह पति की सुख-सुविधा के लिए दूसरे घर में दासी का काम करती है। वह सास की सेवा करती हुई गृह-कार्य में अपनी दक्षता प्रदर्शित करती है। पत्नी के प्रेमभाव के अतिरिक्त सास के स्नेह और ससुर-दामाद के मनोमालिन्य एवं मेलमिलाप का वर्णन अत्यन्त कोमलता से किया गया है। हास्य और करुणा के मिश्रण से कथावस्तु और वातावरण में पावन मधुरता भर आई है।

'विमाता' सौतेली माँ के कठोर अत्याचार की कोमल कहानी है। उसका विषय पुराना है किन्तु उसके प्रतिपादन की पद्धति मौलिक है। लेखक ने शाश्वत सत्य को साहित्यिक सौन्दर्य प्रदान किया है। उनका क्षेत्र गाँव के जमीदारो के परिवार तक सीमित है, इसलिए वे वास्तविकता और मार्मिकता के साथ लिख सके हैं। वे मौलिक प्रतिभा से सम्पन्न थे। उन्होंने १७ वर्ष की अवस्था मे ही अपना पहला उपन्यास 'डायमड रेड' अग्रेजी में लिखा। उन्होंने 'विमाता' की रचना पहले कैथी मे की, फिर नागरी मे उसका लिप्यतर किया। यह उनकी प्रारम्भिक किन्तु प्रौढ कृति है।

इसमे उनकी रचनात्मक कल्पना और सजल भावुकता के सयोग से मर्मस्पर्शी स्थलो, प्राणमय पात्रो और मानवीय भावो की सृष्टि हुई है। उन्होंने ऐसे प्रसगो, परिस्थितियो और दृश्यो की उद्‌भावना की है जो हृदय को प्रभावित करते हैं। रघुनन्दन के साथ लखनऊ मे नरसिंह सहाय और परमश्वर का मिलन अविस्मरणीय है। यथार्थ मे भावुकता का रग भरकर और प्रति-दिन की बातो का रोमाचक घटनाओ से सम्बन्ध जोड़कर कथा इस कौशल से कही गई है कि पाठक मुग्ध हुए बिना नही रह सकता।

कथानक सीधा, सुलझा हुआ और क्रमबद्ध है। किन्तु उसमे रोचकता बढ़ाने और बनाए रखने की अपूर्व क्षमता है। आगे आने वाली घटनाएँ पाठको की आशा के विपरीत होती है। अनिश्चय और प्रत्याशा के बीच उत्कठा जाग्रत रहती है। वस्तुओ और क्रियाओ का स्थूल विवरण तथा वार्ता-लाप की स्वाभाविकता भ्रम उत्पन्न करने के लिए काफी है। शैली कथावस्तु के उपयुक्त है। उसमे सुन्दर सादगी और भाव संचारित करने की शक्ति है। जिसका वर्णन किया जाता है उसका चित्र खड़ा कर दिया जाता है। आरम्भ और अन्त सरल, सार्थक और प्रभावोत्पादक हैं। आरम्भ बिना किसी भूमिका के होता है, "बहुत दिनो के बाद सुभद्रा ने बड़ा हठ करके अपने पति का फिर विवाह कराया।" प्रारम्भिक अध्याय मुख्य पात्रो और कथावस्तु का परिचय देते हैं। उपसहार मे नायक-नायिका के शेष जीवन की झाँकी है। ऐसी करुण, मधुर और पावन कथा ही कथाकर के उद्देश्य को सहज स्वीकार्य बनाती है।

इसमें परिवार के सुख-दुखमय वातावरण का सजीव चित्र है। इसका उदाहरण रघुनन्दन के घर का कष्ट और ससुराल का आनन्द विलास है।

घर, कमरे, कमरे की सजावट का सविस्तर वर्णन किया गया है। गृह का सम्बन्ध गृहवासी से इस प्रकार दिखाया गया है मानो उसका भी एक व्यक्तित्व है। रघुनन्दन घर छोड़ने के समय उसे मन ही मन सबोधित कर कहता है, "हे घर ! तुम कई वर्षों से मेरे दुख का साथी रहे !" हत्याकाण्ड के बाद रघुवर के घर, आंगन और वाटिका मे अजीब सूनापन छा जाता है। घरेलू उपन्यास मे घर एक पात्र बन गया है।

जैसे उपन्यास की कथा हमारे घरो की कथा है वैसे ही पात्र हमारे पड़ोसी लगते हैं। वे विभिन्न पारिवारिक सम्बन्धो के साकार रूप हैं। रघुनन्दन आदर्श पुत्र और पति है। विमाता के वश होकर उसका पिता उसे इतना कष्ट देता है कि उसे गृहत्याग करना पडता है पर वह चुपचाप सहन करता जाता है। पत्नी की स्मृति उसके दुख की साथिन है। वह विमाता द्वारा दिया गया विष नही खाता है क्योकि उसे जानकी के लिए जीना है। वह महाकाव्य के नायक के समान आकर्षक है। वह अपने शील एव सौन्दर्य से पाठक की श्रद्धा, सहानुभूति और प्रशसा प्राप्त कर लेता है। उसकी सरलता, नम्रता, निर्मलता, उदारता आदि सद्गुणो को देखकर ऐसा लगता है कि उपन्यासकार स्वय अपना नायक है। परमेश्वर और राजेश्वर भले-बुरे सौतेले भाई के नमूने है। परमेश्वर रघुनन्दन के दुख से इतना दुखी है कि उसे अपनी माँ द्वारा विष दिये जाने की सूचना दे देता है। अपने द्वितीय विवाह के मामले मे मा-बाप का खुलेआम विरोध कर अपने दृढ व्यक्तित्व का परिचय देता है। राजेश्वर के चरित्र मे कुसगति तथा लाड-प्यार में बिगडने वाले बड़े घर के लड़के का यथार्थ चित्रण है। रघुवरदयाल क्रूर, जालसाज और फरेबी जमींदार का प्ररूप है।

अवधनारायण पुरुष और नारी दोनो के चरित्रनिर्माण मे एक समान समर्थ हैं। रघुवर की नई पत्नी सौतिया डाह की और कुन्ती करुणा एव वात्सल्य की मूर्ति है। सुन्दरी, सुशीला और मृदुभाषिणी जानकी पति की प्रतीक्षा और विरह में पलने के लिए उत्पन्न हुई है। विलासिता के वातावरण मे वह धैर्य और संयम से पतिभक्ति को जीवित रखती है, जो भारतीय नारी के भाव के अनुरूप है। रघुवर के पश्चाताप से मनुष्य की अच्छाई मे विश्वास होता है। निम्न वर्ग के पात्रों मे सच्ची मानवता के दर्शन होते हैं। स्वय भूखा रहकर रघुनन्दन की जान बचाने वाला रामनाथ अपनी लघुता मे हो

महान है। जबान की तेज किन्तु मन की भोली कुन्ती प्रेमचद की धनिया की माँ है। मुख्य गौण सभी पात्र मानवीय हैं और अपनी सबलता एव दुर्बलता के साथ जीवित हैं।

उपन्यास की महानता उपन्यास-लेखक की कला पर ही नही उसके विचार पर भी निर्भर है। उसने सहानुभूति से प्रेरित होकर जमीदारो के जीवन को कथानक के लिए नही चुना। उनके नैतिक पतन और अर्थलिप्सा पर प्रकाश डालना उसका अभीष्ट है। उसने इस सत्य को भली-भाँति चरितार्थ किया है कि मनुष्य के पतन का मूल कारण अर्थ और काम है। उसकी करुणा सामन्ती अत्याचार के प्रति विद्रोह की व्यजना है। उसने द्वितीय विवाह का विरोध कर सामन्ती रूढि पर आक्रमण किया है। उसे ईश्वर और कर्मफल मे विश्वास है। वह ससुर-दामाद, पति-पत्नी, भाई-भाई आदि के मधुर सम्बन्ध का रमणीय रूप दिखाकर जीवन को जीने योग्य बनाने की प्रेरणा देता है। विरह की वेदना और मिलन की उत्कठा से पूर्ण रघुनन्दन और जानकी का दाम्पत्य प्रेम मानव-जगत का मुख्य आकर्षण है। 'विमाता' पारिवारिक जीवन का गद्य भी है और पद्य भी। नीरस पाठक भी उससे प्रभावित हुए बिना रह नही सकते। जब तक भाव-सौन्दर्य मे आकर्षण रहेगा तब तक उसका अमरत्व अक्षुण्ण रहेगा।

अवधनारायण की भाँति कृष्णलाल वर्मा ने भी 'चम्पा' मे विरहाकुल प्रमी, विमाता और नव दम्पति को लेकर तीन मार्मिक पारिवारिक प्रसगों का वर्णन किया। उनके मनोहरलाल, सुनहरी और चम्पा को देखकर रघुवरदयाल और उसकी नई पत्नी तथा रघुनन्दन का स्मरण हो जाता है। वर्ण्य विषय और पात्रो मे अनुरूपता होते हुए भी 'विमाता' और 'चम्पा' मे कोई तुलना नही है। अवधनारायण का उद्देश्य कथा में व्यजित है। कृष्णलाल वर्मा कलाकार से उपदेशक बन गये हैं। उन्होने अनमेल विवाह और पर्दा-प्रथा पर व्यग्य किया है तथा सुधारवादी दृष्टि भावावेश में व्यक्त की है। फिर भी जैसा कि उनके उपन्यास का उपशीर्षक सूचित करता है, वह "हिन्दुओं के घरो का एक सच्चा और शिक्षाप्रद चित्र" है।

महिलाओं का योगदान

गार्हस्थ उपन्यासो की रचना मे महिलाओ का योगदान विशेष महत्त्व रखता है। प्रारम्भ मे पुरुषो ने महिलोपयोगी उपन्यास लिखे, धीरे-धीरे

महिला-पाठक वर्ग से महिला-उपन्यासकारो का आगमन हुआ। जब आधुनिक शिक्षा का प्रचार, मध्यवर्ग का उदय और समाज मे नारी का सम्मान हुआ तब साहित्य मे स्त्रियों का प्रवेश सम्भव हो सका। हिन्दी-उपन्यास मे पुरुषो के अनुभव के साथ-साथ स्त्रियो के अनुभव की भी अभिव्यजना हुई। उपन्यास-लेखन पर पुरुषो का एकाधिकार रहता तो उपन्यास मे जीवन का चित्रण पूर्ण नही होता। और घरेलू जीवन का सच्चा, मार्मिक चित्र तो घर की रानी की कलम से ही सम्भव है। नारी-हृदय का विश्लेषण भी अधिक सफलता के साथ लेखिका ही कर सकती है। पुरुष और नारी के दृष्टिकोण मे अन्तर होना स्वाभाविक है। महिलाओ द्वारा लिखित गार्हस्थ उपन्यासो मे विशिष्ट दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं। घर उनका क्षेत्र है, जिसका उन्हे वास्तविक परिचय है और जिससे वे, पुरुष उपन्यासकार की भाँति, बाहर नही गई है। उनकी रचनाओ में साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव भले ही हो, नारी-सुलभ भावुकता, करुणा, स्नेह, त्याग, सुकुमारता का आभास अवश्य मिलता है। उन्होंने उपन्यास के उस रूप की प्रतिष्ठा की जिसमे महिलाओ को विशेष सफलता मिली है।

मल्लिका देवी प्रथम उपन्यास-लेखिका है। उन्होंने भारतेन्दु की प्रेरणा से बगला उपन्यासो के अनुवाद किये थे। 'सुहासिनी' (१८९०) उनकी मौलिक रचना है, जिसका उल्लेख पाँचवें अध्याय मे किया जा चुका है। उनके अतिरिक्त प्रियवदा देवी, ब्रह्मकुमारी, भगवानदेवी, यशोदादेवी, युगल-बाला, दुखिनीबाला, गोपालदेवी, बाबली बहू, रामेश्वरी नेहरू आदि ने महिलोपयोगी गार्हस्थ उपन्यास लिखे है। प्रियवदा देवी को नारी-हृदय के उद्घाटन मे सर्वाधिक सफलता मिली है। उनकी रचनाओ मे नारी-सुलभ कोमलता और पवित्रता है। उनका पहला उपन्यास 'लक्ष्मी' (१९०५) उनका सबसे सुन्दर उपन्यास कहा जा सकता है। लक्ष्मी और शिवनाथ मे प्रेम होता है लेकिन शिवनाथ की शादी सावित्री के साथ हो जाती हैं। लक्ष्मी सावित्री से स्नेह बढाकर अपना खोया प्यार पा लेती है। उसकी ओर शिवनाथ पुन आकृष्ट होता है पर वह इस ससार से विदा हो जाती है। लेखिका का लक्ष्य सौत का स्नेह प्रदर्शित करना है। उनकी शक्ति लक्ष्मी की अनुभूतियो की व्यंजना मे है। नारी के हृदय में प्रणय का उदय होने पर किस प्रकार भावो की तरगें उठती हैं, इसका वर्णन सूक्ष्मता के साथ किया गया है। लक्ष्मी प्रेम और त्याग दोनो मे महानता दिखाती है। प्रियवदाजी के अन्य दो उपन्यास

'धर्मात्मा चाचा और अभागा भतीजा' तथा 'कलियुगी परिवार का एक दृश्य' १९१५ मे निकले। आत्मकथा-शैली मे लिखित प्रथम उपन्यास का विषय नाम से सूच्य है। दूसरे मे सुमति के एक परिवार का सुखी होना दिखाया गया है।

ब्रह्मकुमारी भगवानदेवी की 'सौन्दर्यकुमारी' (१९१४) मे नायिका मातृस्नेह और पतिप्रेम का तथा दुखिनी बाला की 'सरला' (१९१५) में एक मानिनी के स्वभाव का वर्णन है। युगबाला लिखिति 'चारु-शीला' (१९१३) और यशोदा देवी लिखित 'नववधू रहस्य' (१९१५) साहित्यिक मूल्य नही रखते। यशोदा देवी और रामेश्वरी नेहरू ने कुछ अनुवाद किए हैं, जो पठनीय हैं। कुछ लेखिकाओं ने केवल महिलाओ के लिए लिखा है और जीने की कला सिखाने की कोशिश की है। कुछ लेखिकाओ ने पारिवारिक जीवन मे मानवीय मूल्यो का प्रतिपादन किया है।

प्रादेशिक उपन्यास

सामान्य विशेषताएँ

सामाजिक उपन्यास का सहज सुन्दर रूप प्रादेशिक उपन्यास मे उभर कर आया। अल्प परिचित या अपरिचित प्रदेश के जीवन का यथार्थ चित्रण उसकी प्रत्यक्ष विशेषता है। यह वास्तव मे ग्राम्य या वन्य अचल का उपन्यास है। इसमे उस अचल की प्रकृति और मनुष्य, परम्परा और परिस्थिति, समाज और सस्कृति की गाथा रहती है। ग्रामीण तथा आदिवासी सरल तथा निष्कपट होते है। उनका चरित्र स्पष्ट होता है। उस पर सभ्यता का आवरण नही रहता। अत: प्रादेशिक उपन्यास मे मनुष्य के नैसर्गिक रूप का दर्शन होता है। देहाती जीवन में अपेक्षया अधिक स्वच्छन्दता, सरलता और अकृत्रिमता है। उसकी कथा नवीनता और सजीवता लिए रहती है और सहज ही आकृष्ट कर लेती है। आंचलिक उपन्यास की लोकप्रियता का सही रहस्य है।

भारत गाँवो का देश है। यहाँ भावुक कलाकार स्वभावत: गाँव की ओर उन्मुख रहे हैं। उन्होंने विशिष्ट क्षेत्र का चुनाव केवल इसलिए नही किया है कि वह उन्हें अत्यन्त प्रिय है बल्कि इसलिए भी कि वहाँ नागरिक शिष्टता का प्रवेश नही हुआ है। उन्होने प्रादेशिक उपन्यास मे आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के प्रति असतोष को वाणी दी है।

साहित्य और भूगोल का सम्बन्ध प्रादेशिक उपन्यास मे देखने को मिलता है। उसका लेखक विशिष्ट स्थान मे सामान्य जीवन का सश्लिष्ट चित्रण करता है। वह स्थान-विशेष के रीति-रिवाज, वेषभूषा, आचार-विचार, और लोकवार्ता का वर्णन करता है। वह अपने कथास्थल से जितना ही परिचित रहता है उसके वर्णन मे उतनी ही वास्तविकता और रमणीयता रहती है। भारत के विभिन्न प्रदेशो की कुछ निजी विशेषताए है, जिन्हे प्रादेशिक उपन्यास मे अभिव्यजना मिली है। विशिष्टता उसकी मूल विशेषता है। उसका लेखक न केवल प्रदेश की बल्कि जाति की विशिष्टता को भी महत्व देता है। किसी भी स्थिति मे उसे स्थान, उसके निवासी और सस्कृति के सम्बन्ध पर दृष्टि रखनी पडती है। वास्तव मे प्रादेशिक उपन्यास धरती का उपन्यास है और उसके पात्र धरती के लाल है। जिस प्रादेशिक उपन्यास मे स्थानीय बोली का अनावश्यक प्रयोग न हो तथा पात्र विशिष्ट न होकर सार्वभौमिक और सामान्य हो उसका साहित्यिक मूल्य बढ जाता है।

आरम्भ और विकास

प्रादेशिक या आचलिक उपन्यास का आरम्भ भारतेन्दु-काल मे ही हो चुका था। उसकी कोई सुनिश्चित परम्परा निर्मित नही हुई परन्तु उसका स्वाभाविक विकास होता गया। उसका मूल आकर्षण स्थानीय रंग है, जो कई उपन्यासो मे उभर कर आता रहा। स्थानीय रग के उपन्यास आचलिक उपन्यास का पूर्व रूप प्रस्तुत करते है। स्थानीय रग का समावेश भुवनेश्वर मिश्र ने 'घराऊ घटना' (१८९३) और 'बलवन्त भूमिहार' (१९०१) मे अपूर्व सफलता के साथ किया। उनके उपन्यासो के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मिथिला का अपना सांस्कृतिक व्यक्तित्व है। जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने 'वसत मालती' (१८९९) मे मुगेर जिले के मलयपुर अचल को कथा का केन्द्र बनाया और वहा की नदी, नदी-तट के मठ, लोकगीत एव लोकभाषा का प्रयोग करने वाले मल्लाहो का परिचय दिया। "हरिऔध" ने 'अधखिला फूल' (१९०७) मे गोरखपुर जिले के गाँव की झलक दी थी और एक आदर्श भारतीय गाँव की कल्पना की थी। उन्होने गाँव के बाहर सरजू के किनारे गाती हुई रमणियो का काव्यात्मक चित्र अकित किया। गोपालराम गहमरी ने 'भोजपुर की ठगी' मे भोजपुरी इलाके के प्राकृतिक सौन्दर्य का मोहक वर्णन किया था। इन उपन्यासो मे आँचलिक तत्व है पर

ये आंचलिक नही है।

आचलिक उपन्यास की सभावना प्रकट करने का श्रेय रामचीजसिंह, ब्रजनन्दन सहाय और मन्नन द्विवेदी को है। रामचीजसिंह ने अपने आत्म-कथात्मक उपन्यास 'वन विहगिनी' (१९०९) मे सथाल प्रदेश के प्राकृतिक और मानवीय दृश्यो का चित्रण किया। उनकी नायिका डाकुओं द्वारा पकडी जाकर एक कोल-सरदार के हाथ मे पड़ जाती है। कोल-सरदार उसे बहुत दिनों तक जगल मे रखता है और उससे विवाह करना चाहता है। उसका पति कोल-कुमारियो की सहायता से उसे बचाता है। आदिवासियों के वन्य जीवन पर आधारित यह साहसिक कथा ऐतिहासिक महत्व रखती है। इसके माध्यम से उपन्यासकार ने जनवादी दृष्टिकोण व्यक्त किया है। उसका मत है कि कोलो मे भी प्रतिभा होती है। वे सीधे-सादे होकर भी भावुक और गम्भीर होते हैं। खासकर कोल-कुमारियाँ बडी चतुर, चचल और साहसी होती है। ये विशेषताएँ इन सरल, उपेक्षित और निरीह आदिवासियो को सच्चे अर्थ मे वीर बनाती है। कोल-कुमारियों के सामूहिक नृत्यगान उनकी कला के प्रकाशन तो हैं ही, कोल-सस्कृति के सजीव अग भी हैं। पाठकों की सुविधा के लिए कोलभाषा का प्रयोग जानबूझ कर किया गया है।

ब्रजनन्दन सहाय की 'आरण्यबाला' का घटनास्थल विंध्याचल का एक पहाडी गाँव है। इसके पात्र लेखक के भाव-विचार के वाहक हैं। ब्रजमजरी प्रकृति के क्रीडास्थल वन्य प्रदेश के सरल-निश्छल जीवन की प्रतीक है। ओकार और मुकुन्द पूँजीवादी सभ्यता से उत्पन्न अशान्ति और असंतोष के प्रतिरूप हैं। वन, पर्वत आधुनिकता का मूक विरोध करते है। विंध्याचल का पहाडी गाँव लेखक की कल्पना का वह गाँव है जहाँ नई भौतिक सभ्यता का प्रचार नही हुआ है, जहाँ प्रकृति और मनुष्य अपने सहज सरल रूप मे विद्यमान है और जहाँ स्नेह, सहानुभूति, करुणा की धारा प्रवाहित है। यह पहाडी गाँव उपन्यास का एक सजीव पात्र है। ब्रजनन्दन सहाय ने 'राधाकान्त' मे भी गाँव की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि वहाँ "पवित्रता, स्वच्छता, सरलता, नीरोगता और आनन्द का राज्य है।"

प्रथम श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास

अधिकाश उपन्यासकार नगर-जीवन को अभिशाप और ग्राम्य जीवन को वरदान मानते रहे। मन्नन द्विवेदी ने पहली बार गाँव के दुख-दैन्य का

अपने उपन्यास मे उल्लेख किया। उनका 'रामलाल' (१९१४) हिन्दी का प्रथम श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास है। 'अधखिला फूल' की भाँति इसकी भूमि भी गोरखपुर जिले की बाँसगाँव तहसील है। इसमे ग्रामीण समाज अपनी समग्रता और वास्तविकता मे चित्रित है। जमीदार, महाजन, साहूकार, किसान, पटवारी, सरकारी कर्मचारी, भाट, डाकिया सभी अपनी वर्गगत विशेषता लिये जीवित हैं। सामती व्यवस्था का स्थान वणिक-व्यवस्था ले रही हैं। दुख, दरिद्रता, रोग, शोषण, अधविश्वास और वैमनस्य की वृद्धि हो रही है। इस विषम परिस्थिति मे तुलसी, मीरा और कबीर की वाणी गूँज रही है, आल्हा की कड़ियाँ दुहराई जाती है, त्योहारो, मेलो और ऋतुओ की रगीनी छाई रहती है और लोकगीतो की माधुरी छलक पडती है। शिक्षा के प्रचार के साथ ही नई चेतना फूट रही है और तरुण पीढी का निर्माण हो रहा है। ग्रामीण जनता की आशा-आकाक्षा, छल-प्रपच, हर्ष-विषाद, लघुता-महानता आदि का विश्लेषण बहुत स्वाभाविक है। जो लेखक धरती के निकट रहता है वही उसका इतना यथार्थ और जीवन्त रूप दिखा सकता है। द्विवेदीजी गोरखपुर जिले की वैवाहिक रीति और मिथिला की छवि को एक साथ अपनी कथा मे गूँथ सकते है। मिथिला के ठेठ देहात का रमणीय दृश्य देखिए :

चैत का महीना आया। न बहुत गर्मी न बहुत शर्दी है। किसानो ने खेत काट-काट कर खलिहान लगा दिये है। रात का गाँव भर के आदमी इकट्ठे हो जाते हैं। उजेली रात मे बाग के बाहर मैदान मे, लड़के ही नहीं कितने चालीस बरस के ऊपर के अधेड भी खेल रहे हैं, दौड़ रहे हैं, कूद रहे हैं, आनन्द मना रहे है। थक जाने पर बैठकर कुछ बड़बडा रहे हैं, आम के पेड टिकोरे से बेतरह लदे हुए है। इतने फलो पर डालें कैसे ठहर सकेंगी ? एक ने गाया—"कोने मासे अमवा मउरलै रे सजनी कौने से मासे" उधर से जवाब मे कोयल ने कूक दिया।

मन्नन द्विवेदी ने जो कुछ लिखा हैं उसमे सच्चाई की गध और ताजगी है। उनकी कथा एक गाँव से आरम्भ होती हैं और अनेक नगरो को छूकर देशव्यापी बन जाती है। उनके जन्मभूमि-प्रेम की परिणति देशभक्ति मे हुई है। उन्होने एक स्त्री-पात्र से कहवाया है कि "बिना देशभक्ति के आदमी आदमी नही है।" 'रामलाल' आंचलिक उपन्यास होते हुए भी देश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अवस्थाओ का चित्र है।

उन्हे बीते वैभव और ध्वस्त प्राचीन के प्रति थोड़ा मोह है। वे जागीरदारी प्रथा का ह्रास होते हुए नही देख सकते। फिर भी उनका दृष्टि-कोण प्रतिक्रियावादी न होकर प्रगतिशील है। उनका कथा-नायक एक परोप-कारी जमीदार का लडका है। उसकी जायदाद एक साहूकार बेईमानी से हड़प लेता है। उसे दरिद्र एव विपन्न होकर जन्मभूमि से दूर नौकरी की खोज मे शहर जाना पड़ता है। अपने उद्यम और अध्यवसाय से वह लखपति बन-कर घर लौटता है और समाज-सेवा मे लग जाता है। द्विवेदीजी की सहानु-भूति उसके प्रति इसलिए है कि वह धनी से गरीब होने के साथ-साथ सिद्धान्तवादी युवक है। उन्होने एक ओर पुरानपथी पण्डित और ढोगी साधुओ का उपहास किया है और दूसरी ओर समाजसुधारक पात्रो की सृष्टि की है। इससे उनकी सुधारवादी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार और नवीन है। उनके मत से "हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है जहाँ लडकियो का बहुत कम आदर होता है।" उन्होने नारी जाति की वेदना को समझने की कोशिश की है और उसकी दुर्दशा की झलक गीरा के जीवन मे दी है, जो माँ-बाप की दुलारी बेटी होकर उजड्ड, देहाती पति के हाथो पिटती है। ईसाई लडकी शहजादी के प्रति उनका भाव कोमल और मानवीय है। उन्हे स्त्री की शक्ति और सामर्थ्य मे विश्वास भी है। वह आर्थिक स्वतन्त्रता और समुचित शिक्षा प्राप्त कर प्रत्येक क्षेत्र मे पुरुष से होड़ ले सकती है और समान अधिकार प्राप्त कर सकती है। यह उनके स्त्री-पात्रो के जीवन से स्पष्ट है।

उनके जीवन-दर्शन का प्रभाव उनके पात्रों के निर्माण और विकास पर पड़ा है। उनके प्रमुख पात्र व्यक्ति भी है और सामाजिक चेतना के प्रति-निधि भी। रामलाल सही मानी मे नायक है। यह साहसी, कर्मठ, स्वावलम्बी और देशभक्त युवक लड़कियों के आकर्षण का केन्द्र है। "हिन्दी को उन्नत करना उसके जीवन का सबसे बडा उद्देश्य" है। वह ऐसा जनसेवक है जिसकी आशा-अभिलाषा जनता की आशा-अभिलाषा मे घुलमिल गई है। स्त्री-पात्रों को नई भूमिका मिली है। धनरजिया कलवार की बेटी होकर भी पढी-लिखी और नये विचार की ग्राम्य युवती है। ग्राम-पाठशाला की अध्यापिका के रूप मे वह कठोर कर्त्तव्य का पालन करती है। उसे देखकर 'प्रसाद' की तितली याद आ जाती है। ससुराल की सतायी गीरा पढ़-लिखकर अध्यापिका और आर्य समाज की उपदेशिका बनती है। दुराचारी पति को देवता मानने वाली

भगेलू की पत्नी गाँव की देवी है ।

उपन्यास अमर पात्रो की चित्रशाला है । विशिष्ट पात्रो की अपेक्षा सामान्य पात्र अधिक यथार्थ और प्राणवान है । शोभी पण्डित, साधु भगवती दास, दुधिया बाबा, इश्कलाल पटवारी और भगेलू भगत का परिचय मनोरजक ढग से दिया गया है । पाखण्डियो का चित्रण अत्यन्त सफल हुआ है । मेले की ओर जानेवाली 'औरतो के रास्ते मे गाजा का दम लेते हुए बाबा भगवती दास मटक-मटक कर गा रहे है'—"तोर गुन जपो कि माला" । इसी प्रकार इश्कलाल पटवारी का वास्तविक रूप इन शब्दो मे अकित किया गया है, "तहसील मे सलाम करते वक्त इनकी कमर का समकोण बन जाता है, लेकिन हलके पर खूब बढ-चढ कर बातें करते हैं ।" भगेलू भगत का रेखाचित्र अत्यन्त आकर्षक है । लेखक महाजनी सभ्यता का विरोधी होने के कारण उसके ढोग का पर्दाफाश करता है .

भगेलू चदन, तिलक और माला लेकर कुएँ के उत्तर तरफ पूजा किया करता है, लेकिन जब गनेशी तमोली की लडकी पानी भरने आती है तभी मालूम नही क्यो आप जोर-जोर से गाने लगते हैं ।

"सीतापति रघुवश मणि, तुम लग मेरी दौर ।
जैसे काग जहाज पर, सूझत और न ठौर ।।"

व्यग्य और व्यथा के सतुलन से कथा मर्मस्पर्शी हो उठी है । उसकी शैली परम्परागत न होकर रिपोर्ताज की शैली है, जो उपन्यास के लिए नई वस्तु है । घटनाओ मे सम्बद्धता और कथानक मे गठन का अभाव है । इसकी पूर्ति सजीव वर्णन-शैली से हुई है, जो उपन्यास का मूल सौन्दर्य है । भाषा सरल, चपल और सरस है । शब्द-शक्ति का चमत्कार पात्रो के रेखाचित्र मे देखा जा सकता है । काले रग की मिसेज कैथेराइन मित्रा के रेखाचित्र मे नई उपमाओ का उपयोग किया गया है, "साबुन रगड़ने के समय इनका शरीर ऐसा मालूम होता है मानो किसी ने कोयले पर दूध ढलका दिया हो ।" 'रामलाल' निर्विवाद रूप से शक्तिशाली और सुन्दर उपन्यास है ।

टिप्पणियाँ

१—"मस्कृति के चार अध्याय",

२—देखिए "नाटक"

३—"साहित्य का उद्देश्य", पृ० ५७

४—"वही, पृ० ५८

५—वही

१०

उपधाराएँ

उपन्यास का क्षेत्र जीवन के समान ही व्यापक एव विशाल है। उसमे विविध विषयो का समावेश प्रचार या कलात्मक विनोद के लिए किया गया है। मानव-जीवन अतीत और वर्तमान दोनो से बनता है। भारतेन्दुकालीन उपन्यास-लेखको का ध्यान जीवन के आधे भाग यानी वर्तमान पर केन्द्रित रहा, आधे भाग का साहित्यिक अन्वेषण शेष रह गया। उनके बाद मानो सामाजिक यथार्थ की प्रवृत्ति शिथिल हो गई और रोमानी कल्पना जाग उठी। रोमानी कल्पना के मूल मे अज्ञात और अद्भुत के प्रति उत्कठा थी जो मुख्यत. दो प्रकार के उपन्यासो मे व्यक्त हुई : ऐतिहासिक और तिलस्मी-ऐयारी। दोनो अतीत के रहस्य-लोक मे ले जाते है पर एक मे काल का (खासकर मुगलकाल का) आकर्षण मुख्य है, दूसरे मे स्थान का (खासकर वन्य प्रदेश का)। फिर, प्रथम में सामाजिक व्यवहारों को ऐतिहासिक भूमिका मे और द्वितीय मे साहसिक घटनाओ को भारतीय परिवेश मे प्रस्तुत किया गया है। दोनो मे सामाजिक चेतना से बढकर जातीय चेतना का स्पदन है। दोनो तथ्य एव कल्पना के सीमात की अपूर्व कला-सृष्टि हैं।

रोमानी उपन्यास-लेखक यथार्थवाद के विरोधी नही थे बल्कि उन्होने यथार्थ मे एक नया आयाम जोड़कर उसे पूर्ण और जीवत बना दिया। किशोरीलाल गोस्वामी और देवकीनन्दन खत्री ने अपनी रचनाओ मे यह अच्छी तरह दिखा दिया कि जीवन मे वर्तमान के अतिरिक्त अतीत भी है तथा उसका मोह कुछ और ही होता है। उन्होने एक प्रकार से क्रातिकारी परिवर्तन

उपस्थित किया। अतीत की ओर लौटना वर्तमान से विमुख होना नहीं था। यदि ऐसा होता तो ऐतिहासिक उपन्यास मे अतीत को वर्तमान के अनुरूप उपस्थित नही किया जाता। अतीत का अनुराग राष्ट्रीय चेतना का अग था। ऐतिहासिक उपन्यास की रचना बीते युग की उपलब्धियो और अभावो पर प्रकाश डालकर उनसे वर्तमान काल मे प्रेरणा और शिक्षा ग्रहण करने के लिए की गई थी। यही कारण है कि उसका सम्बन्ध मुस्लिम शासन-काल से था, जब यह देश अपनी शान मे ही मिट गया था।

ऐतिहासिक उपन्यास

भारतेन्दु-काल मे ऐतिहासिक वृत्त को लेकर जिस तरह नाटक लिखे गये उस तरह उपन्याम नही। उस समय, जब उपन्यास का शैशव था, ऐतिहासिक उपन्यास की धारणा बिल्कुल नई थी। भारतेन्दु की प्रेरणा से बगला के कुछ ऐसे उपन्यास अनूदित हुए थे पर मौलिक ढग मे लिखने का प्रयास आरम्भ ही हुआ था। नाटक के ममान उपन्यास मे भी इतिहास का स्थान सुरक्षित करने वाले पहले लेखक किशोरीलाल गोस्वामी थे। उन्हे ऐतिहासिक उपन्यास का वास्तविक जन्मदाता माना जा सकता है। भारतेन्दुकालीन लेखको ने समकालीन जीवन का चित्रण किया तो गोस्वामीजी ने अतीत को पुनः जीवित कर उपन्यास की एक नई शाखा का विकास किया और उसे साहित्य के स्तर पर प्रतिष्ठित किया। उनके सामाजिक उपन्यास मे यथार्थ का रोमास है, ऐतिहासिक उपन्यास मे रोमास का यथार्थ।

किशोरीलाल गोस्वामी की भाँति बलदेवप्रसाद मिश्र, गगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त और बलभद्र सिंह ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की ओर विशेष रुचि प्रकट की। ये सभी मिलकर भी गोस्वामीजी की समानता नही कर सके। इन्हे न तो उतनी सफलता ही मिली, न लोकप्रियता ही। इन्हे इतिहास के प्रति जिज्ञासा थी, उसका अध्ययन भी था,; पर इनमे वह मौलिक कल्पना नही थी कि वे इतिहास-ग्रथ लोलवार्ता, खोज-रिपोर्ट आदि के आधार पर भी उच्चकोटि के उपन्यासो का सृजन करते। उन्होने उपन्यास को नूतन और लोकप्रिय माध्यम समझकर इतिहास को उपन्यास का रूप और आकार प्रदान कर दिया है। उनकी कोई कृति साहित्य न होकर इतिहास है, कोई न तो साहित्य है और न इतिहास और कोई केवल लम्बी ऐतिहासिक कहानी है। उपन्यास के दुहरे प्रयोजन की पूर्ति के लिए उन्हे अतीतकालीन घटना

पर आधारित उपन्यास विशेष उपयुक्त प्रतीत हुआ। इसके द्वारा वे पाठकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ ऐतिहासिक ज्ञान बढा सकते थे और इसलिए एक ओर मुख्य कथा मे गौण कथा जोड देते थे, दूसरी ओर भूमिका मे या पुस्तक के बीच मे ऐतिहासिक तथ्यो का शुष्क विवरण या सक्षेप दे देते थे। उन्होने ऐतिहासिक उपन्यास की सख्या बढाई पर उसके स्वरूप मे नवीनता का समावेश नही किया। उनका अशदान यह है कि उन्होने उसकी सीमा का विस्तार किया। उनकी रचनाओ मे तिलिस्म, प्रेम, साहसिकता, युद्ध सभी के तत्त्व हैं। बलदेवप्रसाद मिश्र ने घटनाओ को, गगाप्रसाद गुप्त ने व्यक्ति को, जयरामदास गुप्त ने भाव को तथा बलभद्र सिंह ने तथ्य को मुख्यता दी है।

सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार मे इतिहास का ज्ञान, रचनात्मक कल्पना और मानव-स्वभाव की परख होनी चाहिए। इन गुणो से सम्पन्न होने पर वह इतिहास तथा उपन्यास दोनो की आवश्यकताएँ पूरी कर इतिहास-कार तथा पाठक को समान रूप से आप्यायित करता है। ये गुण आलोच्यकाल के गिने-चुने लेखको मे है। इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासो मे मौलिक कृतियो से अनुवाद उच्चतर है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'लालचीन' और 'वीरमणि' उत्तम उपन्यास हैं परन्तु मौलिक न होकर अर्ध-मौलिक और रूपान्तर है।

ऐतिहासिक उपन्यास स्पष्टतः दो प्रकार के है . अर्ध ऐतिहासिक या रोमानी, जिनमे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे कल्पित कथा कही गई है और विशुद्ध ऐतिहासिक, जो इतिहास-प्रसिद्ध घटना और व्यक्ति का आश्रय लेकर चलते हैं। कथावस्तु के अनुसार इनका वर्गीकरण इस तरह किया जा सकता है

१—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे प्रेमकथा प्रस्तुत करने वाले
२—ऐतिहासिक कथा के सामानान्तर व्यक्तिगत कथा लेकर चलने वाले
३—प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना पर आधारित
४—मुख्य ऐतिहासिक व्यक्ति को लेकर लिखित
५—गौण ऐतिहासिक व्यक्ति को लेकर लिखित

प्रथम कोटि के उपन्यास के रचयिता कथा और इतिहास मे स्पष्ट भेद नही करते। उनकी रचनाए दंतकथाओं के निकट हैं। वे किसी कल्पित या अर्ध कल्पित व्यक्ति को नायक-नायिका बनाकर इतिहास मे वर्णित किसी

विशिष्ट काल, घटना और व्यक्ति से सम्बन्ध कर देते हैं। कभी-कभी कल्पना और तथ्य का यह गठबन्धन अस्वाभाविक हो जाता है। उनके पुरुषों मे वीरता और स्त्रियो मे सुन्दरता होती है इसलिए उनमे प्रेम हो जाता है। प्रेम विवाह के बिना अधूरा रहता है इसलिए प्रायः अन्त मे उनका विवाह कर दिया जाता है। आधुनिक आलोचक कहेगे कि उनके नायक बहुत वीर है, नायिकाए बडी सुन्दर हैं, अत· उनमे वास्तविकता नही है। पर यह दृष्टव्य है कि उन्होने अपने पात्रों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे चित्रित कर उन्हें विश्वसनीय बनाने की चेष्टा की है। जहाँ उनका ध्यान साहसिक और पारिवारिक तत्वो के समन्वय की ओर गया है वहाँ रोमास से यथार्थ मिल गया है। उन्होने प्रेम, शत्रुता, षडयन्त्र, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि के वर्णन मे भाव-सौन्दर्य की सृष्टि की है।

मुरलीधर शर्मा लिखित "प्रभात सुन्दरी" (१९०५) युद्ध की भयकर छाया मे पले हुए सुकुमार प्रेम की भावभरी कहानी है। इसका घटनाकाल अनिश्चित और वातावरण स्वप्निल है। प्रभात युद्ध-यात्रा मे सुन्दरी को देख कर प्रेमासक्त हो जाता है। बहुत दिनो तक दोनो कभी कुछ देर के लिए मिलते है, एक दूसरे को देखते है, रुंधे स्वर से सम्बोधन कर लेते हैं या मौन रह जाते हैं। कारागार मे उनके मिलन का दृश्य बडा मार्मिक है। सहज सुन्दर प्रेमिका के प्रति वीर, भावुक और युवक प्रेमी प्रगल्भ उद्‌गार प्रकट करता है।

हे सरले। एकटक दृष्टि से आकाश की ओर तुम किस शोभा को निहार रही हो ? तुम्हारे नेत्रो के नीले तारे आकाश की नीलिमा को अपनी ओर आकर्षित कर लेंगे।

बालकृष्ण दामोदर शास्त्री लिखित "महेन्द्र मोहिनी" (१९१४) का विषय रमणीय और उसका प्रस्तुतीकरण नाटकीय है। अलाउद्दीन के शासन-काल मे राजपूतो के पारस्परिक कलह की पृष्ठभूमि मे रोमानी प्रेम की गाथा लिखी गई है। महेन्द्र की वीरता से मुग्ध होकर मोहिनी उसे अपनी रत्नमाला के साथ-साथ हृदय अर्पित कर देती है। पारिवारिक शत्रुता के कारण उनके विवाह में बाधा होती है। नायक नायिका का हरण करने के लिए तैयार हो जाता है किन्तु कुलगुरु उनके कुलो मे मैत्री स्थापित करने के लिए उनका विवाह करा देते हैं। कुल और प्रेम के सघर्ष से उत्पन्न होने वाली समस्या

का समाधान कौशल से किया गया है ।

दूसरे वर्ग के उपन्यासो मे दो या अधिक कथाए साथ-साथ चलती हैं, एक ऐतिहासिक घटना को लेकर और दूसरी प्रेम का प्रसग लेकर। ऐतिहासिक तथ्यो मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर उन्हे कल्पित अश मे मिला दिया जाता है । अन्विति इस प्रकार की जाती है कि अत नाटकीय हो। ऐतिहासिक और कल्पित पात्र एकत्र होकर अतीत को यथार्थ एव जीवत बना देते हैं। बहुधा प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्ति मुख्य हो जाते हैं । गगाप्रसाद गुप्त का 'वीर जयमल वा कृष्णकान्ता' (१९०३) अखोरी कृष्णप्रकाश सिंह का 'वीर चूडामणि' (१९१५) और जयरामदास गुप्त की 'कनकलता' (१९१३) वास्तविक युद्ध और कल्पित प्रेम के रसात्मक उपन्यास हैं।

'वीर जयमल' मे जयमल अकबर के साथ युद्ध करता है और उसकी दो लडकियाँ उसके वीर सैनिको से प्रेम करती हैं । कृष्णकान्ता एक सामान्य राजपूत कुमारी है, जो प्रेम तथा युद्ध दोनो मे आत्मसम्मान की रक्षा करती है। 'वीर चूडामणि' मे चौदहवी शताब्दी के वीर चूडाजी और उनकी प्रेमिका उमा के साथ ही उनके मित्र नारायणसिंह और उसकी प्रेमिका मालती की कथा है । इनका प्रथम परिचय रोमानी वातावरण मे होता है । वर्षा मे भीगते हुए चूडाजी और उनके मित्र का उमा और उसकी सहेली मालती अपने घर पर स्वागत करती है । उनकी बातो से कविता फूटती है । एक दल पूछता है—"आप दोनो किस राज्य की दीपशिखा है" तो दूसरा दल पूछता है—"आप दोनो किस सरोवर की कमलिनी हैं" । नायक-नायिका की अपेक्षा उपनायक-उपनायिका अधिक सजीव है । मालती वीर पुरुष का वेश धारण कर युद्ध मे चूडाजी की सहायता करती है । युद्ध, वेशभूषा, सवारी, अस्त्र-शस्त्र, नगर, दरबार आदि के वर्णन मे ऐतिहासिक सत्य का अभास है। उपन्यास पढकर वीर-युग की झलक आँखो के सामने आ जाती है । 'कनकलता' मे ऐतिहासिक, तिलस्मी और साहसिक उपन्यासो की विशेषताए मिली हुई है । पेशावर के अफरीदी शासक के अत्याचार और उसका विरोध करने वाले कनकसिंह का प्रेम-सम्बन्ध मनोरम प्राकृतिक वातावरण मे दिखाया गया है ।

कुछ उपन्यासकारों ने इतिहासकारो की भाति युद्धो, विजयो और

है उसकी ओर उनका ध्यान नही गया। उनकी रचनाओ से अतीत के गौरव और ग्लानि का स्मरण होता है, जीवन के शाश्वत सत्य का अनुभव नही होता। उन्होने राष्ट्रीय और कुछ अंश तक साम्प्रदायिक भावनाओ से प्रेरित होकर जातीय जीवन के उत्थान-पतन का चित्र अंकित किया है। उन्होने विशेषतया ऐसी घटनाओ पर प्रकाश डाला है जो भारतीय हृदय को सहज ही स्पर्श करती हैं। अतः उनके उपन्यास अन्य विशेषताओ के अभाव मे भी केवल कहानी से पाठको को प्रभावित करने मे समर्थ है।

बल्देवप्रसाद मिश्र के 'पानीपत' (१९०२) और 'पृथ्वीराज चौहान' (१९०२) बलभद्र सिंह की 'वीरबाला' (१९१०) और 'सौन्दर्य प्रभा' (१९११) तथा रामनरेश त्रिपाठी की 'वीरागना' (१९१५) राष्ट्रीय महत्व की घटनाओ पर आधारित है। मिश्र जी ने 'पानीपत' को 'इतिहास और उपन्यास का अपूर्व सम्मिलन' बताया है। वस्तुत. उनकी रचनाओं मे ऐतिहासिक तथ्य और रमणीय कल्पना का समन्वय है। प्रथम उपन्यास का विषय पानीपत का तृतीय युद्ध है। युद्ध का वर्णन तो सजीव है ही, उससे जुड़ी हुई प्रेम की कथा भी कोमलता से कही गई है, मानो कृपाण और नूपुर की झनकार मिल गई हो। पात्रों का व्यक्तित्व वीरयुग का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। उनकी वाणी में ओज और भाव में मस्ती है। वेश-भूषा, आभूषण, रीति-रिवाज आदि की चर्चा देशकाल के अनुकूल की गई है। राजनीनिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियो की स्पष्ट रूपरेखा अकित की गई है। देश की प्राकृतिक छवि का भावपूर्ण चित्रण हुआ है। उपन्यास पढकर राष्ट्रीय भाव जाग्रत होता है। उसकी वर्णन-कला उसकी मूल विशेषता है। भाषा विविध भावों को व्यक्त करने मे समर्थ है। एक पंक्ति देखिए, "घाट के ऊपर जैसे ही स्त्रियो ने चरण रखे वैसे ही उनके नूपुरो की ध्वनि से जल मे कुतूहल उत्पन्न हो गया।" मिश्र जी का दूसरा उपन्यास 'पृथ्वीराजरासो' पर आधारित है। उसमे मौलिक प्रतिभा के दर्शन नही होते किन्तु उसकी घटनाओ का रोचक वर्णन पाठकों का मन मुग्ध करने के लिए काफी है। मिश्रजी के उपन्यास वीरकाव्य के निकट हैं।

'वीरबाला' उन तीन राजपूत राजकुमारियो के बलिदान की मार्मिक कथा है जो सिंधु पर मुसलमानी विजय के बाद खलीफा के पास भेज दी गई थीं और जिन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए मृत्यु का आलिंगन

जहागीर के प्रेम मे फारसी छिछलापन है। मथुराप्रसाद लिखित 'नूरजहा' (१९०५) उपन्यास के रूप मे जीवनी है, जिसमे नूरजहा और जहागीर के जन्म से मृत्यु तक की घटनाओ का रोचक वर्णन है। जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान' (१९०७) मे वाजिदअलीशाह के वैभव-विलास का शानदार वर्णन है। उसके महल मे सुरा, सुन्दरी और सगीत है। उसके बाग मे फूल और झरने हैं। नवाबी परिस्तान के ये आकर्षण लेखक के लिए विशेष मूल्य नही रखते। उसकी दृष्टि मे रोशनआरा ही देवी है, जो नवाब के प्रलोभन को ठोकर मार देती है और "सगीबेग का आहाता ही वास्तविक स्वर्ग है जहाँ हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई की तरह रहते हैं और सुख-दुख मे एक दूसरे का साथ देते है।"

जहाँ उपर्युक्त उपन्यासो मे राजा-रानी के विलासमय जीवन की झाँकी है, वहाँ कुछ उपन्यासो मे वीर राजपूतो और राजपूत-रमणियो के चरित्र का चित्र है। उनके व्यक्तित्व मे वीर-युग की भावना साफ झलकती है। वे त्याग और बलिदान का आदर्श उपस्थित कर हमे प्रेरणा देते हैं। अमृतलाल चक्रवर्ती के 'चदा' (१९०३) और सिद्धनाथ सिंह के 'प्रण पालन' (१९१५) मे मेवाड के राजकुमार चदावत के अनुपम त्याग की अमर गाथा है। चदावत अपने पिता राणा लाखा का विवाह उस कन्या से करा देता है जिसका नारियल उसके लिए आया था और इस प्रकार वह पत्नी और राज्य दोनो का अधिकार अर्पित कर देता है। विमाता द्वारा अपमानित होने पर वह मेवाड से विदा हो जाता है किन्तु सकटकाल मे उसका उद्धार करने आता है। उसकी पितृभक्ति और मातृभूमि-प्रेम मध्ययुगीन आदर्शों के अनुरूप है। राजसभा, राज्याभिषेक, विवाह-विधि आदि का वर्णन भी समयानुकूल है। दोनो लेखक पात्र और वातावरण का विश्वसनीय चित्रण करने मे सफल हुए हैं। अमृतलाल चक्रवर्ती के कथाविन्यास, चरित्राकन, वर्णन और भाषा-शैली मे भावुकता का पुट है। उन्होंने राणा लाखा की नई पत्नी कमलावती के मानसिक ऊहापोह का उद्घाटन किया है और उसकी दासी चम्पा को आकर्षक रूप मे प्रस्तुत किया है। सिद्धनाथ सिंह का वार्तालाप नाटकीय और पात्रोचित है। जब चंदावत मेवाड से विदाई लेता है और रण के लिए राजपूतों को ललकारता है उस समय उन्होंने उसकी वाणी मे आवेश भर दिया है :

राजहस के ग्रास को वक लेना चाहता है, सिंह के भाग को शशक

लेना चाहता है, देवताओं के भाग को राक्षस लेना चाहता है। भला तन मे प्राण रहते हुए यह क्यो कर हो सकता है।

लालजी सिंह की 'वीरबाला' (१९०६) और ठाकुर युगलकिशोर सिंह की 'राजपूत रमणी' (१९१६) मे अपने पति को युद्ध मे भेजकर उनके विश्वास के लिए अपना सिर काटकर भेजने वाली हाडारानी की कहानी है।

जोधपुर-निवासी सुप्रसिद्ध इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद की 'रूठो रानी' (१९०६) उमा दे नाम की उस रानी की करुण-मधुर जीवन-कथा है जो एक बार पति से रूठकर सदा रूठी ही रहती है। विवाह की रात की एक घटना उसके जीवन मे नया मोड देती है। उसका पति नशे मे उसके पास न आकर उसकी सहेली के पास चला जाता है। उसके हृदय मे ठेस लगती है और वह आरती की थाल पटक कर पलग पर लेट जाती है। फिर तो पति के मनाने से भी वह मान नही छोड़ती। उसका मान उसकी पति-भक्ति का दूसरा रूप है। वह आजीवन अपने को पति की दासी मानती है और विधवा होने पर सती हो जाती है। उसके व्यक्तित्व की विलक्षणता यह है कि वह मान और प्रेम दोनो की रक्षा करने मे सफल होती है। उसके मौन मे समर्पण और हठ मे कोमलता है।

उपन्यास का धरातल पारिवारिक है किंतु उसमें महाकाव्यात्मक गरिमा है। वह एक व्यक्ति की कथा होने के साथ-साथ देशकाल का इतिहास है। रूठी रानी युग की भावना का प्रतिनिधित्व करती है। वह अपने पति को जिस साहस के साथ अपने पिता के घातक षडयन्त्र से बचाती है और उसके लिए मुसलमानी आक्रमण के समय जूझने के लिए तैयार होती है वह एक राजपूत-रमणी से ही सम्भव था।

मुंशीजी ने इतिहास, पुरातत्त्व और लोकगाथा के आधार पर मध्ययुग की एक विशिष्टता-सम्पन्न रानी और सामाजिक, सास्कृतिक एव राजनीतिक अवस्था का ऐसा चित्र अकित किया है कि उपन्यास मे लोकगाथा की सुन्दरता उभर आई है। उनकी भाषा मे स्थानीय बोली का पुट है, जो वातावरण को वास्तविकता प्रदान करता है। अतीत के यथार्थ का ऐसा सजीव चित्रण ऐतिहासिक ज्ञान और रचनात्मक कल्पना के बल पर ही किया जा सकता है।

कतिपय उपन्यासकारो ने ऐसे व्यक्तियो के चरित्र पर प्रकाश डाला है जिनके नाम इतिहास मे विख्यात नही हैं। उनकी दृष्टि वातावरण से व्यक्ति

की ओर तथा व्यक्ति के बहिरंग से उसके अन्तरंग की ओर गई है। 'उल्लंघन और प्रायश्चित' बिना नायक का उपन्यास है। इसकी नायिका अवध के नवाब सुजाउद्दौला की बेगम है, जिसे अपने पति से प्रेम न होकर उसके धन से प्रेम है। उसके चरित्र का विश्लेषण सूक्ष्मता से किया गया है। जैसा कि उपन्यास के शीर्षक से स्पष्ट है, इसमे कर्त्तव्य के उल्लघन और उसके फलस्वरूप प्रायश्चित के भाव की व्यंजना की गई है। यह भाव विशेषत नायिका और सामान्यतः अन्य पात्रो के हृदय को आन्दोलित करता है। व्यक्तिगत भाव का घात-प्रतिघात राजनीतिक उथल-पुथल के अनुरूप ही है। मुगल साम्राज्य के क्षयकाल में राजाओ और नवाबो के पारस्परिक कलह से उत्पन्न अराजकता का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि बाह्य घटना के साथ अन्तर्द्वन्द्व का सामंजस्य हो गया है, जो ऐतिहासिक विषय को नाटकीयता प्रदान करता है। वर्ण्य विषय और कथाशिल्प की दृष्टि से उपन्यास अपने ढग का अकेला है।

गंगाप्रसाद गुप्त ने 'कुवरसिंह सेनापति' (१९०३) मे इसी नाम के औरगजेब के सेनापति को नायक बनाया है। कुवरसिंह युद्ध मे जितना ही वीर है प्रेम मे उतना ही कातर।

ब्रजनन्दन सहाय ने गयासुद्दीन बहमनी के प्रधान गुलाम लालचीन का आश्रय कर 'लालचीन' (१९१५) लिखा, जो वस्तु और शिल्प दोनो मे उत्कृष्ट है। उन्हे यथार्थ और रोमास के तत्त्वो को समन्वित करने मे सफलता मिली है। उनकी रचना सत्य घटना पर आधारित होते हुए भी कल्पनात्मक है। उसमें घटना, चरित्र और भाव का समान महत्त्व है। पात्रो के मनोभाव का विश्लेषण और वातावरण का निर्माण दक्षता से किया गया है। उपन्यास के माध्यम से लेखक ने गम्भीर विचार-दर्शन व्यक्त किये हैं, जो कथानक और चरित्र मे अच्छी तरह फिट कर दिए गये हैं और जो नवीन लगते हैं परन्तु चिरंतन होने के कारण युग के प्रतिकूल नही कहे जा सकते। मध्ययुग के एक दास के द्वारा स्वतन्त्रता और समता के सिद्धान्तो का प्रतिपादन कराया जाना स्वाभाविक है। 'लालचीन' 'चित्रलेखा' जैसे दार्शनिक ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा की पहली कड़ी है। पात्र लेखक के भाव-विचार के वाहक होकर भी व्यक्तिगत विशेषता से सम्पन्न है। वे परिस्थितियों से प्रभावित और भावावेग से प्रेरित होते हैं। उनमे लालचीन महत्त्वाकाक्षी और अधिकार-लोलुप है। वह दासत्व की यन्त्रणा से मुक्ति पाने के लिए कोई भी मूल्य चुकाने के लिए तैयार है। वह अपने स्वामी को अपनी बेटी के रूपजाल में फँसाकर

अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहता है परन्तु जब उसका स्वामी उसकी बेटी को हरम में रखकर भी उससे शादी करना नही चाहता तो वह इसे अपना अपमान समझकर क्षुब्ध हो उठता है। वह छल से गयास की आँखें फोडकर उसे कैद कर लेता है और शमसुद्दीन को राजा बनाता है और जब उसकी बेटी शमसुद्दीन से विवाह करने को राजी नही होती तो उसे भी कैद कर लेता है। वह निर्मम, क्रोधी, अधीर, हठी होते हुए भी अपनी स्त्री कुलसुम के इशारे पर नाचता है। कुलसुम नारी की शक्ति और दुर्बलता के साथ जीवित है। वह पति को प्रेरणा और बल देती है पर पति के युद्ध मे जाने और लडकी के कैद होने पर उसका हृदय कॉप उठता है। उसकी लड़की लुत्फुन्निसा लेखक के शब्दो मे 'देवबाला' है। उसे खाना पकाने और कविता लिखने मे समान अधिकार प्राप्त है। उसे गयास की वासना से नफरत और शमसुद्दीन के प्रेम से सहानुभूति है। परन्तु जब शमसुद्दीन भाई को गद्दी से हटाकर राजा बन बैठता है तो वह उससे विमुख हो जाती है। वह उसकी सगिनी बनकर रहना चाहती है, सम्राज्ञी बनकर नही। रूप-गुण से सम्पन्न यह युवती धर्म के लिए कष्ट सहन करना अपना परम कर्त्तव्य समझती है।

'रूठी रानी' और 'लालचीन' के लेखको ने व्यक्ति और वातावरण के यथार्थ चित्रण से अतीत का जैसा पुनर्निर्माण किया है वैसा बहुत कम लेखक कर सके। अधिकाश उपन्यासकारो मे ऐतिहासिक बोध नही था, दूसरे शब्दो मे, वे अतीत और वर्तमान का भेद नही समझते थे। उन्होने अतीत को वर्तमान के सदृश प्रस्तुत किया है। इतिहास के प्रति उनका दृष्टिकोण आधुनिक नही था। उन्होने इतिहास के बाह्य दृश्य को देखा, उसके मूलभूत सत्य को परखने की कोशिश नही की। वे उसे राजा-रानी की कहानी समझते थे, वर्ग-सघर्ष की अभिव्यक्ति नही। वे राहुल और यशपाल की भाँति ऐतिहासिक यथार्थवाद के आधार पर इतिहास की समुचित व्याख्या नही कर सके। ब्रजनन्दन सहाय की दृष्टि मे लालचीन और गयासुद्दीन का सघर्ष दास-सामंत का सघर्ष न होकर सामान्य ऐतिहासिक घटना है।

हमारे उपन्यासकारो की दृष्टि सुदूर अतीत की ओर नही गई, यद्यपि उसमें एक अद्भुत आकर्षण था और उसके चित्रण मे कल्पना की उडान के लिये अधिक अवकाश था। उनकी रुचि निकट अतीत की ओर थी, शायद इसलिये कि उससे उनका विशेष परिचय था और उसको पुनरुज्जीवित करना आसान था। उनका ध्यान भारत के मध्यकाल—मुस्लिम शासनकाल—पर

केन्द्रित रहा। अतीत की घटना और पात्र का प्रत्यक्षीकरण कठिन है। उनमे वास्तविकता और विश्वसनीयता तभी आती है जब उनमे सजीवता और सभावना हो। निकट अतीत और वर्तमान मे विशेष अन्तर नही होता, इसलिए उक्त विशेषताएँ निकट अतीत के चित्रण मे सफलतापूर्वक समाविष्ट की जा सकती हैं। यही कारण है कि अनेक उपन्यास-लेखको ने सत्रहवी शताब्दी को पृष्ठभूमि के लिए चुना।

इतिहासकार ऐतिहासिक व्यक्ति के व्यक्तित्व-निरूपण मे कल्पना का उपयोग नही करता है। उपन्यासकार कल्पित पात्र की सृष्टि और ऐतिहासिक पात्र की पुन: सृष्टि करता है, यद्यपि दूसरे प्रकार के पात्र के सम्बन्ध मे उसे कल्पना पर अकुश रखना पडता है। आलोच्यकालीन उपन्यासकारो ने कल्पित पात्रो का चित्रण सरल समझकर उन्हे मुख्यता दी और इतिहास-प्रसिद्ध पात्रो की अपेक्षा उन्हे अधिक आकर्षक रूप मे उपस्थित किया। कल्पित पात्र परम्परा के सदर्भ मे चित्रित और ऐतिहासिक पात्र समकालीन परिस्थितियो द्वारा निर्मित हैं। सामाजिक शक्तियो से रूपायित होने के कारण वे सजीव है।

इसी प्रकार उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक सत्य की अवहेलना करते हुए कल्पना की स्वच्छन्द क्रीडा प्रदर्शित की परन्तु अतीत को सजीव बना दिया। उनकी रचनाओ में इतिहास का रोमास भी है और यथार्थ भी। कथानक के कल्पित अश मे रोमास का रग स्पष्ट है। मुस्लिम शासक-वर्ग के नैतिक पतन और हिन्दू सामत-वर्ग की वीरता एव राष्ट्रप्रेम के वर्णन मे यथार्थ की झलक है। वातावरण का निर्माण करने मे राजनीतिक अवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया है, सामाजिक एव सास्कृतिक परिस्थितियो का अनुशीलन नही किया गया है। वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने के लिये पूर्व प्रचलित भाषा का भी प्रयोग नही किया गया है। ऐसी भाषा पुरातत्त्वप्रेमियों को ही प्रिय होती है। साधारण पाठको के लिये वह दुर्बोध होती है, इसलिए वे ऐतिहासिक उपन्यास मे भी प्रचलित भाषा की खोज करते है। किशोरीलाल गोस्वामी के कुछ उपन्यासो को छोडकर प्राय: सभी उपन्यासो मे प्रचलित भाषा का ही व्यवहार किया गया है। कही-कही कालदोष परिलक्षित होता है, जो वर्णन के ब्योरे मे उतना नही खटकता जितना इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति और वृत्त के प्रत्यक्षीकरण मे है। लगता है जैसे अतीत का यथार्थ चित्र उपस्थित करना उपन्यासकारों को अभीष्ट नही था या उनमे कल्पना की वह शक्ति नही थी, जो विगत को वर्तमान से भिन्न जीवित सत्ता के रूप मे

उपस्थित करती है।

उनके अनेक पात्र इतिहास के पन्ने से निकले हुए प्रतीत नही होते। उनके प्रेमी-प्रेमिका मानो उनके आस-पास के दिलफरेब युवक-युवतियाँ हैं। उनके राजा-रानी उनके समय के पतनोन्मुख उच्च वर्ग के नर-नारी है। उनकी परिस्थितियाँ भिन्न हैं, उनके नाम भिन्न है किन्तु उनकी भावनाएँ हमारी जैसी हैं। भावनाओ की समानता परिस्थितियो की भिन्नता दूर कर देती है और वे हमारे परिचित-से लगते है। उनके आकर्षण के मूल मे यह तथ्य निहित है।

तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास

तिलिस्मी और ऐयारी शब्द अरबी 'तिलिस्म' और 'ऐयार' के विशेषण हैं, जिनका अर्थ क्रमशः अद्‌भुत रचना और चालाक होता है। इन शब्दो का प्रयोग अरबी-फारसी कथासाहित्य मे किया गया है। हिन्दी मे इनके प्रयोग और प्रचलन का श्रेय देवकीनन्दन खत्री को है। उन्होने 'चन्द्रकान्ता' के चौथे हिस्से मे तिलिस्म की व्याख्या एक पात्र द्वारा कराई है और स्वय तीसरे हिस्से और भूमिका मे ऐयारो का परिचय दिया है।[1] उनके मतानुसार तिलिस्म और ऐयारी का सम्बन्ध प्राचीन काल से है किन्तु उन्हे दोनो का आभास वर्तमान काल मे ही मिला, एक का भग्नावशेषो मे और दूसरे का बहुरूपियो मे।

तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास का मूल स्रोत 'दास्तान अमीर हमजा', 'बोस्तान ख्याल' आदि फारसी कथाएँ हैं। यह बात 'दास्तान अमीर हमजा' और 'चन्द्रकान्ता' की तुलना से स्पष्ट हो जाती है। दोनो के पात्र, विषय और स्थिति मे अधिक साम्य है। वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह अमीर तथा उसके ऐयार अमरू के प्रतिरूप हैं। 'दास्तान अमीर हमज' की भाँति 'चन्द्रकांता' मे तिलिस्मी इमारत के भीतर बाग, नहर, मेवे मिलते हैं, छद्मवेश, बेहोशी की दवा, रमल आदि का उपयोग किया गया है। जिस प्रकार अमीर बबरची को धोखे से मिठाई खिलाकर बेहोश कर देता है, उसी प्रकार तेजसिह चोबदारों को तम्बाकू पिलाकर छकाता है। तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास के लेखक हरिकृष्ण जौहर ने भी उसे फारसी कथा-कहानी के नमूने पर लिखा बताया है।[2] उसकी विशिष्टता यह है कि उसमे प्राचीन फारसी कथा की सामग्री और आधुनिक

उपन्यास के शिल्प का सम्मिश्रण है, जैसा कि जौहरजी ने आगे लिखा है, "पूर्वीय रग और पश्चिमी ढग को ध्यान मे धरकर ये किताबें लिखी गई हैं।" प्रचीन एव नवीन की सधि का साहित्य होने के कारण उसका आकर्षण बढ गया। मिश्रबधु के कथानुसार तिलिस्म-ऐयारी का पूर्व रूप यूरोपीय उपन्यासो मे भी मिलता है।[3] तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास पर फारसी प्रभाव इतना स्पष्ट है कि उसमे पाश्चात्य प्रभाव ढूँढने की आवश्यकता नही। इसी प्रकार, चारण-काव्य से उसका सम्बन्ध जोडना समीचीन नही प्रतीत होता।[4]

अपने जीवनानुभव से प्रेरणा, फारसी कथासाहित्य से आधार और अग्रेजी उपन्यास का ढाँचा लेकर देवकीनन्दन खत्री ने अपनी अद्भुत कल्पना के बल पर हिन्दी मे तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासो की सृष्टि की। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम और बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक की अवधि, जो देवकीनन्दन खत्री का रचनाकाल है, तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास का स्वर्णकाल है। 'चन्द्रकान्ता' और 'सतति' की परम लोकप्रियता देखकर अनेकानेक लेखक उनके आदर्श पर उपन्यास लिखने मे प्रवृत्त हुए। उन्होने 'चन्द्रकान्ता' की कथावस्तु का ही अनुकरण या अपहरण किया। अत. तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास की सामान्य विशेषताओ की जानकारी के लिये उसकी कथा सक्षेप मे प्रस्तुत की जाती है।

नौगढ़, विजयगढ और चुनारगढ तीन पहाडी रजवाडे हैं। नौगढ के महाराज जयसिह की सुन्दर लड़की चन्द्रकाता और विजयगढ़ के महाराज सुरेन्द्र सिह का लडका वीरेन्द्रसिह प्रेमपाश मे बँधे है। जयसिह भी चन्द्रकाता की शादी वीरेन्द्रसिह से करना चाहते है पर उनके दीवान का लड़का क्रूरसिह उनका दामाद बनना चाहता है। वह चुनारगढ के महाराज शिवदत्त सिह के पास जाकर चन्द्रकांता के रूप की प्रशसा करता है और उसे भड़काता है। एक ओर वीरेन्द्रसिह और जयसिह रहते हैं, दूसरी ओर क्रूरसिह और शिवदत्त सिह। दोनो पक्ष मे सघर्ष होता है जिसमे सैनिको की वीरता से ऐयारो की चालाकी अधिक कारगर होती है। क्रूरसिह और उसके ऐयार मारे जाते हैं, चुनारगढ़ पर वीरेन्द्रसिह की विजय होती है, शिवदत्तसिह वन की राह पकडते है और उनके ऐयार वीरेन्द्रसिह से मिल जाते हैं। इसी बीच वीरेन्द्रसिह और चन्द्रकाता तिलिस्म तोडकर अपार धन प्राप्त करते हैं। दोनों के विवाह से उपन्यास का अत होता है।

इस प्रकार तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास का मूल प्रसंग प्रेम होता है। नाटक की भांति उसमे पांच अवस्थाएं होती है। सहवास, दर्शन या गुण-श्रवण से प्रेम प्रारम्भ होता है। प्रमी-प्रेमिका दोनो की ओर से प्रयत्न किया जाता है। उनके बीच कोई प्रतिस्पर्धी आ जाता है और सघर्ष उत्पन्न होता है। वे जब प्रतिस्पर्धी के हाथ मे पड जाते हैं तब चरम सीमा का बांध होता है। ऐयारो की सहायता से वे अपनी बाधाओ को दूर करते हैं, जिससे नियताप्ति की अवस्था आती है। अन्त मे उनके मिलन से फलागम होता है।

बहुधा एक स्त्री को दो पुरुष या एक पुरुष को दो स्त्रिया प्राप्त करना चाहती हैं। आकर्षण का केन्द्र वास्तविक सम्बन्ध न होकर साहसिक प्रयत्न होता है। फलतः प्रेम ऐयारी और तिलिस्म की ओट मे चला जाता है।

ऐयारो के पास एक से एक हथकण्डे होते हैं। हाथ मे कमद, कमर मे खजर और बगल में बटुआ लटकाए ये जिधर चलते हैं उधर "उनके आगे जवांमर्दी वो दिलेरी हाथ जोड़े खडी रहती है।" ये किसी के गले मे कमद डालकर उसे गिरा सकते है या उसके सहारे ऊँची से ऊँची दीवार पर चढ सकते है। इनके खजर से इनका बटुआ अधिक उपयोगी होता है। उसमें बेहोशी की बुकनी, लखलखा, मोमबत्ती, आइना आदि रहते है। जब जरूरत हुई बुकनी सुँघाकर किसी को बेहोश किया, गठरी बनाकर पीठ पर लाद लिया और ऐसी जगह जाकर पटक दिया कि जहाँ चिडिया भी पर नही मार सकती। अगर कोई गठरी ले जाते हुए देख ले तो हर्ज नही, धोबी समझकर चुप रह जाएगा! बेहोशी की बुकनी का जवाब लखलखा लाजवाब है! जरा-सा बेहोश आदमी को सुँघाया गया और वह छीक मारकर होश मे आया। मोमबत्ती और आइना भी ऐन मौके पर काम देते है। अधेरी रात मे मोमबत्ती जलाकर, सामने आइना रखकर नकली सूरत बनाई जाती है और इस कला से बनाई जाती है कि बेटा भी बाप को और प्रेमी भी प्रेमिका को पहचान नही सकता।

प्रेमी-प्रेमिका के मिलन मे ऐयारी सहायता देती है पर तिलिस्म बाधक होता है। वे या तो उसमे फँस जाते हैं या खलनायक-नायिका द्वारा कैद कर लिए जाते हैं। वे उसे तोड़कर प्रियपात्र के साथ-साथ गडा हुआ धन प्राप्त करते हैं। तिलिस्म मनुष्य के निर्माण-कौशल का चरमोत्कर्ष है। वह

हमे ऐसे संसार मे ले जाता है जिसकी इमारत, कमरे, किवारें, सीढ़िया, तहखाने, सुरगें और बाग विलक्षण दृश्य उपस्थित करते हैं। उसे तोड़ने की तरकीब एक खास किताब मे पहेली के रूप मे बताई हुई रहती है। यह किताब उसी को मिलती है जिसके भाग्य मे तिलिस्म तोडना बदा होता है।

तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास का रस कथावस्तु और उसके विन्यास मे है। उसमे कौतूहल का तत्व होता है जो उत्कण्ठा बढ़ाकर मन को रमाए रहता है। घटनाओ का जाल फैलाकर रहस्य की सृष्टि की जाती है और धीरे-धीरे सुलझा कर जिज्ञासा शात की जाती है। मुख्य कथा का सम्बन्ध नायक-नायिका से होता है। उसमे उपनायक-उपनायिका की कथा गुंफित कर दी जाती है। इस दुहरे कथानक का समाहार बहुधा अन्त में होता है।

प्रमुख पात्र प्राय: उच्च वर्ग के होते हैं। नायक सामती शौर्य और खलनायक सामंती क्रूरता का प्रतीक होता है। नायिका की नीर-भरी सुन्दरता बड़ी प्यारी लगती है। सभी पात्र अपरिवर्तनशील होते है। उनके दो ही आयाम होते हैं। वे सज्जन या दुर्जन होते हैं। ऐयारो मे सर्वाधिक सजीवता और मानवीयता होती है। स्त्री-ऐयारो का रूप मोहक होता है। पाठको का ध्यान पात्रों की प्रवृत्ति की ओर न जाकर क्रिया की ओर जाता है।

पात्रो के विविध भावो का प्रतिफलन विविध दृश्यो मे होता है। चांदनी मे खण्डहर से उदासी की आभा फूटती है, अधकारमय वन भयकर लगता है और पहाड़ी प्रदेश वीरता का संचार करता है। जब अधकार में दूर से आती हुई आवाज या किसी अज्ञात व्यक्ति का अट्टहास और रुदन सुनाई पडता है तब रहस्य की सृष्टि होती है। प्रकृति के विभिन्न रूपो के चित्रण से प्रभाव उत्पन्न करने मे सभी उपन्यासकार सफल नही होते किन्तु उनकी रचनाओं मे उनका प्रकृति-प्रेम कुछ न कुछ प्रकट हो ही जाता है। उनके घटना-स्थल वन्य प्रांतर और राजप्रसाद होने के कारण रोमानी होते हैं। उन्हें स्थान का ऐसा तीव्र बोध है कि वह एक पात्र का रूप धारण कर लेता है।

जहा तक काल का सम्बन्ध है, तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास मे सामत-युग का पुनर्निर्माण किया गया है। घोड़े, हथियार, मोमबत्ती आदि सामंती सम्यता का स्मरण दिलाते हैं। तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास मे स्वछन्द प्रेम का

चित्रण युग के अनुकूल हुआ है। सामती समाज मे विवाह का सम्बन्ध सम्पत्ति के उत्तराधिकार से जुडा हुआ था। अतः नायक-नायिका मे विवाह के बिना प्रेम-सम्बन्ध की कल्पना की गई है।

तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासकार अपनी रचनाओ मे उपन्यास की दो महत्वपूर्ण विशेषताओं का समावेश नही कर सके। उन्होने समकालीन समाज की समस्याओ पर विचार नही किया और न साधारण लोगो के जीवन को अपना प्रतिपाद्य बनाया। फिर भी वे युग और जीवन से दूर नही थे। उन्होने देश के प्राकृतिक सौदर्य और भग्नावशेष मे अभिरुचि प्रदर्शित की और बीते युग के गौरव का आभास दिया, जो आधुनिक राष्ट्रीयता का द्योतक है। उन्होने अभिजात प्रेम का चित्रण लोकसामान्य स्तर पर किया है और रोमास को दैनिक जीवन का अग बनाया है। उनके वीर नायक और रूपवती नायिका मानवीय शक्ति और सौदर्य की चिरंतन प्रतिमाए है। अतः उनके पात्रो से हमारा तादात्म्य हो जाता है।

वे घटना-वैचित्र्य से मन को अभिभूत करते हैं, भावो से हृदय का कोई न कोई कोना छूते हैं और परिचित घटना-स्थल से विश्वास बढाते हैं। वे भाग्य की अपेक्षा पुरुषार्थ को विशेष महत्व देते है, असत्य पर सत्य की विजय दिखाते हैं और सामाजिक आचार-व्यवहार का शिष्ट रूप उपस्थित करते हैं। उनकी नैतिकता से प्रेरणा और शक्ति मिलती है। उनकी रचनाओ की प्रभावशीलता और लोकप्रियता का मूल कारण यह है कि उन्होंने सरल भाषा मे कहानी सुनाने की कोशिश की है।

जबकि अधिकाश तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास-लेखक देवकीनन्दन खत्री का अनुकरण करते रहे, उर्दू से हिन्दी मे आने वाले प्रसिद्ध लेखक हरिकृष्ण जौहर ने मूल फारसी के आधार पर तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासो की रचना की। उन्हे इसमे पूरी सफलता मिली। काल-क्रम और मौलिकता की दृष्टि से तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास के क्षेत्र मे खत्री जी के बाद जौहरजी का स्थान है। उनकी 'कुसुमलता' (१८९८-१९००), 'कमलकुमारी' (१९०१) और 'मयंकमोहिनी' (१९०१) मे रूपवती राजकुमारी के लिए तिलिस्म तोड़े जाते है और ऐयारो मे घात-प्रतिघात होता है। नाटकीय सवाद, सजीव वर्णन, सरस प्रसग और सुन्दर शैली के कारण उपन्यास काफी मनोरंजक हैं। साधारण बात भी चमत्कार के साथ कही गई है। सूर्यास्त का उल्लेख इन

शब्दों मे किया गया है, "गोल और लाल चमकीली थाली नीले और गहरे आसमान मे डूबा चाहती है।" दिवसावसान का यह दृश्य कितना प्राण-मय है।

सामने के उमड-उमड के उठने हुए बादल कह रहे है कि हे सूर्यदेव! आपके जाते-जाते हम आसमान पर अपने विशाल शरीरो का शामियाना तान देते हैं। इतने मे ठण्डी-ठण्डी हवा ने इठलाकर कहा कि "क्या हमारे सामने।" साथ ही हसते हुए चन्द्रमा ने खिलखिलाकर आवाज दी "देखो तो सही।"

जौहर जिस प्रकार अवसर के अनुकूल सवाद की योजना करने मे सिद्धहस्त है उसी प्रकार प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्य के वर्णन के लिए वे अवसर निकाल लेते हैं। खत्रीजी के ऐयार जब किसी युवती को बेहोश करते या होश मे लाते है, उमे युवती के रूप मे नही देखते। 'कुसुमलता' मे जौहर जी का भीमप्रताप माधवी को लखलखा सुघाने के पहले उसकी बेहोशी मे चेहरे के चारो तरफ से लहराती हुई कधो पर पडो जुल्फें देख लेता है।

हरिकृष्ण जौहर ने फारसी कथानक-रूढियो का सहारा लिया है। उनके तिलिस्म कपोल कल्पित नही है किन्तु वे उसे विश्वास योग्य नही बना सके। 'कमल कुमारी' मे उन्होने तिलिस्म को जादू से मिला दिया।

अनिरुद्ध चौबे की 'चम्पकवरणी' (१९०४) और प्रसू सरस्वती प्रिय. की 'सोमलता' (१९१४) मे तिलिस्म और ऐयारी की अपेक्षा प्रेम-तत्व की प्रधानता है। प्रथम उपन्यास की कहानी पुरानी है, वन मे अपरिचित राजकुमार-राजकुमारी का प्रथम दर्शन से प्रेम होना और विवाह-बन्धन मे आबद्ध होना। ऐयार माली, जौहरी, सौदागर आदि का रूप धारण करने मे कुशल हैं। ऐयारा सरला के अगो का वर्णन परम्परागत है। 'सोमलता' की कहानी भी कल्पना से बुनी हुई है। एक राजकुमारी एक नवयुवक को घोड़े पर जाते देखती है और उस पर मुग्ध हो जाती है। यत्न नायिका की ओर से ही किया गया है। महल, बाग आदि का वर्णन विस्तार से किया गया है और कई स्थलो पर गीतो का उपयोग किया गया है। फलतः वातावरण मे सजीवना है।

शकरदयाल श्रीवास्तव का 'महेन्द्र कुमार' (१९०३) प्रेम और साहसिकता से पूर्ण रोचक उपन्यास है। राजकुमारी चन्द्रकला को कुंवर

कृष्णचन्द्र डाकुओं के हाथ से छुडाता है। कृतज्ञता से प्रेम का अंकुर फूटता है। इस अवसर पर राजकुमार और राजकुमारी का वार्तालाप सुनने योग्य है। शील एवं सौन्दर्य पर दृष्टि रखकर प्रगल्भ भाव व्यक्त किए गए है। पात्रों का व्यक्तित्व सामंत-युग के अनुरूप ही है। मत्रीपुत्र सोमदत्त, जो चन्द्रकला के भाई महेन्द्रकुमार को कुए मे धकेल देता है, सामती बर्बरता का प्रतीक है। सुशीला, सुन्दरी चन्द्रकला वीर कृष्णचन्द्र के सर्वथा उपयुक्त है। उसकी हँसमुख दासी उसकी सहेली बनकर रहती है और हमारी सहानुभूति प्राप्त करती है। पात्रों की सख्या आवश्यकता से अधिक है, इसलिए कहानी मे अधिक उलझन पैदा हो गई है।

कुछ उपन्यास ऐसे हैं जिनमे प्रेम और ऐयारी की बातें हैं, तिलिस्म नही है; जैसे, रामप्रसाद शर्मा की 'चन्द्रमुखी' (१९१०) ब्रह्मदत्त शर्मा का 'प्रेमा का खून' (१९११), शकरलाल अग्रवाल की 'कल्यानी' (१९१२) और जगन्नाथ मिश्र का 'लतिकामधुप' (१९१५)। इनकी घटनाए अनहोनी और पात्र निराले हैं। 'चन्द्रमुखी' मे एक ही राजकुमारी से दो राजकुमार शादी करना चाहते है और इसके लिए दोनो के ऐयार प्रयास करते हैं। उनमे नायिका जिसे प्यार करती थी उसी से उसका विवाह होता है। 'लतिका-मधुप' के नायक-नायिका स्वप्न मे प्रेमासक्त होकर एक दूसरे की खोज मे निकल पड़ते हैं और प्रथम मिलन मे ही बेहोश हो जाते है। उनके ऐयार-ऐयारा उनके प्रेम-व्यापार मे सहायता देकर स्वयं परिणय-पाश मे बँध जाते हैं।

निहालचंद वर्मा और चन्द्रशेखर पाठक ने क्रमशः 'मोतीमहल' (१९१३) और 'हेमलता' (१९१५) मे देवकीनन्दन खत्री का ही अनुसरण किया है पर उनके प्रतिपादन का ढग मौलिक है। 'मोतीमहल' के नायक-नायिका साथ-साथ पढकर प्रेमी-प्रेमिका बन जाते है। 'हेमलता' मे एक राजकुमार की तस्वीर देखकर हेमलता उस पर आसक्त हो जाती है किन्तु एक तिलिस्म की रानी उसे कैद कर उससे प्रणय की भीख मांगती है। पाठक जी का लक्ष्य कहानी सुनाना है, रस का संचार करना नही। वे लिखते है, "प्रेमी-प्रेमिका का प्रथम मिलन कैसा होता है उसके मन मे क्या-क्या भाव उत्पन्न होते हैं ' ·· आदि बातें लिखकर हम पाठको का समय नष्ट नही करना चाहते।"

तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास के प्रचार से प्रभावित होकर अनेक उपन्यासकार

पौराणिक-ऐतिहासिक कथानक मे तिलिस्म और ऐयारी का समावेश करने लगे। इससे तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास को निश्चित और भारतीय पृष्ठाधार मिला। विट्ठलदास नागर लिखित 'किस्मत का खेल' (१९०५) की नायिका उज्जैन की राजकुमारी चन्द्रकान्ता है, जिस पर अश्विनीकुमार मोहित होते है और जिससे विवाह कर सुन्दर महल मे वन के बीच निवास करते है। उनकी पत्नी उनके विरह मे व्याकुल होकर मर्त्यलोक मे आती है। कधार के यवनराज का ऐयार मालिन का वेश धारण कर चन्द्रकान्ता का हरण करता है। चन्द्रकान्ता, अश्विनीकुमार और यवनराज का यह सम्बन्ध अस्वाभाविक लगता है। इसी प्रकार वृन्दावनविहारी शर्मा ने 'दो नकाबपोश' (१९०९-१०) में हस्तिनापुर और उज्जैन को घटनास्थल एवं नल-दमयन्ती को पात्र बनाया है। नल तिलिस्म तोडकर दमयन्ती से विवाह करते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी तथा जयरामदास गुप्त ने ऐतिहासिक उपन्यास मे तिलिस्म का तमाशा दिखाया है। तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास की धारा स्वतन्त्र रूप से उदभूत होकर अन्य धाराओ मे मिलती गई। देवकीनन्दन खत्री के समकालीन और परवर्ती लेखको ने उसका विस्तार तो किया किन्तु उसे नया मोड नही दिया। उसमे एकरसता आती गई और उसका ह्रास होता गया।

जादूगरी के उपन्यास

तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास की परम्परा मे जादूगरी के उपन्यास भी लिखे गये। फारसी कथासाहित्य के तिलिस्म, ऐयारी और जादू मे देवकीनन्दन खत्री और उनके अनुयायिओ ने प्रथम दो को ग्रहण किया और उन्हे सम्भव बनाने की चेष्टा की। कुछ लेखको ने जादू का ही विशेष रूप से उपयोग किया और तिलिस्म तथा ऐयारी को और भी अद्भुत बना दिया। जादू-टोने एव तन्त्र-मन्त्र की सामग्री संस्कृत कथासाहित्य और लोककथा से भी ली गई हो तो आश्चर्य नही। 'दशकुमार चरित' की धूमिनी के दर्शन 'मायाविलास' में होते हैं। पचास-साठ वर्ष पूर्व जब लोग जादूगर और योगिनी मे विश्वास करते थे और उनकी कथाएँ चाव से सुनते थे, जादू-भरे उपन्यास का लेखन स्वाभाविक और सार्थक था। आज के वैज्ञानिक युग में उसका महत्त्व घट गया है। उसके लेखको ने लोकप्रिय कथा की वस्तु को शिष्ट कथा में समाविष्ट कर साहित्यिक गरिमा प्रदान की। मदनमोहन पाठक का 'मायाविलास' (१८९९) और 'आनन्द सुन्दरी' (१९०२), जैनेन्द्र किशोर का 'वीरेन्द्र कुमार'

(१९०७) आत्माराम देवकर की 'त्रैलोक्य सुन्दरी' (१९०९) अच्छे जादूगर उपन्यास हैं।

इस प्रकार के उपन्यास मे अतिप्राकृत और मानवीय तत्त्वो का विचित्र मिश्रण है। अतिप्राकृत तत्त्व मानवीय कथा मे पृष्ठभूमि और पात्र दोनों के रूप मे नियोजित हैं। वे 'वीरेन्द्र कुमार' मे पृष्ठभूमि के अंग हैं, 'मायाविलास' मे प्रमुख पात्र है और 'त्रैलोक्य सुन्दरी' मे यन्त्रवत् परिचालित पात्र। इन पुस्तको मे साधारण नर-नारी के अतिरिक्त जादूगर, कापालिक, साधु, ज्योतिषी, देव, योगिनी, राक्षसी, परियाँ आदि है। ये मावन-जगत मे कभी प्रत्यक्ष, कभी परोक्ष रूप से विद्यमान रहते है। अमानवीय पात्र कही किसी समय प्रकट हो सकते हैं। अगोचर रहने पर केवल उनके खिलखिलाने की आवाज सुनाई पडती है और पजे दीख पड़ते हैं। कभी वे मनुष्य और पशु का रूप धारण कर लेते हैं। मानवीय क्रियाकलाप मे हस्तक्षेप करना इनका अधिकार है।

इनके चमत्कार मन मे भय का सचार करते हैं तो इनके मानवीय भाव हृदय को छू लेते है। 'मायाविलास' की राक्षसी धूमिनी और 'आनन्द सुन्दरी' की जादूगरनी इन्दिरा राजकुमारो के प्रेम मे मतवाली हो जाती हैं। इन्दिरा आनन्द सिंह के मुख पर मुख रखती है कि कोमल स्पर्श से उसकी बेहोशी दूर हो जाती है। 'मायाविलास' मे विद्याधरी पु जिकस्थला कल्प-सुन्दरी का रूप धारण कर सत्यजित को मोहित करना चाहती है। इनकी सरलता और कठोरता, सुन्दरता और कुरूपता, शक्ति और सुकुमारता इन्हे मानवीय बनाती है। अतिप्राकृत पात्र 'मायाविलास' और 'आनन्दसुन्दरी' मे नायक को विवाह कर लेने के लिए बाध्य करते है किन्तु 'त्रैलोक्य सुन्दरी' मे नायक-नायिका के प्रेम मे सहायक होते हैं। ज्योही त्रैलोक्यसुन्दरी से खल-नायक प्रेम-निवेदन करता है कि एक भयकर शब्दाघात होता है और वह मूर्छित हो जाता है। त्रैलोक्यसुन्दरी आत्महत्या करना चाहती है कि एक विकटाकार पुरुष प्रकट होकर उसे रोक देता है। खलनायक और नायक युद्ध मे गेरुआवस्त्रधारी सन्यासी नायक की सहायता करने आ जाते हैं। अमान-वीय पात्रो के ये मानवीय व्यवहार पाठको की सहानुभूति प्राप्त करने योग्य होते है

जादू के उपन्यास का ससार निराला है। 'मायाविलास' मे काशी-गया से विद्याधरों के देश तक उड़कर जाना आसान है। 'आनन्द सुन्दरी' मे ऐसे तिलिस्मी बाग की झाँकी दी गई है जहाँ सभी रत्नमय हैं। यह बाग प्रेम का

क्रीड़ा-स्थल बन जाता है। जादूगर की बेटी नायक को यहाँ विमान से ले जाती है और उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखती है। 'वीरेन्द्र कुमार' का लेखक परिस्तान की सैर करा देता है और उस जीव का परिचय देता है जिसका धड़ पक्षी और मुख मनुष्य का है।

पौराणिक उपन्यास

पुराण कथा-कहानी के कोश है। भारतीय साहित्य के लिये वे उपजीव्य ग्रथ रहे है। वे अक्षय आकर्षण और स्थायी महत्त्व रखते हैं। उपन्यास के पूर्व भी उनकी कथाएँ अत्यन्त लोकप्रिय थी। और जब उपन्यास का आगमन हुआ, बहुत-से पाठक उससे अपरिचित रहने के कारण या उसे जन्माजात पापी मानकर पावन पौराणिक कथाओ का रसास्वादन करते रहे। कुछ उपन्यासकार यह सोच पौराणिक उपन्यास लिखने मे प्रवृत्त हुए कि एक साथ ही धार्मिक साहित्य और उपन्यास का आनन्द प्राप्त होगा, जैसा कि चन्द्रशेखर पाठक ने 'मदालसा' (१९०६) की भूमिका मे लिखा है :

एक तो विषय पौराणिक है, कुछ न कुछ पुण्य अवश्य होगा, दूसरे पौराणिक विषयो का आनन्द मिलेगा, तीसरे उपन्यास का रस भी इसमे कुछ न कुछ अवश्य प्राप्त होगा।

महिलोपयोगी साहित्य के अभाव की पूर्ति के लिए भी पौराणिक उपन्यास लिखे गये। उन्हे अन्य प्रकार के उपन्यासो की तरह स्त्रियो के लिये खतरनाक न समझा गया। जहाँ एक ओर उपन्यास उपेक्षित हो रहा था वहाँ दूसरी ओर उसकी माँग भी बढ़ रही थी। इसको ध्यान मे रखकर कुछ लेखक पुराणों की कथावस्तु के सहारे छोटे-बड़े उपन्यास तैयार करने लगे। पौराणिक आख्यान रोचक भी इतने थे कि उनका उपयोग करना आवश्यक हो गया।

पौराणिक उपन्यास मे उपन्यास की कला स्थूल रूप मे पाई जाती है। वस्तु-विन्यास मे विशेष कौशल नही दिखाई पड़ता है। मुख्य पात्र आदर्श होने के कारण आकर्षक लगते है। चरित्र-चित्रण मे सूक्ष्म विश्लेषण न होकर अतिरंजना है। वार्तालाप मे नाटकीयता और वातावरण में सजीवता का अभाव है। कथा कहने और वर्णन करने की शैली मे रोचकता निहित है। पौराणिक उपन्यास का साहित्यिक मूल्य चाहे न हो, नैतिक मूल्य तो है ही। वे

मनोरंजक भी है और शिक्षाप्रद भी। उनके महान पात्रो से हमे प्रेरणा मिलती है और अमानवीय पात्रो मे भी मानवीय भावना देखकर हम प्रभावित होते हैं। उनका अध्ययन करने से प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान होता है।

अधिकाश उपन्यासकारो ने सुप्रसिद्ध कथाएँ ही चुनी हैं और उनके मूल रूप को अक्षुण्ण रखा है। इने-गिने उपन्यासकारो ने पुरानी कथा मे नूतन और मौलिक उद्भावना करने की चेष्टा की है। लक्ष्मीनाथ शर्मा के 'सावित्री सत्यवान' (१८९०) से पौराणिक उपन्यास का आरम्भ हुआ था। उनकी 'महाश्वेता' (१८९५) और 'नल दमयन्ती' (१८९८) के आख्यान प्रसिद्ध ही हैं। बीसवी सदी मे चन्द्रशेखर पाठक ने कुछ अच्छी रचनाएँ दी। पाठकजी की 'मदालसा' (१९०७) और पुत्तनलाल सारस्वत की 'स्वतन्त्र बाला' (१९०७) पठनीय हैं। 'मदालसा' ललित शैली मे लिखित पति-पत्नी के प्रेम की मार्मिक कथा है। मदालसा के सौन्दर्य और कुवलयाश्व की विरह-वेदना का वर्णन काव्यात्मक है। मदालसा के शृ गार-कक्ष मे "महावर से रगे चरण-कमल का धूलि-मलीन चिह्न" भी कुवलयाश्व की आँखो से ओझल नही होता। मदालसा को स्वर्ग "अग्नि से घिरे हुए बन की नाईं भयकर जान पडता है" और उसके मत से "मर्त्यलोक के एक पल का आनन्द, सुख हिल्लोल सैकड़ो सहस्रों नन्दन कानन से भी दुर्लभ है।" धरती के प्रति यह ममता एक नई धारणा है, जिसका समावेश पुराने कथानक मे उचित रीति से किया गया है। उपन्यास घटना-प्रधान होने के साथ-साथ भाव-प्रधान है।

'स्वतन्त्र बाला' अपने ढग की अकेली रचना है। रावण की बहन सूर्पनखा साहित्य की उपेक्षिता रही है। इस उपन्यास मे उसकी कथा विस्तार से लिखी गयी है। वह किस प्रकार विधवा होने पर कामपीड़ित रहने लगी, दण्डकवन मे अपने खेमे मे शृ गार कर राम को आकृष्ट करने आई आदि बातों का वर्णन नवीन लगता है। लेखक ने अपनी कारयित्री कल्पना के स्पर्श से सूर्पनखा के चरित्र को सजीव बना दिया है।

धार्मिक उपन्यास

पौराणिक उपन्यास की भाँति धार्मिक उपन्यास भी कथा के माध्यम से धर्म और नीति की शिक्षा देने के लिए लिखे गये। साहित्य की दृष्टि से उनका महत्त्व नही है। उनसे उन लोगो का ही मनोरंजन हुआ होगा जो

उपन्यास से अपरिचित रहे होगे अथवा उसे अपवित्र मानते होगे। उनके रचयिता प्रतिभा-सम्पन्न नही हैं। उन्हे कुछ कहना था इसलिए साहित्य के लोकप्रिय और नमनशील रूप का आश्रय लेना उचित प्रतीत हुआ। बाबू जालिम सिंह का 'रामप्रताप उपन्यास' (१९१६) और 'ब्रह्मदर्पण' (१९१७) नाम के लिए उपन्यास है। लेखक के शब्दो में प्रथम पुस्तक "एक छोटा-सा नद है जिसमे शुभ कर्म, वैराग्य, ज्ञान, अनन्य भक्ति, राजधर्म और प्रजाधर्म की लहरें" हैं। राधेलाल अग्रवाल की 'ससारोपबाटिका' चार खण्डो में विभाजित है और भक्ति एव श्रृ गार के पदो से पूर्ण हैं। दिगम्बर जैनियो के बम्बइया मासिक 'सत्यवादी' और मुरादाबाद से प्रकाशित 'सनातनधर्म पताका' मे धार्मिक प्रचार के लिए कुछ उपन्यास प्रकाशित किए गये। दूसरे पत्र मे १९१७–१८ मे 'लीला उपन्यास' निकला, जिसमें लीला और सरस्वती के सवाद के रूप मे आध्यात्मिक विषयो की चर्चा की गई है।

जासूसी उपन्यास

जासूसी उपन्यास उपन्यास की एक नई शाखा है। अग्रेजी मे भी उसका विकास उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्ध मे हुआ। अमेरिकन कहानीकार पो पहला जासूसी कहानीकार माना जाता है। उसने अपनी कहानी "द मरडर्स इन द रू मर्ग" (१८४१) मे पहली बार जासूस को पात्र बनाया। सुप्रसिद्ध अग्रेजी उपन्यासकार डिकेन्स और कालिन्स को इगलैंड मे जासूसी उपन्यास आरम्भ करने का श्रेय दिया जाता है। डिकेन्स के 'ब्लाक हाउस' का इन्सपेक्टर बकेट अग्रेजी उपन्यास का पहला जासूस नायक और कालिन्स का 'मून स्टोन' चेस्टरटन के शब्दो मे "संसार का सर्वोत्तम जासूसी उपन्यास"[5] है। जासूसी उपन्यास को वर्तमान रूप देकर उसे विश्व-साहित्य का अंग बनाने वाला कानन डायल है, जिसका पहला उपन्यास 'ए स्टडी इन स्कार-लेट' १८८७ मे प्रकाशित हुआ और जिसमे जासूस का व्यक्तित्व पूरी तरह उभर कर आया। शायद इसलिए कहा जाता है कि जिस प्रकार शेक्सपियर ने परियो को जन्म दिया उस प्रकार डायल ने जासूसी उपन्यास को।

हिन्दी मे जासूसी उपन्यास का पौधा सीधे अग्रेजी से आया लेकिन मुरझा गया। उसका बगला कलम बाबू गोपालराम गहमरी द्वारा लगाया गया और वह खूब फूला फला। गहमरीजी के पूर्व हिन्दी-उपन्यासों मे अनेक ऐसे उपकरण हैं जिनसे जासूसी उपन्यास का निर्माण होता है। 'भाग्यवती' मे

चोर और ठग भी हैं तथा पुलिस और थानेदार भी। पुलिस वाले निरपराध को बचाने के बदले अपराधियों के साथ रहते है और रिश्वत खाते हैं। वे लुटे हुए मुसाफिर से इस तरह पूछताछ करते हैं :

फलाना कपडा तूने कितने गज का और किस बजाज से खरीदा था, और फलाना जेवर किस सुनार का बनाया हुआ है और किस तारीख को किस वक्त और किसके सामने सुनार को दिया था और जब उसने लिया तो कौन गवाह है ? उस गवाह का मुख उस वक्त पूर्व की तर्फ था या पश्चिम की ? सिर पर पगडी थी या टोपी ? और तुझे यह कहना पड़ेगा कि गवाह की पगडी सुरख थी या सफ़ेद ?

अपराध का पता लगाने के लिए पूछताछ करने का यह ढग और परिस्थितियो की जाँच-पडताल के लिए पीछे की ओर लौटने की यह पद्धति जासूसी उपन्यासो मे पाई जाती है। प० श्रद्धाराम का उद्देश्य पुलिस की जिज्ञासा या बुद्धि का परिचय देना नही है, उसकी ज्यादती का उदाहरण देकर उसका उपहास करना है। जासूसी उपन्यासो की इन विशेषताओ की जानकारी उन्हे किसी पुस्तक से नही बल्कि जीवन से मिली है। 'परीक्षागुरु' और 'निःसहाय हिन्दू' मे अदालत, अदालत मे मुकदमे की सुनवाई, जज, वकील तथा पुलिस और दारोगा का उल्लेख है। इन सभी उपन्यासो मे एक बात सामान्य रूप से है, इनमे अपराधो की चर्चा है, अपराधो की छानबीन नही है।

प० बालकृष्ण भट्ट के 'रहस्यकथा उपन्यास' और 'गुप्त बैरी' के नाम ही उनके रहस्यमय उपन्यास होने के सूचक है। 'रहस्यकथा' मे प्रमुख जासूसी तत्त्व हैं : अपराध, सूत्र, अपराध का पता लगाने वाली पुलिस। हत्या होती है, पुलिस वाले हत्यारे का पता लगाने का प्रयास करते है। मृतक के कलेजे से जो कटार निकाली जाती है उस पर एक व्यक्ति का नाम है, इसलिए उस पर सन्देह किया जाता है। उपन्यास अधूरा है, इससे न तो सन्देह पक्का होता है और न मामले की पूरी जाँच होती है। 'जासूस' नाम का प्रयोग नही किया गया है पर पुलिस वाले उसी की भूमिका मे आये है। भट्टजी ने पहलेपहल ऐसे चरित्र का परिचय दिया है जो जासूस के निकट है। उन्होने पारिवारिक जीवन मे प्रेम, हत्या और षड़यन्त्र की घटनाओ का वर्णन किया है। उनकी 'रहस्यकथा' अंग्रेजी नमूने पर लिखा गया हिन्दी का पहला

पारिवारिक जासूसी उपन्यास है। उन्हे हिन्दी मे जासूसी उपन्यास का पितामह कहा जाना चाहिए।

जासूसी उपन्यास मे जासूस का रहना आवश्यक माना जाता है। इस दृष्टि से भट्टजी की अपेक्षा गहमरीजी का अधिक महत्त्व है क्योंकि उन्होने पहली बार जासूस को प्रधान पात्र बनाकर हिन्दी मे जासूसी उपन्यास के विशिष्ट कला-रूप की प्रतिष्ठा की। उन्होने जासूसी कथासाहित्य के लिए पहले 'गुप्तकथा' शब्द का प्रयोग किया था, जैसा कि १८९४ मे प्रकाशित इसी नाम की पत्रिका से स्पष्ट है। पत्रिका के रूप मे प्रकाशित 'जासूस' भी जासुसी कथासाहित्य का बोधक है। उपन्यास मे गुप्तचर के अर्थ मे 'जासूस' नाम का प्रथम प्रयोग सम्भवत 'चन्द्रकान्ता' मे किया गया था, यद्यपि वहाँ जासूस नाम के लिए थे, उनका काम ऐयारो के बाँटे था।

कहते हैं कि कवि जन्म लेते है, बनाये नही जाते। यह कहावत प्रयोगवादी कवियो के लिए लागू हो या न हो, जासूसी कथाकारो के लिए लागू है। जासूसी कथासाहित्य की रचना करना अत्यन्त कठिन है। उसके लिए एक विशेष प्रकार की प्रतिभा चाहिए। हिन्दी मे जासूसी उपन्यास तो बहुत है पर जासूसी उपन्यास के लेखक बहुत कम है। आलोच्य काल के लेखको को दो कोटियों मे रखा जा सकता है, एक कोटि मे वे है जिनमे जासूसी उपन्यास लिखने की प्रतिभा है, दूसरी कोटि मे उनकी गणना की जा सकती है जो इस ढग के उपन्यास की नवीनता अथवा लोक-प्रियता देखकर इस ओर आकृष्ट हुए।

गहमरीजी जासूसी उपन्यास लिखने के सर्वथा योग्य थे और इसमे उन्हें अद्वितीय सफलता मिली। हिन्दी जासूसी उपन्यास का इतिहास मुख्यत: गहमरीजी के जासूसी उपन्यास का इतिहास है। उनके बाद दूसरे प्रतिभाशाली लेखक रामलाल वर्मा थे। इन्होने छोटे-बडे कई जासूसी उपन्यासो का प्रणयन, रूपातर और प्रकाशन किया। गहमरीजी के उपन्यासो मे कहानीपन है, वर्माजी के उपन्यासो में नाटकीयता। यह नाटकीयता प्रेम के प्रसग मे विशेष प्रभाव दिखाती है। 'सर्दार तारासिह या हीरो की चोरी' (१९०९) प्रेम-रस से भरा जासूसी उपन्यास है। एक रानी की दासी का प्रेमी दुर्गासिह राजमहल मे जादू का खेल दिखा कर रानी को बेहोश कर देता है और हीरा चुरा लेता है। जासूस तारासिह रानी की दासी तारा बनकर भेद लेने का प्रयास करता

है। दुर्गासिंह के बयान से भेद खुलता है। तारासिंह को स्त्री समझ कर किशोरी नाम की दासी कहती है कि वह मर्द होता तो किशोरी उससे शादी करती। तारासिंह जनाना पोशाक फेंक कर कहता है "लो मैं मर्द हो गया।" दोनों की शादी होती है। चोर को भी सजा के बदले अपनी प्रेमिका और रियासत मिलती है।

वर्माजी के कुछ उपन्यासो मे अति नाटकीयता है, कुछ उपन्यासो मे अति यथार्थवाद। उन्होंने महलो की प्रेम-लीला, छल-प्रपच, हत्या-रहस्य का भडाफोड किया है। 'गुप्त रहस्य' (१९१२) एक बडे घर की विधवा के गुप्त प्रेम की रोचक कहानी है। विधवा अपने प्रेमी के लिए रात मे छत से रस्सा लटका देती है और उसे खीचने पर प्रेमी के बदले एक व्यभिचारिणी स्त्री की लाश पाती है, जो उसके पति द्वारा सन्दूक मे बन्दकर रस्से से बाँध दी गई थी। जासूस को इसकी चिन्ता नही है कि किसने हत्या की, वह यह जानना चाहता है कि किसकी हत्या हुई है। लेखक प्रेम के एक गुप्त मामले से दूसरे गुप्त मामले का पता देखकर यह बताना चाहता है कि पाप छिपाने से और भी प्रकट हो जाता है। कहानी जासूस को सुनाना है लेकिन रहस्य का उद्घाटन उसके द्वारा नही, पात्रो के बयान से होता है। जासूस का काम इन बयानो को सम्बद्धता प्रदान करना है।

वर्माजी के उपन्यास किशोरीलाल गोस्वामी लिखित गार्हस्थ जासूसी उपन्यास की परम्परा मे है। गोस्वामीजी की भाँति उन्होंने सम्पन्न वर्ग के पारिवारिक जीवन की घटनाओ और मानवीय सम्बन्धो का वर्णन किया है। उनके अपराधी अपनी स्वीकारोक्ति से रहस्य पर प्रकाश डालते हैं। उनकी दासियाँ सुन्दर, उदार और वफादार हैं। 'गुप्त रहस्य' की दासी गोस्वामीजी की बतसिया की याद दिलाती है। वह अपनी मालकिन का कलक अपने सिर पर लेकर पाठक की प्रशसा प्राप्त करती है। घर-आँगन की प्रतिदिन की घटनाओ से रहस्य-रोमाच की सृष्टि करना वर्माजी की उल्लेखनीय विशेषता है।

लाला रामप्रसादलाल ने वैज्ञानिक जासूसी उपन्यास लिखा, जिसमे जासूसी कथा का कौतूहल भी है और वैज्ञानिक आविष्कार का चमत्कार भी। अपराधी जहर, जहरीली सुई, आत्मविद्या (मेस्मेरिजम) आदि का उपयोग करते हैं और जासूस को भी चकमे मे डाल देते है। 'हसीना' (१९१२-१५)

की नायिका, जो सुन्दरता और शैतानी मे बेजोड है, सराय मे अपने युवक पति को जहर देकर एक अमीर के साथ नाता जोडती है। जासूस को इसकी जानकारी अनेक भौतिक और मानवीय सूत्रो से होती है। उपन्यास की तरह उसका रहस्य भी कई भागो मे बँटा है, जो जासूस के समक्ष क्रमशः स्पष्ट होता है। लालाजी के दूसरे उपन्यास 'हम्माम का मुर्दा' (१९०३) मे जासूस और अपराधी का घात-प्रतिघात रोचकता का विषय है।

कुछ लेखको ने जासूसी समस्या की अपेक्षा सामाजिक और आर्थिक समस्याओ पर विशेष ध्यान देकर सामाजिक जासूसी उपन्यासों की रचना की। उनमे रुद्रदत्त शर्मा का 'वीरसिह दारागा उपन्यास' (१९००) विशिष्ट स्थान पाने योग्य है। उसकी कथा अर्थ और काम के ताने-बाने से इस तरह बुनी गई है कि जासूस को अपनी खोई हुई प्रेमिका का ही पता लगाना पडता है। एक जमीदार धनी किन्तु आश्रयहीन वीरसिंह को अपना दामाद बनाना चाहता है पर वीरसिंह की सम्पत्ति नीलाम हो जाने पर उससे सम्बन्ध जोडना अपमानजनक समझता है। वीरसिंह खुफिया विभाग का दारोगा बनकर काफी धन कमाता है और अपनी प्रेमिका को, जिसे डाकू ले जाते हैं, खोजकर लाता है। जमीदार की स्वार्थपरता, उसकी लडकी का एकान्त प्रेम और वीरसिंह का साहस प्रदर्शित करने मे लेखक को पूरी सफलता मिली है।

जासूसी उपन्यास की मुख्य घटना का सम्बन्ध अपराध से होता है। जासूस पता लगाता है कि अपराध कैसे, क्यो और किससे हुआ। इस रहस्य और इसके उद्घाटन मे उपन्यास का मुख्य आकर्षण रहता है। लेखक का कौशल इसमे है कि वह रहस्य को धीरे-धीरे प्रकट कर पाठक का कौतूहल बढ़ाता है और जब उसे पूरा प्रकट कर देता है तब पाठक के लिए वह सन्तोषप्रद और आनन्ददायक होता है। प्रारम्भ मे सम्भव असम्भव प्रतीत होता है, अन्त मे एक स्थल ऐसा आता है जहाँ असम्भव एकमात्र सत्य हो जाता है। प्रेमचन्द के मत से "ऐसे उपन्यासो का सर्वश्रेष्ठ गुण यह है कि उस घटना या रहस्य का खोलना जाहिरा असम्भव प्रतीत हो पर लेखक जब उसे खोल दे, तो पाठक को आश्चर्य हो कि मुझे यह बात क्यों न सूझी, यह तो बिल्कुल साधारण बात थी।"[6]

किसी उपन्यास मे घटना की विचित्रता, किसी मे खोज की प्रक्रिया,

किसी मे अपराध की मनोवृत्ति, किसी मे समस्या का समाधान, किसी मे साहित्य का सौन्दर्य रोचकता का मूल कारण होता है। स्वाभाविकता की रक्षा करना सभी दशाओ मे आवश्यक है। अस्वाभाविकता जासूसी उपन्यास के लिए घातक है। उसमे कार्य और कारण परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। जासूस कार्य और कारण का सूक्ष्म विश्लेषण करने के बाद निष्कर्ष निकालता है। जिसे जासूस की असाधारण बुद्धि समझा जाता है वह वास्तव मे उसका आगमन-तर्क है। गहमरीजी के शब्दो मे "उम्मेद और शक दो ही चीज जासूसी की जान हैं"[7] अर्थात् जासूस निराश न हो और झट किसी की बात पर विश्वास न कर ले। कभी कोई छोटी-सी वस्तु ही महत्वपूर्ण सूत्र का काम कर देती है। साधारण लोग उसकी उपेक्षा कर देते हैं, जासूस उस पर भी विचार करता है। जासूसी के लिए व्यावहारिक अनुभव के अतिरिक्त अपराध-विज्ञान का ज्ञान लाभदायक होता है। यदि कौतूहलवर्धक घटना जासूसी उपन्यास की रीढ है तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण उसका प्राण है।

जासूसी उपन्यास के नायक बहुधा जासूस होते है। वे दो प्रकार के होते हैं, पेशेवर और स्वतन्त्र। वे अपने नायब जासूस, दूत या कुत्ते से सहायता ले सकते हैं। एक उपन्यास मे एक से अधिक जासूस हो सकते हैं। हिन्दी उपन्यासो के अधिकाश जासूस सजीव होकर भी अविश्वसनीय हैं। वे वास्तविक जीवन से उखाडकर लाये गये प्रतीत नही होते : कुछ अंग्रेजी कथानायको की परम्परा मे हैं, कुछ फारसी कथा से आने वाले ऐयारों के वशज हैं। उनकी अपनी नैतिकता होती है। वे हत्या का पता लगाते हैं, स्वय हत्या नही करते हैं। गहमरीजी के 'तीन जासूस' का सुजानसिंह गोली चलाकर पछताता है और कहता है कि "गोली मारने का अवसर उसकी जिन्दगी मे कभी नही आया था।" उसी से गहमरीजी ने 'मन्नू से राय मुन्नालाल बहादुर' मे कहवाया है कि जासूस के लिए तीन गुण आवश्यक हैं, 'तेज नजर, गम्भीर चिन्ता और मर्म विचार।' इन गुणो के बल पर जासूस वास्तविक अपराधी का पता लगाकर उन्हे दण्ड दिलाते है। पाठक को अपराध से घृणा होती है, अपराधी की खोज मे मजा मिलता है और उसे दण्डित देखकर सन्तोष होता है। इसलिए वह जासूस के प्रति सवेदनशील होता है।

तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास में आभिजात्य है, जासूसी उपन्यासो मे

जनवादी भावना है। एक मे खासकर राजा-रानी की कहानी रहती है, दूसरे मे समाज के किसी वर्ग के जीवन की झाकी मिलती है। जासूस निष्पक्ष भाव से धनवान-निर्धन, विद्वान-मूर्ख, पुरुष-स्त्री के साथ होने वाली घटनाओ की परीक्षा करता है और उनके बयानो पर ध्यान देता है। जैसा कि गहमरीजी के 'रहस्य विप्लव' मे सुजानसिंह ने कहा है, "मै सरकारी पुलिस का जासूस हू। बेनी का दुश्मन या मित्र कुछ नही हू। उसकी तरफदारी और विरोध मे जो-जो बातें मिलती है दोनों को देखना और विचार करना मेरा काम है। किसी एक ओर ढल कर हम लोग काम नही करते।"

सच्ची जासूसी सत्य की खोज है। सत्य-असत्य के सघर्ष मे सत्य की विजय और असत्य की पराजय दिखाकर जासूसी उपन्यास चिरंतन नैतिकता का प्रतिपादन करते हैं। उनसे अपराध की प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन मिलने की सम्भावना हो सकती है। पाठक चोर और हत्यारे के साथ तादात्म्य स्थापित कर अपनी अनैतिक अभिलाषाओ की पूर्ति कर सकते हैं। यह बात नई पीढ़ी के निरुद्देश्य लेखको की निरर्थक रचनाओ के लिए भले ही सही हो, आलोच्यकाल के उपन्यासो के लिए सही नही है। ये उपन्यास मनुष्य की निम्न वासना को जगाकर उसे पशु बनाने के उद्देश्य से नही लिखे गए है। इनमे हत्या, चोरी, अपहरण आदि का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि इन्हें पढकर हमे इन अपराधो के प्रति आकर्षण के बदले विकर्षण होता है, इनके कल्पित लोक में जाकर हमारी अपराधमूलक भावनाए विलीन हो जाती है और हम आत्म-विस्मृति की उस अवस्था में पहुच जाते हैं जहाँ हत्यारा, चोर आदि बनने की कल्पना नही कर पाते।

ये उपन्यास नैतिक आदर्श से अनुप्राणित और सामाजिक यथार्थ पर आधारित हैं। इनका आरभ साहित्य मे प्रतिदिन की घटनाओं के चित्रण के आरम्भ से हुआ। इनमे उस समाज की गतिविधि की झलक है जिसमे आर्थिक असमानता के कारण हत्या और चोरी का आश्रय लिया जाता है, जिसमे एक ओर अपराधो को जन्म और बढावा दिया जाता है और दूसरी ओर उनके विरोध के लिए पुलिस और अदालत का गठन किया जाता है। कहीं-कही गहमरीजी ने अपराधियो की ओर सहानुभूति प्रकट की है और गोस्वामीजी ने न्याय-व्यवस्था की आलोचना की है। जासूसी उपन्यासों से समकालीन शासन-तन्त्र का ज्ञान होता है। उनकी कल्पित घटनाएं भी युग

और समाज से ली जाती हैं और पात्र परिचित परिवेश मे चलते-फिरते दिखाई पडते हैं।

यह आवश्यक नही है कि वे सच्ची घटना पर ही आधारित हो बल्कि उनमे से अधिकाश कल्पना की सृष्टि होने हैं। जैसे रेखागणित मे किसी साध्य को सिद्ध करना पडता है, जासूसी उपन्यास मे पहले किसी की हत्या कर दी जाती और तब किसी को हत्यारा सिद्ध किया जाता है। कथानक का गठन पूर्व योजना के अनुसार किया जाता है। घटनाओं का क्रम आगे से पीछे की ओर चलता है और जहाँ से आरम्भ होता है वहीं अन्त होता है। अन्त प्राय: पूर्व विदित और सुखात होता है। पाठको को वास्तविक आनन्द अन्त जानने से नही बल्कि पहेली सुलझाने मे मिलता है। उपन्यास का आकार छोटा होता है क्योकि बडा होने पर जासूसी मे अधिक समय लगेगा, जो पाठको को पसन्द नही होगा। इस प्रकार जासूसी उपन्यास का शिल्प अन्य प्रकार के उपन्यासो से भिन्न होता है।

उनकी कथावस्तु मे एकरसता होती है। उनकी मौलिकता एक प्रकार से लेखको की कल्पना की मौलिकता होती है। लेखको को दो बातों पर विशेष ध्यान देना पडता है। उन्हे जासूसी के साथ-साथ कहानीपन का निर्वाह करना पडता है। उच्चकोटि के जासूसी उपन्यासकार उच्चकोटि के कथाकार होते हैं। फिर, उन्हे जासूस को अति मानव के बदले मानव के रूप मे चित्रित करना पडता है। कहानी मे अधिक उलझन नही हो और उसे सुलझाने के लिए जासूस अलौकिक बल और बुद्धि का चमत्कार नहीं दिखाए। घटनाओ मे विचित्रता रहने पर भी उनका विन्यास इस सरल स्वाभाविक ढग से किया जाता है कि भोले-भाले पाठको को वे उतनी ही सत्य और सम्भव प्रतीत होती है जितनी बच्चों को दादी-नानी की कहानियाँ।

साहसिक उपन्यास

जासूसी उपन्यास की भाति साहसिक उपन्यास का सम्बन्ध अपराध और अपराधियो से होता है। दोनों मे एक मौलिक भेद यह है कि प्रथम में सहानुभूति अपराधियों के प्रति न होकर उनका पता लगाने वाले जासूसो के प्रति होती है पर दूसरे मे अपराधियो को प्राय. सहानुभूति की दृष्टि से देखा जाता है।

साहसिक उपन्यास के नायक ठग, डाकू या किसी दूसरे प्रकार के

अपराधी होते हैं। वे साहसी, वीर, रसिक और चतुर होते हैं। वेश बदलने, भागने और छिप जाने मे वे अपना सानी नही रखते। उनमे कठोरता के साथ-साथ कोमलता भी होती है, इसलिए बहुधा उनके हृदय का परिवर्तन हो जाता है और वे अपना पेशा छोड देते है। वे अपने रोमानी व्यक्तित्व और मानवीयता के कारण पाठको की प्रशंसा प्राप्त कर लेते हैं। उनकी प्रेमिकाओ या स्त्रियो मे सुकुमारता और सुन्दरता के साथ-साथ स्नेह, ममता और त्याग की भावनाए होती हैं। इनके चित्रण मे लेखक की मानवतावादी दृष्टि और सामाजिक-नैतिक चेतना की व्यजना हुई है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल मे सन्यासियो, पिंडारियो और ठगो ने बहुत उपद्रव किया था। उनकी कहानियाँ उन्नीसवी शताब्दी मे प्रचलित थी। उक्त शताब्दी मे फारसी, उर्दू और सस्कृत से आने वाली धूर्तता और साहसिकता की कहानियाँ भी लोकप्रिय थी। इन सबका प्रभाव साहसिक उपन्यास पर पडा। इसकी परम्परा बहुत पुरानी है। इसका अकुर 'भाग्यवती' के चोरो, ठगो और उचक्को के रोचक वर्णन मे मिलता है। इस ढग का पहला मौलिक उपन्यास बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' (१८६६) है, जिसमे पिंडारियो की लूट-खसोट का उल्लेख तथा डाकुओ के सरदार का सहानुभूतिपूर्ण चित्र है।

चन्द्रशेखर पाठक का 'अमीर अली ठग या ठग वृतान्त' (१९११) मीडोज टेलर के 'कनफेसन्स आफ ए ठग' पर आधारित प्रतीत होता है। उन्होने साहसिकता के साथ प्रेम और जासूसी को स्थान दिया है। बूढे अमीर अली की पूर्व कथा से ज्ञात होता है कि उसकी प्रतिपालिता कन्या से अभयराम का पता निर्भयराम जासूस ने लगाया। ठगों की रहस्यमय लीला का वर्णन चित्ताकर्षक है। अभयराम वस्तुतः महान चरित्र है। डाकुओ का सरदार होकर भी सहृदय, उदार और दानी है। उसे "अनाथों का अश्रयदाता और दुर्जनों का दमनकर्ता" कहा गया है। वह सदाचारियो पर न अत्याचार करता है और न होने देता है। वह धनी और अत्याचारी जमीदारो को ही लूटता है। वह जमीदारों के लिए काल, जनता के लिए राजा और स्त्रियो के लिए देवता है।

पाठक जी का 'शशिबाला व भयंकर मठ' (१९११) उन साहसिक उपन्यासो का उदाहरण है जिनके नायक उच्च कुल मे उत्पन्न होकर डाकू बन

जाते है। वे रुपये और रूप के लोभी होते है। रुपये के लिए तो वे नीति-अनीति का भी विचार नही करते। पाठक जी ने उनके कुकृत्यो पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। विन्ध्याचल पर एक भयंकर मठ है, जहाँ साधुओ के वेश मे डाकू रहते हैं। उनका सरदार कुमारस्वामी एक कुलीन घराने का बिगड़ा हुआ युवक है। वह वीरसेन की जमीदारी हडपने के लिए उसकी मगेतर शशिबाला का हरण करता है। उसने वेश्या के प्रेम मे फँसकर अपनी पत्नी सुलोचना को गगा मे फेंक दिया था। सुलोचना बच गयी थी और मठ के पास गुफा मे भैरवी के वेश मे रहने लगी थी। वह पति और उसके साथियो को सुपथ पर लाने मे सफल होती है। कुमारस्वामी इतना बदल जाता है कि अपने साथियों को सारा धन बाँट देता है और व्यापार आरम्भ करता है। अन्त मे बिछडे हुए पति-पत्नी मिलते है और रहस्य का उद्‌घाटन पात्रों की आपबीती से होता है। कहानी रोचक है, घटनास्थल परिचित और पात्र मानवीय। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे अधिक दृढता है। सुलोचना आदर्श पत्नी और समाज-सेविका है। शशिबाला और सरला अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण न्योछावर करने को तैयार रहती है। वेश्या तारा भी अनुचित काम में भाग लेने से झिझकती है।

चन्द्रशेखर पाठक लिखित 'अर्थ मे अनर्थ या प्रवाल द्वीप' (१९०९-१६) भी एक साहसिक उपन्यास है। इसमे इटली के डाकुओ के रोमाचकारी कारनामो का वर्णन है। पृष्ठभूमि और पात्र विदेशी हैं। इसकी मौलिकता सदिग्ध है।

हरिहर प्रसाद गुप्त की 'जानकी वा आदर्श सुन्दरी' (१९१४) अपराध और दन्ड की कथा है। आरा नगर के बाहर बदमाशों का अड्डा है। उनके साथ एक बदचलन कहारिन भी है। बदमाशो का सरदार एक बिगड़े हुए जमींदार युवक को उसकी सौतेली बहन और उसके पिता की जमीदारी का अपहरण करना चाहता है। उसका प्रयास विफल होता है और उसे कड़ी सजा मिलती है। जमीदार युवक का हृदय-परिवर्तन हो जाता है और वह अपने कुकर्म के लिए पश्चाताप करता है।

कुछ उपन्यासकार साहसिक नही है किन्तु उनमे साहसिकता का अंश है, जैसे, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी की 'वसत मालती' (१८९९), मनोहरलाल की क्रांतिमाला' (१९०४) जयरामदास गुप्त का 'चपा उपन्यास' (१९०४)।

'वसतमालती' की नायिका डाकू के चगुल मे फँसती है पर उसकी स्त्री की सहायता से छुटकारा पाती है। 'कातिमाला' मे एक डाकू के काले करिश्मे और डाकुओ के अन्धकारमय अड्डे का वर्णन है। 'चपा उपन्यास' की नायिका भटककर जगल मे चली जाती है, जहाँ उसे रीछ से एक युवक बचाता है। दोनो मे प्रेम हो जाता है। चपा अपने प्रेमी के पास जाते समय डाकू के हाथ मे पड जाती है और एक साधु द्वारा बचायी जाती है।

रोमांचक उपन्यास

रोमाचक उपन्यास रहस्यमूलक उपन्यास की कोटि मे आता है। इसमे पहले अद्भुत, असमान्य घटनाओ को देखकर पाठक भय तथा आशका से अभिभून हो जाता है। अन्त मे रहस्य की युक्तिसगत व्याख्या कर दी जाती है और पाठक आनन्दमय विस्मय मे मग्न हो जाता है। उपन्यासकार का कथा-कौशल इसमें है कि वह रहस्य को बनाए रखे ताकि पाठक की उत्कठा और कौतूहल जाग्रत हो और जब उसका उद्घाटन करे तो वह अप्रत्याशित किन्तु सन्तोषजनक हो। रोमांचक उपन्यास का ढाँचा कुछ इस प्रकार का होता है। कोई क्रिया होती है और उसका कारण भूत-प्रेत को मान लिया जाता है, फिर कई घटनाएँ ऐसी होती है कि भ्रम सत्य प्रतीत होता है और अन्त मे वास्तविकता का पता लगाने पर कोई रहस्य रह नही जाता। रहस्यो-द्घाटन के पूर्व ही चरम सीमा की स्थिति आती है।

प्राय: रोमांचक उपन्यास का सम्बन्ध अतिप्राकृत तत्त्व से होता है। कथा मे अतिप्राकृत तत्त्व का अस्तित्व नही, आभास होता है। यह भ्रम अन्ध-विश्वास से होता है। और घटना या पात्र द्वारा उत्पन्न किया जाता है। बहुधा किसी मनुष्य के रूपरग और व्यवहार से अतिप्राकृत तत्त्व का बोध होता है। अतिप्राकृत तत्त्व मे अधिक देर तक विश्वास दृढ रखना कठिन है अत: रोमाचक कथावस्तु उपन्यास से अधिक लघुकथा के लिए उपयुक्त होती है। इसमे मनुष्य के एक प्रबल भाव—भय—का स्थान है, इसलिए इसकी अपील विश्वजनीन है। भय की चरम स्थिति के बाद प्रायः प्रेम की परिणति होती है, जो उपन्यास मे कलात्मक विश्राम प्रदान करती है।

देवकीनन्दन खत्री और दुर्गाप्रसाद खत्री द्वारा लिखित 'वीरेन्द्र वीर' (१८९५) उत्कृष्ट रोमाचक उपन्यास है। इसका उपशीर्षक 'कटोरा भरा खून' ही दिल दहलाने वाला है। इसमे अतिप्राकृत तत्त्व न होकर अनेक लोमहर्षक

घटनाएँ, स्थितियाँ और दृश्य हैं। एक गुलाम अपने स्वामी को जहर देकर और उसके बड़े लड़के को कुएँ मे धकेलकर उसका राज्य अधिकृत कर लेता है और उसकी लड़की को रानी बनना स्वीकार कराने के लिए तहखाने मे बन्द कर उसके सामने उसकी बेटी के खून से भरा कटोरा रखवा देता है। रोमाचक उपन्यास मे बहुधा कोई नराधम अंधेरे तहखाने में किसी सुन्दरी को बन्द कर अमानुषिक कष्ट देता हुआ दिखा पडता है।

दुर्गाप्रसाद खत्री का 'अद्भुत भूत' (१९१६) भी रहस्य-रोमाच से पूर्ण है। इसमे सफेद वस्त्र पहन कर आने वाला भूत चोर सिद्ध होता है। भूत का भ्रम उत्पन्न कर पाठको का कौतूहल बढाना लेखक का लक्ष्य है। इसी प्रकार कमला प्रसाद की 'कुल कलकिनी' (१९१२) मे एक पुराने मजार के इर्द-गिर्द एक सफेदपोश भूत आधी रात को घूमता दिखाई पडता है पर वास्तव मे वह लुटेरा है।

जयरामदास गुप्त ने 'भूतो का डेरा' मे भय उत्पन्न कर रहस्य को गुप्त रखने की चेष्टा की है। और अन्त मे जासूस के माध्यम से रहस्योद्घाटन करवाया है। उसकी कहानी यो कही गई है। एक मकान मे प्रवेश करने पर किसी का अट्टहास सुनाई पडता है, कोई आगे-आगे चलता हुआ दीखता है और कभी ककाल सुन्दर युवती मे परिणत हो जाता है। वहाँ जो रहता है वह मर जाता है। उस मकान को भूतो का डेरा कहा जाता है। जासूस अपनी खोज से यह अनुमान लगाता है कि मकान मे किसी महात्मा की समाधि है और आकर्षण शक्ति है।

प्रेमकथात्मक उपन्यास

प्रेम जीवन का रस है। उपन्यास जीवन की कथा है, अत: उसमे प्रेम का प्रसंग किसी न किसी रूप मे रहता ही है। आज भी यह धारणा प्रचलित है कि उपन्यास प्रेम की कहानी के सिवा और कुछ नही है। और जब उसे 'प्रेम का विज्ञान'[8] ही माना जाता था, उसमे प्रेम का महत्त्वपूर्ण स्थान होना स्वाभाविक था। कुछ उपन्यासो मे प्रेम की कथा ही मुख्य थी। उन्हे प्रेमकथात्मक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। प्रेमकथात्मक उपन्यासो मे प्रेम का आदर्श स्वरूप मिलता है। उनके नायक-नायिका मानो प्रेम के अवतार होते है।

इस प्रकार के उपन्यास का आरम्भ किशोरीलाल गोस्वामी के

'प्रणयिनी परिणय' (१८९१) से होता है। परवर्ती उपन्यासों मे ये उल्लेखनीय है— देवीप्रसाद शर्मा : 'सुन्दर सरोजिनी' (१८९३), जैनेन्द्र किशोर : 'कमलिनी' (१८९४) और 'मनोरमा' (१९०८), गोकुलनाथ शर्मा : 'पुष्पवती' (१८९४), जगन्नाथशरण · 'आनन्द सुन्दरी' (१८९५) और 'नीलमणि' (१८९६), रामगुलाम राम . 'सुवामा' (१८९६), जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी : 'वसन्त मालती' (१८९९), केदारनाथ . 'तारामती' (१९०४), मनोहरलाल : 'कातिमाला' (१९०४), एच० एस० गुप्त . 'प्रेम का फल' (१९१०)।

प्रेमकथात्मक उपन्यास का विषय नर-नारी का स्वच्छन्द प्रेम है। प्रेम की उत्पत्ति प्रत्यक्ष या स्वप्निल दर्शन से और उसकी परिणति विवाह मे होती है। प्रेमी-प्रेमिका मे एक-सी कोमल अनुभूति और उनकी चेष्टा मे उभयनिष्ठता होती है अतः उनका प्रेम वासना-मलिन नही होता। प्रेमी प्रेमिका के लिए लम्बी यात्रा कर सकता है, युद्ध छेड सकता है। प्रेमिका भी प्रेमी के लिए त्याग और साहस दिखाती है। 'सुन्दर सरोजिनी' का नायक स्वप्न मे जिस सुन्दरी को देखता है उसकी खोज मे लका तक की यात्रा करता है। 'पुष्पवती' की नायिका पथिक के वेश मे अपनी सहेली के साथ प्रेमी को ढूँढने चलती है। 'वसन्त मालती' के नायक-नायिका तो मिलने के लिए योगी-योगिन का वेश धारण कर लेते है। प्रिय पात्र की प्राप्ति के लिए किये गये प्रयास विशेष आकर्षण रखते हैं। प्रेम सम्बन्ध के विकास की ओर ध्यान नही दिया जाता। प्रेम के साथ प्रतिष्ठा की भावना जुडी रहती है, फलत. समान स्तर के नर-नारी मे ही सम्बन्ध स्थापित होता है। स्वच्छंदता उसकी मूल प्रवृत्ति होती है फिर भी उसकी सार्थकता वैवाहिक बन्धन की स्वीकृति मे ही है। वह सौन्दर्य एव साहस से सवलित होता है, अतः प्रेरणा प्रदान करता है।

नायक-नायिका के बिना उपन्यास का रथ नही चलता है और उनका काम सखा-सहेली के बिना पूरा नही होता। उनके बीच कभी-कभी खल-नायक भी आ जाते हैं। जैसे वर्ण्य विषय मे आभिजात्य है वैसे ही पात्र अभिजात वर्ग के है। इनमे कोई व्यक्तिगत विशेषता नही है। ये सामत-युग की भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं। नायक का व्यक्तित्व रोमानी होता है। वह नायिका को दुष्टो के चगुल से बचाता है ('पुष्पवती', 'कांतिमाला'), उसकी छवि देखकर बेहोश हो जाता है ('तारामती'), उससे मिलने के लिए योगी का वेश धारण कर सकता है ('वसत मालती', 'नीलमणि')। प्रेम-मार्ग

की बाधाओ को दूर करने मे वह जो साहस प्रदर्शित करता है उससे उसकी प्रभावशीलता बढती है। वह वीर होकर भी दुर्बल होता है। उससे अधिक सजीवता नायिका मे होती है क्योकि उसमे सुकुमारता के साथ-साथ साहस भी है। खलनायक के सामने उसका चरित्रबल उभरता है। 'नीलमणि' की चन्द्रकला मे परम दृढता है। 'पुष्पवती' की नायिका स्वय चोली से कटार निकाल कर शत्रु को घायल करती है। स्त्री-पात्रो मे पौरुष के कारण विशेष आकर्षण है। नायिका की अपेक्षा उसकी सहेली अधिक प्राणमय लगती है। 'कातिमाला' की कातिमाला सरल और सुकुमार है तो उसकी सहेली चतुर और बलवती। 'तारामती' की नायिका की दो मुँहबोली सहेलियाँ अत्यन्त मुखर और चंचल है। वे पुरुष-वेश मे जाकर अपनी स्वामिनी के प्रेमी को स्त्री की पोशाक पहना कर उसके पास लाती है। मित्र नायक-नायिका के प्रेम-व्यापार मे सहायता देकर हमारी सहानुभूति प्राप्त करते हैं।

विषय-वस्तु एक घटना—पूर्वराग—मे केन्द्रित रहती है, अत. कथानक सरल होता है। बहुधा एक प्रेमिका का एक ही प्रेमी होता है। दोनो एक ही वर्ग के होते हैं। दोनो का प्रेम विवाह मे परिणत हो जाता है और प्रतिद्वन्द्वी रहता भी है तो उसकी पराजय निश्चित-सी होती है। इसलिए विशेष जटिलता उत्पन्न नही होती। प्रेम-जनित संघर्ष का रूप तीव्र नही हो पाता क्योकि सघर्ष मे व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष की अपेक्षा मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना प्रबल होती है। फिर भी नाटकीय स्थितियाँ और मार्मिक स्थलो से रोचकता तथा वेश-परिवर्तन आदि परम्परागत कथा-रूढियो के कारण रहस्यमयता रहती है। घटना-विन्यास मे पूर्वापर क्रम न होकर वक्रता रहती है, जो कौतूहल की वृद्धि करती है। नायक के मार्ग की विघ्न-बाधा और नायिका की विरह-वेदना से रमणीय परिस्थिति उत्पन्न होती है। बिछुडन के बाद आकस्मिक मिलन का दृश्य बडा मधुर होता है। 'सुवामा' का नायक वैद्य के रूप मे आकर रुग्णा नायिका से मिलता है। आदि-अन्त रूढ होते है। आरम्भ मे प्रेम का उदय होता है, अत मे विवाह या पुनर्मिलन हो जाता है। इससे उपन्यास सुखान्त होते हैं। अपवाद-स्वरूप 'प्रेम का फल' जैसा उपन्यास है, जिसमे वियोग मे नायिका विषपान करती है और नायक उसकी चिता पर विलाप करता है।

प्रेमकथात्मक उपन्यास की कहानी कल्पना की उपज होती है। उसकी

कोई सामाजिक पृष्ठभूमि नही होती। उनका वातावरण रोमानी होता है। घटनास्थल घर से बाहर मन्दिर, वन आदि होते है, जहाँ प्रेम का ससार बसाया जाता है। इस ससार मे व्यक्ति का अस्तित्व तो है, समाज का बन्धन नही है। प्रेमिकाओ की विरह-कथा सामाजिक विवशता की सूचना नही देती बल्कि पुरानी परिपाटी की याद दिलाती है। आधुनिक उपन्यास मे प्रेम एक सामाजिक समस्या है और उस समस्या का वास्तविक आरम्भ विवाह के बाद होता है जब कि प्रेमकथात्मक उपन्यास मे वह विवाह के पूर्व तक सीमित है। समकालीन समाज से विच्छिन्न होते हुए भी ये उपन्यास जीवन के सनातन सत्य से सम्बन्ध रखते है। इन्हे पढने से ऐसा प्रतीत होता है कि नर-नारी का प्रेम उनका सहज आकर्षण है। प्रेमी-प्रेमिका एक ही वर्ग के, बहुधा उच्च वर्ग के हैं किन्तु प्रेम का चित्रण सामान्य धरातल पर हुआ है। वर-वधू की उपयुक्त जोड़ी मिलाकर एक गम्भीर यौन-समस्या का सरल समाधान किया गया है। नायिका की विरह-वेदना नारी की निष्क्रियता और नायक की साहसिकता पुरुष की सक्रियता प्रकट करती है।

उपन्यास-लेखको का मुख्य उद्देश्य मनोरजन करना है। उन्होने जहाँ चिर-रुचिकर विषय, नाटकीय कथा, रूप-वर्णन और भाव-सौन्दर्य से अपनी रचनाओ को सरस बनाने की चेष्टा की है वहाँ अनुपम प्रेम और मैत्री के उदाहरण उपस्थित किये हैं। उनके सकरात्मक पात्र प्रभावशाली होते हैं। 'मनोरमा' मे जैसे पति परदेश मे रानी के प्रणय-निवेदन को वैसे ही पत्नी घर मे राजकुमार के प्रलोभनो को ठुकरा देती है। दोनो मिथ्या कलक के भागी होकर कष्ट सहते है पर सत्पथ से विचलित नही होते।

भावमूलक उपन्यास

ब्रजनन्दन सहाय के शब्दो मे "विविध प्रकार की बाहरी घटनाओ के साथ मनुष्य के मानसिक भाव समूह का सम्बन्ध जिस उपन्यास मे दिखाया जाय उसी को हम लोग भावमूलक कहते है।"[१] भावमूलक उपन्यास मे भाव की प्रधानता होती है और घटनाएं गौण हो जाती हैं। भाव सचारित करने के लिए ही घटनाओ की योजना की जाती है। कथासूत्र सूक्ष्म और अन्त प्रायः दुखद होता है। मूल आकर्षण कथा-भाग मे न होकर वर्णन के अंश में रहता है। कथानक से मधुर वेदना की गंध फूटती है। पात्रो की सख्या कम होती है किन्तु उनके चित्रण में अतिरंजना रहती है। उनका वार्तालाप किसी

वक्ता के लिखित भाषण का स्मरण दिलाता है। समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाता है, अतः सामाजिक परिस्थिति के वर्णन के बदले व्यक्तिगत अनुभूति की प्रगल्भ व्यजना रहती है। भावमूलक उपन्यास मे आत्म-निष्ठता होते हुए भी सार्वभौमिकता है। उनके लिए आत्मकथात्मक शैली उपयुक्त होती है और वे इस शैली मे लिखे भी गए है। उनके लेखको का लक्ष्य अलकृत गद्य के माध्यम से रस का सचार करना है। वे गद्यकाव्य की कोटि मे आते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मत से वे 'कादम्बरी' का ही आधुनिक रूप है।[10]

इस प्रकार के उपन्यास पहले बगला मे लिखे गए। हिन्दी मे इनका अभाव देखकर ब्रजनन्दन सहाय ने 'सौन्दर्योपासक' (१९११), 'राधाकात' (१९१२) और 'आरण्यबाला' (१९१५) की रचना की और प्रथम एव महान भावात्मक उपन्यासकार के रूप मे प्रसिद्ध हुए। आलोचको और पाठको के बीच 'सौन्दर्योपासक' की काफी प्रशसा और चर्चा हुई। राष्ट्रकवि मैथिली-शरण गुप्त ने इसे "सबसे पहला मौलिक साहित्यिक उपन्यास" कहा। इसका नायक प्रकृति और नारी के सौन्दर्य का उपासक है। वह अपने विवाह मे अपनी साली मालती की ओर आकृष्ट होता है और जीवन भर उसकी याद मे आंसू बहाता है। मालती भी उसकी ओर आकृष्ट होती है लेकिन उसकी शादी उसके बडे जीजे से कर दी जाती है। वह नायक से विवाह कर अपनी बहन को दुखी बनाना नही चाहती और कहती है कि "प्रेम ही के लिए मेरी सृष्टि हुई थी।" नायक कवि है, नायिका को कविता मे रुचि है। दोनो एक दूसरे के लिए बने है। नायक इतना प्रगल्भ है कि अपने प्रेम की कहानी अपनी पत्नी से भी नही छिपाता। नायिका रूप-गुण से सम्पन्न होते हुए भी शीलवती है। दोनों चिरतन नर-नारी के प्रतीक हैं।

'सौन्दर्योपासक' मे एक व्यक्ति का विश्लेषण है, 'राधाकात' मे कई व्यक्तियो के परस्पर सम्बन्ध का वर्णन है। इसमे दो भावुक मित्रो के आदर्श स्नेह की कहानी कही गई है। राधाकात एक दरिद्र किसान का लडका है। वह अपने धनी मित्र हरेन्द्र के सामने हीनता का अनुभव करता है। हरेन्द्र सम्पन्न होकर भी राधाकान्त को प्यार और आदर करता है। वह उसकी सहायता करते-करते स्वय विपन्न हो जाता है। दोनो की अन्तःप्रकृति का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। एक किसान के लड़के को नायक के पद पर

आसीन करना और एक धनी युवक की अच्छाई मे आस्था प्रकट करना मानवतावादी विचार का द्योतक है। हरेन्द्र को अत्यन्त आदर्शवादी बना दिया गया है। खतरानी उससे प्रणय-निवेदन करती है तो वह उसे सदाचार का उपदेश देने लगता है। उसे शहर की अपेक्षा गाव अधिक प्रिय है। उसके साथी सुखदेव का चरित्र स्वाभाविक है। वह खतरानी को भगाकर लाने मे लज्जा का अनुभव नही करता है लेकिन उसके भ्रष्ट आचरण से ऊबकर उसकी हत्या करना अपना कर्तव्य समझता है।

जहाँ 'राधाकात' के पात्र अपनी सबलता तथा दुर्बलता के साथ समाज मे रहते हैं, वहाँ 'आरण्यबाला' के पात्र सघर्ष से ऊबकर प्रकृति की गोद मे शरण लेते हैं। वे भावुक और चिन्तनशील है। नायिका ब्रजमजरी विन्ध्याचल मे एक महात्मा की स्नेह-छाया और प्रकृति की गोद मे पलकर बड़ी होती है। वह बनपक्षी जैसी स्वतन्त्र और आरण्य कुसुम जैसी सहज सुन्दर है। वह अकारण लज्जा, मलिन वासना और बनावटी हावभाव नही जानती। सभ्य समाज के प्रभाव से दूर रहकर वह त्याग, प्रेम, बलिदान और सेवा की प्रतिमा बन गई है। इस बनदेवी के सम्पर्क मे आकर दो प्रधान पात्र ओकार और मुकुन्द सुखशान्ति का अनुभव करते हैं। ओकार कलकत्ते का महासेठ है। वह अपार धन का स्वामी होकर भी सुखी नही है। उसे स्वार्थान्ध ससार मे सच्चा स्नेह नही मिलता। वह धन-जन से विरक्त होकर विन्ध्याचल के पहाडी गाव में आता है और ब्रजमजरी का स्नेह पाकर हृदय की अमिट पिपासा शात करता है और उसे अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकार देता है। मुकुन्द शहर के कर्म-कोलाहल से ऊबा हुआ गम्भीर युवक है। वह विन्ध्याचल मे प्रकृति और मानवी की रूपराशि पर मुग्ध हो जाता है। ब्रजमजरी को पत्नी के रूप में पाकर वह सब कुछ पा लेता है।

ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यास करुण-मधुर भाव के उच्छ्वास है। वे सौन्दर्य और प्रेम के उपन्यासकार हैं। वे उपन्यास मे छायावाद की सौन्दर्यानुभूति और प्रेमभावना की व्यजना करने मे अग्रगण्य है। 'सौन्दर्योपासक' उनकी सौन्दर्यदृष्टि का परिचय देता है। वे सौन्दर्य को अभिशाप और प्रेम को पाप नही मानते। उनके मत से सौन्दर्य उपासना और प्रेम पवित्र अनुभूति है। सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक है किन्तु वह किसी वस्तु मे न होकर दृष्टा के मन-नयन में है। यह अशरीरी सौन्दर्यबोध उपन्यास का मूल

स्वर है। सौंदर्योपासक को प्रेयसी की अपेक्षा प्रेयसी की कल्पना अधिक प्रिय है। वह अपनी प्रेयसी को कहता है :

तुम्हे मैं केवल अपना कहना चाहता हू। इन्द्रिय सुख के लिए नही, नित्य सहवास के लिए नही, ससार-धर्मपालन के लिए नही। तुम्हारा मै आदर करूगा, तुम्हारा अग स्पर्श न करूगा, तुम्हारे सग एक शय्या पर शयन तक न करूगा।

ब्रजनन्दन सहाय का प्रेम प्रेम से है, किसी मानवी से नही। वह स्वच्छन्द होकर भी "स्वच्छ और उच्च" है। उन्होने उसका चित्रण रोमानी आदर्श के धरातल पर किया है और उसमे प्रकृति को प्रमुख स्थान दिया है। 'आरण्यबाला' में उसकी महिमा का गान किया गया है।

उनके लिए भावुकता साध्य नही है। वह सौन्दर्यबोध, दार्शनिक विचार एव सामाजिक आशय की अभिव्यक्ति के लिए मार्ग खोलती है। उन्होने उसे निरर्थक भाव-विलास का पर्याय नही बनने दिया। उनकी करुणा विकृत न होकर पीडित मानवता के प्रति सहानुभूति बनकर फूट पडी है। उन्होने 'सौन्दर्योपासक' मे अनमेल विवाह के विरुद्ध स्वर ऊँचा किया है और 'आरण्यबाला' मे आर्थिक असमानता की आलोचना की है। ब्रजमजरी कहती है : "मेरी समझ मे नही आता कि भगवान एक आदमी को इतना धन क्यो देते है और दूसरे को दरिद्र क्यो बनाते हैं।"

उन्होने अपने उपन्यास मे दर्शन और काव्य का समन्वय किया है। उसका प्रधान विषय मानसिक ऊहापोह है। कोमल भावो की व्यजना मे गभीर विचार ध्वनित होते है। "घटना की सृष्टि केवल मन के भाव को दिखलाने के लिए की गई है।"[11] नायक के भाव-विचार उनके भाव-विचार है। वे स्वय अपना नायक हैं। उनके पात्र हृदय से प्रेरित और मस्तिष्क से सचालित होते है। उन्हे रोने मे आनन्द मिलता है। वे आवेशशील किन्तु शिष्ट और सुसंस्कृत हैं। वे बातचीत नही करते, भाषण देते है, इसलिए सिद्धान्त के मूर्तरूप लगते है। जहाँ उन्होने कवि और वकील द्वारा उद्गार प्रकट करवाया है वहा अस्वाभाविकता का आभास नही है।

उनकी कृतियो का साहित्यिक महत्व उनकी शैली पर निर्भर है। भाव के अनुरूप ही उनकी भाषा उदात्त और ललित है। उन्होने लिखा है

कि "जिस प्रकार लडके बाटिका में तितलियों को पकडते फिरते है, उसी प्रकार मैं भी अपने भावो को स्वतन्त्र रूप से लिख रहा हूँ।"[12] यह स्वच्छदता उनकी शैली को शक्ति प्रदान करती है। उनके वर्णन मे काव्य, निबन्ध और भाषण की कला है। कही वाक्य छोटे-छोटे, कही लच्छेदार है। उपमाओ मे चित्रमयता है, जैसे—"श्वेताचल के भीतर से उसके आनन की आभा ऐसी छिटक रही थी जैसे ओस की बूँदो से कमलदल-राशि।"

भावमूलक उपन्यास की कोई क्रमबद्ध परम्परा नही चली। व्रजनन्दन सहाय के बाद दूसरे समर्थ लेखक चडीप्रसाद 'हृदयेश' ही थे, जो आलोच्य-काल के बाद आए। पारसनाथ त्रिपाठी की 'हमारी दाई' (१९१४) और राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का 'वनजीवन वा प्रेम लहरी' (१९१६) प्रेम के करुण-कोमल उद्‌गार हैं। 'हमारी दाई' की नायिका गांव से शहर मे आकर अपनी मालकिन के साथ रहने वाली बाल-विधवा दाई है। अपने मालिक को देखकर उसके हृदय मे प्रेम का अंकुर फूटता है। उसका स्वभाव बदल जाता है। वह हँसमुख, मुखर और चचल हो जाती है लेकिन उसका प्रेम मूक बना रहता है। वह मालिक का प्रेम प्राप्त करने के लिए उसका घर छोड़कर वेश्या बन जाती है। वह उसे बुलाकर उसके सामने प्रणय-निवेदन करती है और उसके लिए मर मिटने के लिए तैयार हो जाती है। मालिक की उदासीनता देखकर वह प्रतिशोध की भावना से अभिभूत हो जाती है। उसमे प्रेमोन्मत्त नारी के कोमल तथा भयकर दोनो रूपो के दर्शन होते है। उसका मालिक अत्यन्त आदर्शवादी है। उसके लिए परायी स्त्री को देखना भी पाप है। उसे दाई प्रेम की दृष्टि से देखती है। इसलिए उसे वह अपने घर से निकाल देना चाहता है और उसके घर जाकर इस तरह भाग आता है जिस तरह "रास्ते मे अकस्मात साँप के देखने पर राही अपने प्राण के डर से भागता है।" दाई की दुर्बलता की भाँति उसके मालिक की नैतिकता भी भावुकता की देन है।

राजा साहब का उपन्यास सुकुमार भावना और मधुर कल्पना का कोश है। उसमें कथानक नाम के लिए है। वह एक प्रेमी के विरह-दग्ध हृदय की ठण्डी आह है। नायक प्रेमी होने के साथ-साथ कवि भी है। वह जो कुछ बोलता है वह कविता है। उसकी वाणी उसके व्यक्तित्व के अनुरूप है। उसके स्वर से मिलन और विरह की मार्मिक व्यजना हुई है। प्रथम परिच्छेद मे मिलन की अनुभूति का जो वर्णन किया गया है उसमे सच्चाई भी है और

सौन्दर्य भी। तीसरे मे प्रथम स्पर्श का अनुभव इन शब्दो मे व्यक्त किया गया है·

मैने उसकी लोनी-लोनी नन्ही हथेली को अपने हृदय पर रक्खा। उसने तत्क्षण उसे खीच लिया, शायद कठोर प्राणो के सवेग ठोकरो से उसे चोट लगी हो। यही नही, मुझे 'जाने दीजिए' कहती हुई चितवन को फेर लिया।

टिप्पणियाँ

१—सुरेन्द्र—तिलिस्म किसे कहते है और क्यों बनाया जाता है ?

सिद्ध —तिलिस्म वही सख्स तैयार करता है जिसके पास बहुत मालखजाना हो और कोई वारिस न हो, तब वह अच्छे-अच्छे ज्योतिषी और नजूमियो से दर्याफ्त करता है कि उसके या उसके भाइयो के खानदान मे कभी कोई भारी प्रतापी वो लायक पैदा होगा या नही, आखिर ज्योतिषी और नजूमी इस बात का पता देते हैं कि इतने दिन के बाद आपके खानदान मे कोई लडका प्रतापी होगा, बल्कि उसकी जन्मपत्री भी लिख कर तैयार कर देते है, उसी के नाम से और अच्छी-अच्छी कीमती चीजो को रखकर उस पर तिलिस्म बांधते हैं।

आज कल तो लितिस्म बाँधने का यह कायदा है कि थोड़ा बहुत खजाना रखकर उसकी हिफाजत के लिये दो एक आदमी की बलि दे देते हैं, वह प्रेत या साप होकर उसकी हिफाजत करता है और कहे हुए आदमी के सिवाय दूसरे को एक पैसा लेने नही देता, मगर पहिले यह कायदा नही था—पुराने जमाने के राजो को जब तिलिस्म बाँधने की जुरूरत पड़ती थी तो बडे-बडे ज्योतिषी, नजूमी, वैद्य, कारीगर और तान्त्रिक लोग इकट्ठे किये जाते थे उन्ही लोगो के कहे मुताबिक तिलिस्म बाँधने के लिये जमीन तलाशी जाती थी, उसी जमीन के अन्दर खजाना रखकर ऊपर तिलिस्मी इमारत बनाई जाती थी, उसमे ज्योतिषी, वैद्य, नजूमी, कारीगर और तांत्रिक लोग अपनी अपनी ताकत के मुताबिक उसके छिपाने की बंदिश करते थे मगर साथ ही इसके उसके नक्षत्र और ग्रहो का भी ख्याल रखते थे, जिसके लिये वह खजाना रक्खा जाता था—कुंअर वीरेन्द्रसिह ने एक छोटा सा तिलिस्म तोड़ा है उनकी जुबानी आप वहाँ का हाल सुनिये और एक बात को खूब गौर से सोचिये तो आप ही मालूम हो जायगा कि ज्योतिषी नजूमी कारीगर और दर्शनशास्त्र के जानने वाले क्या काम करते थे।

—प्रथम संस्करण, चौथा हिस्सा, उन्नीसवाँ बयान, पृ० १०५-१०६

... ...

विचार कुछ अन्य यूरोपीय उपन्यासो मे है ।

—मिश्रबन्धु विनोद (चतुर्थ भाग), पृ० १८९

४– डा० श्रीकृष्णलाल ने तिलिस्मी उपन्यास को चारण-काव्य का अनुगामी बताया है ।

देखिए "आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास", पृ० २७६–७७

5– "The Moonstome is probably the best detective tale in the world."

—Victorian age in literature, p. 132

६– "उपन्यास-रचना", माधुरी, २७ अक्टूबर १९३२, पृ० ३५७

७– गोपालराम गहमरी "चक्करदार खून"

८– "जो बात झूठ सच से नही होती, तन्त्र मन्त्र यन्त्र से नही बनती वह प्रेम के विज्ञान 'उपन्यास' से सिद्ध होती है"

—किशोरीलाल गोस्वामी : 'सुख शर्वरी' का निदर्शन

९– ब्रजनन्दन सहाय द्वारा अनूदित 'चन्द्रशेखर' मे मूल लेखक की आलोचना, पृ० २५

१०–'आलोचना', उपन्यास-विशेषांक, पृ० ५५

११

हिन्दी और अन्य भाषाओं के उपन्यास

विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार ।
सब देशन से ले करहु भाषा माहि प्रचार ।।[1]

भारतेन्दु के उक्त मन्त्र को उनके समसामयिक और परवर्ती लेखको ने हृदयगम कर लिया और अपनी भाषा एव साहित्य के सर्वांगीण विकास के लिए हर सम्भव प्रयास किया । उनमे शायद ही कोई ऐसा हो जो हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओ और अग्रेजी का जानकार न हो और जो समकालीन साहित्यिक गतिविधि से परिचित न हो । भारतेन्दु का क्या कहना, जो भारत की अनेक भाषाओ और अग्रेजी मे कविता लिखते थे, राधाचरण गोस्वामी ने भी अपने ब्रजभाषाभक्त वैष्णव पिता के भय से "अग्रेजी भाषा का श्रीगणेश एक चोर के रूप मे किया था।"[2] जो जीवित, उदार और महान होता है वह अपने अभाव का अनुभव करता है, उसे दूर करने की चेष्टा करता है और दूसरो से प्रेरणा एव सहायता लेने का साहस दिखाता है । हिन्दी के हित की राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर कुछ लेखक मौलिक, कुछ अनूदित और कुछ दोनो प्रकार के उपन्यासो की रचना करते रहे । इसका परिणाम यह हुआ कि मौलिक उपन्यास के साथ ही अन्य भाषाओ के उपन्यास की एक समृद्ध परम्परा बन गई । आलोच्यकाल मे अनुवादित उपन्यासो की जितनी सख्या हिन्दी मे है उतनी शायद ही किसी दूसरी भारतीय भाषा मे हो । गांधी-युग मे जब मौलिकता की मांग जोर पकडने लगी और मौलिक उपन्यासो का धरातल बहुत ऊँचा हुआ, अनुवाद का जोश ठण्डा

पड गया। हिन्दी मे विभाषा के उपन्यास का इतिहास मुख्यतः अंग्रेजी और बगला उपन्यास का इतिहास है।

हिन्दी और अंग्रेजी

अंग्रेजी साहित्य की सबसे बडी देन

अग्रेजी सम्पर्क का अभिशाप भारतीय समाज को मिला तो उसका वरदान भारतीय साहित्य को। अग्रेजी शिक्षा से अग्रेजी साहित्य का और अग्रेजी-साहित्य से उपन्यास का परिचय मिला। उन्नीसवी सदी तक हिन्दी पर अग्रेजी-उपन्यास का प्रभाव प्रत्यक्षतः या बगला के माध्यम से पडा, बीसवी सदी मे अन्य यूरोपीय देशों के उपन्यास भी प्रभाव डालने लगे। अग्रेजी सम्पर्क वस्तुतः पश्चिमी सम्पर्क है। शिक्षा और शासन मे अग्रेजी भाषा के प्रवेश से हिन्दी-गद्य के विकास मे अन्तहीन बाधाएँ उपस्थित हुईं किन्तु अग्रेजी-साहित्य के सम्पर्क से उसमें नवीनता और विविधता का समावेश हुआ। हिन्दी मे उपन्यास अग्रेजो-साहित्य की सबसे बड़ी देन है और उसकी इस देन को हिन्दी ने जिस रूप मे ग्रहण किया है उस रूप मे दूसरी देन को नहीं।

भारत कहानियो की जन्मभूमि है। जन्मजात कथाप्रेमी भारतवासियो ने उपन्यास का हार्दिक स्वागत किया। किसी समय भारत की कहानियाँ ईरान और अरब की राह से यात्रा करती हुई यूरोप पहुँची थी[३], वे जैसे नया रूपरग लेकर अपने घर लौट आईं। उपन्यास नया होकर भी बिल्कुल अजनबी नही लगा। वह काव्य और नाटक की भाँति शास्त्रीय रूढियो से बँधा हुआ साहित्यिक माध्यम नही था। इससे साधारण लेखक और पाठक भी उसके प्रति सहज ही आकृष्ट हुए। उसमे वैयक्तिक विचार और अनुभूति के साथ-साथ सामाजिक परिस्थिति और समस्या की अभिव्यक्ति के लिए अधिक अवकाश था। उसने उन सभी लेखको को मुग्ध कर लिया जिनमे आत्म-निष्ठता या वस्तुनिष्ठता या दोनो के प्रति आग्रह था।

कविता और नाटक के क्षेत्रो में भारत यूरोप से होड ले सकता था लेकिन आधुनिक औद्योगिक सभ्यता ने यूरोपीय कथासाहित्य को आगे बढ़ा दिया था। हिन्दी की कविता विकास के स्वर्ण-शिखर पर आरूढ हो चुकी थी। उसमे कथासाहित्य के नाम पर संस्कृत-फारसी से ली गई कथा-कहानी

की ही प्रधानता थी, जो नई आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे असमर्थ थी। उपन्यास मे नवयुग की माँग पूरी करने की सम्भावना थी। रूढिमुक्त होने के कारण वह अपने को जग-जीवन के परिवर्तन के अनुकूल बना सकता था। लेखको ने उसे अपने उद्देश्य के अनुकूल जानकर उसका वरण किया। उन्नीसवीं सदी के कवि-उपन्यासकार "हरिऔध" जी ने स्वीकार किया है :

अँग्रेजी साहित्य के साथ सम्पर्क होने के पहले हिन्दी-लेखको के सम्मुख कहानी और उपन्यास-रचना का वह आदर्श नही था जो समाज की दैनिक समस्याओं के हल करने की ओर विशेष ध्यान देता है, जो कुप्रथाओ पर प्रहार करके नवीन विचारशैलियो की रचनात्मक दिशा मे अग्रसर करता है। सस्कृत के 'कादम्बरी' और 'दशकुमारचरित' नामक उपन्यासो से यथेष्ठ उपयोग आधार नही मिल सकता था और न 'हितोपदेश' और 'पचतत्र' की कहानियाँ विशेष रूप मार्ग प्रदर्शक हो सकती थी।

'हरिऔध' जी के कथन से यह स्पष्ट है कि अग्रेजी प्रभाव भारत की साहित्यिक आवश्यकता पर निर्भर था। यदि सामाजिक अवस्था और साहित्यिक पृष्ठभूमि उपन्यास की उत्पत्ति के लिए अनुकूल नही होती तो अग्रेजी-साहित्य के सम्पर्क से विशेष लाभ नही होता। समकालीन समाज की समस्याओ ने उपन्यास की उर्वरता बढाई तो पूर्व की गद्यकथाओ ने उसके लिए पहले से ही जमीन तैयार की। उपन्यास की मांग सस्कृत-फारसी ने पैदा की, अग्रेजी ने पूरी की। अग्रेजी प्रभाव का महत्त्व इसमे है कि उससे पुरानी कथा-कहानी से भिन्न नई चाल के उपन्यास का आदर्श मिला। यह प्रभाव उन्नीसवी सदी मे उपन्यास के ढाँचे तक सीमित रहा, बीसवी सदी मे उसके विचार-पक्ष का भी स्पर्श कर व्यापक बन गया, जैसे पाश्चात्य सभ्यता की छाप पहले भारतवासियों की वेशभूषा पर पडी, पीछे उनकी वाणी और मन पर भी धीरे-धीरे छा गई।

आदि उपन्यास अग्रेजी उपन्यास के नमूने पर लिखे गए। यह नमूना किसी भारतीय भाषा से नही बल्कि सीधे अग्रेजी से मिला। प० बालकृष्ण भट्ट का 'रहस्यकथा उपन्यास' (१८७९) अग्रेजी शैली का पहला मौलिक उपन्यास है। वस्तु-विन्यास की दृष्टि से वह अग्रेजी के अपराध-उपन्यास से मिलता-जुलता है। भट्टजी अग्रेजी उपन्यास और उसकी कला से परिचित थे, जैसा कि उनके 'उपन्यास' शीर्षक निबन्ध से ज्ञात होता है। पुराने अग्रेजी

उपन्यासकारो की भाँति वे उपन्यास मे अपने पात्रो और उनकी क्रियाओ पर टीका-टिप्पणी करते हैं तथा अपने रचनाविधान पर प्रकाश डालते है।[6] 'परीक्षागुरु' पर अग्रेजी प्रभाव स्पष्ट हैं। अग्रेजी मे उसका समर्पण है और उसी भाषा की प्रकृति के अनुकूल उसका लाक्षणिक नाम भी है। यहाँ तक कि वाक्य-रचना और विराम-चिह्नो के प्रयोग मे अग्रेजी छाप है। कथा-विन्यास की वक्रता और वार्तालाप की योजना मे अग्रेजी उपन्यास का अनुसरण किया गया है। दो-तीन स्थलो को छोडकर सर्वत्र वार्तालाप मे वक्ता का नाम बीच मे या अन्त मे है। मनोरजन के लिए पढने वालो को छूट देने के लिए कुछ विचार-प्रधान प्रकरणो को चिह्नित करने की पद्धति भी निराली है। उनके 'निवेदन' से स्पष्ट है कि नागरी और उर्दू मे उन्हे आधार नही मिला। अपने उपन्यासो के सम्बन्ध मे फील्डिग का प्राक्कथन ऐसा ही था।[7]

ठाकुर जगमोहनसिंह का 'श्यामास्वप्न' भी अग्रेजी-उपन्यास के आदर्श पर लिखित है। उन्होने उसे 'एन आरिजनल नोवेल' कहा है। उसका वाक्य-विन्यास कही-कही अग्रेजी ढग का है, जैसे, "देवाश्रयो की अवली नदी के तीर में नीर पर परछाहीं फेकती है।"[8] श्यामा और श्यामसुन्दर की प्रेम-व्यजना विदेशी उपन्यास का स्मरण दिलाती है। बातचीत करने के समय श्यामसुन्दर श्यामा के दोनो हाथो को अपनी छाती से लगाता है तो श्यामा उसके सिर को अपनी छाती से लगाती है। रत्नचन्द्र के 'नूतन चरित्र' के कुछ पात्र अपने आचार-व्यवहार मे और भी विदेशी लगते है। "चेतराम ने अपनी बहन का प्यार से हाथ चूमकर कहा", "विवेकराम उसके हाथ का इच्छुक है", इस प्रकार की अभिव्यक्ति[9] पाश्चात्य प्रभाव की परिचायिका है। पाश्चात्य सभ्यता को भारतीय वेश प्रदान करने का प्रयास कही-कही हास्यास्पद और असफल हो गया है, जैसे, 'नाचगृह' मे भंग पीकर विवेकराम का इदुमती के साथ रमण करना। कही-कही इससे मार्मिक स्थल की भी सृष्टि हुई है। चतुर भठियारिन यात्री को कहती है, "नीम के नीचे गाड़ी को बहुत अच्छी जगह दूँगी और आपकी खातिर के लिए सब तरह से हाजिर हूँ।"[10] 'नूतन चरित्र' संभवत· अग्रेजी के किसी ऐयारी उपन्यास ('रोग नोवेल') पर आधारित है। लेखक ने भूमिका मे कहा है कि यह "उसी अन्दाज पर लिखा है जैसे अग्रेजी मे लिखे जाते है।"

विचार की दृष्टि से भी आरम्भ मे लिखे गए कुछ उपन्यास अठारहवी शताब्दी के शिक्षाप्रद अग्रेजी उपन्यासो की परम्परा मे है। उक्त शताब्दी के

उत्तरार्ध मे रूसो के शिक्षा-सिद्धान्तो से प्रभावित होकर कुछ अग्रेजी लेखको ने, जिनमे हेनरी ब्रुक, थामस डे और एलिजाबेथ इचबाल्ड प्रमुख है, बालको के लिए उपदेश-प्रधान कथासाहित्य की रचना की थी। उनके मत से मनुष्य मूलत: अच्छा होता है, केवल कुशिक्षा और कुसगति के कारण बिगड जाता है। उन्होने नीति-रीति की शिक्षा देने के लिए बहुधा दो भिन्न प्रकार के पात्रो की अवतारणा की है। उनके बुरे पात्र अच्छे की सहायता से सुधर जाते है या दोनो दण्ड और पुरस्कार पाते हैं। श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, लज्जाराम शर्मा आदि के उपन्यासो मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है। इन्होने अपने विचार को मनोहर रूप मे प्रस्तुत करने के लिए उपन्यास का आश्रय लिया है।

उन्नीसवी शताब्दी के अनुवाद

उन्नीसवी शताब्दी मे अग्रेजी के गिने-चुने शिक्षाप्रद और साहसिक उपन्यास अन्य भाषाओ से और सीधे अनूदित हुए। प्रथम कोटि के अनुवादो का आगे उल्लेख किया जाएगा। दूसरी कोटि मे डा० जानसन के 'रासेलास' के तीन अनुवाद मिलते हैं, जिनमे लक्ष्मीनाथ शर्मा का अनुवाद पुस्तकाकार १८८९ मे निकला। लक्ष्मीनारायण शर्मा लिखित 'समुद्र मे गिरीन्द्र' (१८९४) के मूल का उल्लेख नही किया गया हैं। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमे नायिका न होकर केवल नायक है, जो आपबीती सुनाता है। नायक के निर्जन द्वीप मे रहने का वर्णन रोमाचक है। सूर्यनारायण विद्यार्थी और गोपालराम गहमरी द्वारा अनुवादित क्रमश: 'मनहरण उपन्यास' (१८९९) और 'गुप्तचर' (१८९९) छोटे-छोटे रोचक उपन्यास हैं।

कुछ अग्रेजो ने भारतीय जीवन को आधार बनाकर कथासाहित्य और इतिहास लिखे थे, जिनका रूपान्तर उन्नीसवी सदी से ही होने लगा। रामकृष्ण वर्मा ने मीडोज टेलर के भारत-प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कानफेसस आफ ए ठग' (१८३९) का उल्था 'ठग वृत्तान्तमाला' (१८८९) के रूप मे किया। ७२४ बडे पृष्ठो की इस पुस्तक मे साहसिकता और जासूसी का वर्णन सरल-उर्दू-मिश्रित हिन्दी में किया गया है। पादरी ह्यूबर्ट कान्टर की पुस्तक के आधार पर लिखित सूर्यनारायण सिंह का 'मराठा सरदार' (१८९८) उपन्यास न होकर ऐतिहासिक कथा है। अग्रेज इतिहास-लेखको ने ऐतिहासिक घटनाओ का सरस वर्णन किया है और उन्हे रोचक बनाने के प्रयास मे कही-कही वार्तालाप तक का उपयोग किया है। उनकी रचनाओ को पढकर उपन्यास का-सा

आनन्द होता है। उनका अनुवाद उपन्यास के रूप मे किया जाना स्वाभाविक था।

उपन्यास से कहीं अधिक अनुवाद और रूपान्तर अग्रेजी कथाओ और नाटको के हुए। कुछ लेखक कथा के अनुवाद को उपन्यास की सज्ञा देकर उपस्थित करने लगे। कुछ लेखक कथासाहित्य की नमनीयता से लाभ उठाकर नाटको का कथात्मक रूपान्तर करने लगे। इस प्रकार के रूपान्तर न तो नाटक ही रहे और न उपन्यास ही हो सके, यद्यपि इनकी एक धारा चल पड़ी। कार्तिकप्रसाद खत्री कथा और नाटक दोनो के रूपान्तरकारो मे अग्रणी थे।

बीसवीं सदी के अनुवाद

वर्तमान शताब्दी मे रैनाल्ड, हैगर्ड, कानन डायल, मेरी कारेली, स्काट, लिटन, कालिन्स आदि के मनोरजक उपन्यास अनूदित हुए। कन्हैयालाल अग्रवाल ने हैगर्ड रचित 'शी' का अनुवाद 'श्री या अवश्यमाननीय' (१९०२) नाम से किया। यह रोमानी उपन्यास एक जादूगरनी की एक अद्भुत कथा सुनाता है। गोपालराम गहमरी का 'गोविन्दराम' (१९०५) कानन डायल के प्रथम उपन्यास 'ए स्टडी इन स्कारलेट' का रूपान्तर है। शरलाक होम को गोविन्दराम बना दिया गया है। मेरी कारेली के 'वेण्डेटा' का अनुवाद 'काली नागिन' (१९०८) नाम से रामचन्द्र वर्मा ने किया। इसमे नारी की दुर्बलता पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। स्काट के 'द एवौट' का अनुवाद लाला चन्द्रलाल ने 'रानी मेरी' (१९१६) नाम से किया क्योकि उपन्यास स्काटलैंड की रानी मेरी से सम्बन्धित है। अग्रेजो के दूसरे विख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार लार्ड लिटन के भी दो उपन्यास हिन्दी मे आये। गिरिजा कुमार घोष ने 'रियजी' का अनुवाद इसी नाम से किया, जो १९१५ में दूसरी बार प्रकाशित हुआ। जयराम दास गुप्त ने 'रग मे भग' (१९०७) मे 'लास्ट डेज आफ पाम्पेई' के कथानक को काट-छाट कर काश्मीर के ऐतिहासिक वातावरण में फिट कर दिया है, पात्रो के नाम बदल दिए हैं और परिच्छेदों के प्रारम्भ मे उर्दू के चुभते हुए शैर लिख दिए हैं। उन्होने मूल लेखक का उल्लेख नहीं किया है किन्तु लिटन की नीडिया छिपाने से छिप नही सकी, जोहरा के रूप मे प्रकट ही हो गई। उपन्यास अनुवाद या रूपान्तर न होकर असफल अनुकरण का उदाहरण है।

अग्रेजी लेखको मे रेनाल्ड के उपन्यासों के सर्वाधिक अनुवाद हुए।

कहते हैं, रेनाल्ड डाक विभाग का कर्मचारी था और दूसरो के पत्र पढ़ लिया करता था। 'मिस्ट्रीज आफ द कोर्ट आफ लदन' के प्रकाशित होने पर उसे इगलैण्ड छोड देना पड़ा। उपन्यास का प्रकाशन बन्द कर दिया गया और उसे दबाकर रखने का जितना ही यत्न किया गया उसका प्रचार उतना ही बढ़ता गया। उसकी कुख्याति उसकी लोकप्रियता का कारण और परिणाम बन गई। ठाकुर प्रसाद खत्री ने उसके एक खण्ड का अनुवाद (१९०६) किया पर सदानन्द शुक्ल ने २८ भागो का अनुवाद 'लण्डन रहस्य' नाम से किया था, जो, १९१३ से प्रकाशित होने लगा था। रेनाल्ड के अन्य उपन्यास भी अनूदित हुए परन्तु 'लडन रहस्य' का अत्यधिक प्रचार हुआ। जहाँ अनेक आलोचको ने उसकी भर्त्सना और उपेक्षा की, वहाँ कुछ समर्थ लेखको और उपन्यासकारो ने उसकी सराहना भी की। मनोरजक कथा, सजीव चरित्राकन, भावात्मक वातावरण, यथार्थ चित्रण और विलक्षण वर्णन-शैली के कारण यह उपन्यास विविध वर्गों के पाठको को आकृष्ट करने मे सफल हुआ। लदन के समाज का, खास कर उच्चवर्ग का, जैसा नग्न चित्र इसमे है वैसा शायद ही किसी अग्रेजी उपन्यास मे हो। इसका प्रधान आकर्षण यथातथ्यवाद था, जैसा कि गहमरीजी ने लिखा था :

जमाने मे जो हो रहा है उसका निन्दित भाग व्याप्त होने पर भी छिपा देना उत्तम होता तो मिस्टर रेनाल्ड इगलैड ही से नही बल्कि दुनिया भर से निकाल दिए जाते।[11]

अनूदित उपन्यासों के प्रकार

अग्रेजी-उपन्यासो के उपर्युक्त अनुवादों से सूचित होता है कि लेखको और पाठको की रुचि रोमानी उपन्यासो की ओर अधिक थी। फिर भी यह कहना ठीक नही होगा कि उक्त अग्रेजी उपन्यासो का कोई मूल्य नही है। रेनाल्ड का उल्लेख अग्रेजी-उपन्यास के इतिहास मे नही मिलता है किन्तु स्काट, मेरी कारेली, कानन डायल आदि अपने समय के सफल और लोकप्रिय उपन्यासकार हैं तथा अपनी विशेषताओं के कारण साहित्यिक महत्त्व रखते है। इनकी रचनाएँ अच्छे उपन्यासो की श्रेणी मे रखी जाती हैं और मनोरजन का शक्तिशाली साधन समझी जाती हैं। इनकी रोचकता से हिन्दी लेखको का प्रभावित होना स्वाभाविक था।

आश्चर्य की बात यह है कि अग्रेजी के समस्यामूलक सामाजिक

उपन्यासो के अनुवाद बहुत कम हुए । गगाप्रसाद खेतान और महावीरप्रसाद पोद्दार द्वारा अनूदित 'टाम काका की कुटिया' १९१५ और १९१६ मे प्रकाशित हुई, जो दास-प्रथा के विरोध मे लिखा गया स्टो का विश्वविख्यात उपन्यास है । अठारहवी-उन्नीसवी शताब्दियो ने अंग्रेजी को महान सामाजिक उपन्यासकार दिए थे । हिन्दी-उपन्यास-लेखक उनसे प्रेरणा ग्रहण नही कर सके । उन्नीसवी शताब्दी तक अग्रेजी उपन्यास काफी प्रौढ और सम्पन्न हो चुका था । उससे किए गए श्रेण्य रचनाओ के अनुवाद अगुलियो पर गिने जा सकते हैं, उनके आधार पर मौलिक प्रयोग करने की बात तो दूर रही । अग्रेजी उपन्यास के स्वर्णकाल—विक्टोरिया काल—के लेखक डिकेन्स, थैकरे, ट्रोलोप, ब्राते, जार्ज इलियट, मेरेडिथ और हार्डी की एक भी कलाकृति हिन्दी मे आती तो वह गौरवान्वित होती ।

इस साहित्यिक अभाव के कुछ कारण है । भारतेन्दुकालीन उपन्यासकारो के समान परवर्ती उपन्यासकारो का अग्रेजी-उपन्यास से सीधा सम्पर्क नही रहा । वैसा सम्पर्क आलोच्यकाल के अन्त मे ही फिर स्थापित हो सका। अग्रेजी प्रभाव मुख्यत· बगला के माध्यम से पड़ा और बगला मे अग्रेजी-उपन्यास की महान परम्परा नही आई । हिन्दी-लेखक स्वय अग्रेजी उपन्यासकारो की महती उपलब्धि की परख नही कर सके या उस ओर आकृष्ट न हो सके । यह भी सम्भव है कि भारत मे उच्चकोटि के अग्रेजी-उपन्यासो का प्रचार नही हुआ हो । यहाँ रहने वाले अग्रेज अधिकतर शासक और व्यापारी थे, जो उपन्यास मन बहलाने के लिए पढ़ते थे । शायद उन्हें स्काट, मेरी कारेली, लिटन जैसे लेखको की रचनाए ही प्रिय रही हो और इसलिए भारतीय शिक्षित समाज मे अन्य उत्कृष्ट रचनाओ का प्रचलन न हुआ हो । उच्च कक्षाओ मे विक्टोरिया-काल के जाने-माने उपन्यासकारो की कृतिया निर्धारित थी और युवकोपयोगी होते हुए भी प्रौढ थी किन्तु उनके प्रभाव का क्षेत्र सीमित था ।

उत्तम उपन्यासो के अभाव का एक कारण यह भी है कि उनका अनुवाद करना कठिन होता है । सामाजिक उपन्यासो की अपेक्षा घटना-उपन्यासो का अधिक अनुवाद किया गया क्योकि ऐसा करना आसान था । हिन्दी-लेखक अग्रेजी-उपन्यास मे चित्रित समाज के आचार-व्यवहार पर न तो मुग्ध हो सके और न उन्हे अच्छी तरह समझ सके । उसकी समस्याएं

उनकी सामाजिक समस्याओ से भिन्न थीं इसलिए उनमे विशेष आकर्षण नही था। विदेशी समाज को भारतीय आदर्श के अनुकूल बनाकर ही उन्हे सन्तोष हो सकता था किन्तु इसमे सफल होने के लिए जो कारयित्री कल्पना अपेक्षित थी वह सबको नही मिली थी।

भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी-उपन्यास

कुछ लेखको ने भारतीय भाषाओ से अग्रेजी-उपन्यासो का अनुवाद किया। ऐतिहासिक दृष्टि से अनुवाद के अनुवाद का भी विशेष महत्व हो जाता है। आरम्भ मे थामस डे का 'मेडफोर्ड एण्ड मरटन' डिफो का 'राबिन्सन क्रूसो' और बनयन का 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' क्रमशः १८५५, १८६० और १८८५ मे उर्दू और बगला से ही अनूदित हुए थे। प्रथम दो अनुवादो का परिचय चौथे अध्याय मे दिया जा चुका है। बनयन के सुप्रसिद्ध रूपकात्मक उपन्यास का अनुवाद "यात्रा स्वप्नोदय" नाम से मिशन प्रेस ने निकाला था।

मूल ग्रन्थ का सहारा न लेकर उसके भारतीय रूप का उपयोग इसलिए किया जाता था कि एक तो ऐसा करना आसान था, दूसरे उमे भारतीय भावना के अनुकूल बना लिया गया था। उर्दू से "हरिऔध" ने 'वेनिस का बाका' और 'रिपवान विंकल' का अनुवाद किया था। प० प्रतापनारायण मिश्र ने प्रथम पुस्तक की समालोचना[12] करते हुए लिखा था कि "यह ऐसा अच्छा उपन्यास है कि हाथ से छोड़ने को जी नही चाहता है।" उन्होने अनुवादक की सराहना इन शब्दो मे की थी, "उन्हे दुखिनी मातृभाषा की सहायता का पुण्य होगा जिसके आगे धन और प्रतिष्ठा का लाभ तुच्छ है।" 'हिन्दी शब्दसागर' के निर्माण मे इस पुस्तक से सहायता ली गयी थी। प्रथम सस्करण की भाषा अरबी-फारसी शब्दो से परिपूर्ण होने के कारण दुर्बोध है। दूसरे सस्करण मे सस्कृत शब्दो को स्थान दिया गया है। यह शेक्सपियर के नाटक का कथात्मक रूपान्तर है किन्तु दूसरा उपन्यास अमेरिकन लेखक वाशिंगटन इरविंग की श्रेण्य रचना है। गोपालराम गहमरी और रामलाल वर्मा के कुछ जासूसी उपन्यास सीधे अग्रेजी से नही बल्कि बगला से अनूदित हैं। सम्भवतः 'टाम काका की कुटिया' भी चण्डीचरण सेन के अनुवाद का अनुवाद है। अग्रेजी के आधार पर गुजराती मे लिखित पुस्तक का अनुवाद 'विचित्र स्त्री-चरित्र' नाम से मेहता लज्जाराम शर्मा ने किया।

इसमे एक स्त्री जासूस की चतुरता और साहसिकता का पता लगता है।

अंग्रेजी माध्यम से यूरोपीय उपन्यास

अंग्रेजी के माध्यम से यूरोपीय भाषाओ के उपन्यास भी हिन्दी में आए। मूलत डच भाषा मे १८७२ मे प्रकाशित उपन्यास के अंग्रेजी अनुवाद का आधार लेकर रामकृष्ण वर्मा ने 'अकबर' (१८९१) लिखा था। इस ऐतिहासिक उपन्यास मे अकबर के शासन-काल का वातावरण सजीव हो उठा है। राधाविनोद लिखित 'बेचारी माँ' (१८९८) इटली की लोकप्रिय लेखिका ग्रेजिया डेलेडा की मर्मस्पर्शी रचना 'मदर' का अनुवाद है। अमर फ्रेंच उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो की सुप्रसिद्ध कलाकृति 'ला मिजरेबल' का अनुवाद दुर्गाप्रसाद खत्री और रामनारायण प्रसाद ने क्रमश: 'अभागे का भाग्य' (१९१४-१५) और 'अभागा' नाम से किया। एक सक्षिप्त अनुवाद 'राजलक्ष्मी' नाम से भी हुआ। कोमल सवेदनाओ और रोमाचक घटनाओ से भरे इस उपन्यास मे जो रस है उसका आस्वादन ये अनुवाद नही करा पाते। मेदूलाल शर्मा की 'पृथ्वी परिक्रमा' (१८०९) सम्भवत विख्यात फ्रेंच लेखक जूल वर्न के 'एराउड द वर्ल्ड इन अइटी डेज' का अनुवाद है। जैनेन्द्रकिशोर का 'चूडैल' (१९१०) पाल डी काक के मनोरजक सामाजिक उपन्यास 'वेम्पायर' का रूपान्तर है। जयरामदास गुप्त लिखित 'दिल का काटा' और रामेश्वरदत्त शर्मा लिखित 'हृदय कटक' (१९१४) किसी रूसी उपन्यास के अनुवाद लगते हैं। गुप्त जी ने पात्रो के नाम बदल कर और बनारस के पास के गाँव को घटनास्थल बनाकर उपन्यास को अपनी रचना बना लेने की चेष्टा की है। यह बात शर्मा जी के अनुवाद पढने पर स्पष्ट हो जाती है। दोनो मे अपने मालिक की लड़की से एक नौकर के प्रेम और उसके परिणाम का मर्मस्पर्शी वर्णन है।

अनुवादो का स्वरूप

विदेशी भाषा के काव्य मे जितना रस मिलता है उतना कथासाहित्य मे नहीं मिल पाता क्योंकि काव्य कथा साहित्य की अपेक्षा अधिक विश्वजनीन होता है। शायद यही कारण है कि विदेशी उपन्यासो के अनुवाद सन्तोषजनक नही होते, यद्यपि उपन्यासो का भाषान्तर करना अपेक्षाकृत अधिक आसान है। अंग्रेजी से अनुवाद करने में थोड़े-से हिन्दी लेखक ही सफल हुए। अविकल अनुवाद की अपेक्षा स्वतन्त्र अनुवाद मे अधिक सुगमता होने से

अधिकांश लेखकों ने स्वतन्त्र अनुवाद ही किया। उन्होंने पात्र और वातावरण को भारतीय बनाने की चेष्टा की। यह चेष्टा कही-कही निष्फल होने के साथ-साथ हास्यास्पद हो गई है। भारतीय वेश मे भी विदेशी रग-ढग साफ झलकने लगते है। कुछ रूपान्तरकार विदेशी उपन्यास को भारतीय आदर्श के अनुकूल बनाने मे सफल हुए। 'चूड़ैल' के मूल लेखक ने एक व्यक्ति का वेश्या के साथ विवाह करा दिया था। जैनेन्द्र किशोर ने इसे अनुचित समझकर वेश्या को रखेलिन बनाकर छोड दिया। इस प्रकार का परिवर्तन करना अनुवादक की दृष्टि मे भले ही समीचीन हो, मूल लेखक के प्रति यह अन्याय है। अनुवाद मे मूल के आशय को अक्षुण्ण रखते हुए परिवर्तन किया जाना चाहिए। इस कार्य मे बगला-लेखक बड़े कुशल थे। उन्हे अग्रेजी-उपन्यास के भाव को आत्मसात करने मे अधिक सफलता मिली।

त्रिविध प्रभाव

आलोच्यकाल मे अग्रेजी-उपन्यास का प्रभाव मुख्यत: रेनाल्ड के उपन्यासो का प्रभाव है। 'लन्दन रहस्य' के आदर्श पर अनेक रहस्यमूलक उपन्यास लिखे गए। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'लखनऊ की कब्र' उसकी अच्छी नकल है। रेनाल्ड के नग्न यथार्थवाद, घटना-वैचित्र्य और प्रेमभाव से गम्भीर लेखक भी प्रभावित हुए बिना नही रह सके। उसके अनुपम कथा-कौशल और वर्णनमाला का अनुकरण नही किया जा सका। जासूसी उपन्यास की विधि और कला अंग्रेजी की विशिष्ट देन है। गोपालराम गहमरी कानन डायल के और रामलाल वर्मा एडगर वैलेस के अनुगामी हैं। गोथिक रोमास और तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास के वातावरण मे बहुत समानता है पर उनमे सीधा सम्बन्ध नही दीख पड़ता है। गोथिक रोमांस अपने अतिप्राकृत तत्त्व के कारण एक भिन्न सृष्टि हो गए हैं। स्काट के ऐतिहासिक रोमास की धारा हिन्दी मे आकर वेगवती बनी। स्काट की दृष्टि मे अतीत और वर्तमान मे विशेष अन्तर नही था, अत: उसकी रचनाओ मे तथ्य और कल्पना का मिश्रण रहता है, कथा का कल्पित अश अधिक रोचक और गौण पात्र अधिक सजीव होते हैं तथा कालदोष पाया जाता है। ये प्रवृत्तिया अनेक हिन्दी-उपन्यासो मे मिलती हैं। स्काट के उपन्यास का आरम्भ विलक्षण होता है। बहुधा प्रकृति की पृष्ठभूमि मे घुड़सवारो के दर्शन होते हैं। कुछ हिन्दी-उपन्यास-लेखक अपने उपन्यास का आरम्भ इसी ढग से करते हैं। रामनरेश त्रिपाठी की

'वीरागना' इसका उदाहरण है। स्काट-शैली के प्रतिनिधि उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी है। उनकी विशिष्टता यह है कि उनका रोमास प्रेम का रोमास है। वे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उपयोग प्रेम के चित्रण के लिए करते हैं। वे रोमास के प्रेमपक्ष को प्रधानता देते हैं, स्काट उसके साहसिक पक्ष को। अतः स्काट के उपन्यास मे प्रेम के सामने ऐतिहासिक तथ्य गौण नही होते।

अग्रेजी-उपन्यास का सामान्य प्रभाव हिन्दी-उपन्यास की सोद्देश्यता और स्वरूप पर लक्षित होता है। अग्रेजी-उपन्यासकार अपने समकालीन फ्रेंच उपन्यासकारो के समान विशुद्ध उपन्यासकार नही थे। वे कला की अपेक्षा नीति को विशेष महत्त्व देते थे। उनके लिए उपन्यास मनोविनोद का साधन न होकर जीवन की आलोचना था। हिन्दी-उपन्यास अग्रेजी-उपन्यास की परम्परा मे है इसलिए उनके लेखक फील्डिग, थैकरे और डिकेंस की तरह कथा के बीच मे या पात्रो के स्वर मे पाठको को उपदेश सुनाते है तथा उनका कथानक नाटकीय और उनके पात्र "टाइप" हैं। यदि वे फ्रेंच आदर्श पर लिखे जाते तो उनकी कला नीति के सामने नही दबती।

अग्रेजी का परोक्ष प्रभाव अग्रेजी-उपन्यासो पर आधारित बगला-उपन्यासो के माध्यम से पडा। बगला के तीन महान प्रारम्भिक उपन्यास-लेखक बकिम, रमेशचन्द्र और रवीन्द्रनाथ (जिनके उपन्यास आलोच्यकाल मे अनूदित हुए) स्काट, लिटन, थैकरे आदि से प्रभावित थे। भावुकता और भाषा को छोडकर उनकी रचनाओ मे शायद ही ऐसा कोई श्रेष्ठ तत्त्व है जो विदेशी न हो। बकिम पूरे अर्थ मे बगला के स्काट थे। स्काट की भाँति उनकी सहानुभूति ह्रासोन्मुख अभिजात वर्ग की ओर थी, बीते वैभव से उन्हे मोह और अपनी जन्मभूमि से ममता थी। वे इसके इतने बडे प्रशसक थे कि उसके उपन्यास को उत्कृष्ट काव्य मानते थे।[13] उनकी 'दुर्गेशनन्दिनी' की तुलना स्काट के 'आइवानहो' से की जा सकती है। उनकी देवी चौधरानी और राधारानी स्काट की फ्लोरा और जेनी डीन्स की बेटियाँ है। उन्होंने अपनी रजनी की सृष्टि लिटन की अधी रूपवती मालिन नीडिया ("लास्ट डेज आफ पाम्पेई") के आदर्श पर की थी। रमेशचन्द्र ने अंग्रेजी-साहित्य का अध्ययन कर उसकी विशेषताओ को आत्मसात् किया था और अग्रेजी मे उपन्यास लिखा था। रवीन्द्रनाथ के विचारो मे पश्चिम की प्रतिध्वनि स्पष्ट है। उनके 'चोखेरवाली' और थैकरे के 'वैनिटी फेयर' की कथावस्तु

एक-सी है।

बगला अनुवादो का वास्तविक महत्व उस समय से माना जाना चाहिए जब प्रथम महान मौलिक उपन्यासकार शरच्चन्द्र के उपन्यास अनूदित होने लगे। उनके पूर्व बंगला-उपन्यासो का प्रभाव एक प्रकार से अग्रेजी प्रभाव है। बगला-लेखक खुद इस बात को महसूस करते थे कि उन्होने अग्रेजी से कुछ लूटा है, कुछ उधार लिया है।[14] हिन्दी-लेखको ने सीधे अग्रेजी से अनुवाद न कर बगला से अनुवाद क्या किया, उधार लेने वाले से उधार लिया। एक आलोचक ने ठीक ही लिखा था :

हिन्दी के हथलपक पास-पड़ोस मे ही डाका डालते है। इधर डाका डाला उधर पकडे गये पर अन्य भाषाओ के विशेषत· बगभाषा के इसी प्रवृत्ति के कुछ सज्जन सात समुद्र पार से माल उड़ाते है। उनके कम गिर-फ्तार होने का एक यह भी कारण है। जिन पर वे हाथ साफ करते है उन्हे इसकी खबर भी नही होती।[15]

बगला-उपन्यास की ओर हिन्दी-लेखको के आकृष्ट होने के तीन मुख्य कारण थे : अग्रेजी की अपेक्षा बगला मे उनकी पैठ अधिक थी, बगला-उपन्यास मे भावना और कल्पना का विलास था तथा अग्रेजी-उपन्यास का भारतीयकरण हो गया था। बकिम और रमेशचन्द्र ने अग्रेजी के ऐतिहासिक रोमास को भारतीय पीठिका प्रदान की थी। अत उनकी रचनाएँ हिन्दी-जगत मे विशेष प्रचलित हुईं। यह स्वाभाविक था कि विदेश से आये हुए पौधे का देशी कलम लोकप्रिय हो।

हिन्दी और बंगला

अग्रेजी ही क्यों, अन्य भारतीय भाषाओ की भी तुलना मे बंगला और हिन्दी का सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ है। इसे अच्छी तरह समझने के लिए कुछ मूलभूत तथ्यो की चर्चा आवश्यक है। भारतीय भाषाओं मे बगला अग्रेजी सम्पर्क मे पहले आई, इसलिए उसमे उपन्यास का आरम्भ कुछ पहले हुआ और उसे हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ को कुछ देने का अवसर एव श्रेय मिला। हिन्दी-साहित्य का प्रमुख केन्द्र बिहार १९११ तक बगाल मे मिला हुआ था, जिससे हिन्दी भाषियों और बगभाषियों में आदान-प्रदान होता रहा। आधुनिक हिन्दी गद्य, मुद्रणकला और पत्रकारिता का आरम्भ

कलकत्ते में हुआ। बंगाल मे राममोहन राय, बिहार मे भूदेव मुकर्जी और पजाब मे नवीनचन्द्र राय ने हिन्दी को प्रोत्साहन देकर उसके आधुनिक साहित्य के विकास मे योग दिया। इनके अतिरिक्त अनेक बगला-लेखको, प्रकाशको और पत्रकारो ने हिन्दी की श्रीवृद्धि की। हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने वाले सुभाषचन्द्र बोस ने बहुत अश तक ठीक ही कहा था कि "हिन्दी-साहित्य के लिए जितना कार्य बगालियो ने किया है उतना हिन्दी-भाषी प्रान्तो को छोडकर किसी प्रान्त के निवासियो ने शायद किया हो।"[16] उस समय प्रातीयता का बिष व्याप्त नही हुआ था। बगला और हिन्दी-लेखको मे परस्पर स्नेह-सम्मान का भाव था।

हिन्दी के महान लेखक बगला-उपन्यास के महान प्रशसक थे। भारतेंदु बगभाषा को हिन्दी की "ज्ञानवृद्धा बडी बहन"[17] और रामशकर व्यास उसे "परम सौभाग्यवती"[18] मानते थे। माधवप्रसाद मिश्र ने हिन्दी को 'लघीयसी' और बगला को "महीयसी" की सज्ञा दी थी।[19] आचार्य शुक्ल के अनुसार भारतेन्दु ने १८६५ की अपनी जगन्नाथ-यात्रा मे बगला मे नये ढग के नाटक, उपन्यास आदि देखे और हिन्दी मे उनके अभाव का अनुभव किया।[20] उस समय तक बगला मे निश्चय ही नाटक निकल चुके थे किन्तु "नये ढग का" एकमात्र उपन्यास बकिम लिखित 'दुर्गेशनन्दिनी' १८६५ मे प्रकाशित हुआ था। शुक्लजी का कथन अर्ध सत्य प्रतीत होता है। इसमे सन्देह नही कि भारतेन्दु हिन्दी का भण्डार उपन्यास से भर देना चाहते थे। उन्होने पण्डित सन्तोष सिंह को 'दीप निर्वाण' के अनुवाद के लिए पत्र लिखा था और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' मे कुछ बगला-उपन्यासो के नाम देकर उनके अनुवाद के लिए सुझाव दिया था। उन्होने स्वय किसी उपन्यास का पूरा अनुवाद नहीं किया किन्तु गदाधर सिंह, मल्लिका देवी, राधाकृष्णदास, रामशकर व्यास, राधाचरण गोस्वामी आदि से अनेक अनुवाद कराये और कुछ अनुवादो का सशोधन किया। उनके जीवनकाल मे ही मौलिक कृतियो से अनुवादो की सख्या अधिक हो गई। बंकिम ने अपने सभी उपन्यासो के अनुवाद का अधिकार उन्हे दे दिया था। ये अनुवाद उनके निधन के बाद खड्गविलास प्रेस से निकले।

बंकिम और रमेशचन्द्र

बकिम की कृतियो के अनुवाद से बंगला-उपन्यास के अनुवाद का श्रीगणेश हुआ। गदाधरसिंह द्वारा अनूदित उनका प्रथम उपन्यास

'दुर्गेशनन्दिनी' (१८८२) बंगला का प्रथम अनुवाद है। हिन्दी-ससार मे उनका इतना सम्मान हुआ कि उनकी एक रचना अनेक बार अनूदित हुई। बगला लेखको मे सर्वाधिक लोकप्रियता उन्हे ही मिली। उनकी जातीय भावना, धार्मिक और दार्शनिक विचार, प्रेम-प्रसग, कथा-कौशल, नाटकीय कथोपकथन और वर्णन-कला से लेखक एवं पाठक विशेष प्रभावित हुए। वे हास्य और करुणा के सयोग से पाठको को हँसाने-रुलाने मे कालिन्स की भाँति प्रवीण थे। आदर्शवादी लेखक होने के कारण उन्होने समाज का वैसा स्वरूप अकित किया है जैसा उनके अनुसार होना चाहिए। उनके उपन्यास रोमास के अधिक निकट हैं। उन्होने ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक विषयो का वर्णन किया पर प्रेमभाव को प्रधानता दी। वे मूलतः रोमांटिक थे। उनका परिचय जिस स्थान-काल से था उसे उन्होने अपने उपन्यास का पृष्ठाधार बनाया है। अतः उन्हे दृश्यो और घटनाओ की योजना मे कल्पना का विशेष उपयोग नही करना पडता। उन्होने बगाल की भौगोलिक सीमा मे निकट अतीत की कथा सुनाकर बगवासियों का हृदय जीत लिया। वे सकीर्ण नैतिकता और धार्मिकता के प्रचारक थे। उनमे कलाकार के उदार और तटस्थ दृष्टिकोण का अभाव था। पर उन्होने विदेशी रोमांस और भारतीय आदर्श के सफल समन्वय से अपनी रचनाओ मे अमिट आकर्षण भर दिया। यह उनके भारतव्यापी प्रभाव का फल है कि आलोच्य-काल मे उनके सभी उपन्यास अनूदित हुए।

प्रसिद्धि की दृष्टि से बकिम के बाद रमेशचन्द्र दत्त का स्थान है। गदाधर सिंह ने ही उनके उपन्यास ('वंगविजेता') का पहलेपहल अनुवाद किया था। रमेश बाबू मे न तो रचनात्मक प्रतिभा थी और न महान उपन्यासकार की दृष्टि ही। उन्होंने बकिम से प्रभावित होकर ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासो का प्रणयन किया। उनके ऐतिहासिक उपन्यास कथात्मक इतिहास है या विशुद्ध रोमांस, जैसे, 'जीवनप्रभात' और 'वंगविजेता'। इतिहासकार होकर भी उन्होने ऐतिहासिक तथ्य की अपेक्षा रोमानी प्रेम को प्रमुखता दी है। उनके सामाजिक उपन्यास अधिक सफल और सुन्दर हैं। "समाज" और "ससार" बंगाल के सामाजिक इतिहास हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अनुवाद

उन्नीसवी शताब्दी मे बगला के प्राय सभी उत्तम उपन्यास अनुवादित हो चुके थे। बकिम और रमेशचन्द्र के अनेक सुपरिचित उपन्यासो के अतिरिक्त

जो अन्य उपन्यास अनूदित हुए उनमे निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं। मल्लिका देवी द्वारा अनूदित 'सौदर्यमयी' (१८८७) एक विधवा के प्रेम की करुण कहानी है। बालमुकुन्द गुप्त ने योगेन्द्रचन्द्र वसु की 'मडेल भगिनी' (१८८८) का अनुवाद किया, जिसमे नव्य बगालियो के सामाजिक व्यवहार का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। स्वर्णकुमारी देवी के ऐतिहासिक उपन्यास 'दीप निर्वाण' का अनुवाद उदितनारायणलाल ने १८९१ मे किया। इसमे अतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज की वीरगाथा है किन्तु उनका व्यक्तित्व समरसिंह के रोमानी व्यक्तित्व के सामने निष्प्रभ हो गया है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'सुख शर्वरी' (१८९२) भाव और भाषा मे गद्यकाव्य के समीप है। राधाकृष्णदास द्वारा अनुवादित तारकनाथ गागुली की 'स्वर्णलता' (१८९३) ग्राम्य जीवन के यथार्थ चित्रण के लिए प्रशंसित है। गोपालराम गहमरी ने शिवनाथ शास्त्री के जनप्रिय उपन्यास 'मेजवऊ' का रूपातर 'सास पतोहू' (१८९८) नाम से किया। इसमे एक भद्र परिवार की कर्कशा सास और पढी-लिखी वधू का आकर्षक चरित्र है। कार्तिकप्रसाद खत्री ने कई ऐतिहासिक और जासूसी उपन्यासो का रूपातर किया, जिनमे 'जया' (१८९३) का विशेष महत्त्व है। इस उपन्यास मे अलाउद्दीन के विवाह-प्रस्ताव को अस्वीकार करने वाली एक हिन्दू वीरागना के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। कथा-वस्तु मे अतिरजित घटनाओ का प्राधान्य है।

इस प्रकार बगला से विविध प्रकार के उपन्यास हिन्दी-पाठको के बीच आए और पढे गये। रामकृष्ण वर्मा द्वारा अनूदित 'चितौर चातकी' (१८९५) ही एक ऐसा उपन्यास है जिसका घोर विरोध हुआ। इसमे हिन्दू-मुस्लिम पुरुष-स्त्री के स्वच्छन्द प्रेम के प्रसग मे चुम्बन-आलिगन का खुला वर्णन है। देश-गौरव राणा राजसिंह से रूपनगर की राजकुमारी की सखी को यह कहवाया गया है, "यद्यपि तुम्हारी सखी से मेरा विवाह हो गया है किन्तु मैं कुछ और भी अधिक पाने की इच्छा रखता हूं।" इसकी आलोचना अश्लीलता के कारण उतनी नहीं हुई जितनी वीर राजपूतो के चित्रण मे ऐतिहासिक भ्राति के कारण हुई। अनुवादक महोदय इसकी प्रतियाँ गगा मे अर्पित कर कचहरी की हवा खाने से बच सके। वास्तव मे लेखक ने कहानी गढ़ने मे तथ्य को विकृत कर दिया है।

द्विवेदीकाल के अनुवाद

द्विवेदी काल में बगला उपन्यासो की बाढ-सी आ गई। पूर्ववर्ती

अनुवादको का उद्देश्य हिन्दी के अभाव को दूर करना और उत्कृष्ट रचनाओ से पाठको को परिचित कराना था। अब अनुवादक बनने का अर्थ लेखक बनना हो गया और भले-बुरे की परख किए बिना अनुवाद किए जाने लगे। आचार्य द्विवेदी ने इस प्रवृत्ति का उपहास करते हुए एक कविता ही लिख डाली :

भला बुरा छपवाए सिद्ध
धन न सही, नाम ही प्रसिद्ध
नाटक उपन्यास लिखने मे जरा न जो सकुचाते हैं।
जिनके नाचकूद का सार
बगला भाषा का भण्डार
वे ही महामहिम विद्वज्जन ग्रन्थकार कहलाते है।[21]

'सरस्वती'-सम्पादक को अनुवाद से नही, साधारण उपन्यास के अनुवाद से चिढ थी। वे अनुवाद से रुचि-परिष्कार करना चाहते थे। बंगला से सामान्यत: सामाजिक, गाहृस्थ, ऐतिहासिक, रोमानी और जासूसी उपन्यास अनूदित हुए। गार्हस्थ और ऐतिहासिक उपन्सास मध्यवर्गीय परिवार और रोमानी प्रेम की मार्मिक कथा के कारण विशेष प्रचलित हुए। बकिम और रमेशचन्द्र की शेष रचनाओ के अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ, स्वर्ण कुमारी देवी, चण्डीचरण सेन, दामोदर मुखोपाध्याय, अविनाशचन्द्र दास, हरिसाधन मुखोपाध्याय, नगेन्द्रनाथ गुप्त, प्रभातकुमार मुखोपाध्याय, पच कौडी दे और प्रियानाथ मुकर्जी के उपन्यास अधिकतर अनूदित हुए। अनुवादको में गोपालराम गहमरी, बलदेव प्रसाद मिश्र, ब्रजनन्दन सहाय, रूपनारायण पाण्डेय, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, जनार्दन झा 'द्विज', पारसनाथ त्रिपाठी, रामचन्द्र वर्मा, कृष्ण कुमार देव शर्मा और रामलाल वर्मा प्रमुख हैं।

जनार्दन झा 'द्विज' रवीन्द्रनाथ के अनेक उपन्यासो के अनुवादक है। उनके द्वारा अनूदित 'मुकुट' (१९१०), जिसमे भ्रातृ वैमनस्य का वर्णन है, हिन्दी में रवीन्द्रनाथ का पहला उपन्यास है। बंकिमचन्द्र, रमेशचन्द्र और चण्डीचरण सेन के ऐतिहासिक उपन्यासो के बाद रवीन्द्रनाथ के सामाजिक उपन्याम समादृत हुए। उक्त उपन्यासकारो की तुलना मे उनका शिल्प प्रौढ था, उनके विचार अधुनातन थे। वे मूलतः सौन्दर्य और प्रेम के कथाकार थे। घटना-वैचित्र्य, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, उत्कृष्ट भाव-व्यजना, सरस वर्णन-शैली

उनके उपन्यास की प्रमुख विशेषताएं थी। फिर भी वे प्रथम पंक्ति के उपन्यास-कार नही कहे जा सकते। वे वास्तव मे कवि और कहानीकार थे। उनकी प्रतिभा काव्य-प्रतिभा थी। उनके उपन्यासो मे नवीनता तो है, ताजगी नही है। वे अपनी कथा मे अपने भाव-विचार इस तरह लाद देते हैं कि उसकी स्वाभाविक गति रुक जाती है और पात्र उनके वकील बन जाते है। उनका कवि उनके उपन्यासकार का उपकारक भी है और शत्रु भी।

अनुवाद की भाषा

भारतेन्दुकालीन अनुवादको का बगला और हिन्दी पर समान अधिकार था। अतः वे मूल के आशय के साथ-साथ हिन्दी के व्यक्तित्व की रक्षा करने में समर्थ हुए। मूल लेखक के भाव के साथ एकतानता का अनुभव किए बिना अनुवाद करना भारतेन्दु के विचार से "शुद्ध झख मारना" था। परवर्ती अनुवादक शायद इस बात को भूल गए। उन्होने न तो मूल रचना के भाव पर विशेष ध्यान दिया और न अनुवाद की भाषा को हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल रहने दिया। वे बगला की सस्कृतनिष्ठ पदावली ही नही, मुहावरो को भी ग्रहण करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके अनुवाद सरल और बोधगम्य न रह सके। जहाँ पूर्ववर्ती अनुवादकों की भाषा मौलिक लेखक की भाषा थी, वहाँ उनकी भाषा अनुवादक की भाषा हो गई। उदाहरण के लिए, प्रतापनारायण मिश्र द्वारा अनुवादित 'युगलागुरीय' (१८९४) की प्रारम्भिक पक्तिया और बैजनाथ द्वारा अनुवादित 'हेमलता' के पृष्ठ ७ की पंक्तियां उद्‌धृत हैं।

दो जने उद्यान मे लता मण्डप के तले खड़े थे। उस समय प्राचीन नगरी ताम्रलीप्ति के चरण धोता हुआ अनन्त नील समुद्र मृदु-मृदु कलरब करता था।

— ... —

जिन आकर्णविस्तृत नेत्रो से स्निग्ध नीलोज्वल ज्योति फूट-फूट निकलती थी, जिस वक्षस्थल के कुसुमावली सदृश स्तन युगल शिखरिणी के शिखर की तरह मस्तक ऊँचा किये कदर्प के दर्प चूर्ण करने के निमित्त सुयोग सन्धान मे व्यस्त रहते थे सो सब हैं किन्तु धुआ।

अनुवाद का स्वरूप

अनुवाद के तीन रूप मिलते है। अविकल अनुवाद में मूल विषय और

भाव मे कोई परिवर्तन नही किया गया है। गदाधर सिंह, प्रतापनारायण मिश्र रूप नारायण पाण्डेय और जनार्दन झा 'द्विज' के अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। स्वतन्त्र अनुवाद या मौलिक अनुवाद मे हिन्दी-प्रदेश की रीति-नीति और हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल मूल के भाव और पात्रों के नाम मे थोडा परिवर्तन कर दिया गया है। मूल रचना के आशय की रक्षा करते हुए स्वतन्त्रता बरती गई है। फलत. अनुवाद पढकर मूल का-सा आनन्द होता है। उदाहरण के लिए राधाकृष्ण दास ने 'स्वर्णलता' को सुखान्त बना दिया है तथा पात्रो के नाम बदल दिए हैं। इसी प्रकार कई अनुवादको ने दुखात कथा को सुखांत बना दिया है। गंगाप्रसाद गुप्त ने 'कुली कहानी' (१९०४) मे मूल पुस्तक के चार परिच्छेदो को छोड दिया है क्योकि उनके विचार से वे हिन्दी-पाठको की रुचि के अनुकूल नही है। तीसरे ढग का अनुवाद अर्ध-अनुवाद कहा जा सकता है, जिसमे किसी पुस्तक का आश्रय लेकर मौलिक पुस्तक लिखी गई है, जैसे, गोपालराम गहमरी और ईश्वरी प्रसाद शर्मा के उपन्यास।

कुल मिलाकर दो प्रकार के अनुवादक हैं. वे, जो स्वयं उपन्यासकार है और वे, जिनमे मौलिक उपन्यास लिखने की प्रतिभा नही है पर अनुवाद करने का शौक है। प्राय: प्रथम कोटि के अनुवादको ने स्वतन्त्र अनुवाद या भावानुवाद तथा दूसरी कोटि के अनुवादको ने अविकल अनुवाद प्रस्तुत किए हैं। कुछ अनुवादको ने मूल ग्रन्थकार या ग्रन्थ का उल्लेख नही किया है। कार्तिकप्रसाद खत्री और गोपालराम गहमरी भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। फिर कुछ ऐसे भी लेखक है जिनकी रचनाए अनूदित या मौलिक न होकर सफल-असफल अनुकरण हैं। मिश्रबन्धु के 'वीरमणि' और बकिम के 'चन्द्र-शेखर' मे इतना साम्य है कि पहला उपन्यास दूसरे का अनुकरण मात्र कहा जा सकता है। मिश्रबन्धु की नायिका नलिनी और उसके पडोसी ललित-किशोर में प्रेम होता है लेकिन उसका विवाह वीरमणि के साथ हो जाता है। इसी प्रकार बकिम की नायिका शैवलिनी का विवाह बालसगी प्रताप से न होकर चन्द्रशेखर से होता है। वीरमणि चन्द्रशेखर के समान ही पत्नी से अधिक पुस्तक को प्यार करता है, इसलिए नलिनी उससे विमुख हो जाती है, जैसे शैवलिनी चन्द्रशेखर से होती है। दोनो के हृदय मे अपने-अपने प्रेमी से मिलने की अदम्य पिपासा है और इसकी तृप्ति के लिए वे धर्म और समाज से

नही डरती । नलिनी प्रेमी से मिलने के सिलसिले मे धोखे से मुसलमान के हाथ में पड़ जाती है, शेवलिनी प्रेमी से मिलने की आशा मे स्वेच्छा से एक अग्रेज के साथ भाग जाती है । दोनो अपने को भ्रष्टा और कलकिनी समझ कर घर लौटना नही चाहती ।

बॅगला की देन

हिन्ही-उपन्यास के इतिहास मे बगला-उपन्यास विशेष स्थान रखते हैं । हिन्दी मे काव्य और नाटक की परम्परा अपेक्षया अधिक पुरानी और समृद्ध थी अत: बगला के काव्य और नाटक का वैसा स्वागत नही हुआ जैसा उपन्यास का हुआ । बगला-उपन्यास के समान देश की दूसरी भाषाओ के उपन्यास भी लोकप्रिय नही हो सके । उनसे हिन्दी के उपन्यासो की संख्या, शब्द-भडार और व्यजना-शक्ति मे वृद्धि हुई । लेखको को उपन्यास-कला का आदर्श मिला और पाठको की रुचि का परिमार्जन हुआ । उनका ध्यान तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासो से हटकर अपनी सास्कृतिक सम्पदा की ओर गया। अनुवादो से मूल लेखको को उपन्यास और औपन्यासिक गद्य का मानक रूप प्राप्त होता तो उनका मूल्य और बढ जाता । 'मधुमती', 'बिंदो चतुरा', 'युगलागुरीय' जैसे अत्यन्त लघु उपन्यास बड़ी सख्या मे अनूदित हुए, जो वर्तमान कसौटी पर गल्प की श्रेणी मे ही रखे जाएँगे । इनके ढांचे पर बहुत-से उपन्यास हिन्दी मे लिखे गये । अनुवादो के गद्य मे सहज सरलता के बदले अस्वाभाविक अलकरण है ।

हिन्दी-उपन्यास के विकास मे बगला के अशदान पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो बड़ी निराशा होगी । भारतेन्दु-युग ने जिस हिन्दी को रूप दिया वह सरल, चपल, आडम्बरहीन और सुन्दर थी । उपन्यास के लिए ऐसी भाषा सर्वथा उपयुक्त होती है । बगला-उपन्यासो की कृत्रिम, क्लिष्ट और सस्कृतनिष्ठ भाषा के प्रभाव से हिन्दी की स्वाभाविकता नष्ट होने लगी। उसके गद्य का कथन ऐसा हो गया कि शब्दों, वाक्यो और मुहावरो मे 'बगला की बू' आने लगी । प्रौढ और प्रतिभाशाली लेखक अपनी शैली की सहज सुन्दरता बनाए रखने मे सफल हुए पर साधारण कोटि के लेखक गुम्फित पदावली की छटा दिखाने में गौरव का अनुभव करने लगे । उपन्यासकार के लिए शैलीकार होना आवश्यक नहीं है, न ही उपन्यास अलकृत गद्य का नमूना है । अतः इस प्रकार का गद्य उसके लिए उपादेय सिद्ध नहीं हो सका । बंगला

लेखकों की साधु-भाषा के अनुकरण मे अनुवादको ने अपनी भाषा के स्वरूप को विकृत कर दिया। उनसे उस गद्य के विकास मे सहायता नही मिली जो कथा और वार्तालाप का सफल माध्यम होता है। आलोच्यकाल के बाद उर्दू से आने वाले प्रेमचद और सुदर्शन जैसे कथाकारो के प्रति हमे कृतज्ञ होना चाहिए क्योकि उन्होने हिन्दी की मूल प्रकृति को नष्ट होने से बचा लिया।

जिस तरह भारतेन्दु-काल मे निर्मित गद्य-शैली के लिए बगला-प्रभाव अहितकर सिद्ध हुआ उसी तरह उस काल मे मौलिक उपन्यास की जो महान परम्परा आरम्भ हुई उसका स्वाभाविक विकास रोमानी बगला-उपन्यासो के आगमन से अवरुद्ध हो गया। भारतेन्दु-युग के उपन्यासकार बगला-उपन्यास के पाठक, प्रेमी और अनुवादक थे परन्तु उन पर उसका प्रभाव परिलक्षित नही होता। बकिम के राजनीतिक रोमास की ओर भी उनका झुकाव नही हुआ। बाद के श्रेष्ठ लेखको मे केवल किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी और ब्रजनदन सहाय पर उसका सीधा प्रभाव पडा। गोस्वामीजी ने बकिम के आदर्शानुसार कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होने देशकाल के अध्ययन पर ध्यान देकर प्रेम-क्रीडा के वर्णन मे अपनी रुचि प्रदर्शित की। गहमरीजी पचकौडी दे और प्रियानाथ के जासूसी उपन्यासो का अनुकरण और अपहरण करते रहे। उन्होने बगला से प्रभावित होकर भी अपनी भाषा-शैली मे साहित्यिक गरिमा के साथ ग्रामीण सरलता का समावेश किया पर उन्हे जासूसी की सकरी गली से निकलकर समाज की गम्भीर समस्याओ पर विचार करने का अवसर नही मिला। ब्रजनन्दन सहाय ने बगला की देखादेखी हिन्दी मे भाव-प्रधान उपन्यास लिखा। वे बगला-उपन्यास की भावुकता और भाषा के मोह मे पडकर वास्तविकता से कल्पना की ओर खिसक गए। उक्त तीन लेखक, जो मौलिक प्रतिभा के धनी थे, यदि बगला के वशीभूत नही होते तो उनकी कला का उत्कर्ष होता और उनकी गणना हिन्दी के कतिपय वास्तविक महान उपन्यासकारो मे होती। अस्तु, बगला-उपन्यास का एक अशुभ प्रभाव यह हुआ कि मौलिकता को पनपने का एकांत अवसर नही मिला।

सच तो यह है कि समकालीन भारतीय उपन्यास की स्वस्थ परम्परा बगला के माध्यम से आ नही सकी। बगला-उपन्यास का ससार न केवल भारत से बल्कि बंगाल से भी उतनी ही दूर है जितनी दूर स्वर्ग धरती से है। वहाँ प्रेम, सौन्दर्य और रोमांस है; समाज का कठोर यथार्थ नही है। काव्यात्मक

कल्पना, गलदश्रु भावुकता, अतिशय आदर्शवाद और सकीर्ण नैतिकता उसकी अविस्मरणीय विशेषताएँ है। सामाजिक उपन्यास का आकर्षण भी प्रेम-कथानक पर निर्भर है। बगला के सुन्दर उपन्यास वे है जिनमे लेखको ने अपने वर्ग के जीवन और प्रात के इतिहास से प्रेरणा और सामग्री ली है। ऐसी रचनाएँ विरल है जिनमे बगभूमि और बगभाषा मे बातचीत करते हुए बगवासियो का चित्रण न हो। जिस रचना मे बगाल के बाहर की पृष्ठभूमि है। उसकी कथा नीरस, पात्र निर्जीव और शैली बोझिल लगती है। सच तो यह है कि बगला उपन्यासों का भूषण ही उनका दूषण है। उनके लेखक पाठको को सम्बोधित करने लगते हैं तो कलात्मक मर्यादा का उल्लघन कर जाते हैं। 'बगविजेता' के बत्तीसवें परिच्छेद मे उपन्यासकार अपनी चार नायिकाओ की ओर सकेत कर कहता है :

हम एक बात आपके कान मे पूछेंगे और आप भी कान ही मे उत्तर दीजिये जिसमे और कोई न सुने। बताइये तो इन चारो स्त्रियो मे से आप किसको चाहते है ?

इस पद्धति का हिन्दी मे अनुकरण किया गया, जो कला की दृष्टि से घातक हुआ। अमृतलाल चक्रवर्ती 'चदा' मे दासी चपा के सौदर्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं :

कहिये तो पाठक ! चपा की उमर कितनी होगी ? पुराने कवि षोड़शी का बडा आदर कर गये है। .... 'किंतु प्रिय पाठक ! किसे पसंद करते हैं। षोड़शी युवती अच्छी है कि त्रयोदशी किशोरी अच्छी है।

यदि हिंदी मे बगला उपन्यासो का अनुकरण या अनुवाद हुआ तो वह उनकी महत्ता का नहीं बल्कि लोकरुचि का परिचायक है। उनके प्रभाव को बढा-चढ़ाकर दिखाना आलोचको के लिए बहुत आसान रहा है। उनके अभाव मे भी हिंदी-उपन्यास की उन्नति होती और होकर रही जब प्रेमचद जैसे समर्थ कलाकार का उदय हुआ।

हिन्दी और मराठी

परिणाम और महत्ता की दृष्टि से भारतीय भाषाओ मे बंगला के बाद मराठी के अनुवादो का स्थान है। मराठी मे उच्चकोटि के उपन्यासों का अभाव नही था, न ही बंगला-उपन्यासों की अपेक्षा उनका स्तर निम्न था;

फिर भी मराठी से अनुवाद कम हुए। हरि नारायण आपटे की किसी भी रचना का रूपान्तर प्रकाशित नही हुआ। कुछ उत्तम सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास अनूदित अवश्य हुए। मराठी के प्रथम अनुवादक सम्भवत: स्वरूपचद जैन थे। उन्होने काशीनाथ रघुनाथ मित्र की रचना का अनुवाद 'रमा और माधव' (१९०३) नाम से किया। इस उपन्यास मे अनमेल विवाह की समस्या और उसका समाधान वास्तविकता एव रोचकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। प्यारेलाल गुप्त लिखित 'लवगलता' और 'सरस्वती' का प्रकाशन १९९४ में हुआ। दोनो की मूल लेखिका मनोरमा बाई है। अनुवादक ने इस बात का उल्लेख नही किया है। दोनो अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है। 'लवगलता' 'प्रवासिनी' का रूपांतर है। यह एक ऐसी नवशिक्षिता किन्तु सुशीला युवती की करुण कहानी है जो अपने प्रेमी का प्यार न पाकर एक धूर्त युवक के फदे मे पडती है, गर्भवती होती है और उसकी शरण मे जाने पर ठुकराई जाती है तथा जिसे अपने पिता के समवयस्क मित्र से विवाह कर विधवा बनना पड़ता है। वह विफल प्रेम का जीवन समाज की सेवा मे व्यतीत करती है।

रामजीवन नागर और काशीनाथ शर्मा द्वारा क्रमश. अनुवादित 'वीर मालोजी भोसले' (१९०७) तथा 'शिवाजी का आत्मदमन' (१९१२) वीरगाथा होने से पठनीय हैं। बाबूराम सवंटे और दुर्गाप्रसाद खेवरिया ने मिलकर 'सेलिमा बेगम' (१९१३) का अनुवाद किया। इस उपन्यास मे शाहजहाँ की बेगम सेलिमा के अवैध प्रेम का वर्णन है। इसे पढकर मुगल हरम के रहस्य की जानकारी होती है। गगाप्रसाद गुप्त ने दो ऐतिहासिक उपन्यासो का अनुवाद किया, 'पूना मे हलचल' (१९०३) और 'झाँसी की रानी।' प्रथम उपन्यास का मुख्य विषय मुगलो के साथ मराठों का युद्ध है। इसमे कुमार दलजीत सिह और रामभोली की प्रेमकथा भी जुड़ी है दलजीत का चरित्र चित्रण और स्थानीय रग का अकन प्रशसा के योग्य हैं। 'झाँसी की रानी', जिसके मूल लेखक दत्तात्रेय बलवत पारसनीस हैं, सिपाही विद्रोह के आधार पर लिखित झाँसी की रानी की कहानी है। बालचद नेमीचद शहा के महान ऐतिहासिक उपन्यास 'छत्रसाल' और 'अशोक' का अनुवाद रामचन्द्र वर्मा ने किया। 'सम्मेलन-पत्रिका' (भाग ५, अक ३, स० १९७४) मे 'छत्रसाल' का परिचय देते हुए रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा कि 'आज तक हिन्दी मे जितने अच्छे उपन्यास निकल चुके हैं, उनमे वह उत्तम श्रेणी मे रखने योग्य

उपन्यास है।"

हिन्दी और गुजराती

गुजराती से ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रेमाख्यानक और धार्मिक उपन्यास अनूदित हुए। किशनलाल ने जहाँगीर ताल्यार खाँ के उपन्यास 'कुलीन अने मुद्रा' का रूपातर 'मुद्राकुलीन' (१८९२) नाम से किया, जो गुजराती से किया गया पहला अनुवाद है। इसमे एक साथ ही हिंदुओ के शौर्य और अवसाद का चित्रण मुस्लिम-शासन की पृष्ठभूमि मे किया गया है। गुजराती के दो महान उपन्यासकार इच्छाराम सूर्यराम देसाई और गोवर्धनराम माधवराम की दो कृतियाँ भी अनूदित हुई। वे है 'कलाविलास' (१८९४) और 'सरस्वतीचन्द्र' (१९१६)। 'सरस्वतीचन्द्र' एक ऐसा महाकाव्यात्मक उपन्यास है जिसके प्रकाशन से गुजराती कथासाहित्य मे युगांतर उपस्थित हुआ था। सामती वातावरण से प्रेमभाव का विकास दिखाते हुए उपन्यासकार ने बडे कौशल से अविस्मरणीय चरित्रो का निर्माण किया है। वर्णन-शैली कथारस मे बाधक होते हुए भी उपन्यास को साहित्यिक सौष्ठव प्रदान करती है। इसके सफल अनुवादक बल्लभदास वर्मा ने गुजराती के रगमचीय नाटको के आधार पर 'युगल मालती' (१९१२) और 'बारिस्टर' (१९१४) नाम के सामाजिक उपन्यास लिखे। लज्जाराम शर्मा का 'कपटी मित्र' (१९००) 'लीवे जान नो दोस्त' का रूपांतर है, जिसका विषय नाम से ही सूचित है। उदयलाल काशलीवाल की 'वनवासिनी' (१९१४) और 'मणिभद्र' (१९१६) के मूल रचयिता क्रमशः वाड़ीलाल मोतीलाल शाह और सुशील है। 'वनवासिनी' महिलोपयोगी सामाजिक उपन्यास है। मूल पुस्तक के नाम, कथाभाग और पात्रो के नाम मे परिवर्तन कर दिया गया है। 'मणिभद्र' धार्मिक उपन्यास है। छगनलाल नारायण भाई ने सतीशचन्द्र चक्रवर्ती के 'राय परिवार' के आधार पर गुजराती मे 'गृहलक्ष्मी' की रचना की थी, जो हिन्दी मे मोतीलाल नागर द्वारा इसी नाम से अनूदित होकर १९१७ मे प्रकाशित हुई।

हिन्दी और उर्दू

उर्दू मे हिन्दी से पूर्व उपन्यास की उत्पत्ति हुई पर उससे अधिक अनुवाद नही हुए और जो हुए वे उच्च श्रेणी की कृतियो के नही हुए। रामकृष्ण वर्मा द्वारा अनूदित 'अमला वृत्तान्तमाला' (१८९४) और 'ससार दर्पण' (१८९५) के मूल लेखक काजी अजीजुद्दीन अहमद का उर्दू साहित्य

के इतिहास मे उल्लेख नही मिलता। प्रथम उपन्यास मे अदालत के वातावरण और अमलो के आचरण का यथार्थ वर्णन है। दूसरा उपन्यास अग्रेजी पढे-लिखे व्यक्ति की फैशनपरस्ती पर चुभता हुआ व्यग्य है। वर्माजी द्वारा अनुवादित 'पुलिस वृत्तातमाला' (१८९०) का उल्लेख साहित्यिक इतिहासों मे उपन्यास के रूप मे किया गया है पर वह उपन्यास न होकर आत्मचरित-शैली मे लिखित कथाओं का सग्रह है। वर्माजी के अनुवाद की भाषा उर्दू-मिश्रित होने पर भी सरल है और उनकी अभिव्यक्ति मे स्पष्टता है। अमर उपन्यासकार प० रतननाथ 'सरशार' की किसी पुस्तक का रूपान्तर 'हास्य उपन्यास' (१९०१) के नाम से सूर्य नारायण सिंह ने किया। देवकीनन्दन सिंह की 'खोयी हुई दुलहिन' (१९०४) और 'अनूठी बेगम' (१९०५) उर्दू से ही अनूदित है। सभव है कि पहली रचना सरशार की प्रसिद्ध रचना 'बिछुडी दुलहिन' का रूपातर हो। प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार अब्दुल हलीम 'शरर' लिखित 'बदरुन्निसा की मुसीबत' का उल्था इसी नाम से जगन्नाथ प्रसाद ने १९०३ मे किया। महराजदीन दीक्षित द्वारा अनुवादित 'एक अजीब किस्सा' (१९०७) साधारण कोटि की रचना है, जिसके मूल लेखक का उल्लेख नही किया गया है।

उर्दू के अनुवादको मे रामकृष्ण वर्मा और रामलाल वर्मा आदर के योग्य है। रामकृष्ण वर्मा ने हिन्दी उपन्यास के उदयकाल मे उपर्युक्त पुस्तको का अनुवाद किया था। उनका ऐतिहासिक महत्त्व है। रामलाल वर्मा ने 'गुलबदन' (१९०८) 'खूनी औरत' (१९१६ वि० स०), 'अदल-बदल' (१९१६) आदि का अनुवाद कर रगमचीय उपन्यासो से हिन्दी-पाठको को परिचित किया। पारसी रंगमच की विशेषताएँ लेकर आनेवाले ये उपन्यास सनसनीखेज घटनाओ और अतिनाटकीय स्थितियो से पूर्ण हलके ढंग की प्रेम-कहानी चलती भाषा मे सुनाते है।

हिन्दी और उड़िया

उडिया से किए गए अनुवाद परिमाण में कम होते हुए भी गुण मे विशेष उल्लेख के योग्य हैं। 'मालती ओ भाग्यवती' का रूपान्तर कामता-प्रसाद गुरु ने 'पार्वती और यशोदा' (१९११) नाम से किया। स्त्रियो के उपयोग के लिए यह अच्छा उपन्यास है। पाडेय मुरलीधर और पाँडेय मुकुटधर ने तीन उपन्यासो का अनुवाद कर हिन्दी का बड़ा उपकार किया।

उनमे 'लच्छमा' (१९१५) और 'समाजकंटक' आधुनिक उड़िया-साहित्य के पिता फकीरमोहन सेनापति के जीवित ऐतिहासिक एवं गार्हस्थ उपन्यास हैं। प्रथम मे नवाब अलीवर्दी खाँ के साथ मराठो के सघर्ष का वर्णन है। दूसरा एक भांजे के प्रति मामा के दुर्व्यवहार की मार्मिक कथा सुनाता है। 'शैलबाला' जिसके मूल रचयिता जनार्दन पुजारी हैं, मनोरजक और शिक्षा-प्रद गार्हस्थ उपन्यास है। पाठको ने इसकी बड़ी सराहना की थी। उनके मन 'स्वदेश बाधव' (अप्रैल १९१६) मे उद्धृत किए गए थे।

एक दृष्टि

आलोच्यकाल के अतिम वर्षों मे मराठी से 'लवगलता', गुजराती से 'सरस्वतीचन्द्र', उडिया से 'लच्छमा' जैसी कलाकृतियों के अनुवाद इस तथ्य के द्योतक हैं कि हिन्दी-लेखको का ध्यान बगला के अतिरिक्त अन्यान्य भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ उपन्यासो की ओर आकर्षित होने लगा था, पाठको की रुचि में परिवर्तन हो रहा था और वे उत्तम सामाजिक उपन्यासो की प्रतीक्षा मे थे। ठीक ऐसे समय प्रेमचन्द 'सेवासदन' लेकर आए और हिन्दी-ससार पर छा गए। एक दशक के भीतर उन्होने पाँच अमर कृतियाँ ('सेवासदन', १९१८ ; 'वरदान', १९२१ ; 'प्रेमाश्रम', १९२२ ; 'रगभूमि', १९२४ ; 'कायाकल्प', १९२६) देकर हिन्दी को बगला अनुवादों की ह्रासोन्मुख परम्परा से मुक्त किया। यह हिन्दी उपन्यास के स्वाभाविक विकास के लिए आवश्यक था अन्यथा हमारे अनेक लेखक उसे स्त्रैण भावुकता के दलदल मे फँसाए रहते।

अनुवादो के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी विविधता और सख्या उनकी महत्ता सूचित करने के लिए काफी है। हिन्दी-उपन्यास के प्रथम उत्थान-काल मे अन्य भाषाओ से सहायता या उधार लिया जाना आवश्यक था। प्रारम्भिक अनुवाद मौलिक ग्रथो से कम मूल्यवान नही हैं। अनुवादको को उतना ही श्रेय मिलना चाहिए जितना उन्हे मौलिक कृति प्रस्तुत करने पर मिलता। अविकल अनुवाद करनेवालो ने अनुवाद का आदर्श रूप उपस्थित किया है। स्वतत्र अनुवाद करने से मूल रचना का मूल्य घट जाता है तथापि उससे हिन्दी की श्रीवृद्धि हुई। दूसरी भाषा के ग्रंथ का आधार लेकर अपनी भाषा मे लिखने का प्रयास करना भी स्तुत्य है। इस दृष्टि से अर्द्ध-मौलिक उपन्यासो का अपना महत्त्व है। जिन अनुवादकों ने

किसी निश्चित उद्देश्य से मूल रचना में सुधार-संस्कार किया है उनका कार्य सराहनीय है। उनमे कुछ तो ऐसे हैं जिन्होने मूल के सौदर्य और गौरव की वृद्धि की है। व्रजचन्द ने चंडीचरण सेन के 'रामेर कि एई अयोध्या' के अनुवाद 'मानकुमारी' (१९१४) मे मूल भाव की रक्षा करते हुए ऐतिहासिक भ्रान्तियो का निराकरण कर दिया है और अनुवाद को सर्वांग सुन्दर बनाने की चेष्टा की है। जिस उपन्यास की शैली मे विशेष गुण नही है उसका सुन्दर शैली मे अनुवाद करने से उसका रूप कुछ और हो जाता है। गहमरी जी ने बगला के कई उपन्यासो को अपनी भाषा से आकर्षक बना दिया है। दूसरे के कथ्य को अपने ढग से कहकर नवीन रूप प्रदान करना भी मौलिकता है। जिन अनुवादको ने ऐसा किया है वे सही मानी मे कलाकार है।

हिन्दी-उपन्यास का विकास शून्य मे न होकर देश-विदेश की भाषाओ के प्रभाव के अन्तर्गत हुआ। अग्रेजी-उपन्यास का ढाँचा लेकर वह प्रयोग से नवीनता और अनुवाद से मौलिकता की ओर अग्रसर हुआ। इस यात्रा मे वह अनायास एक कला-रूप बन गया। उसने जहाँ से जो कुछ ग्रहण किया उसे आत्मसात् कर विलक्षण रूप प्रदान किया और इस प्रक्रिया मे अपने व्यक्तित्व को नष्ट नही होने दिया। इस अन्तर्ग्रहण मे उसकी परम्परा की महानता निहित है। उसके महत्त्व का सम्यक निरूपण निरपेक्ष रूप से अध्ययन करने पर नही किया जा सकता है। इसके लिए उसे समकालीन भारतीय उपन्यास के परिप्रेक्ष्य मे देखना आवश्यक है। भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओ के उपन्यास एक ही साहित्य के भिन्न-भिन्न अग है। उनकी मूलभूत एकता की कहानी अत्यन्त रोचक है।

समकालीन भारतीय उपन्यास

पृष्ठभूमि की समानता

यदि भारतीय भाषाओं के उपन्यासो का अध्ययन भाषाओ के बदले कालों के आधार पर किया जाय तो एक ही काल के विभिन्न भाषाओं के उपन्यासों मे जो समानता पाई जायेगी वह एक ही भाषा के विभिन्न कालों के उपन्यासों में नही। इस समानान्तरता का कारण पृष्ठभूमि की समानता है।

किसी एक भाषा पर दूसरी भाषा का प्रभाव दिखाने के लिए जो

अध्ययन प्रस्तुत किये जाते है उनमे प्रभाव निर्धारित करने के बदले उसे आरोपित करने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। किसी उपन्यास मे महत्वपूर्ण विशेषता पाकर उसकी मौलिकता मे सन्देह करना और उसे बाह्य प्रभाव का परिणाम मान लेना शीघ्र निर्णय करना है। एक ही काल के दो भाषाओ के उपन्यासकारो के दृष्टिकोण और उसकी अभिव्यक्ति की प्रणाली मे साम्य साहित्यिक प्रभाव या अनुकरण का उदाहरण न होकर सामाजिक शक्तियों का परिणाम हो सकता है। नजीर अहमद और श्रद्धाराम फिल्लौरी, बकिमचद्र और किशोरीलाल गोस्वामी, पंचकौडी दे और गोपालराम गहमरी, रतननाथ "सरशार" और देवकीनदन खत्री, फकीरमोहन सेनापति और मन्नन द्विवेदी, रमणलाल देसाई और प्रेमचद की कृतियो मे अत्यधिक समानता है क्योकि उन्होने समान राष्ट्रीय परिस्थिति मे लिखा था।

साहित्येतर पीठिका के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय भाषाओं के उपन्यास की साहित्यिक पीठिका एक-सी है। प्राय: सभी भाषाओ मे उपन्यास के पूर्व संस्कृत और फारसी की लोकप्रिय कथाओ का प्रचलन था। जीवित अग्रेजी सम्पर्क के फलस्वरूप आधुनिक गद्य-युग और गद्य के परम लोकप्रिय रूप उपन्यास का आरम्भ हुआ। आधुनिक भारतीय भाषाओ के इतिहास मे उपन्यास का उद्भव एक नई और महत्त्वपूर्ण घटना है। उसका उत्स एक ही था अग्रेजी, जिसे सयोजक भाषा होने का श्रेय है। यदि उत्स सस्कृत होता तो जो भाषा अग्रेजी सम्पर्क मे पहले आती उसी मे पहले उपन्यास की उत्पत्ति नहीं होती।

प्रारम्भिक भारतीय उपन्यास अग्रेजी-उपन्यास के रूपातर, अनुवाद या अनुकरण हैं। भारत के प्रथम लोकप्रिय उपन्यासकार बकिम ने पहला उपन्यास 'राजमोहन्स वाइफ' (१८६४) अग्रेजी ही मे लिखा। मराठी में उपन्यास का सूत्रपात विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने डाक्टर जानसन के 'रासेलास' के अनुवाद से किया। उसके युग-प्रवर्तक उपन्यासकार हरिनारायण आपटे ने अपने प्रथम उपन्यास ('मधली स्थिति', १८८५) का प्रथम परिच्छेद रेनाल्ड के 'ओल्ड टाउन' के आधार पर लिखा। मलयालम का पहला उपन्यास ('कुन्तलना', १८८७) स्काट की शैली का रोमास है। वीरेशलिंगम का 'राजशेखरचरित्र' तेलुगू का पहला उपन्यास है, जो गोल्डस्मिथ के 'विकार आफ वेकफील्ड' पर आधारित है। गुजराती मे मणिलाल द्विवेदी ने 'गुलाबसिंह' (१८८७) लार्ड लिटन की पुस्तक के आधार पर लिखा है। हिन्दी मे

भी 'रासेलास' का अनुवाद १८७९-८० में हुआ था। भारतेंदु-युग के लेखको ने अंग्रेजी-साहित्य से प्रभावित होकर उपन्यास की रचना की थी। भारतीय उपन्यास के विकास की प्रथम स्थिति मे स्काट, लिटन, रेनाल्ड, मेरी कारेली, गोल्डस्मिथ, कालिन्स, कानन डायल आदि का प्रभाव व्यापक रूप से पडा। इनमे स्काट और रेनाल्ड अत्यधिक लोकप्रिय हुए। यदि हिन्दी के लेखक और पाठक रेनाल्ड के प्रेमी होने से बदनाम है तो यह बदनामी समूचे देश के बाँटे मे पड़ी है। उर्दू के प्रेमचद रेनाल्ड के 'आशिक' थे।[22] मराठी लेखक हरि-नारायण आपटे ने उनके उपन्यासो को पढकर आँखें चौपट कर डाली।[23] बगला मे 'लदन रहस्य' का अनुवाद उन्नीसवी सदी मे ही हो चुका था। हिन्दी-लेखकों ने वर्तमान शताब्दी मे उसे अपनी भाषा मे लाने का साहस किया।

प्रवृत्तिगत समानता

समकालीन भारतीय उपन्यास भाषागत विभिन्नता के बावजूद एक है। उनकी वस्तु, पात्र और प्रयोजन मे अद्भुत समानता है। उन्हे मोटे तौर पर दो कोटियो मे रखा जा सकता है : यथार्थवादी और रोमानी। यथार्थवादी उपन्यासों मे देश, समाज और परिवार की समस्याओ का समावेश किया गया है। यथार्थ की भूमि पर सुधारवादी आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। आपटे, गोवर्धनराम, श्रीनिवासदास, प्रेमचद सभी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित थे और उन्होने अपनी रचनाओ के माध्यम से राष्ट्रीयता का सदेश दिया। 'परीक्षागुरु' हिन्दी का पहला राष्ट्रीय उपन्यास तो है ही, सम्भवत: भारत का भी पहला राष्ट्रीय उपन्यास है। उसका वास्तविक नायक उन्नीसवी सदी का भारत है। ये बातें बंकिम के धार्मिक रोमास 'आनन्दमठ' को ध्यान में रखते हुए कही जा रही हैं। 'परीक्षागुरु' मे देश की मूल समस्या—आर्थिक समस्या—पर ध्यान दिया गया है। 'आनदमठ' की पृष्ठभूमि हेस्टिंग्स के समय का सन्यासी विद्रोह और अकाल है, जिनके मूल मे कम्पनी की आर्थिक नीति थी। बकिम ने इस सत्य पर रोमानी परदा डाल देना उचित समझा। जिन सन्यासियो ने कम्पनी के भ्रष्टाचार, अन्याय और अत्याचार के प्रति विद्रोह किया उन्हे बंकिम ने अंग्रेजों का मित्र और मुसलमानो का शत्रु बताया है तथा आर्थिक सकट उपस्थित करने वाले अंग्रेजो को भारत का उद्धारक माना है।

सामाजिक प्रश्नो मे नारी-जीवन को प्रमुखता मिली। नर-नारी का

सामाजिक सबध नई कसौटी पर परखा गया । नारी जाति के उद्धार के लिए कुरीतियो और कुप्रथाओ का विरोध किया गया । मलयालम मे चदू मेनन की 'इन्दुलेखा', मराठी मे 'रमा और माधव', हिन्दी मे राधाचरण गोस्वामी की 'सौदामिनी' अनमेल विवाह के विरुद्ध प्रेमविवाह का समर्थन करने वाले उपन्यास है। सामाजिक उपन्यासो मे उस समय के समाज का प्रतिबिम्ब मिलता है जब नगरो मे आधुनिकता का प्रसार हो रहा था । नागरिक सभ्यता के चित्रण मे वेश्याओ का चरित्र पूरी तरह उभर कर आया है। मिर्जा मुहम्मद रुसवा की 'उमराव जान अदा' और देवकीनदन खत्री की 'काजर की कोठरी' मे उनके मनोभावो का विश्लेषण है । रूपवती पत्नी को छोड़कर वेश्या से नाता जोडने वालो की क्या दशा होती है, इसका वर्णन अनेक उपन्यासो मे किया गया है। आपटे की 'मधली स्थिति' और जयरामदास गुप्त का 'जहर का प्याला' इसके अच्छे उदाहरण हैं। मध्यवर्गीय परिवार के सुख-दुख को लेकर कई उपन्यास लिखे गये । बगला-लेखक, जो स्वभावत' भावुक, जनभीरु, और गृहासक्त होते है, पारिवारिक जीवन के विविध पक्षो का मार्मिक उद्घाटन करने मे विशेष सफल हुए।

रोमानी धारा मे ऐतिहासिक रोमास का प्राधान्य है। ऐतिहासिक उपन्यास के तीन मुख्य प्रकारो—विशुद्ध, रोमानी और तथ्यपरक—मे दूसरे की ओर विशेष झुकाव स्काट के भारतव्यापी प्रभाव का परिणाम था । बंकिम, आपटे, रजनीकांत बारदोलई, सी० वी० रामन पिल्ले, शरर, वीरसिंह और किशोरीलाल गोस्वामी ने क्रमश: बगला, असमिया, मलयालम, उर्दू, पंजाबी और हिन्दी में स्काट के आदर्श पर उपन्यासो की रचना की । ये उपन्यास मुस्लिम शासन-काल को पुनरुज्जीवित करते है। इनमे प्रेम एव शौर्य का रमणीय रूप और अतीत के गौरव एव पराभव की झलक है।

समकालीन भारतीय उपन्यासकारो के पात्र एक ही परिवार की सतान है। प्रेमचद की 'प्रेमा' का नायक अमृतराय और रमणलाल वसतलाल देसाई की 'कोकिला' का नायक किरीट देशभक्ति और समाजसुधार के आवेश मे एक समान हैं। बंकिम की आयेशा ('दुर्गेशनंदिनी'), गोवर्धनराम की कुमुद ('सरस्वतीचंद्र') और किशोरीलाल गोस्वामी की कुसुमकुमारी ('स्वर्गीय कुसुम') मानो तीन बहनें हैं । उन्हे प्रेमिका बनकर रहने मे ही प्रसन्नता है, पत्नी बनने की साध नही है । आयेशा अपने प्रेमी की पत्नी को अपने हाथों से अपना आभूषण पहनाती है। इसी प्रकार कुसुमकुमारी अपने

हाथ से सिंगार कर अपने प्रेमी को विवाह करने के लिए विदा करती है और विवाह के बाद "कुसुम ने अपने कुल गहने पहिराकर एक दिन नई बहू का सिंगार किया और अपने प्राणप्यारे वसत के बगल मे उसे बैठा कर प्रेम से दोनो का गाल चूम लिया।" वह रात मे वसत को अपने पास नही रहने देती, हठपूर्वक नववधू के पास भेज देती है। वीरसिंह की 'सतवंत कौर' और लज्जाराम मेहता के 'आदर्श दम्पत्ति' की नायिकाएँ सकट मे पडकर सतीत्व की रक्षा करने मे एक-सी है। आदर्श पात्रो की भाति बुरे पात्र भी बहुत मिलते-जुलते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी का कमलकिशोर ('चपला') और मराठी से अनूदित 'लवगलता' का रमेश तरुणी को मदिरा पिलाकर बेहोशी मे उसका सतीत्व नष्ट करने वाले भद्र शठ हैं। पुराने भारतीय उपन्यासो में दो रग के पात्र मिलते हैं : श्वेत और श्याम। श्रीनिवासदास, प्रेमचद, आपटे, रवीन्द्रनाथ, गोवर्धनराम जैसे उपन्यासकार ही पात्रो का सूक्ष्म मनोविश्लेषण करने मे समर्थ है।

प्रारम्भिक भारतीय उपन्यासकार कहानी कहने की कला में निपुण थे। वे कौतूहलवर्धक घटना, हास्य-व्यंग्य और सरल मुहावरेदार भाषा से अपने कथ्य को रोचक बनाते थे। बकिम, देवकीनन्दन खत्री, फकीरमोहन सेनापति और सरशार कथाकड होने के कारण विशेष लोकप्रिय हुए। पुराने उपन्यास मनोरजक होने के साथ-साथ उपदेशप्रद थे। उनके लेखक सोद्देश्य लेखक थे। उन्होने यथार्थ और आदर्श का समन्वय किया था। आपटे का यह कथन[24] कि "उपन्यास का प्रारम्भ यथार्थता से होकर उसका अन्त आदर्श मे होना चाहिए" न केवल उनकी रचनाओ के लिए बल्कि अन्य समानधर्मा भारतीय उपन्यासकारो की रचनाओं के लिए भी सार्थक है। उन्हें कर्मफल के सिद्धान्त मे विश्वास था और इस विश्वास को वे अवश्य प्रकट करते थे। वे मनुष्य को दण्ड देते थे किन्तु उसकी अच्छाई में विश्वास नही करते थे। यदि महान उपन्यास जीवन की आलोचना होते हैं तो उनके उपन्यास महान है।

आलोच्यकाल के भारतीय उपन्यास सच्चे अर्थ मे शक्तिशाली साहित्य की कोटि में आते है। उनके माध्यम से नवयुग की चेतना व्यक्त हुई, जिसके दो प्रधान अंग हैं . जीवन मे आस्था और मानवता मे रुचि। उनका उदय सामतवाद के ह्रास और मध्यवर्ग के उदय के साथ हुआ और उनसे राष्ट्रीय एव जनतान्त्रिक भावना को वाणी मिली। हिन्दी, उर्दू, मराठी, बंगला आदि

के उपन्यास भारतीय उपन्यास हैं और उनका वास्तविक महत्व इसमे है कि वे एक देश की एक कला है। जहाँ तक हिन्दी और बंगला-उपन्यासो का सम्बन्ध है वे एक दूसरे के अत्यंत निकट होकर भी अत्यंत दूर हैं।

हिन्दी और बंगला-उपन्यास : तुलनात्मक विवेचन

बगला और हिन्दी के उपन्यासो का तुलनात्मक अध्ययन करने के पूर्व उपन्यासकारो की सामाजिक स्थिति पर विचार कर लेना आवश्यक है। बगाल मे अंग्रेजो का शासन सबसे अधिक दिनो तक रहा और इसलिए वहाँ आर्थिक और सामाजिक विषमता सबसे अधिक थी। अन्य प्रान्तो की तुलना मे वहा मध्यवर्ग की, मध्यवर्ग मे हिन्दुओ की और हिन्दुओं मे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त सज्जनों की बहुलता थी। 'इस्तमरारी बन्दोबस्त' (१७९३) के कारण जमीदारो का वर्ग बनता और नष्ट होता रहा, जिससे उच्च-मध्यवर्ग और मध्यवर्ग की सख्या बढती गई। शरत्चन्द्र के पूर्व अधिकाश बगला उपन्यास-कार उच्च-मध्यवर्ग के अवकाशभोगी लेखक थे। वे या तो उच्च पदाधिकारी या जमीदार थे। उन दिनो जो विश्वविद्यालय मे शिक्षा पाते थे या कुलीन घराने मे जन्म लेते थे उन्हें ही बड़े-बडे पद मिलते थे। जमीदारी प्रथा चलाने और नौकरी देने मे सरकार का हाथ था इसलिए जमीदार और अधिकारी राजभक्त थे। बंकिम और रमेशचन्द्र विश्वविद्यालय मे शिक्षा पाने वाले उच्च सरकारी अधिकारी थे। वे अंग्रेजी राज्य की रक्षा मे ही अपना कल्याण समझते थे। उन्हे उच्च-मध्यवर्ग के प्रतिनिधि उपन्यासकार के सिवा और कुछ नही कहा जा सकता। रवीन्द्रनाथ जिस वर्ग के थे उस वर्ग के ही जीवन से परिचित थे और उस वर्ग का विश्वसनीय चित्रण करने मे समर्थ थे। उनके जोड़ का रईस उपन्यासकार भारत मे नही मिलेगा।

हिन्दी के प्रायः सभी उपन्यासकार मध्यम और निम्न मध्यम वर्ग के थे। उन्हे बुद्धिजीवी सर्वहारा कहना उपयुक्त होगा। उन्होने घर पर शिक्षा पाई थी। उन्हे विश्वविद्यालय की ऊँची डिग्री पाने की न विशेष सुविधा थी न वे उसे सरकारी नौकरी का प्रवेशपत्र समझते थे। तथापि उनके विचार प्रगतिशील और दृष्टिकोण आधुनिक था। वे जनता के हित मे अपना हित समझते थे। उन्होंने बकिम और रमेशचन्द्र दत्त की तरह विदेशी शासन के हित मे अपना और अपने देश का हित नही मिला दिया।[25] वे आचार-विचार दोनों में देशप्रेम दिखलाते थे और देखना चाहते थे। राष्ट्रीयता उनके

साहित्य की मूल प्रेरणा थी। पश्चिम का पहला झोका भारत की पूर्वी खिडकी से आता था और बंगाल का नवशिक्षित और अभिजात वर्ग उसमे बेसुध होकर बह जाता था। क्या भाव मे, क्या भाषा मे, वह जनजीवन से दूर रहता था। इधर हिन्दी-लेखक विदेशी सभ्यता की चकाचौध से इतने अंधे नही हुए थे कि उन्हे देश की दशा दिखाई ही न पड़े।

आरम्भ से ही बंगला-उपन्यास मे भावुकतावाद का और हिन्दी उपन्यास मे यथार्थवाद का स्वर प्रबल रहा है। भावातिरेक का अर्थ है साहित्यकार के प्रथम गुण ... सच्चाई......का अभाव। उन्नीसवी सदी के हिन्दी-उपन्यास-लेखको मे ठाकुर जगमोहन सिंह ही ऐसे हैं जिनके "श्यामा-स्वप्न" मे भावुकता का पुट है। ब्रजनन्दन सहाय और अवधनारायण भावुक होने से बगला-लेखको के अत्यन्त निकट हैं। ब्रजनन्दन सहाय तो हिन्दी और बगला के सेतु हैं। उनके 'सौन्दर्योपासक' की सराहना 'सरस्वती' ने इन शब्दो मे की थी "यदि बगला के उपन्यासो के साथ किसी हिन्दी-उपन्यास को अब तक बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है तो इसी को।" ब्रजनन्दन सहाय या अन्य भाव-प्रवण हिन्दी-लेखको की विशिष्टता यह है कि उनकी भावुकता के मूल मे सामाजिक प्रयोजन है। उनके पात्र किसी न किसी रूप में समाज की कुरीतियो एव विषमताओ से पीडित हैं और इसलिए उनकी वेदना सच्ची और सार्थक है। इसके विपरीत बगला-उपन्यासकारो की भावुकता सामाजिक सत्य न होकर उनकी वैयक्तिक अनुभूति है। वे दुख-दरिद्रता के साथ तादात्म्य स्थापित नही कर सके है। हिन्दी-उपन्यासकारो की भावुकता व्यापक मानवीय सहानुभूति के रूप मे व्यक्त हुई है। उन्होने विधवा-वेश्या, दास-दासी आदि के चित्रण मे पीड़ित और शोषित का पक्ष लिया है। भावमूलक उपन्यास का उपयुक्त माध्यम काव्यात्मक गद्य होता है और काव्यात्मक गद्य के प्रति आग्रह सामाजिक उदासीनता का सूचक है। बगला-उपन्यासकार इस गद्य के बिना जी नही सकते थे।

उनका दृष्टिकोण हिंदी-उपन्यासकारो की भाति अखिल भारतीय नही है। उनकी रुचि बगीय समाज और सस्कृति मे है। राष्ट्र की गम्भीर और व्यापक समस्याओ की ओर उनका विशेष ध्यान नही है। उन्होने राष्ट्र के उत्थान-पतन और आशा-आकाक्षा के बदले बगाल और बगालियो का अपना उपजीव्य बनाया है। हिन्दी के प्रादेशिक उपन्यासो मे भी देशप्रेम की व्यंजना

हुई है। मन्नन द्विवेदी के 'रामलाल' का कथा-केन्द्र गोरखपुर जिले का एक गाव है किन्तु उसका दायरा बहुत बडा है। उसमे भारत के विभिन्न स्थानो, नदियो और सस्कृतियो के दर्शन होते हैं, समकालीन परिस्थितियो का प्रतिबिम्ब मिलता है और उसका नायक एक देशभक्त युवक के रूप मे सामने आता है। बगला-लेखको की प्रातीयता मे भी एकागिता है क्योकि उन्होने गरीबो और मुसलमानो को, जो बगाल मे सबसे अधिक थे, उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। उनके उपन्यासो मे हिन्दू-राष्ट्रीयता है, हिन्दी-उपन्यास मे भारतीय राष्ट्रीयता। उनके ऐतिहासिक उपन्यास इस तथ्य का निदर्शन है। 'आनन्दमठ' के पात्र मस्जिद तोडकर मन्दिर बनाना चाहते हैं और मुसलमानो का नामनिशान मिटा देना चाहते है। 'चन्द्रशेखर' का मुस्लिम खानसामा उपहास का लक्ष्य है। किशोरीलाल गोस्वामी बंकिम के अनुगामी होकर भी ऐतिहासिक उपन्यासो मे मुस्लिम पात्रो का सहानुभूतिमूलक चित्रण करते हैं। राधाकृष्णदास का 'नि.सहाय हिन्दू' हिन्दू-मुस्लिम एकता के आधार पर भारत के पुनर्निर्माण का सदेश देता है।

बगला-उपन्यासकारो का दृष्टिकोण ही नही, वर्ण्य विषय भी सीमित है। बंगाल मे पूजीवाद का उदय पहले ही हो चुका था और वहा हिंदी प्रदेश की अपेक्षा आर्थिक और सामाजिक असमानता अधिक थी। फिर भी तारकनाथ गागुली की 'स्वर्णलता' को छोडकर मानवता के दुख-दैन्य का वर्णन शायद ही किसी पुराने बगला-उपन्यास मे मिलेगा। बकिम, रमेशचन्द्र, रवीन्द्र सभी शहर मे महल बनाकर रहने वाले अवकाशभोगी अधिकारी-वर्ग की आशा-अभिलाषा व्यक्त करने मे अपनी उपन्यास-कला का उपयोग करते थे। शरत बाबू के साथ मध्यवर्ग के जीवन को उपन्यास मे प्रमुखता मिलने लगी। हिंदी-उपन्यासकारो ने औसत मध्यवर्ग का साहित्यिक प्रतिनिधित्व किया। बालकृष्ण भट्ट ने १८८८ में मध्यवर्ग को 'बडप्पन का उत्पत्ति-स्थान'[26] माना था और उसके नेतृत्व मे आस्था प्रकट की थी। बकिम सामती व्यवस्था की पुनर्स्थापना कर देश का कल्याण करना चाहते थे। हिन्दी-उपन्यासकार वर्तमान के प्रति सजग होकर सामती सस्कृति पर कुठाराघात कर रहे थे, जबकि उनके बगाली-बंधु अतीत के स्वप्न मे मग्न थे और ऐतिहासिक रोमास लिखकर सामतवाद के भग्नावशेष पर आसू बरसा रहे थे। उन्होने जहां कही उच्च या उच्च मध्यवर्ग का वर्णन किया है वहाँ उनके

अत्याचार, भ्रष्ट आचरण और पतन का पर्दाफाश किया है।

बंगला मे पारिवारिक जीवन के मार्मिक प्रसगो को लेकर मनोहर उपन्यास लिखे गये हैं, पुरुष की अपेक्षा नारी के चरित्र-चित्रण पर विशेष ध्यान दिया गया है पर नारी के वास्तविक मातृ-रूप का दर्शन नही होता। रवीन्द्रनाथ की आनन्दमयी ('गोरा') और विमला ('घरे-बाइरे') ऐसी माताएँ है जिनकी ममता और वेदना की सच्चाई मे विश्वास नही होता। अवधनारायण की 'विमाता' की विमाता, सुभद्रा और कु ती अपनी सहज सवेदनशीलता से अमिट प्रभाव छोड जाती हैं। विमाता अपने सौतेले पुत्र के लिए जितनी ही कठोर है अपने पुत्र के लिए उतनी ही दुर्बल। सुभद्रा अपने सौतेले पुत्र को भी स्नेहदान देती है। कुंती माँ नही है लेकिन माँ का हृदय उसे मिला है। वह अपनी स्वामिनी की मृत्यु के बाद उसकी सतान के लिए जो कुछ करती और सहती है वह अपनी सतान के लिए शायद ही करती और सहती। गहमरीजी ने फुलिया ('रूप सन्यासी') और सुलोचना ('चक्करदार चोरी') के रूप मे दो आदर्श माताओ का चित्रण किया है। फुलिया के चरित्र मे मातृत्व और नारीत्व का समन्वय है। वह अपनी पुत्री की बीमारी मे सहानुभूति दिखलाने वाले पुरुष से प्रेम करने लगती है लेकिन जब उसका प्रेमी उसकी पुत्री का हत्यारा बन जाता है तब उसका प्रेम घृणा मे बदल जाता है।

जिस भाव-सौदर्य के बल पर बगला-उपन्यास प्रादेशिक होते हुए भी सार्वभौमिक है, हिंदी-उपन्यास मे उसकी न्यूनता है। वकिम और देवकीनंदन खत्री अपनी-अपनी भाषा के परम लोकप्रिय उपन्यासकार हैं। दोनो अपनी कहानी-कला, हास्यबोध, नाटकीय वार्तालाप, घटना-वैचित्र्य से पाठको को अभिभूत कर लेते है। 'आनदमठ' और 'चन्द्रकाता' अपने युग के अत्यन्त प्रसिद्ध उपन्यास है। दोनो का आकर्षण वन, पर्वत, घाटियो, छद्मवेश, स्वच्छद प्रेम आदि पर निर्भर है। किंतु 'चन्द्रकाता' मे भाव की वह सुकुमारता नही है जो 'आनदमठ' की सुन्दरता है। चन्द्रकाता और वीरेन्द्र सिंह रोते है, आहे भरते है, बेहोश हो जाते हैं लेकिन पाठक के हृदय को आदोलित नही कर पाते। रमेशचन्द्र के 'माधवी ककण' और खत्री जी के 'गुप्त गोदान' का विषय शाहजहाँ के पुत्रो का परस्पर सघर्ष है। उनमे अंतर यह है कि प्रथम रोमास के रस से भरा हुआ है, दूसरा ऐयारी और जासूसी के कारण रहस्यमय हो गया है। हिन्दी-उपन्यासकारो मे वकिम की कला, रमेशचन्द्र की कल्पना और रवीन्द्रनाथ का मनोविज्ञान हो या न हो, वे राष्ट्रीय और प्रतिनिधि लेखक है।

आदान-प्रदान

समान प्रेरक शक्तियो और प्रवृत्तियो के कारण भारत की विभिन्न भाषाओ के उपन्यासो मे आदान-प्रदान हुआ। एक भाषा के लेखक और पाठक दूसरी भाषा के उपन्यास मे अपने भाव-विचार की छाया देखकर उससे प्रभावित हुए और उसे अपनी भाषा मे लाने का प्रयत्न करने लगे। फलतः एक भाषा का उपन्यास दूसरी भाषा का उपन्यास बन गया। हिन्दी-उपन्यास के विकास मे दूसरी भाषाओ की क्या देन है इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। दूसरी भाषाओ को हिन्दी ने क्या प्रदान किया। इस पर विचार कर लेना चाहिए। देवकीनन्दन खत्री की रचनाएँ भारत की अनेक भाषाओ मे अनूदित हुईं। वे बकिम और आपटे के समान अखिल भारतीय ख्याति के उपन्यासकार है। किशोरीलाल गोस्वामी की 'राजकुमारी' का अनुवाद मराठी मे कमलाबाई किबे ने किया। अनुवाद का परिचय देते हुए 'सरस्वती' (जनवरी १९१९) ने इसकी प्रशसा की थी। खत्रीजी और गोस्वामीजी मराठी-भाषियो के बीच प्रभाव रखते थे, जैसा कि प्यारेलाल गुप्त के कथन से ज्ञात होता है :

> एक बार पूने की मराठी केसरी से हमे ज्ञात हुआ कि हिन्दी-उपन्यासकारो मे दो ऐसे जिन्होने मराठी भाषा-भाषियो के हृदयो मे भी अपना प्रभाव अकित कर रखा है। एक किशोरीलाल गोस्वामी और दूसरे देवकीनन्दन खत्री।[26]

अन्य भाषाओं के लेखक हिन्दी-उपन्यास से कहाँ तक प्रभावित हुए और उसका किस रूप मे उपयोग किया इस तथ्य की पूरी जानकारी व्यापक अध्ययन से ही हो सकती है। ऐसा लगता है कि जिस परिणाम मे दूसरी भाषाओ के उपन्यास हिन्दी मे आए उस परिणाम मे हिन्दी के उपन्यास दूसरी भाषाओ मे नही जा सके। बगला, मराठी, उर्दू आदि की तुलना मे हिन्दी मे उपन्यास का उदय कुछ विलब से हुआ, अतः उन्हे हिन्दी से प्रेरणा और निर्देश लेने की आवश्यकता नही हुई। अनेक भारतीय भाषाओ मे आधुनिक गद्य के निर्माता आधुनिक उपन्यास के भी निर्माता हुए। हिन्दी मे दुर्भाग्यवश ऐसा नही हो सका। उपन्यास-लेखन की ओर भारतेन्दु का ध्यान उनके अल्प जीवन की अतिम अवस्था में गया तथा प० महावीरप्रसाद द्विवेदी की अभिरुचि और सहानुभूति नही हुई इसलिए हिन्दी-उपन्यास उनकी अनूठी प्रतिभा विभूति नही पा सका। अपने समय और श्रेणी के अन्य भारतीय लेखकों के

टिप्पणियाँ

१– भारतेन्दु द्वारा हिन्दी-वर्धिनी सभा, प्रयाग मे १८७७ मे दिया गया पद्य-बद्ध भाषण

२– वियोगी हरि : "गोस्वामी राधाचरणजी के कुछ सस्मरण",

—"विशालभारत", सवत १९८५, पृ० ४६५

3– "The most popular European story books contain traces of Indian fables and fairy tales, such as the Gesta Romanorum, the works of Boccaccio, Chaueer and Lafontaine".

—A. A. Macdonell : India's Past, p. 124.

इस प्रकार के लोकप्रिय कथासाहित्य से ही यूरोप मे उपन्यास का जन्म हुआ था। बोकैसियो के नोवेला से 'नोवेल' को नाम और रूप दोनो मिले थे।

४– "उपन्यास" : "साहित्य-समालोचक", भाग १, अक १, १९२५, पृ० १९

५– "हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास" पृ० ६२७

६– "हमारे इस किस्से का नायक hero यही तिलकधारी होगा।"

—"रहस्य कथा", हिन्दी प्रदीप, मई १८८०, पृ० १८

5– "This kind of writing, which I do not remember to have hitherto attempted in our language".

—Preface to Joseph Andrews

"the founder of a new province of writing"

—Tem Jones, Book II Ch. I

तुलना के लिए चतुर्थ अध्याय में उद्धृत "परीक्षागुरु" का 'निवेदन' दृष्टव्य हैं।

८– नागरी प्रचारिणी सभा सस्करण (स० २०१०) पृ० ४३

९– पृ० २९ और १२८

१०–पृ० २१६

११–"नाटक और उपन्यास" : प्रथम हि० सा० स०, कार्य विवरण–२, पृ० ९२

१२–"ब्राह्मण", १५ जनवरी, श्री हरिश्चन्द्र संवत ५, पृ० १०

१३—"बंकिम निबंधावली" पृ० ४९

१४—राधाचरण गोस्वामी द्वारा बंगला से अनूदित "विरजा" (पृ० ३७) मे कथा के बीच यह बताया गया है :

शिवनाथ बाबू उस समय आहारादि करके सर वाल्टर स्काट की "आइवान हो" नायक आख्यायिका का पाठ और उसका अर्थ अपनी पत्नी को समझा रहे थे और इस पुस्तक के किस-किस चित्र के साथ बंगला उपन्यास-विशेष के किस चित्र का सादृश्य है, यह भी बता रहे थे।

१५—"लेखो की चोरी" शीर्षक लेख, "स्वदेश बाधव", जन० १८९८ पृ० ६१–६३

१६—सुभाषचन्द्र बोष : "बंगला और राष्ट्रभाषा", "विशाल भारत", जनवरी १९२९, पृ० ३७

१७—देखिए "नाटक"

१८—"मधुमती" (१८८६) की भूमिका

१९—"माधव मिश्र निबधमाला" पृ० १०१

२०—"हिन्दी-साहित्य का इतिहास" पृ० ४५९

२१—"ग्रथकार-लक्षण" : "सरस्वती" (अगस्त, १९०१), पृ० ३५५

२२—"मेरी पहली रचना" : "कफन"

२३—"हरिनारायण आपटे", "विशाल भारत", ज्येष्ठ सवत् १९८५, पृ० ६२०

२४—"श्री हरिनारायण आपटे की कुछ बातें", "सरस्वनी", मई १९२९, पृ० ४८८

२५—बकिम ने अग्रेजी राज्य को मित्र राज्य मानकर उसका स्वागत किया है और यह बताया है कि अग्रेजी राज्य से सनातन धर्म का प्रचार होगा और प्रजा सुखी होगी !

—देखिए "आनन्द मठ"

रमेशचन्द्र ने अपनी लदन से प्रकाशित पुस्तक "द इकोनौमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया" मे बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि यदि भारत-वासियों को ऊँची सरकारी नौकरी मिले तो भारत का सारा दुःख दूर हो जायगा। अपनी भूमिका की इन पंक्तियो मे उन्होने अपना भाव व्यक्त

किया है या जनता का यह विचारणीय है।

"In India, the people honestly desire a longey cnnection with Great Britain......They have cast in their lot with Great Britain, they have indentified themselves with British rule; they honestly desire that rule to last"·

२६—देखिए अध्याय ३

३७—"इन्दु", अगस्त १९१३, पृ० १९४

२८—"उपन्यास-रचना", "माधुरी", २७ अक्टूबर १९२२, पृ० २५४

२९—"भारतवर्ष के विश्वविद्यालयो मे हिन्दी का स्थान", "मर्यादा" फरवरी १९१५

१२

अन्य साहित्य-विधाओं का योगदान

साहित्य-विधाओ का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त सूक्ष्म और जटिल होता है। उनके आदान-प्रदान का निर्धारण करना कठिन है। बहुधा किसी नई विधा का विकास परम्परागत और समकालीन विधाओ से होता है। उपन्यास ने भी अपने अनेक तत्त्व साहित्य के अनेक विभागो से ग्रहण किये हैं। कहानी तो उसकी नीव ही है। चरित्रांकन मे रेखाचित्र एव जीवनी का, वस्तु-विन्यास एव वार्तालाप मे नाट्यकला का, वातावरण और शैली मे कविता का, उद्देश्य मे निबध और आलोचना का तथा कथा-पद्धतियों मे आत्मचरित, पत्र और दैनिकी का आभास मिलता है। इस दृष्टि से वह गद्य और काव्य दोनो का अग है। उत्कृष्ट उपन्यास मे शिष्ट साहित्य के साथ ही लोक-साहित्य के उपकरण रहते है। स्काट, हार्डी और वृन्दावनलाल वर्मा की रचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। नोवेल पुरस्कार पाने वाली नार्वे की लेखिका सेल्मा लेजर लाफ के उपन्यास तो लोककथा के ही साहित्यिक रूप हैं। उपन्यास-साहित्य के विभिन्न अगो का रसास्वादन कराकर विभिन्न पाठको की रुचि का प्रसादन करता है।

हिन्दी के प्रथम आधुनिक उपन्यासकार लाला श्रीनिवासदास ने नाटक और निबध के उपादानो का उपयोग इस अश तक किया है कि उनका 'परीक्षागुरु' वार्तालाप-प्रधान निबधो का सग्रह बन गया है। दो-चार प्रकरणों को छोड़कर सभी प्रकरणों का आरम्भ वार्तालाप से और अंत पात्र या पात्रों के प्रस्थान से होता है। स्थान-काल के सकलन और वार्तालाप द्वारा कथावस्तु

एव पात्रो के उद्घाटन मे नाट्य कला है। सबसे बडी विशेषता की बात यह है कि कथा एक केन्द्रीय पात्र, एक शहर और पाँच दिनो तक सीमित है। अधिकाश प्रकरणों के शीर्षक और विषय निबधो के समान हैं। प्रकरण ६,७, १०, ११, १२, १६, १७, १८, २७, २९, ३७ के शीर्षक क्रमशः "भले बुरे की पहचान", 'सावधानी', 'प्रबन्ध', 'सज्जनता', 'सुखदुख', 'सुरा', 'स्वतत्रता' और 'स्वेच्छाचार', 'क्षमा', 'लोकचर्चा', 'बातचीत', 'विपत्ति मे धैर्य' हैं। इनमें अन्तिम दो प्रकरणो का विषय लीजिए। 'बातचीत' मे बातचीत करने की उत्तम रीति बताई गई है, 'विपत्ति मे धैर्य' मे यह समझाया गया है कि विपत्ति मनुष्य की कसौटी है। विषय के प्रतिपादन के लिए निबधो की तरह दृष्टातो और सूक्तियो का आश्रय लिया गया है।

यह एक रोचक तथ्य है कि हिन्दी-उपन्यास का निर्माण उन साहित्य-रूपों से हुआ जो कथासाहित्य से भिन्न होते है। उसके लिए स्वप्न, हास्य-व्यग्य, सवाद, यात्रा, निबन्ध और नाटक विशेष सहायक सिद्ध हुए, जो मुख्यतः पत्र-पत्रिकाओ मे निकल कर बाद मे पुस्तकाकार प्रकाशित हुए।

'स्वप्न'

प्रारम्भिक निबधकार 'स्वप्न' के रूप मे यथार्थ जीवन की कल्पित कथा लिखते थे। भारतेन्दु का 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' ('हरिश्चन्द्र मैगजीन' १८७४) एक गम्भीर सामाजिक व्यग्य है। डिकेंस ने अपने उपन्यास 'निकोलस निकलेबी' मे मुनाफा कमाने वाले खानगी स्कूलो की खूब खिल्ली उडाई थी। उसी प्रकार भारतेंदु ने अपने 'स्वप्न' मे उन महानुभावो का परिचय दिया है जो विद्यालय बनाते-बनाते खुद बन जाते है। राधाकृष्णदास की 'स्वर्ग की सैर'[1] और राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' ('सार सुधानिधि', १८८१) उपन्यास के स्वरूप के समीप हैं। राधाकृष्णदास के स्वप्निल स्वर्ग मे प्रथम श्रेणी मे अग्रेज, द्वितीय श्रेणी मे मुसलमान और तृतीय श्रेणी में ईसाई रहते हैं। इनके वार्तालाप की भाषा इनके अनुरूप ही है। स्वप्नदृष्टा को एक ईसाई अकड़ कर कहता है—"टुम नई जानटा हम शाहब लोग हैं और ये दोनो हम लोगो का मेम शाहिबा हैं।" राधाचरण गोस्वामी के यमलोक मे वर्ण-भेद वर्ग-भेद बन गया है। गोरे के आगे चाय-बिस्कुट हैं, काले के आगे पुराना हुक्का और रोटी। ये स्वप्न समकालीन सभ्यता के वास्तविक प्रतिबिम्ब हैं। 'स्वर्ग की सैर' का दूसरा नाम "अग्रेज,

मुसलमान और ईसाइयो का चरित्र दर्पण" ठीक ही है। आत्मकथा-शैली में लिखी गई ये यात्राएँ कथानायकों की यात्राओं की याद दिलाती हैं। गोस्वामीजी ने प्रजा पर अत्याचार करने वालों को नरक में रख कर उपन्यासकारों की तरह साहित्यिक न्याय किया है। उस प्रकार के स्वप्न को पढकर उपन्यास का-सा आनन्द मिलता है। 'श्यामास्वप्न' और 'आश्चर्य-वृत्तान्त' स्वप्नकथा के उत्तम उदाहरण है।

हास्य-व्यंग्य

पुरानी पत्र-पत्रिकाओं मे 'चोज' 'गपाष्टक' 'पच' 'गढ़न्त' आदि के रूपों मे मनोरंजक सामग्री भरी रहती थी। किसी मे विशुद्ध हास्य के छींटे रहते थे, किसी मे व्यग्य की बौछार रहती थी। नए फैशन के गुलाम और अंध परम्परा के पुजारी समान रूप से लक्ष्य बनाए जाते थे। व्यक्ति और समाज, साहित्य और राजनीति सबका मजाक उडाकर सुधार का मार्ग बताया जाता था। यह सोद्देश्यता उपन्यास मे भी अनायास आ गई तथा हास्य और व्यग्य उसके आवश्यक अग बन गए।

उपन्यास के पूर्व ऐसी रचनाओं का अस्तित्व आवश्यक था जिनमे मानव के प्रति उत्कण्ठा व्यक्त हो। पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हास्यरसात्मक रेखाचित्रों मे ऐसी ही उत्कण्ठा है। उसमे चरित्राकन की उत्कृष्टता नही है किन्तु प्रतिनिधि पुरुष-स्त्री मे अभिरुचि है, जो चरित्राकन के विकास की एक अवस्था सूचित करती है।

संवाद

पत्रों मे कुछ ऐसे रोचक संवाद छपते थे जिन्हे न तो नाटक कहा जा सकता है, न प्रहसन। उनका उद्देश्य किसी सामयिक या शाश्वत समस्या पर विचार करना या किसी वर्ग-विशेष पर आक्षेप कर सामाजिक सुधार करना था। सन्यासी से लेकर वेश्या तक को चर्चा का विषय बनाया जा सकता था। ऐसे संवादों को उपन्यास में लाने मे न तो विशेष कठिनाई थी और न विशेष परिवर्तन करने की आवश्यकता ही थी। प्रारम्भिक उपन्यासो के वार्तालाप की सजीव सुन्दरता बंगला अथवा अंग्रेजी-उपन्यासो से मांग कर नही लाई गई थी।

यात्रा

उपन्यास के रूप-विधान मे भारतेन्दु के यात्रा-साहित्य की भी देन

है। एक यथार्थवादी उपन्यासकार की तरह घुमक्कड भारतेन्दु की पैनी दृष्टि प्रकृति और मनुष्य, नगर और गाव, सुन्दरता और कुरूपता की ओर गई है और उन्होने उनका सजीव वर्णन किया है। वैसवारे के नर-नारी का शब्दचित्र अंकित करते हुए वे कहते है :

नई सभ्यता अब तक इधर नही आई है, रूप कुछ ऐसा नही पर स्त्रिया नेत्र नचाने मे बड़ी चतुर, यहां के पुरुषो की रसिकता मोटी चाल, सुरती और खड़ी मोछ मे छिपी है और स्त्रियो की रसिकता मैले वस्त्र और सूप ऐसे नथ मे[2]

उनकी यात्रा मे उनकी कथा-प्रतिभा फूट कर खिली है। यात्रा मे स्थानकाल के वर्णन की प्रधानता रहती है, उपन्यास मे पृष्ठभूमि की अपेक्षा कार्यरत मनुष्य का चित्रण मुख्य होता है। उनकी यात्रा मे उपन्यास के अनुरूप स्थान-काल की विशिष्टता और विशिष्ट स्थान-काल के परिवेश मे मनुष्य और उसके क्रियाकलाप का वर्णन है। उपन्यास मे घटना का वर्णन भूतकाल की क्रिया में न रहकर बहुधा वर्तमानकाल की क्रिया मे रहता है। भारतेन्दु ने अपनी यात्रा का विवरण डायरी या पत्र की शैली मे इस खूबी से प्रस्तुत किया है मानो कोई उपन्यासकार अपनी आखो-देखी घटना और क्रिया की हू-ब-हू रिपोर्ट पेश कर रहा हो।

ठाकुर जगमोहन सिंह के 'श्यामास्वप्न' के प्रेम-पथिक नायक ने अपनी प्रेयसी को डायरी और पत्र के रूप मे जो यात्रा का व्यौरा लिख भेजा था वह शायद भारतेन्दु की कलम से ही लिखा था।

निबन्ध

वर्णनात्मक, भावात्मक और विचारात्मक निबन्ध की कुछ प्रवृत्तियो से भी उपन्यास प्रभावित हुआ। पर्व-त्यौहार और प्रकृति का वर्णन करने वाले निबन्ध वर्णनात्मक कथा के समान लगते हैं। उदाहरण के लिए हरिश्चन्द्र 'मैगजीन' मे प्रकाशित 'प्रांतर प्रदर्शन' (१५ नवम्बर १८७३) और 'ग्रीष्म-ऋतु' (१५ मई, १८७४) लीजिए। 'प्रांतर प्रदर्शन' मे 'पक्षियों के बोल, समीर के बोल, भ्रमरो के गूंज, फूलों के पुज' की पृष्ठभूमि में परियां विहार करती हैं। भारतेन्दु की 'ग्रीष्मऋतु' मे प्रकृति की भयंकरता के अनुरूप मानव-जगत की क्रूर कठोर यथार्थता है। लेखक का ध्यान "वस्त्राभूषण उतारकर फूल-पत्रों से ही अपने को सजधज कर प्रीतम की प्यारी भुजा को भी

धर्म के भय बारम्बार कठ पर धरती और उतारती" स्त्रियो "कबूतर के दरबे की भांति किराये के घरो मे कलौंजी से कसे" धनहीन लोगो और "गाडी की कोठड़ियों मे अचार के मटके मे पसीने से पसीजे नमकीन नीबू से ठसे" रेल यात्रियो की ओर समान भाव से गया है। वातावरण का ऐसा अलकृत किन्तु यथार्थ चित्रण उपन्यासो की एक प्रमुख विशेषता रही है।

भावात्मक निबन्धो मे आत्मीयता का स्वर प्रबल था। उनमे लेखको का व्यक्तित्व था, अह नही था, वाणी की विदग्धता थी, पागलपन का प्रलाप नहीं था। उन्नीसवीं सदी के निबन्धकारो को अपने पाठकों से खुलकर बाते करना बडा प्रिय था। उनसे उपन्यासकारो ने पाठकों को रह-रह कर सम्बोधन करना सीखा, जो कला की दृष्टि से दोष बन गया है। विचारात्मक निबन्धो ने नित नूतन विचारों से उपन्यास-लेखको को अवगत कराया।

समासत: निबन्धों का ढाँचा लचीला है, व्यग्य-विनोद उनके प्राण है, सामाजिक यथार्थ उनका आधार और सुधारवादी आदर्श दृष्टिकोण है। ये विशेषताएँ सामाजिक उपन्यासों मे विद्यमान हैं।

कुछ उपन्यास-लेखकों ने वार्तालाप के सिलसिले मे विविध विषयों पर इस प्रकार मत प्रकट किये हैं कि वे निबन्ध बन गये है। ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यास निबन्धात्मक हैं। उन्होंने छात्रो को निबन्ध-लेखन में सहायता देने के लिए 'राधाकात' का प्रणयन किया और उसमे समकालीन नाटक, उपन्यास एवं आलोचना की आलोचना की। 'सौन्दर्योपासक' के उपसंहार में उन्होने लिखा है कि "यह निबन्ध तैयार हो गया।" आरम्भ मे उस पर सम्मति देते हुए सकलनारायण पाण्डेय ने लिखा है, "पुस्तक में अत्युत्कृष्ट गुण यह है कि यह अपने पाठकों मे निबन्ध रूप (एसे) से वर्णन शैली की प्रौढता तथा रुचि उत्पन्न करती है।" 'आरण्यबाला' में सहायजी ने अपने एक पात्र से कहलाया है कि उनका उद्देश्य "गूढ विषयों पर सरल विचार प्रकट करना है" और नामकरण-संस्कार से लेकर साहित्यिक समीक्षा तक के सम्बन्ध में पात्रो द्वारा मत प्रकट करवाया है। उनके सभी उपन्यास उनके गम्भीर भाव-विचार के वाहन हैं। उनकी शैली निबन्धकार की शैली है। अन्यान्य उपन्यासकारो ने भी कथा से सम्बन्ध रखते हुए या स्वतन्त्र रूप से अपने विचार व्यक्त किए हैं।

नाटक

उपन्यास का जन्म नाटक के बाद हुआ, इसलिए वह कुछ दिनों तक बड़े भाई का सहारा लेकर चलता रहा और कुछ बातो मे उसकी नकल करता रहा। नाटक के समान उसका वर्गीकरण कथावस्तु, पात्र और रस के आधार पर किया गया। उदाहरण के लिए देवीप्रसाद शर्मा ने अपने 'सुन्दर सरोजिनी' (१८९३) को सयोगात उपन्यास कहा है। अनेक उपन्यासों के नाम नायिका अथवा नायक-नायिका के सूचक हैं। रामदास वर्मा की 'राजकुमारी चन्द्रमुखी' (१८९८) "शृंगार, वीर, करुण तथा वैराग्य रस से पूरित" उपन्यास है।

पहले नाटक मे पात्रो की वेशभूषा, अवस्था आदि के सकेत पाद-टिप्पणी मे दिए जाते थे। 'चन्द्रकाता' मे यह पद्धति अपनाई गई थी। उसके प्रथम संस्करण के पहले हिस्से के प्रथम पृष्ठ का यह अश द्रष्टव्य है।[3]

शाम के वक्त कुछ-कुछ सूरज दिखाई देता है और सुनसान मैदान मे पहाडी के नीचे दो शख्स वीरेन्द्र सिंह† और तेज सिंह† एक पत्थर की चट्टान पर बैठे आपस मे कुछ बातें करते हैं।

नाटकीय दृश्य के समान उपर्युक्त उद्धरण (शाम के वक्त····· बातें करते हैं) मे स्थान-काल का स्पष्ट निर्देश है और स्थान-काल की पृष्ठभूमि मे पात्रो को बातें करते हुए दिखाया गया है। खत्रीजी की 'काजर की कोठरी' के बयानों के आरम्भ मे काल का हूबहू उल्लेख है, जैसे—'चौथे बयान का आरम्भ इस प्रकार होता है, 'रात दो घन्टे से ज्यादा नहीं है।' अनेक पुराने उपन्यासो का आरम्भ प्रकृति-चित्रण या पात्रो के वार्तालाप से हुआ है।]

---

†—वीरेन्द्रसिंह की उम्र इक्कीस-बाइस वर्ष, नौगढ के राजा सुरेन्द्रसिंह का इकलौता लड़का, उमदा शाही लिबास पहने सब मुनासिब हथियारों से सजा हुआ।

†—तेजसिंह, राजा सुरेन्द्रसिंह के दीवान जीतसिंह का प्यारा लड़का, कुवर वीरेन्द्रसिंह का सच्चा दिली दोस्त, बड़ा चालाक, फुरतीला, कमर मे सिर्फ खंजर बांधे गले मे बटुआ लटकाए हाथ मे एक कमन्द लिये बडी तेजी के साथ चारो तरफ देखता हुआ।

इन दोनो के सामने एक घोड़ा कसा कसाया दुरुस्त एक पेड़ से बँधा है।

रगमच के 'सीन' को प्राकृतिक दृश्य बना देना उपन्यासकारो के लिए बडा आसान था। गोकुलनाथ शर्मा की 'पुष्पवती' (१८९४) का प्रायः हर परिच्छेद नाटक का एक दृश्य है। परिच्छेद के प्रारम्भ मे प्रकृति-वर्णन है, फिर दो पात्र आपस मे बातें करते हैं और अन्त मे प्रस्थान करते हैं अथवा कोई पात्र पहले से कमरे मे बैठा रहता है, दूसरा पात्र आता है, दोनो मे बातचीत होती है, फिर इनका प्रस्थान होता है या उनमे एक बैठा रह जाता है। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'कमोदिनी' (१८९२) मे पात्रों के प्रस्थान और काल का सकेत कोष्ठको मे दे दिया है, जैसे— (गया), (रात्रि बहुत अल्प थी)।

नाटक का स्पष्ट प्रभाव उपन्यास के वार्तालाप मे है। किसी-किसी उपन्यास मे वार्तालाप की योजना इस ढग से की गई है कि वह उपन्यास के रूप मे नाटक प्रतीत होता है। देवकीनन्दन खत्री के वार्तालाप नाटकीय वार्तालाप की तरह ही उद्धरण-चिह्न से रहित है। अनेक उपन्यासो में पात्र 'स्वगत' और 'प्रकट' मे बोलते हैं और उनके हाव-भाव तथा क्रिया का निर्देश निकोष्ठक मे रहता है। पात्रोचित कथोपकथन नाट्य परम्परा की विशिष्ट देन है। इससे उपन्यास में वास्तविकता और रोचकता के साथ ही अस्पष्टता और दुरूहता का समावेश हुआ। प्रेमचन्द की 'प्रेमा' नाटकीय वार्तालाप से पूर्ण है। खाना पकाती हुई पूर्णा और अमृतराय की यह वार्ता सुनिए :

(अमृतराय) उसे गले से लगाकर बोले—— "मैं तुमको यह न करने दूँगा।"

पूर्णा भी प्रीति के नशे मे बेसुध होकर बोली—"मैं न मानूँगी।"

अमृत०— "अगर हाथों मे छाले पडे तो मैं जुर्माना ले लूँगा।"

पूर्णा— "मैं उन छालो को फूल समझूँगी। जुर्माना क्यो देने लगी।"

अमृत— "और जो सिर मे धमक-अमक हुई तो तुम जानना।"

पूर्णा— "वाह ऐसे सस्ते न छूटोगे। चन्दन रगडना पड़ेगा।"

अमृत— "चंदन की रगड़ाई क्या मिलेगी।"

पूर्णा— (हँसकर) "भर पेट भोजन करा दूँगी।"

अमृत०— "कुछ और न मिलेगा?"

पूर्णा— "ठन्ढा पानी भी पी लेना।"

अमृत— (रसियाकर) "कुछ और मिलना चाहिए।"

पूर्णा— "बस अब कुछ न मिलेगा।"

पुराने उपन्यासो की एक प्रत्यक्ष विशेषता उनके वस्तु-विन्यास की नाटकीयता है। अंबिकादत्त व्यास ने 'गद्यकाव्य मीमासा' में लिखा था कि नाटक की भाँति उपन्यास का आरम्भ बीच से होना चाहिए। पूर्वा पर क्रम के बदले कथा के किसी अंश को आरम्भ मे रखकर कथानक का गठन किया जाता था। जिस तरह कौतूहल की सृष्टि के लिए नाटक के एक अंक या दृश्य की घटना अधूरी छोडकर दूसरे अक मे कोई नई घटना आकस्मिक ढग से उपस्थित की जाती थी उसी तरह उपन्यास मे किसी परिच्छेद के अन्त में कथा-प्रसग को अधूरा छोड़कर कई परिच्छेदों के बाद उसका तारतम्य मिलाया जाता था और उपन्यास के अन्त मे सभी प्रसगो का समाहार होता था। भारतेदु ने 'नाटक' मे लिखा था, "नाटक की कथा की रचना ऐसी होनी चाहिए कि जबतक अंतिम अक न पढ़े किवा न देखे, यह न प्रकट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा"। आलोच्यकालीन उपन्यासो को अन्त तक पढे विना कथा का सिलसिला मिलाना कठिन है। एकबारगी सारा रहस्य खोल देना उनके रचयिताओ के पेशे के खिलाफ था। किशोरीलाल गोस्वामी ने नाटकीय कथा-विन्यास को उपन्यास के लिए आवश्यक मानकर कहा था कि "इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक एव कुछ छिपी हुई कथा क्रमश समाप्ति मे स्फुटित हो"[4] और अपने सिद्धात का प्रयोग किया था।

उदाहरण के लिए, उनका 'स्वर्गीय कुसुम' लीजिए। गंडकी मे एक नाव डूब जाती है। डूबते को बचाने के लिए एक नवयुवक पानी मे कूद पड़ता है। पानी से एक नवयुवक और नवयुवती की लाशें निकाली जाती हैं। सर्जन के इलाज से वे जी उठते है। मजिस्ट्रेट के सामने उनके जो बयान होते हैं उनसे मालूम होता है कि नवयुवती आरे की वेश्या कुसुम है और नवयुवक आरे का निवासी वसंतकुमार है। फिर कुसुम वसत को बताती है कि वह वेश्या के घर मे पली है, उत्पन्न नही हुई है। छठे परिच्छेद मे फिर वह बताती है कि एक वेश्या ने उसे एक पडे से खरीदा और नाच-गान सिखाया। उसके पिछले जीवन की कहानी यही पूरी नही होती है। आगे चलकर उसके तावीज के भोजपत्र से यह मालूम होता है कि वह राजा कर्ण-सिंह की लड़की चन्द्रप्रभा है, जब वह छः महीने की थी तब उसके पिता ने

उसे भगवान को उपहार मे अर्पित कर दिया था । इस प्रकार कई पन्ने उलटने के बाद नवयुवक और नवयुवती का सारा हाल मालूम होता है, यद्यपि अनुभवी पाठक पहले अनुमान कर लेता है कि नवयुवती डूब गई है और नवयुवक ने उसे बचाया है इसलिए वे नायिका और नायक होकर रहेंगे। नाटक की तरह सवाद से पात्रो और घटनाओ का परिचय मिलता है। लेखक अपनी ओर से नायक-नायिका के सम्बन्ध मे कुछ नही कहता है, उनके बयान से धीरे-धीरे सारा भेद खुल जाता है।

नाटकीय अक या दृश्य के अन्त मे किसी विशेष घटना के घटने पर परदा गिराने की प्रथा थी। उपन्यास मे भी परिच्छेद या अध्याय का अन्त घटना मे मोड आने पर कर दिया जाता था। 'चंद्रकाता' का विभाजन इसी दृष्टि से किया गया है। उसमे चार भाग हैं, हर भाग बयानो में बँटा है। ये भाग और बयान अक और दृश्य के समान लगते हैं।

सस्कृत नाट्यशास्त्र और नाटक के अनुसार उपन्याम मे नायक-नायिका, उपनायक-नायिका और खलनायक की परिकल्पना की गई। उनका प्रभाव हँसोड और निम्नवर्गीय पात्रो के चित्रण मे भी लक्षित होता है। उपन्यास मे स्थल-स्थल पर पद्यावतरण, पद्यमय वार्तालाप और सावधान करने के समय कविता का प्रयोग भारतीय नाट्य पद्धति के अनुरूप ही है।

जिस उपन्यासकार मे नाटककार की तटस्थता है उसकी रचना सही मानी मे नाटकीय है। उसका चरित्रचित्रण अभिनयात्मक होता है, वार्तालाप कथा और चरित्र पर प्रकाश डालता है और उद्देश्य अव्यक्त रहता है। यह गुण गोपालराम गहमरी के चरित्रचित्रण, छबीलेलाल गोस्वामी के वार्तालाप और राधाचरण गोस्वामी के उद्देश्य मे पूर्णतया विद्यमान है। गहमरीजी के पात्रो की सबलता या दुर्बलता गहमरीजी की सबलता या दुर्बलता नही है। उन्होने उन्हें स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया है। छबीलेलाल गोस्वामी की 'जावित्री' मे वर्णनात्मक अश दो-तीन पृष्ठो से अधिक नही होगा। पूरा उपन्यास एक लम्बा कथोपकथन है। हेनरी जेम्स के मत से केवल कथोपकथन द्वारा कथा कहना ससार में अत्यन्त कठिन कला है।[5] राधाचरण गोस्वामी का उद्देश्य उनके कथानक मे व्यजित रहता है।

एडविन म्यूर ने नाटकीय उपन्यास की जो विशेषताएँ निर्धारित की हैं वे अवधनारायण की 'विमाता' मे निहित हैं। उसने चरित्र-प्रधान और

नाटकीय उपन्यास मे विभिन्नता दिखाते हुए लिखा है कि चरित्र-प्रधान उपन्यास का कथानक विस्तृत होता है, नाटकीय उपन्यास का कथानक गहन, प्रथम का कार्य एक पात्र से आरम्भ होता है, द्वितीय का दो या अधिक पात्रो से।[6] मन्नन द्विवेदी का 'रामलाल' चरित्र-प्रधान उपन्यास है क्योकि उसकी कथा रामलाल से आरम्भ होकर गाँव और शहर के अनेक पात्रो से संबद्ध हो जाती है। इसके विपरीत 'विमाता' की समस्या सौतेली माँ के अत्याचार में केन्द्रित है और उसका आरम्भ तीन सौतेले भाई—राजेश्वर, रघुनन्दन और परमेश्वर-से होता है। चरित्र-प्रधान उपन्यास की प्रतीति और सत्य मे भिन्नता तथा नाटकीय उपन्यास की प्रतीति और सत्य मे अभिन्नता होती है।[7] 'रामलाल' के भगेलू भगत आदि पात्र जैसे प्रतीत होते है वैसे वास्तव मे नही है। 'विमाता' के भले या बुरे पात्र जैसे है वैसे ही दिखाई पडते है। नाटकीय उपन्यास की भाँति 'विमाता' मे कथानक पात्र और उद्देश्य मे अविच्छेद सम्बन्ध है। कथानक पात्र से और पात्र कथानक से प्रभावित है। फलतः कथानक की गति लक्ष्य की ओर रहती है और पात्रो का परिवर्तन होता है। टी० एस० इलियट की मान्यता है कि महान नाटक मे पात्र कथानक से अभिन्न होता है।[8] इस दृष्टि से 'विमाता' एक महान नाटक है।

नाटक की कला केन्द्रीकरण मे है। उसमे एक पात्र आकर्षण का केन्द्र होना चाहिए और उसका कार्य सीमित स्थान एव काल मे हो। अभिनेयता और प्रभावान्विति के लिए कार्य, स्थान और काल की एकता अपेक्षित होती है। जब पात्रों की सख्या कम होती है और प्रमुख पात्र बहुधा रगमंच पर आते है तब वे ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ होते हैं। प्रेमचद की 'प्रेमा' मे अमृतराय बहुधा उपस्थित रहता है। प्रेमा इस प्रकार उपस्थित नही रहती पर आरम्भ, मध्य और अत मे उलझे बाल, गदराये बदन और चमकती आँखें लिए झाँक जाती है। किशोरीलाल गोस्वामी 'चपला' मे अपनी नायिका को आरम्भ मे गायब कर भूल जाते हैं और एक के बाद दूसरे पात्र की अवतारणा करते जाते हैं, अतः उनके उपन्यास मे वैसी नाटकीयता नही है। उनकी 'लाल कुँवर' नाट्यकला की दृष्टि से उनकी सर्वोच्च सफलता है। उसमे संकलन-त्रय है क्योंकि एक रात और एक नगर (मुलतान) मे एक ही विषय का वर्णन किया गया है। गोपालराम गहमरी की नाट्यप्रतिभा "तीन जासूस" के कथानक के सघटन मे है। उन्होने तीन जासूसों को एक जगह—मांडला—मे लाकर उपन्यास को अन्विति प्रदान की है।

टी० एस० इलियट के मत से "कोई भी नाटक अतिनाटकीय तत्त्व के अभाव मे महान और स्थायी रूप से सफल नही हुआ है ।"[9] उपन्यास मे साहित्यिक और रगमचीय नाटको के अतिनाटकीय तत्त्वो का भी उपयोग किया गया। सनसनीखेज घटनाएँ, रोमाचकारी स्थितियाँ, सयोग, दैवयोग, कौतूहल, विस्मय, छद्मवेश, नाटकीय व्यग्य, सुखद अन्त आदि अतिनाटकीय तत्त्व कथानक के अग बन गये।

बालकृष्ण दामोदर शास्त्री का 'महेन्द्र मोहिनी' (१९१४) उत्कृष्ट अतिनाटकीय उपन्यास है। उसके बारहवें परिच्छेद का यह दृश्य दर्शनीय है। रात मे मोहिनी अपने महल की दूसरी मजिल की खुली खिडकी पर बाग की ओर पीठ फेर कर बैठी हुई है और खिडकी के नीचे महेन्द्र चुपचाप खड़ा है, जो मोहिनी को मालूम नही है। वह महेन्द्र के नाम लिखित अपना पद्यबद्ध पत्र आप ही पढती है और महेन्द्र मन मे बोलकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता जाता है। सहसा पत्र उसके हाथ से नीचे गिर जाता है। वह महेन्द्र को देखकर तथा उसकी आवाज पहचान कर "दबे पाँव सीढियो द्वारा बाग मे उतर आई और बनावटी क्रोध दिखाकर बोली—"कौन हो ?" महेन्द्र सिह यह बनावटी चेहरा देखकर हँस पड़ता है। मोहिनी कटार निकाल लेती है कि महेन्द्र कहता है कि उसके कटाक्ष मे घायल करने की जितनी सामर्थ्य है उतनी कटार मे नही। इसके बाद—

मोहिनी सहम गई। उसकी आँखों मे आनन्दाश्रु भर आये। कटार हाथ से छूटकर गिर पडी और वह निश्चल पुतली-सी खडी रह गई। "सुन्दरी, अब विलम्ब क्यो कर रही हो ?" 'प्राणेश', मोहिनी भरे हुए कण्ठ से बोली,—"सचमुच ही इस दासी पर आपका असीम प्रेम है ?"

यहाँ नाटकीय व्यग्य, अतिनाटकीय स्थिति, और अभिनयात्मक चेष्टा के साथ-साथ वह नाटकीय मोड़ है जो पाठको मे सन्तुलित सहानुभूति उत्पन्न करता है।

सयोग और दैवयोग का उदाहरण रत्नचन्द्र के 'नूतन चरित्र' मे मिलता है। जिस समय विवेकाराम रेलवे स्टेशन पर मनबहलाव का सामान खोज रहा है उसी समय वहा दो स्त्रिया आ जाती हैं। वह उनके साथ एक ही डब्बे मे बैठता है। ये स्त्रियां कहाँ से टपक पडी और एक ही डब्बे मे केवल तीन ही यात्री कैसे बैठे इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

एकात डब्बे मे विवेकराम इधर स्त्री का आलिगन करता है, उधर गाडियां टकरा जाती हैं और सभी यात्रियो मे केवल वह घायल होता है। छद्मवेश द्वारा नाटकीय व्यग्य की सृष्टि तिलिस्मी-ऐयारी और जासूसी उपन्यासो मे की गई है।

कुछ उपन्यास रगमंचीय नाटको के आदर्श पर लिखित हैं। रामलाल वर्मा रगमचीय उपन्यास लिखने मे अन्यतम है। उनका 'बनारसी दुपट्टा' (१९०८) उनके शब्दो मे "प्रेमरस का चुहचुहाता हुआ एक दिलचस्प उपन्यास" है। पहिले बयान मे गुलरू-जारीना नदी-किनारे प्रेमालाप करते दिखाई देते है। सहसा गुलरू की माँ आ जाती है और वह शेर पढता हुआ एक ओर चला जाता है। इस तरह आरम्भ मे दो पात्रो का वार्तालाप, वार्तालाप के समय तीसरे पात्र का प्रवेश और एक पात्र का शेर पढते हुए प्रस्थान करना नाटकीय दृश्य का स्मरण दिलाता है। वास्तविक नाटकीय स्थिति तब उत्पन्न होती है जब जारीना से शादी करने का वादा कर लडाई में गए हुए गुलरू से गुलरुखेसार विवाह करने का प्रस्ताव करती है, वह प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है और गुलरुखेसार प्रतिशोध के लिए उसके पिता से शादी कर लेती है। जारीना के कमरे मे गुलरुखेसार के दारोगा का घुसना, जारीना का चीखना और गुलरू का आकर दारोगा की हत्या करना पाठक के मन मे सिहरन पैदा कर देता है।

पाठक ! यह अजीब सीन था। एक ओर जारीना बेहोश पड़ी थी। दूसरी ओर दो लाशे फडक रही थी इधर गुलरुखेसार हमारे जवान गुलरू को और गुलरू उसे घूर रहा था।

वर्मा जी ने पारसी थियेटर के अनेक साधनो का उपयोग कर प्रभाव उत्पन्न किया है। सारी नाटकीयता प्रेम-सम्बन्ध पर निर्भर है। परन्तु उन्होने पारसी नाटक के हलके ढंग के प्रेम का वर्णन नही किया है। गुलरू-जारीना का प्रेम आदर्श है। दोनो एक दूसरे के प्रति ईमानदार है। गुलरू-गुलरुखेसार को और जारीना दारोगा को ठुकराती है। उनके प्रेम से भी गुलरुखेसार की लड़की के प्रेम का स्तर ऊँचा है। वह अपनी माँ के शत्रु गुलरू को अपनी सम्पूर्ण भावना से प्यार करती है। वह मर्दाने वेश मे रह कर गुलरू को बचाती है और प्रेम की वेदी पर जीवन बलिदान करती है। उसका चरित्र नाटकीय है।

निहालचन्द वर्मा का 'प्रेम का फल' (१९१२) पारसी नाटक से प्रभावित हो या न हो, उसका स्वरूप अतिनाटकीय अवश्य है। इसकी नायिका मिस जौहरा एक सौदागर की बेटी होने हुए भी सिकन्दर नामक एक निर्धन युवक को प्यार करती है पर सिकन्दर उसे नही चाहता है। इस नाटकीय स्थिति मे जौहरा पुरुष-वेष मे घर से निकल पड़ती है और अनेक पुरुषो की वासना के जाल से बचकर लौटती है। अत मे उसे प्रेम का फल मिलता है अर्थात् उसका विवाह सिकन्दर से होता है। प्रेम फारसी ढग का है लेकिन उस पर भारतीय आदर्श की छाप है। उपन्यास की घटनाएँ रोमाचक, प्रसंग अस्वाभाविक और भाषा उर्दू-मिश्रित है।

'महारानी पद्मिनी' मे पारसी थियेटर के निकृष्ट उपकरण है. अनहोनी घटनाएँ, अतिनाटकीय प्रसग, छिछले प्रेमोद्गार और भद्दी भाषा। पद्मिनी की बादी मोहिनी को डाकू पलग सहित महल से उठाकर ले जाते है और वह रतनसेन के पास पहुचकर पुरुष-वेश मे उसके साथ घोडे पर सिंहल-द्वीप आती है। बाग मे पद्मिनी और रतनसेन मिलते हैं और 'दर्दे-दिल' की बातें करते हैं। विवाह के बाद वे तूफान मे जहाज पर सफर करते हुए लौटते हैं।

रूपनारायण शर्मा का 'पतित पति' पारसी रगमच की रूढ़ियो और उपन्यास के दृष्टिकोण से युक्त रोचक रचना है। इसमे दो भिन्न प्रकार की विवाहित स्त्रियो का चरित्र-चित्रण किया गया है। मालती और शारदा पर नासिर डोरे डालता है। मालती पथभ्रष्ट हो जाती है और पति को विष दे देती है परन्तु शारदा अपने सतीत्व की रक्षा करती है और अपने वेश्यागामी पति को भी प्रेम एवं आदर की दृष्टि से देखती है। पति को विष देने के समय मालती के मानसिक सघर्ष का वर्णन कौशल के साथ किया गया है :

जब मालती को पूरा निश्चय हो गया कि मदन सो गया तब पलंग पर उठकर बैठ गई। थोडी देर तक बैठी रही फिर लेट गई। फिर थोड़ी देर जी कड़ा करके उठी और पलग से पृथ्वी पर पैर धरे परन्तु फिर हृदय उमड आया और साहस न हुआ, फिर सो रही। एक बार जी कडा करके जीने के पास तक गई, और रुक गई, शीशी तक हाथ बढ़ाया और खीच लिया......

शारदा और नासिर के परस्पर व्यवहार मे नाटकीयता पूरी तरह उभरकर आई है। पुरुष चाहता है, स्त्री नही चाहती है, यह स्थिति ही

नाटकीय है। नासिर शारदा के घर के पास आकर उर्दू के शेरो मे प्रेम-निवेदन करता जाता है और शारदा प्रतिरोध करती जाती है : इस नाटक की चरम सीमा तब आती है जब नासिर शारदा को अपने घर मे बन्द कर मनाता है।

नासिर—जब मौत आएगी तो क्या अस्मत बचाएगी ?

शारदा—तो क्या जब मौत आयेगी तो दौलत बचाएगी ?

नासिर—अब मैं जब्र करता हू।

शारदा—बुराई होगी।

नासिर—तेरा सिर उड़ा दूगा।

शारदा—मैंने पहले से गर्दन झुकाई है।

नासिर—दुख पावेगी मर जावेगी।

शारदा—एक दिन अवश्य मरना होगा ।

इस तरह वार्तालाप से सजीव दृश्यो और दृश्यो से उपन्यास का निर्माण किया गया है। सकारात्मक और परिवर्तनशील चरित्र, साहित्यिक न्याय और सुधारवादी उद्देश्य द्वारा शिक्षा देने की चेष्टा की गई है पर पढ़ने के बाद मन पर जो छाप पड़ती है वह रगमंचीय उपन्यास का ही बोध कराती है।

काव्य

नाटक की भांति काव्य की भारतीय परम्परा बहुत पुरानी है। कहना तो यह चाहिए कि भारतीय प्रतिभा मूलतः और मुख्यतः काव्य-प्रतिभा रही है। इस देश में कथा गद्य में ही नही पद्य मे भी लिखी गई है। यद्यपि सस्कृत गद्यकाव्य की भांति हिन्दी-उपन्यास में काव्यतत्त्व का प्राधान्य नही है तथापि उसे बहुत दिनों तक गद्यकाव्य का अंग माना गया। आलोच्यकाल मे, जब काव्य का स्थान साहित्य और समाज मे सर्वोपरि था, उपन्यास उसके अधिक निकट था। दोनों कल्पनात्मक साहित्य के अन्तर्गत आते है और दोनों का मूलोद्देश्य लोकोत्तर आनन्द प्रदान करना है। अधिकांश उपन्यासकारों ने जीवन का ज्यों का त्यों चित्रण न कर कवि की भाति उसमे अपनी कल्पना का रंग भरकर उसका पुर्ननिर्माण किया है। क्रूर यथार्थवादियों ने भी सत्य

को सुन्दर बनाकर प्रस्तुत किया है।

अनेक उपन्यास-लेखक रससिद्ध कवि थे। किशोरीलाल गोस्वामी को कवि की दृष्टि मिली है, ब्रजनन्दन सहाय को कवि की भावुकता और कल्पना। राधाचरण गोस्वामी का विषय काव्य के उपयुक्त है तो ठाकुर जगमोहन सिंह के नायक-नायिका काव्य के पात्र हैं। जैसे कवि के हृदय से स्वत. गीत फूटते हैं, वैसे ही देवकीनन्दन खत्री और अवधनारायण स्वाभाविक ढग से कहानी सुनाते हैं। ग्रामीण भारत में जो कुछ काव्यमय है वह मन्नन द्विवेदी के उपन्यास में सिमट आया है। कुछ उपन्यास-लेखक ऐसे हैं जिनके वर्णन मे ही नही वार्तालाप मे भी कविता है। कुछ उपन्यासकारो ने कही रूप और भाव का सौन्दर्य अकित कर काव्यात्मक स्थल की सृष्टि की है, कही पात्र तथा वातावरण मे अभिन्न सम्बन्ध स्थापित कर काव्यात्मक दृश्य उपस्थित किया है। "रामलाल" के बारहवें बयान का यह दृश्य कितना रमणीय है :

अभी रात के तीन बजे है। जमुना के उस पार से कुत्तो का शब्द सुन पडता है। कमरे मे घडी की टिकटिक हो रही है। युवती ने खिडकी खोलकर देखा तो अधकार से मुह ढके हुए प्रकृति सोती हुई-सी मालूम होती है। अन्दर जाकर देखा तो प्रीतम नीद मे पडे हैं।

भावमूलक उपन्यास का ढाँचा काव्यात्मक है क्योंकि उसका कथानक सूक्ष्म भाव-तन्तु से बँधा रहता है। विषय और शैली दोनो की दृष्टि से राधाचरण गोस्वामी की 'सौदामिनी', प्रेमचन्द की 'प्रेमा', गोपालराम गहमरी की 'भोजपुर की ठगी' गीति-उपन्यास है। ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यास तो गद्यकाव्य ही है, जिनमे प्रेम का सगीत, प्रकृति का चित्र और हृदय की भाषा है। कुछ उपन्यासकारो ने कवि की भाति शब्दो का सचयन और प्रयोग किया है तथा वस्तु, क्रिया एवं भाव का सजीव रूप खडा कर दिया है। इस प्रकार काव्य की भाति उपन्यास मे भी चिरतन सत्य, प्राकृतिक सौन्दर्य और सचित स्मृति की अभिव्यक्ति हुई है।

उपन्यासकारो को रीतिकाव्य के रस, अलकार, नायिका-भेद और नख-शिख वर्णन से अक्षय प्रेरणा मिली। उन्होंने अपनी कृतियो को पद्यात्मक अवतरण, स्थूल रूप-वर्णन और अलकृत गद्य से सवारने की चेष्टा की। इसमे उनके वास्तविक सौन्दर्य मे वृद्धि तो नही हुई किन्तु तत्कालीन सहृदय पाठको का मनोरंजन अवश्य हुआ होगा।

उपन्यास आधुनिक महाकाव्य है । महाकाव्य की भाति उसके विषय, चरित्र और शैली मे उदात्त तत्त्व नही है किन्तु उसमे जीवन की विविधता है । "महत्ता ही महाकाव्य का प्राण है"[10] तो लघुता उपन्यास का प्राण है । अनेक उपन्यासकारो ने महान विषयो का वर्णन नही किया है किन्तु साधारण मनुष्य को महाकाव्य के नायक के समान वीरोचित गुणो से विभूषित किया है । महाकाव्य का नायक जाति या समाज का मानवीकरण है । उपन्यास मे व्यक्ति की प्रधानता होती है किन्तु जहाँ उपन्यास के नायक व्यक्ति होते हुए भी प्रतिनिधि होते है वहा महाकाव्यात्मक नायक होते हैं । 'चन्द्रकाता सतति' मे मुख्य और प्रासगिक कथाएं अनुस्यूत है, अतः वह स्थापत्य मे महाकाव्य है । 'भूतनाथ' का नायक आकर्षण-केन्द्र होने के कारण महाकाव्य के नायक के निकट है । 'चपला' का आयाम महाकाव्यात्मक है क्योकि उसका आधार फलक बड़ा है और उसके पात्रो मे वैविध्य है ।

उपन्यास नया माध्यम था । इसलिए निबधकार, नाटककार और कवि उपन्यासकार बने । फिर, आलोच्यकालीन उपन्यासकारो की प्रतिभा बहुमुखी थी । अत. वे निबधकार, नाटककार और कवि के रूप मे उपन्यास लिखने मे समर्थ हुए । उनमे से कुछ उपन्यास के पास आकर मुख्यतः कवि बने रहे, कुछ मुख्यत. नाटककार । एक साथ ही नाटककार, कवि, निबधकार आदि बनकर उपन्यास लिखना कठिन है । पर बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी प्रेमचन्द आदि कभी कवि कभी नाटककार, कभी निबधकार, कभी शब्दचित्रकार, कभी कहानीकार की कलम से लिखते हैं । उपन्यास-लेखको को कथा कहने की विधियो मे साहित्य के विविध रूपो से सहायता मिली है ।

लोककथा

बहुतो ने अलिखित साहित्य की सामग्री का भी उपयोग किया । उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे टेम्पुल जैसे कुछ अग्रेज विद्वानो और भारतेंदु ने लोकसाहित्य का महत्त्व प्रतिपादित किया था । हिन्दी-लेखक लोक-जीवन से निकट सम्पर्क भी रखते थे । फलतः उन्हे लोककथा से प्रेरणा मिली । लिखित साहित्य के सभी रूपों का स्रोत अलिखित साहित्य मे ढूँढा जा सकता है । लोककथा की भारतीय परम्परा मौखिक और लिखित दोनो रूप मे प्राचीन और समृद्ध है । आकार की दृष्टि से वह कहानी के समान छोटी और उपन्यास

के समान बडी होती है। उसके अंतर्गत व्रतकथा, वीरकथा, प्रेमकथा, परीकथा, पशुकथा, प्रेतकथा, हास्यकथा और संतकथा की गणना की जाती है। उसका मुख्य उद्देश्य कौतूहल बढाकर मनोरजन करना है, अतः वह बहुधा सुखात होती है। उसमे उपदेश परोक्ष ढग से दिया जाता है। रचयिता टीका-टिप्पणी नही करता, अत मे शुभकामना प्रकट कर सदेश देता है। असत्य पर सत्य की विजय और कर्मफल के सिद्धान्त का दिग्दर्शन अवश्य कराया जाता है। पात्र कल्पित होते हैं और उनमे परी-देवता से लेकर चोर-ठग तक के दर्शन होते हैं। मानवीय और अतिप्राकृत तत्त्वो का मिश्रण विशेष आकर्षण का कारण होता है। लोककथा की कुछ अपनी कथानक-रूढियाँ होती है, जैसे, — रूप, लिंग और वेश का परिवर्तन, स्वप्न मे प्रेम। डा० राककुमार वर्मा की शब्दावली मे वह "लोक-जीवन और लोकोत्तर जीवन की सन्धि का साहित्य"[11] है।

महान प्रारम्भिक उपन्यासकार राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी की प्रारम्भिक रचनाएँ लोककथाओ की याद दिलाती हैं। 'सर्वनाश' का नायक सौदागर और नायिका रानी है तथा दोनो का प्रेम स्वप्न मे अकुरित होता है। इससे उपन्यास लोककथा के निकट आ गया है। 'प्रणयिनी परिणय' का वेश बदलकर रात मे घूमनेवाला राजा, मित्र के लिए प्राण अर्पित करनेवाला मित्र और चोरी-चोरी मिलकर विवाह करनेवाले प्रेमी-प्रेमिका लोककथात्मक पात्र हैं। 'नरेन्द्र-मोहिनी' की केतकी लोककथा की वह राक्षसी है जो किसी मनुष्य को अपने यहाँ आने पर मार डालती है और रम्भा उसकी ऐसी प्रतिपालिता कन्या है जो उस मनुष्य की रक्षा करती है। बहादुरसिंह बुढिया चमेली दाई से बड़ी चतुरता के साथ मा-बेटे का नाता जोड़कर अपना काम निकालता है। लोक-कथा मे इसी तरह अनजान बुढिया को मौसी या नानी बनाकर काम निकाला जाता है। मोहिनी और लालसिंह के सवाद से कथा का उद्घाटन उसी प्रकार होता है जिस प्रकार लोककथा मे शुक-शुकी के सवाद से। लोककथा की भाँति उपन्यास मे कौतूहल, रोमाच, छद्मवेश, कर्मफलवाद आदि तत्त्व हैं। 'चतुर चंचला' की कथा, पात्र और वातावरण पर लोककथा की छाप है। इन उपन्यासों की भाँति प्रेमकथात्मक उपन्यासों मे लोककथा की अनेक विशेषताएँ हैं।

अनेक लेखक मूलतः उपन्यासकार नही थे परन्तु उसकी ओर आकृष्ट

होकर उसके प्रणयन मे प्रवृत्त हुए। उन्होने तीन प्रकार के उपन्यास दिए : कुछ उपन्यास लोककथाओ के ही साहित्यिक सस्करण हैं, कुछ उन पर आधारित हैं और कुछ उनकी रूढियो से पूर्ण हैं।

सरस्वती गुप्ता का 'राजकुमार' (१८९८) लोक-प्रचलित ठगकथा का साहित्यिक रूपातर है। कहानी यह है कि कांचनपुर का राजकुमार अपने शिल्पी की लडकी ज्ञानलता से विवाह कर उसे शोभा वन मे छोड़ देता है। उसका पुत्र कांचननगर आकर और ठगी का चमत्कार दिखाकर उसे मुग्ध कर लेता है। वह ठग का वास्तविक परिचय पाने के बाद ज्ञानलता को ले आता है और पुत्र को राजगद्दी देकर उसके साथ शोभा वन मे महल बनाकर रहता है।

ज्ञानलता और राजकुमार का प्रेम ऐसी मार्मिक परिस्थिति मे अंकुरित होता है जो लोककथाओ मे पाई जाती है। ज्ञानलता नदी मे स्नान करने के बाद धोती फेंकती है कि राजकुमार को छीटा लग जाता है। इस अपराध के लिए उसे विवाह करने की मीठी सजा दी जाती है। राजकुमार के पुत्र केशरी सिंह की चतुरता लोककथा के एक चिर-परिचित दृश्य की याद दिलाती है। केशरी सिंह जनाना पोशाक मे किशोरी नाम से रात में चक्की पीसता है। वहाँ ठग की खोज करता हुआ मुसद्दी आता है। केशरीसिंह उसे चक्की पीसने के लिए बैठाकर खुद घोड़े पर चढ़ ठग की खोज मे निकल पडता है। इसी प्रकार वह वेश बदल कर राजमहल के पहरेदारो को धोखा देता है।

अपनी प्यारी रानी को वन मे छोडने वाला राजकुमार, अपने पति की निष्ठुरता पर वन मे आँसू बहाने वाली ज्ञानलता और उन्हे मिलाने वाला केशरीसिंह लोककथात्मक पात्रो के प्ररूप हैं। इसी प्रकार 'सुशीला उपन्यास' (१९०८) मे राजकुमार, राजकुमारी, सेठ, योगी, मालिन—लोककथा के ये चिर-परिचित पात्र दर्शन देते हैं। प्रेमी का अपनी प्रेमिका के पास स्त्री-वेश मे मालिन के साथ जाना रोमानी है।

पूर्णमल सारस्वत ओझा का 'चपला उपन्यास' (१९११) विशुद्ध लोककथा है। उसका आरम्भ 'किसी समय ……' से होता है और इस वाक्य से अन्त होता है, "परमेश्वर इसी तरह हमारी और हमारे मित्रो की आशा पूरी करें।" हरिनगर की राजकुमारी और मिथिला के राजकुमार दोनो स्वप्न देखते हैं कि पूर्व जन्म मे वे दम्पति थे। विवाह के बाद राजकुमारी एक जिन

द्वारा गायब कर दी जाती है और राजकुमार उसकी खोज में भटकते-भटकते जादू के मुल्क मे पहुचता है। जहाँ जादूगर की लड़की उस पर लुट जाती है। इस कहानी के पेट से दूसरी कहानी निकलती है और प्रेम, जादू तथा तिलिस्म की घटनाओ का सिलसिला चलता है।

चुन्नीलाल खत्री का 'मूर्ख और बुद्धिमान' (१९१२) उपन्यास न होकर लोककथओ का सग्रह है। बुद्धिमान जुम्मन और मूर्ख रज्जब को ही सूत्र बनाकर ठगी, यात्रा आदि की छोटी-छोटी कथाएँ गूँथ दी गई हैं।

स्वामी विश्वेश्वरानद ने चतुरा नाम की एक वेश्या द्वारा एक राजकुमार को लोकाचार की शिक्षा देने के लिए 'चतुरा की चतुराई' (१९०४) लिखी। उन्होने अनेक लोक-प्रचलित कथाओ से एक बडी कथा बनने की चेष्टा की है और लोककथा की वस्तु और शैली को उपन्यास के ढाँचे मे प्रस्तुत किया है। उनकी रचना मे युग-जीवन का प्रतिबिम्ब और प्रकृति का चित्रण भी है। उनका व्यग्य गम्भीर और शैली बलवती है।

पाडेय लोचन प्रसाद ने 'दो मित्र' (१९०५) एक मौखिक लोककथा का आश्रय कर लिखा। एक राजकुमार अपने मित्र मत्रीकुमार के साथ ससुराल जाता है। रात मे उसकी स्त्री नगर से मदिर में अपने प्रेमी से मिलने जाती है। उसके पीछे मत्रीकुमार जाता है और उसका सारा हाल मालूम कर लेता है। इस कहानी मे ढाके के दो नवशिक्षित युवक मित्रो की कहानी जोडकर कल्पना एवं तथ्य को मिला दिया गया है।

रामप्रसाद सन्याल के 'अनन्त उपन्यास' (१९०९) मे कल्पना और वास्तविकता का अद्भुत सयोग है। राजकुमारी मदनसुधा से विवाह करने के निमित्त आने वाला अनतसिह उसका पूर्वजन्म का पति सिद्ध होता है। दिलदारनगर की बुढिया मालिन को अनतसिह मौसी कहकर अपनाता है।

अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'अधखिला फूल' (१९०७) उस कोटि का उपन्यास है जो स्वतन्त्र कल्पना से रचित होकर भी लोककथा की मार्मिकता लिए रहता है। कामिनीमोहन देवहूती से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। इस कार्य मे उसे चतुर मालिन वासमती से सहायता मिलती है। देवहूती को उसके सम्पर्क मे लाने के लिए यह कहा जाता है कि वह अपने भाई को नीरोग बनाने के लिए देवी को एक महीने तक सौ फूल

चढाये । यह फूल अड़हुल का होना चाहिए, अधखिला होना चाहिए, जो कामिनीमोहन की फुलवारी मे सध्याकाल मिल सकता है । कामिनीमोहन फूल मे बेहोशी की दवा देकर देवहूती को वन मे बदिनी बनाता है । अन्त मे कामिनीमोहन और वासमती को अपने कुकर्म का फल मिलता है और बिछुड़ो का मिलन होता है ।

लोककथा की दो विशेषताएँ बडे महत्त्व की है : मनोरजकता और सकारात्मक चरित्र की कल्पना । श्रद्धाराम फिल्लौरी, देवकीनन्दन खत्री और अवधनारायण के उपन्यास मनोरजक होने के कारण साहित्यिक लोककथाएँ है । उनकी भाग्यवती, सरला और जानकी लोककथा की उस बदिनी राजकुमारी की तरह है जो दुख मे धैर्य और साहस रखती है ।

इस प्रकार लिखित और अलिखित साहित्य के उपादानों से उपन्यास के सश्लिष्ट रूप का निर्माण हुआ । निबन्ध, नाटक, काव्य, लोककथा आदि के दृष्टिकोण और शैली को ग्रहण कर वह अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गया । अपनी ग्रहणशीलता के कारण वह परम्परागत और नवीन साहित्य के प्रयोजन की पूर्ति कर सका । उसका ढाँचा विदेशी था परन्तु काव्य, नाटक और लोककथा के सम्पर्क से उसकी आत्मा भारतीय बन गई और उसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व मिला ।

हिन्दी मे निबन्ध, नाटक, काव्य आदि जनता की वस्तु नही बन सके पर उपन्यास जनता की वस्तु बन गया । इसका एक कारण यह है कि उपन्यास ने सामयिक निबन्ध, सरस काव्य और नाटक तथा जीवन से उद्भूत लोककथा की अनेक प्रवृत्तियाँ आत्मसात् कर ली । वह सचमुच 'हमारी सभ्यता की महान लोक-कला"[12] ("ग्रेट फोकआर्ट आफ आवर सिविलिजेशन") है ।

टिप्पणियाँ

१– "सारसुधानिधि" मे पहले प्रकाशित होकर १८८४ में पुस्तकाकार मुद्रित ।

२– "सरजूपार की यात्रा", "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका", फरवरी १८७९, पृ० १२

३– बाद के सस्करण मे पाद-टिप्पणी के सकेत कथा-भाग मे मिला दिए गए ।

४– "प्रणयिनी परिणय" का उपोद्घात

5– "To tell a story almost exclusively by reporting peoples' talks is the most difficult art in the world".

—The House of fiction, p. 270

6– The Structure of the Novel, p. 60

७– वही, पृ० ४७

8– "In great drama character is always felt to be—not more important than plot—but somehow integral with the plot".

—Selected Essays, p. 429

9– "Perhaps no drama has ever been greatly and permanently successful without a large melodramatic element".

—वही

१०–"प्रसाद" "काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध", पृ० ७९'

११–"साहित्य-शास्त्र", पृ० १०१

१२– "द नोवेल ऐण्ड द पिपुल", पृ० ६१

१३
पाठकगण

उपन्यास और पाठक

प्रत्येक कला-सृष्टि के मूल मे अभिव्यक्ति और प्रेषण की सहजात प्रवृत्ति होती है। काव्य के समान कथासाहित्य आत्माभिव्यक्ति नही है। वह विशेषतया श्रोताओ और पाठको के लिए रचा जाता है। कथाकार भी आत्मानुभव को प्रकट करता है किन्तु उसे दूसरे के पास पहुँचाने की भावना से आक्रात रहता है। वह सर्वोत्तम सामाजिक कलाकार होता है। यदि 'स्वान्तः सुखाय" और "जनहिताय" नाम देकर साहित्य का वर्गीकरण किया जाय तो उपन्यास दूसरी कोटि मे रखा जायेगा। वाहन के रूप मे उसका अस्तित्व लेखक एव पाठक के जीविन सम्पर्क से सम्भव होता है, अतः उपन्यासकार पाठक पर जितना निर्भर रहता है उतना अन्य प्रकार के लेखक नही रहते। पाठक वर्ग उसे कच्चा माल देता है और उसका उपभोग भी करता है। इसका यह अर्थ नही है कि पाठक और उसका सम्बन्ध विक्रेता और ग्राहक का सम्बन्ध है। वह बहुधा बाह्य प्रेरणा से लिखता है। पाठक और उसमे वही सम्बन्ध है जो श्रोता और वक्ता तथा अभिनेता और दर्शक मे है। आलोच्यकाल मे यह सम्बन्ध अधिक साक्षात, आत्मीय और घनिष्ठ था क्योकि आज की भाँति न तो लेखक व्यक्तिवादी, पलायनवादी और व्यावसायिक थे, न पाठकों की संख्या मे इतना विस्तार और वैविध्य था।

नाटक अभिनय के लिए लिखा जाता है, इसलिए विशुद्ध साहित्य न होकर चल-साहित्य होता है। उपन्यास पढ़ने के लिए लिखा जाता है।

उपन्यासकार पाठक की अपेक्षा रखता है, ऐसा पाठक जो शब्दमय ससार को सजीव बनाने मे उसे सहयोग दे। पाठक अपनी कल्पना की सहायता से उपन्यासकार का काम पूरा कर देता है। वह उपन्यास का अध्ययन-मनन ही नही करता उसका पुनर्निर्माण भी करता है। वह उपन्यास के व्यतीत को वर्तमान बना देता है। उपन्यासकार किसी पात्र के व्यक्तित्व की रेखाएँ अंकित करता है तो वह उनमे रंग भर देता है। चरित्रचित्रण की परोक्ष पद्धति मे वह निर्णय करने मे विशेष स्वतन्त्र रहता है। सहयोग और स्वतत्रता की भावना उसे बौद्धिक आनन्द प्रदान कर उपन्यास की ओर आकृष्ट करती है। वह कलाकार और सहयोगी बनकर "सृजन का आनन्द पुन. प्राप्त करता है।"[1] उपन्यास लेखक और पाठक के सम्मिलित प्रयास का फल है। किसी भी कला मे रचनाकार, रचना और रचनाप्रेमी की आवश्यकता होती है।

मध्ययुग मे उपन्यास के अभाव का एक प्रमुख कारण पाठको का, विशेषतया कथासाहित्य के पाठको का अभाव था। मुद्रण-यत्र का आविष्कार नही हुआ था, इसलिए पाठको से श्रोता और दर्शक अधिक थे। लोगो को गद्यकथा के अभाव मे कथाकाव्य पढकर सन्तोष करना पडता था। शिष्ट समाज के मनोरजन का मुख्य साधन काव्य और सगीत था। साधारण जनता मौखिक कथा-वार्ता, रामलीला-रासलीला से मन बहलाती थी। किस्सागो, कथावाचक और कत्थक राजाओ और रईसो की कृपा पर निर्भर थे। उनसे दूर देहातो मे कालिदास के "कथाकोविद ग्रामवृद्ध" वसन्त की खिली चाँदनी मे, वर्षा के गहन अधकार मे, अलाव के पास जाडे मे अपनी प्यारी पुरानी कहानियाँ दुहराते थे। उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्ध मे मुद्रणयत्र के आगमन से शैक्षिक, धार्मिक और लोकप्रिय साहित्य के रूप मे गद्यकथाओ का प्रचार शिक्षितो और साक्षरो मे होने लगा। फलत: कथासाहित्य जनप्रिय हुआ और उसके पाठक तैयार होने लगे। उपन्यास के उदय के पूर्व कथा-पाठकों का अस्तित्व आवश्यक था क्योकि उसे प्राचीन साहित्य के रसिक विशेष पसन्द नही कर सकते थे।

उन्नीसवीं सदी में नये ढग के पाठको का उदय एक महान सामाजिक घटना था। सामंतवाद के पतन और मध्यवर्ग के आविर्भाव से साहित्य के पोषण के लिए राजद्वार बन्द हो गया और जनद्वार अनावृत्त हुआ। साहित्य और लोकजीवन मे उत्तेजक सम्पर्क स्थापित हुआ। फलत: जो पेशेवर लेखक नही थे उन्हें भी जनसम्पर्क से प्राप्त होने वाली स्फूर्ति और गौरव का अनुभव

हुआ। पुराने कवि एक राजा को छोड़कर दूसरे का आश्रय ग्रहण कर सकते थे पर नये लेखक पाठकों की उपेक्षा कर जी नहीं सकते थे। अब साहित्य व्यक्तिगत सरक्षण के बदले समष्टिगत संरक्षण पर निर्भर था। यह समष्टिगत सरक्षण मध्यवर्ग प्रदान कर रहा था। उसी से पहले पाठक और फिर लेखक उत्पन्न हुए।

आधुनिक शिक्षा, सामयिक साहित्य, सुधारवादी आन्दोलन और सार्वजनिक पुस्तकालय के फलस्वरूप पाठको की सख्या एव क्षमता मे वृद्धि हुई। समाज मे चार वर्ग थे : अभिजात, मध्य, कृषक और मजदूर।[2] प्रथम दो वर्गो मे ही पाठक वर्ग सीमित था। अंग्रेजी राज्य मे सार्वजनिक शिक्षा उपेक्षित रही, अत शिक्षितो की सख्या अधिक नही थी। मध्यवर्ग मे नव-शिक्षित लोग अधिक थे, इसलिए पाठको की सर्वाधिक सख्या उसी मे थी। उच्चवर्ग अवकाशभोगी वर्ग था। उसमे लेखक तो नही थे, पाठक और गुण-ग्राहक मिल जाते थे। निम्नवर्ग निर्धन और निरक्षर होने के कारण पढने से लाचार था। उपन्यास के पाठक मुख्यतः दो श्रेणियो मे विभाजित थे, बौद्धिक और व्यावसायिक। एक श्रेणी मे ऐसे लोग थे जिनका पेशा पढना-लिखना था, जैसे, लेखक और शिक्षक। दूसरी श्रेणी मे ऐसे लोग थे जो किसी पेशे मे थे और दिल बहलाने के लिए कथा-कहानी पढ लिया करते थे। उपन्यास के पाठकगण मे वे सभी लोग आ गये जिन्हे पढ़ने का शौक था और जिन्हे ऐसा शौक नही था लेकिन अवकाश था। इन पेशेवर और अवकाशभोगी पाठको के मनोविनोद की आवश्यकता ने उपन्यास को जीवन दिया। "नाटक और उपन्यास' शीर्षक निबन्ध मे गोपालराम गहमरी ने लिखा है :

दिन भर के काम-काज से निपट कर जब भारतवर्ष के लोग अपनी मँड़इया में विश्राम करते हैं तब जिनको सदा स्वतन्त्र भाव से पेट भरना और ब्रिटिश सरकार के राम-राज्य मे नित्य अपने बाल-बच्चो सहित दिन बिताने का सौभाग्य है अथवा जिनको पेट के निमित्त पराई सेवा के लिए पराधीन होकर परिवार से दूर रहना और वहीं के नव परिचित हित-मित्रो मे समय काटना पड़ता है ऐसे दोनो दरजे के आदमी उस विश्राम के समय जब साथ मे दो-चार और रहते है तब यह बात उठाते हैं कि भाई कोई किस्सा कहो।[3]

कहानी कहने-सुनने की मौलिक प्रवृत्ति से उपन्यास की उद्भावना

हुई। जैसे श्रम से कविता का विकास हुआ वैसे अवकाश से उपन्यास का।

लोकरुचि का प्रभाव

सामाजिक परिस्थिति मे परिवर्तन होने से लोकरुचि मे परिवर्तन होता है और लोकरुचि मे परिवर्तन होने से साहित्य के स्वरूप मे परिवर्तन होता है। उपन्यास लोकरुचि से जितना प्रभावित हुआ उतना साहित्य का कोई रूप नही हुआ। अधिकाश लेखक उस वर्ग से आये जिसमे पाठक थे और जो समाज मे प्रत्येक वस्तु का आदर्श उपस्थित और निर्धारित करता था। उनकी रुचि पाठको की रुचि मे घुल-मिल गई थी। उन्हे उन घटनाओ और कार्यो का वर्णन अधिक प्रिय था जिनका सम्बन्ध उनके जीवन से हो। पुरानी कथाओ मे अभिजात वर्ग को मुख्यता मिली थी क्योकि वे विशेषकर उस वर्ग के लिए लिखी गई थी। मध्यवर्गीय पाठक सामान्य नर-नारी के क्रिया-कलाप मे भाग लेने की कल्पना कर उनसे तादात्म्य स्थापित कर सकते थे। उपन्यास ने स्वतन्त्र साहित्य का रूप तब धारण किया जब पाठक पात्रो मे अपने आपको ढूँढने लगे। उसमे राजा-रानी की कथा भी मानवीय सुख-दुःख की कथा के सामने ही लिखी गई, जिससे वह साधारण पाठको को भी मुग्ध कर सकी। उसके उच्चवर्गीय नायक-नायिका से मध्य-निम्न वर्गों के गौण पात्र अधिक आकर्षक और प्रभावशाली सिद्ध हुए। नये पाठको की भावना विचित्र थी। उच्च वर्ग के प्रति उनका आकर्षण भी था और वे उसे उपेक्षा एव आलोचना की दृष्टि से भी देखते थे। वे उस उपन्यास को अपनाना चाहते थे जिसमे उच्च वर्ग का वर्णन तो हो किन्तु उसका उपहास और पर्दाफाश किया गया हो। फलतः व्यवहार-सम्बन्धी उपन्यास लिखे गये। उच्चवर्ग के रहस्यो का निर्मम उद्घाटन किया गया। 'लन्दन रहस्य', 'रंगमहल रहस्य' जैसे अनूदित उपन्यासो की लोकप्रियता अभिजात वर्ग के प्रति पाठको के दृष्टिकोण का परिणाम थी।

सामान्यतः पाठक मन बहलाने के साथ-साथ शिक्षा ग्रहण करना चाहते थे। उपन्यासकारो को कहानी और उपदेश सुनाकर उपन्यास की सार्थकता सिद्ध करनी पड़ी। वह नव साहित्य था, उसका प्रचार उसके आकर्षण पर निर्भर था। लेखक उसे अपने ढग से मनोहर बनाने का प्रयास करते थे। इसमे जो सफल होता था वह सरल पाठकों की प्रशसा प्राप्त करता था। कथा को रमणीय बनाने के लिए उसके आरम्भ, चरम सीमा और अत

पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इन तीनो स्थितियों में रहस्य का उद्घाटन उसी अश तक किया जाता था जिस अश तक पाठक की कौतूहल-तृप्ति के लिए आवश्यक समझा जाता था।

यह सही है कि "हिन्दी के प्रारम्भिक काल मे बालरुचि की भाँति लोकरुचि कौतूहल और तिलिस्म की ओर अधिक थी"[4] लेकिन पाठक बालको की भाँति सभी बातों मे विश्वास करते हुए आगे आने वाली घटना की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नही थे। वे चाहते थे कि वे उपन्यास मे जो कुछ देख रहे हैं वह वास्तव मे घट चुका है अर्थात् वे उपन्यास-कार से आशा करते थे कि वह उनको घटना की वास्तविकता मे विश्वास दिलाए। उपन्यासकार गल्प को सत्य के रूप मे प्रस्तुत करने के लिए सचेष्ट रहते थे। घटनास्थल और पात्रों के नाम, पात्रानुकूल वार्तालाप की भाषा, घटनाओ और क्रियाओं का विस्तृत वर्णन कहानी को विश्वास योग्य बनाने के लिए काफी थे। जहाँ प्रथम पुरुष की कथा-शैली, 'बयानो' मे उपन्यास का विभाजन और इतिहास-शैली मे भी वार्तालाप की प्रधानता रहती थी वहाँ पाठक समझते कि जो कुछ कहा जा रहा है वह आँखो-देखा है। कुछ उपन्यास-कार उन्हे यह बता भी देते थे कि उनकी रचना सच्ची घटना पर आधारित है। कथा-कौशल के साथ-साथ कथा-सामग्री वास्तविकता मे वृद्धि करती थी। उपन्यास-जगत मे अतिप्राकृत और अतिमानवीय तत्त्वो का प्रवेश प्राय. वर्जित था।

उन दिनो उपन्यास पाठ्य होकर भी श्रव्य था। उसका पाठ कविता की तरह किया जाता था। आज की भाँति एकाकी और मौन पाठको की बहुलता नही थी। उपन्यास व्यक्तिगत कला नही बना था। लेखक कवि के समान व्यक्ति-पाठक को ध्यान मे रखकर नहीं बल्कि किस्सागो और नाटक-कार के समान श्रोता और दर्शक को ध्यान मे रखकर लिखते थे। वे भ्रम उत्पन्न करने के लिए किस्सागोई और नाटकीयता का आश्रय लेते थे। वे उपन्यास के बीच-बीच मे सिंहावलोकन और संक्षेप के द्वारा पिछली घटनाओं की याद दिलाते चलते थे मानो वे कहानी सुना रहे हो। उनकी रचनाओ का अध्ययन भी सामूहिक रूप मे किया जाता था। एक व्यक्ति पढता था, अनेक व्यक्ति सुनते थे। पढ़ने वाला स्वय वक्ता और श्रोता था। मुद्रण-यत्र के प्रचार के बाद भी मौखिक कथा से मन बहलाने वाले लोग इस प्रकार के उपन्यास की ओर आकृष्ट हो गए। किस्सागो की कला उपन्यासकार की कला से

मिलकर अद्भुत साहित्य-सृष्टि कर सकी। कुछ उपन्यास अलंकृत गद्य, वर्णनात्मक शैली और सभाषण से श्रवणेन्द्रिय पर प्रभाव डालते थे। उनमे ब्रजनन्दन सहाय की रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। 'सौंदर्योपासक' की ये पक्तियाँ है :

यह वर्षावारि प्रमथिता, उमग बाढ से विचलित, हावभावधारिणी, तीव्रगामिनी परिपूर्ण नदी तो नही थी, किन्तु वसत निकुज प्रह्लादिनी मदगामिनी सुखद कल्लोलिनी उज्वल अपूर्ण तरगिणी सी विशेष प्रिय ज्ञात होती थी।

'आरण्यबाला' की इन पंक्तियो मे भाषण-कला है :

मेरी जीवन-यात्रा का ध्रुवतारा यही थी, मेरे हृदय कानन का परिजात यही थी। मेरे गृह-निकुंज की कोकिला यही थी। मेरे हृदयाकाश का चन्द्र यही थी।

उपन्यास पाठ्य और श्रव्य साहित्य के अतिरिक्त दृश्य साहित्य की आवश्यकताओ की पूर्ति करता था। उसकी रचना मानो अभिनय के लिए की जाती थी। परिच्छेद के प्रारम्भ मे पृष्ठभूमि के वर्णन से एक दृश्य उपस्थित हो जाता था। अमृतलाल चक्रवर्ती की 'सती सुखदेई' का आरम्भिक अश देखिए :

आलीशान मकान; मकान से सटी हुई अच्छी अनोखी फुलवारी मे दुनिया भर के अच्छे खुशबूदार और बे बू के फूल; हरे नीले पीले सावले फूल पत्तो की चटकीली बहार; भौरो की झनकार, चारों ओर बंधे हुए घाटवाले तालाब; फव्वारो की फुफकार; फलो के लम्बे-चौडे विशाल बगीचे ....

किशोरीलाल गोस्वामी नाटक देखने वाले को सामने रखकर लिखते थे। उन्होने बाग मे टहलती हुई लीलावती का चित्रण इस कौशल से किया है कि वह रगमच पर अभिनय करती हुई मालूम पड़ती है :

वह कभी इधर-उधर टहलती, कभी आप ही लबी सांस लेकर खडी होकर इधर-उधर उदासी के साथ देखने लगती, कभी मोढ़े पर बैठ और गाल पर हाथ रख कुछ सोचने लगती और कभी तेजी के साथ उठकर इधर-उधर घूमने और पेड़ों की पत्ती तोड-तोड़ कर उसके टूक करके जमीन मे गिराने लग जाती थी।

पुराने उपन्यास श्रवण और नेत्र पर प्रभाव डालने के कारण सामूहिक

मनोरंजन की कला बन सके और अधिक से अधिक आनन्द प्रदान करने मे समर्थ हुए। उपन्यास मे शब्दो के प्रयोग से और नाटक मे दृश्यो की योजना से प्रत्यक्षीकरण किया जाता है। आलोच्यकाल के उपन्यास श्रव्य और दृश्य-काव्य की विशेषताओं से सम्पन्न होने के कारण आज के उपन्यास से अधिक उपभोग्य थे। पाठको को शब्दो द्वारा चित्र का निर्माण करने मे कल्पना से विशेष सहायता लेने की जरूरत नही पडती थी क्योकि उपन्यासकार नाटक के मूर्त साधनो का उपयोग कर देते थे। थोडे पढ़े-लिखे लोग भी उपन्यास का सहज भाव से रसास्वादन करते थे। उन्हे पढने मे मन पर बल नही देना पडता था। कविता का रसास्वादन करने के लिए एक विशेष प्रकार की मानसिक शक्ति अपेक्षित थी। उपन्यास के साथ ऐसी बात नही थी इसलिए उसका व्यापक प्रचार हुआ। उसमे नाटकीय गुणो का समावेश कर लेखको ने उसे जन-साहित्य बना दिया। वार्तालाप मे पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग विभिन्न पाठको के आकर्षण का एक प्रमुख विषय था। जो कहानी सुनने और नाटक देखने के आदी है उन्हे उसमे सरसता और सजीवता मिलेगी। बोरिस पैस्तरनक और सार्त्रे के पुजारी उसका मर्म क्या समझेगे?

पाठको के अनुरूप ही लेखको का नैतिक आवेश बहुत प्रबल था और वे उपदेशात्मक प्रवृत्ति का प्रदर्शन करना चाहते थे। कथा का अस्वाभाविक अत और पात्रो का आकस्मिक परिवर्तन कर देना और नायक को सुधार कर नायिका से मिला देना उनका अभ्यास था। उन्हें आदर्श उपस्थित करना था, इसलिए एक व्यक्ति को देवता बनाकर अन्य व्यक्तियो को गहरे काले रग मे रग देते थे अथवा उसे विषम परिस्थितियो मे रखकर उसकी महानता का उद्घाटन करते थे। जो पात्र नीति की कसौटी पर खरे उतरते थे उन्हें जीने का अधिकार दिया जाता था और उनका विवाह कर दिया जाता था, जो खोटे होते थे उन्हें रोगी बना दिया जाता था या मार दिया जाता था। इस सकीर्ण नैतिकता के कारण कलात्मक तटस्थता का निर्वाह नही हो पाता था। विशुद्ध मनोरजन की दृष्टि से लिखने वाले उपन्यासकार भी अपनी रचनाओ मे नैतिक आशय लादते थे या कही-कहीं नीति-वचन चिपका देते थे। जहां मानव-जीवन का वर्णन हो वहाँ सुधारवादी उद्देश्य के लिए नीति एवं उपदेश का आश्रय लेना अनुचित नहीं है। किन्तु जब नैतिक दृष्टि के कारण मानव-स्वभाव का रूप असत्य एवं विकृत हो जाता है और उद्देश्य के सामने कथानक एवं चरित्र दब जाते है तब कला की दृष्टि से हानि होती है।

मधुर उपदेश देने का एक ढंग पाठक-पाठिकाओं के प्रति सम्बोधन था। उपन्यास-लेखक समझ रहे थे कि उनका पाठक वर्ग नया और उनकी कला की बारीकियो को समझने मे असमर्थ है। इसलिए वे उपन्यास में स्वय प्रकट होकर कथा के रहस्य और पात्रो के स्वभाव पर प्रकाश डालते थे। कभी पाठक-पाठिकाओं को हँसाने के लिए, कभी कुछ सिखाने के लिए और कभी आकर्षित करने के लिए वे उनसे बातें कर लिया करते थे। यह पद्धति कुछ अंश तक उपयोगी होते हुए भी कलात्मक अशिष्टता थी। इससे पाठको का भ्रम भंग हो जाता था और वे पात्रो से विमुख होकर उनके स्रष्टा का मुह देखने लगते थे। उपन्यासकार नाटककार की तरह नेपथ्य मे रहने के बदले स्वयं एक पात्र बन जाते थे।

वे अपने दायित्व के प्रति इतने सजग थे कि तटस्थ रह नहीं पाते थे। उन्हे इसका ख्याल रहता था कि वे जो लिख रहे हैं उसकी पाठको पर क्या प्रतिक्रिया होगी। फ्रायड के शिष्य नवीनता के नाम पर भाई-बहन के परस्पर प्रेम-सम्बन्ध का खुला वर्णन करते हैं। अज्ञेयजी का शेखर ऐसा भाई है जिसका जन्म पति द्वारा जूठे किए गए बहन के अधरो को पवित्र करने के लिए हुआ है। अपनी बहन के प्रति एक ईसाई भाई के प्रेम — एक सामाजिक सत्य — की चर्चा करते हुए मन्नन द्विवेदी ने लिखा था :

> इनके अलावा दूसरे ढग के एक प्रेमी हैं। पाठक ! कानों को बन्द कर लो। बहनो ! तुम हट जाओ यहाँ से। दूसरा प्रेमी है शाहजादी का भाई जोजेफ।

पाठक उपन्यास मे मनोरजन और उपदेश के अतिरिक्त जीवन का तत्त्व भी ढूँढते थे और चूँकि वे अनेक क्षेत्रो मे फैले हुए थे इसलिए उपन्यासकारो के वर्ण्य विषय मे विविधता रहती थी। वे समाज के विभिन्न वर्गो, परिवार के पक्षो और युग की नाना समस्याओ पर प्रकाश डालते थे। इससे सामाजिक, परिवारिक, जासूसी आदि कई कोटियों के उपन्यासो का निर्माण सम्भव हो सका। जीवन की अनेकरूपता के साथ ही उसकी विशिष्टता भी सामने लायी गई। कुछ उपन्यासकारो ने छात्रों, युवको और महिलाओ के लिए स्वतंत्र रूप से लिखा और उनके जीवन का ही चित्रण किया। उदाहरण के लिए, रामजीदास वैश्य ने छात्रोपयोगी उपन्यास 'धोखे की टट्टी' (१९०७) मे कैलाश और मदनमोहन नायक के निर्धन और धनी छात्रो को पात्र बनाकर कालेज-जीवन की झाँकी दी है।

लोकप्रिय उपन्यास

आज के अधुनातन कहे जानेवाले लेखक लेखको के लिए लिखते है। पुराने लेखक पाठको के लिए लिखते थे। पाठको से उनका तादात्म्य हो गया था। उनमे से कुछ यश के लिए, कुछ अर्थ के लिए और कुछ मनोरजन के लिए लिखते थे। तीनो प्रकार के लेखक पाठको की अपेक्षा रखते थे और उन्हें संतुष्ट करने के लिए सचेष्ट रहते थे। मात्र मनोरजन की दृष्टि से लिखनेवाले भी अपनी रचनाओ को शिक्षाप्रद बनाने या सिद्ध करने का लोभ सम्वरण नही कर पाते थे। समष्टितः उपन्यास-लेखक पाठको के पास कथाकार और उपदेशक के रूप मे आए। पाठको से उनका सम्बन्ध कैसा था यह उनके उपन्यासो के प्रचलन से सूचित होता है। चार प्रकार के उपन्यास विशेष लोकप्रिय हुए : तिलिस्मी-ऐयारी, अर्ध ऐतिहासिक या रोमानी, जासूसी और गार्हस्थ। लेखकों मे देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी और लज्जाराम मेहता प्रतिनिधि और यशस्वी लेखक थे।

देवकीनन्दन खत्री के लिए उपन्यास पाठको से मौन वार्तालाप करने का माध्यम था। उन्होने 'चन्द्रकाता सतति' के उन्नीसवें हिस्से के अत मे लिखा था, "मैंने उपन्यास लिखने का कष्ट इसलिए उठाया है कि भारत के विद्वानों और खुशदिल प्रेमियो से बातें कर सकूँ।" अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने अपनी रचना को रोचक बनाया। रोचकता कल्पनात्मक साहित्य की आत्मा है। टी० एस० इलियट के अनुसार वह गद्य या पद्य की पहली आवश्यकता है।[5] खत्रीजी ने रोचकता के लिए अपने कथाशिल्प मे कौतूहल-तत्त्व को प्राथमिकता दी। उपन्यास में इस तत्त्व का वही स्थान है जो काव्य मे भाव का है। इसे ध्यान मे रखकर खत्रीजी ने अपने उपन्यासो का प्रणयन, विभाजन, गठन और प्रकाशन किया।

उन्हे लोगो की रुचि की जानकारी और परख थी। परम निष्ठा, सावधानी और उदारता के साथ उन्होने उसका प्रसादन किया। वे महान जन-कलाकार थे। उनकी कला (फ्लाबेयर की भाँति) कला के लिए नही थी, न ही (टाल्सटाय की भाँति) जीवन के लिए थी ; (डी० एच० लारेन्स की भाँति) अपने लिए तो कभी नहीं थी। वह (गोर्की की भाँति) जनता के लिए थी। उन्होने अपने पाठकों की राय ली थी कि 'चन्द्रकाता सतति' बढ़ाई जाय या नही। उसके उन्नीसवें हिस्से के अंत मे बम्बई से लेकर कलकत्ते

तक के मतदाताओ के नाम प्रकाशित किए गए, जिसमे ४४ इस पक्ष मे थे कि 'सतति' समाप्त न हो और ३८ उसके विपक्ष मे थे। जनमत का आदर किया गया। फलत: 'सतति' का अनावश्यक विस्तार हुआ।

वे अपने युग के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार थे। उनकी रचनाओ के अनेक सस्करण हुए 'चन्द्रकाता' की प्रतियाँ एक बार मे आठ हजार तक छपी थी और लगभग दो दशको मे उसके तैतीस सस्करण हो चुके थे। उसका अनुवाद कई भाषाओ मे हुआ और उसे पढने के लिए लोगो ने हिन्दी सीखी। उसके व्यापक प्रचार का उल्लेख इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका मे भी हुआ।[6] उसके बल पर हिन्दी-उपन्यास भारतीय उपन्यास का अग बन गया।

उनकी कृतियो का आकर्षण इसलिए बढ गया कि उन्होने उनमे रोमानी कथासाहित्य और उपन्यास के गुणो का समन्वय किया। उनका संसार अद्भुत होते हुए भी सामान्य और कल्पित होते हुए भी सत्य था। उन्होने रईसो की कहानी जनता की भाषा मे लिखी और उनका चित्रण जन-सामान्य स्तर पर किया। इसलिए वे विभिन्न वर्गों के पाठको के प्रिय हुए। उनके नायक-नायिका सार्वभौमिक चरित्र हैं। उनके साथ किसी देश और किसी युग के नर-नारी तादात्म्य स्थापित कर सकते है। उनकी 'चन्द्रकाता' या 'चन्द्रकाता सतति' विश्व-उपन्यास है। उनके सम्बन्ध मे यहाँ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के मत का उल्लेख कर देना पर्याप्त है :

हिन्दी के आरम्भिक काल से लेकर आज तक जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई है उनमे तुलसीकृत रामायण को छोड़कर और किसी पुस्तक का इतना प्रचार नही हुआ जितना चन्द्रकान्ता नामक पुस्तक का हुआ है।·· ·· ··सच पूछिए तो उपन्यासो के लक्षणो से यह लक्षित नही। न इसमे किसी समाज या समाज के किसी अश ही का चित्र है, न इसमे कोई ऐतिहासिक घटना ही है, न इसमें कोई अच्छी शिक्षा ही मिल सकती है, न इसके पाठ मे चरित्र-सुधार ही मे कोई सहायता पहुँच सकती है। तिस पर भी इस पुस्तक की लाखों कापियाँ आज तक बिक चुकी है।·· ··किस्से मे अलौकिक और अतिरजित बातो का जमघट है। भाषा बोलचाल की और बहुत ही सरल है। जिन घटनाओं का इसमे वर्णन है वे युवक-युवतियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुकूल हैं। इसकी कामयाबी, इसके अत्यधिक प्रचार—का यही कारण है। अकेली इस पुस्तक की बदौलत हजारो लड़कों और नवयुवको ने

हिन्दी लिखना-पढना सीख लिया । यही नही, उन्हें हिन्दी-नाटक और उपन्यास पढ़ने की चाट लग गई । हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिए यह बड़ी बात हुई ।[7]

"हरिऔध" जी के शब्दो मे "देवकीनन्दन खत्री के बाद यदि किसी ने हिन्दी जनता को अपनी ओर अधिक आकर्षित किया तो वे गोस्वामीजी के ही उपन्यास हैं ।"[8] विविध पाठको की रुचि का प्रसादन करने मे गोस्वामीजी ने हर सम्भव प्रयास किया था। यदि उन्होने अपने को "रसिकानुगामी" कहा है तो अपनी प्रशसा नही की है। वे रसिको के लिए कला की उपेक्षा करने मे भी सकोच नही करते थे। उन्होने 'स्वर्गीय कुसुम' मे वियोगान्त के प्रेमियों को नायक-नायिका की मृत्यु की सूचना देकर आगे पढना मना कर दिया, फिर उन्हें सयोगात के प्रेमियो के लिए एक ही वाक्य में जिला दिया। रसिको के अनुरोध की रक्षा के लिए उन्हें नायिका-भेद और नख-शिख वर्णन की पद्धति का पालन करना पडता था । वे एक ही रचना मे सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासो के उपादान का उपयोग इसलिए करते थे कि थोड़ा-बहुत सबका मनोरजन हो जाये । 'तरुण तपस्विनी' के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। वे ऐसी प्रेमकथा की सम्भावनाओ से परिचित थे जिसमे रोमानी कल्पना एव सामाजिक यथार्थ हो । इसलिए उन्होने इस उपन्यास मे मध्यकालीन पृष्ठभूमि मे आधुनिक ढग के कोर्टशिप का वर्णन करते हुए लिखा :

कदाचित एकोनविंशति शताब्दी की सती स्त्रियाँ इस कोर्टशिप से कुछ कुढ जायेंगी, पर हम क्या करे । ऐसा कौन-सा उपाय है जिससे सबके मन का परितोष किया जाय !!!

कुछ लोग बीते युग में नवीन रग-ढग की खोज करते थे, अतः गोस्वामीजी ऐतिहासिक भ्रान्ति करने को विवश थे। कुछ लोग नये युग में भी परम्परागत रूप-चित्रण के प्रशसक थे। उन्हें भी सन्तोष प्रदान करना था। 'रूपगर्विता पाठिका और रसिक पाठक' के लिए नख-शिख का वर्णन आवश्यक हो गया; यद्यपि कथा के लिए न तो उसकी आवश्यकता थी न उसके आलम्बन की, "चपला कृशांगी और कोमलावयवा थी, पर चमेली अपेक्षाकृत स्थूलांगी पर सुकुमार शरीरा थी। चपला के गोल गाल लालिमा लिए हुए थे, पर चमेली के समतल कपोल उस रस से कुछ फीके थे। चपला

के कुचयुगल कमल-कलिका-कल्प थे, पर चमेली के पयोधर परिपक्व बिल्व की भाँति विराजमान थे।"

पाठक-पाठिका दोनो का मन भरने के लिए एक ओर सुन्दरी के ललाट, भौंह, कान कामदेव के अस्त्र बना दिये गये हैं, दूसरी ओर शरीर के विभिन्न अगो के गहनो के नाम गिनाये गये हैं। कला की दृष्टि से जो दोष-पूर्ण लगता है वह युग-रुचि को ध्यान मे रखकर देखा जाये तो क्षम्य और सहज प्रतीत होगा। गोस्वामीजी की शक्ति और सीमा समकालीन पाठको की शक्ति और सीमा थी।

गहमरीजी ने जासूसी उपन्यास की रचना और नकल पाठको के लिए ही की। उन्होने 'बेकसूर की फाँसी' की भूमिका मे लिखा है कि अनेक हिन्दी प्रेमियो और पुलिस अधिकारियो ने उनसे कहा कि "ऐसी पुस्तको की बड़ी जरूरत है। इन पुस्तको से लोगों को बड़ा लाभ होगा और सबका पढ़ने मे जी भी लगेगा।" उन्होने उनके कथनानुसार कई उपन्यास लिखे, जिनका जादू देश से विदेश तक छा गया। "भारतवर्ष और विलायत के हिन्दी प्रेमियो ने उन्हे पढ़ा और कहा कि हर महीने ऐसे उपन्यास की पुस्तक छपे तो लोगो का बड़ा उपकार हो।" दो वर्षों के बाद 'हरिदास की गिरफ्तारी' के अन्त मे उन्होने सूचित किया कि उनके उपन्यास अहिन्दी-भाषी भी दूसरो से पढ़वाकर सुनने लगे हैं।

उन्होने विभिन्न प्रकार के पाठको का मन बहलाने के लिए विभिन्न ढग के जासूसी उपन्यास लिखे। जिनमे सनसनीखेज घटनाएँ थी उनसे साधारण पाठको का मनोरजन हुआ और जिनमे जासूसी पहेली थी उनसे बौद्धिक पाठको का। विभिन्न पाठको को अभिभूत करने के लिए उनके पास दो अस्त्र थे : भाषा और घटना।

जिस उपन्यास में नाटक के समान कुछ ठाट-बाट नही, कुछ लक्क दक्क सजावट नही, कुछ हाव-भाव नही केवल बातों से समझाना बतलाना है उसको पाठको का मन अपनाने के लिए दो ही चीजे हैं, एक भाषा दूसरी घटना।[9]

उनकी भाषा-शैली की सरल वक्रता उनके उपन्यास का मूल आकर्षण थी। उनकी धारणा थी कि "जिसको पढ़कर पाठक ने कह दिया कि यह तो गद्य है बस उसके लेखक का परिश्रम वही डूब गया।"[10]

मेहता लज्जाराम शर्मा की मान्यता थी कि "पाठको के चित्त पर जितना उत्तम चित्र नाटक वा उपन्यास से खिंच सकता है उतना लेखको और व्याख्यानो से काम नही चल सकता।"[41] यही कारण है कि पत्रकार होते हुए भी उन्होने उपन्यास को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। अपने वक्तव्य को रोचक बनाने के लिए वे गृह-जीवन की कथा मे लोकप्रिय उपन्यास के तत्त्वो का समावेश करते थे। वे ऐसी परिस्थितियो की योजना करते थे जिनसे अच्छे और बुरे पात्रो के चरित्र पर प्रकाश पड सके और इस प्रयास मे नायिका को अर्धनग्न करने या उसे वासना का शिकार बनाने मे उन्हे सकोच नही होता था। फलत: उनके उपन्यासो मे गृह-जीवन के प्रसगो की अपेक्षा साहसिक घटनाओ और अतिनाटकीय दृश्यो को प्रमुखता मिल जाती थी। उनके प्रकरणों के शीषक ही उत्तेजक है और उनके विषय का बोध कराते है। जिस उपन्यास का नाम 'आदर्श दम्पति' है उसके प्रकरणो के शीर्षक ये है, 'काम पीड़ित दारोगा', 'फँस गई', 'नाव डूब गई', 'गगा मे लाश', 'कुएँ मे सुन्दरी'। 'सुशीला विधवा' के प्रथम तीन प्रकरण इन शीर्षको मे है, 'रेल मे बलात्कार', 'प्रथम समागम', 'बाग मे अठखेलियाँ'। खासकर महिलाओ के लिए लिखे गये उपन्यासो मे अवैध प्रेम, बलात्कार आदि का वर्णन इस तथ्य का द्योतक है कि सोद्देश्य लेखक भी लोकरुचि की अवहेलना नही कर सकते थे।

लोकप्रिय उपन्यासो की कुछ सामान्य विशेषताएँ थी। उनमे प्रेम, साहसिकता और अपराध की सुखान्त कथाएँ रहती थी। कथा-विन्यास इस कौशल से किया जाता था कि उत्कठा बनी रहे। उत्कठा पात्रो की अपेक्षा घटनाओ के प्रति अधिक रहती थी। पाठको को हँसाने, रुलाने और अचम्भे में डालने के लिए विविध दृश्यो की योजना की जाती थी। नायक साहसी और नायिका सुन्दर होती थी लेकिन नायक मे भी कोमलता और नायिका में भी दृढता होती थी। उन्हें एक बार देखना उन्हे प्यार करना था। वीरता सुन्दरता के सामने झुक जाती थी। नायक-नायिका ऐसे होते थे कि पाठक-पाठिका उनसे एकात्म बोध कर सकें। अत मे पारितोषिक-वितरणोत्सव होता था और उसमे पति, पत्नी, बच्चे, उपाधि और खजाना का वितरण कर दिया जाता था। इस श्रेणी के उपन्यासो में साहित्यिक गुण का अभाव नहीं रहता था किन्तु उनसे शिष्ट पाठको को परितोष नहीं हुआ। उनसे उस स्तर के पाठकों का विशेष मनोविनोद हुआ जो दिन-भर के कामकाज की

कथा सुनाते है। सनसनीखेज घटनाएँ इनकी जान हैं। ये पाठको की उमड़ती हुई फौज को चटपटी खुराक देने के लिए आए, जैसा कि 'किशोरी नरेन्द्र' का परिचय दिया गया है :

उपन्यास चटनी का एक लजीला मसाला और रसिकों को आनन्द देने वाला पवित्र प्रेम प्याला

"माँग और आपूर्ति" के नियमानुसार उपन्यास के नाम पर कूड़े का प्रचार होने लगा। कहानी, जीवनी, आत्मकथा, गद्यकाव्य, इतिहास आदि उपन्यास का छद्मवेश धारण कर निकलने लगे। जिसने कलम उठाई उसने एक उपन्यास ही घसीट दिया। संख्या की वृद्धि के साथ गुण का ह्रास हुआ। राष्ट्रकवि की इन पक्तियो मे सत्य का अंश था .

आई कहानी भी न कहनी और हम इतना बके, 'जीवनप्रभात' न 'चन्द्रशेखर' एक भी हम लिख सके ।[13]

रुचि-निर्माण

उपन्यास-लेखक केवल पाठको की रुचि का प्रसादन करना नही चाहते थे। उनका लक्ष्य उच्चतर था। उन्हे उपन्यास के माध्यम से हिन्दी-भाषा के अभावों की पूर्ति और हिन्दी-पाठको की रुचि का निर्माण करना था। देवकी नन्दन खत्री ने 'चन्द्रकांता' की भूमिका मे लिखा था, "इन ऐयारो का बयान हिन्दी किताबो मे अभी तक मेरी नजरो से नही गुजरा। अगर हिन्दी पढ़ने वाले भी इस मजे को देख ले तो कई बातो का फायदा हो।" इसी प्रकार किशोरीलाल गोस्वामी ने 'सुलताना रजिया बेगम' की भूमिका मे यह बताया था कि "पढने वाले उपन्यास के साथ ही साथ कुछ-कुछ इतिहास का भी आनन्द लें जिसमे लोगो की रुचि केवल उपन्यास ही पर न रहकर इतिहास की ओर भी झुके, जिससे हिन्दी-भाषा मे जो इतिहास का बिल्कुल अभाव है, वह मिटे।" इन उक्तियो से स्पष्ट है कि तिलिस्मी-ऐयारी और ऐतिहासिक उपन्यासो के लेखक भी पाठकगण का चित्तविनोदन के साथ ही ज्ञानवर्धन करना चाहते थे।

महान लेखकों की यह विशेषता होती है कि वे युग की रुचि से प्रभावित होने के साथ-साथ उसे प्रभावित करने मे भी समर्थ होते है। इससे वे एक साथ ही युग के प्रतिनिधि और पथ-प्रदर्शक होते हैं। वे अपने आसपास

अपने पाठको का एक परिवार बसाते है और उनमे ऐसी रुचि उत्पन्न करते है कि वे उनकी रचनाओ का रसास्वादन कर सकें।

आदि उपन्यास-लेखको के सामने रुचि की कोई परम्परा नही थी, अत उन्हे स्वय उसका निर्माण करना पडा। उन्होने सस्कृत-फारसी कथा-साहित्य के पाठकों को 'उपन्यास-उर्वशी' से परिचित कराया :

यह उपन्यास-उर्वशी हिन्दी पाठक पुरुरवा को सुधारने आई थी। जब देखा कि पुरुरवा हातिमताई के किस्से और बुलबुले हजारदास्तां ही में उलझा हुआ है तो इन्द्र ने यह उर्वशी इसको दी।[13]

उन्नीसवी सदी के अतिम दशक से घटना-बहुल उपन्यासो का प्रचार और प्रभाव देकर विचारशील लेखको और पाठको की यह प्रतिक्रिया हुई कि वे साहित्य और समाज को ले डूबेंगे। उन्होने सुरुचि के पोषण के लिए भावात्मक उपन्यास के लेखन और अध्ययन पर बल दिया तथा उसे साहित्य की कोटि मे रखा।

आलोच्यकाल के आरम्भ से लेकर अंत तक उपदेश-प्रधान, मनोरंजन-प्रधान और भाव-प्रधान उपन्यासो के माध्यम से क्रमश· बौद्धिक, साधारण और साहित्यिक तीन प्रकार के पाठक मिले। इनमे साधारण कोटि के पाठको की सख्या सर्वाधिक थी। १९१७ में लक्ष्मण गोविन्द आठले ने मनोरंजन-प्रधान तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासो के सम्बन्ध मे लिखा था कि "हिन्दी-ससार मे सबसे अधिक उपन्यास यदि किसी विषय के पढे गए तो इसी विषय के।"[14] सर्वश्रेष्ठ तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री ने उपन्यास के लिए लोकरुचि निर्मित कर पाठक और पाठको से लेखक तैयार किये।

व्यक्ति और उसके माध्यम से समाज को उपन्यास ने व्यापक रूप से प्रभावित किया। कथात्मक नायक-नायिकाओ की नकल की गई, जैसा कि अधोलिखित अवतरण से सूचित होता है।

हमने कई मनुष्य ऐसे देखें हैं जो चन्द्रकान्ता के दो तीन पारायण किए बाद तेजसिह बन जाते हैं, पागलो की तरह पहेलियो से बातें करते है, पत्ता हिलता देख कांप उठते हैं, किसी गली का मोड़ देख चौंक उठते हैं, प्रत्येक वृक्ष को तिलिस्म और प्रत्येक खण्डहर को कैदखाना मानकर मित्रो के साथ बाग जाने में भी हिचकते है।[15]

'सरस्वती' (अप्रैल १९१२) मे प्रकाशित 'हिन्दी-साहित्य और समाज'

शीर्षक निबन्ध मे कामताप्रसाद गुरु ने यह विचार प्रकट किया है कि "उपन्यासों के बढ़ने से हम लोगो की रुचि यथार्थ की अपेक्षा अद्भुत की ओर अधिक बढी है।"

उपन्यास मे वर्णित जीवन के आदर्शानुसार व्यक्ति और समाज के आचार-व्यवहार मे परिवर्तन हुआ। उपन्यास पाठ्य होने के कारण विशेष प्रभावशाली होता है। जैसे उसका लेखक अपना भाव खुलकर व्यक्त करने मे स्वतन्त्र है वैसे ही पाठक दिवास्वप्न देखने मे। फिर, जैसे लेखक वास्तविक जीवन का अनुकरण उपन्यास मे करता है वैसे ही पाठक उपन्यास के काल्पनिक जीवन का अनुकरण करता है। वास्तविक जीवन मे उसे असमर्थता और असफलता का अनुभव होता है तथा सामाजिक एव नैतिक बन्धन मे रहना पडता है। उपन्यास-जगत मे आकर वह विवशता, कुंठा, भय और वर्जना का अभाव देखता है तथा शक्ति एव स्वतन्त्रता का अनुभव करता है। वह अपने को कल्पित परिस्थितियो मे रखकर पात्रो के साथ एकात्मक बोध करता है। उसकी यह सक्रिय सहानुभूति प्राप्त करने मे उपन्यासकार की कला की प्रभावशीलता निहित है।

उपन्यास ने विभिन्न श्रेणियो और अवस्थाओ के नर-नारियो को मुग्ध कर लिया। युवक-युवतियो के लिए तो वह खिलौना ही बन गया। गोपालराम गहमरी ने वार्षिक परीक्षा और गृह-कार्य को भूलकर उपन्यास पढने मे तल्लीन एक विद्यार्थी और एक वधू का उदाहरण देते हुए लिखा है :

बूढे और अभिज्ञ लाख समझाते है कि उपन्यास पढना अच्छा नही, यह साहित्य-सम्बन्धी विलास (literary luxury) मनुष्य को बेकार बना देता है, और लाख प्रबन्ध करते हैं कि घर मे उपन्यास न आने पाये पर उपन्यास है कि दिन-दिन बढता ही जाता है और घर-घर फैलता ही जाता है।[16]

उपन्यास को वर्जित प्रदेश मानना प्रकारन्तर से उसकी प्रभावशीलता को ही स्वीकार करना था। तथापि वह बहुत दिनो तक उपेक्षित रहा।

उपन्यास की उपेक्षा

उसकी लोकप्रियता ही उसके अनादर का कारण बन गई। सामान्य पाठकों के लिए वह नया देवता था लेकिन आलोचक उसे साहित्यिक अछूत समझते थे। जन्मकाल से ही उसे अपमान और विरोध के वातावरण मे पलना

पडा । १८८१ मे उसके स्वरूप पर व्यग्य करते हुए "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका" के सम्पादक ने लिखा था "सौ पन्ने का एक नाटक वा उपन्यास लिखा और उसका भाव देखा तो यह सिद्ध हुआ कि मुरगे चराने वाली एक बुढिया ठोकर खाकर मर गई ।"

वह विदेशी वस्तु होने से उपहास की सामग्री बन गया था । 'हिन्दी प्रदीप' (जनवरी-फरवरी-मार्च १८९६) मे 'नई गढ़त के नये अर्थ' मे उस पर कटाक्ष किया गया था :

पवित्र आचरण की पहली सीढी—पुनीत होटलो का भोजन
दान — —लेडी डफरिन फण्ड मे चदा
धर्मग्रंथ — —अग्रेजी की किताबें नोवेल्स आदि

उन दिनो उपन्यास पढना उतना ही बुरा समझा जाता था जितना होटल मे खाना, शराब पीना, नाच देखना और ताश खेलना बुरा समझा जाता था । एक विद्वान ने उससे होने वाली हानियो की पूरी सूची ही तैयार कर डाली और अन्तिम निर्णय सुना दिया कि वह सदा के लिए मिटा दिया जाय ।[17] प० सकलनारायण पाडेय ने यह बताया कि उसके कारण 'स्कूली लड़के' परीक्षाओ मे अनुतीर्ण हो जाते हैं और उसके पाठक, लेखक एव प्रकाशक पर कसकर कुठाराघात किया ।[18]

विचारी हिन्दी को चौपट करने और पाठकों को अकर्मण्य निरुत्साह तथा विलासी बनाने के लिए काशी मे कई एक उपन्यास के कार्यालय खुले है और उनमे से कई उपन्यास-सम्बन्धी मासिक-पत्र निकालते हैं ।

प्रेमचद अपने एक साथी के साथ तम्बाकू के पिण्डो की ओट में बैठकर हुक्का पीते थे और उपन्यास पढ़ते थे । प्रेमचंद की तरह अनेक युवको ने बड़े-बूढ़ो की नजरें बचाकर ही हुक्का पीने और उपन्यास पढने का शौक पूरा किया होगा !

सुधारवादी आलोचको और नीतिवादियो के अतिरिक्त कुछ उपन्यास-लेखकों ने स्वय अपने पात्रो को उपन्यास पढने के अधिकार से वचित कर विरोधियो का काम आसान कर दिया । प० लज्जाराम शर्मा ने अपनी नायिकाओ को कभी तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यास छूने नही दिया ।

यह उपन्यास के प्रति गलत दृष्टिकोण और पूर्वाग्रह का परिणाम था ।

उसे क्षणिक मनोरजन और अकर्मण्य विलासिता की सामग्री माना गया और यह समझा गया कि उसका अध्ययन करने से समय, चरित्र और जीवन तीनो, नष्ट होते है। मन्नन द्विवेदी ने 'रामलाल' मे उपन्यास-सम्बन्धी प्रचलित धारणा की ओर सकेत किया है। रामलाल उपन्यास पढने के लिए बदनाम है। उसे स्वामी शिवदास समझाते है कि "उपन्यास नही पढ़ना चाहिए, यात्रा, जीवन-चरित्र और इतिहास पढ़ने चाहिए।.... उपन्यास पढ़कर क्यो अमूल्य जीवन व्यर्थ कर रहे हो। योगवाशिष्ट पढ़ो।"

कुछ पाठको के समान कुछ लेखको की भी मान्यता थी कि उपन्यास मे केवल रूप-यौवन का चित्र, वासना की रगीनी और प्रणय की लीला रहती है, जैसा कि गहमरीजी के 'नये बाबू' की निम्न पक्तियो से ज्ञात होता है :

उपन्यास मे क्या-क्या बात होती है जानता भी है या कलम उठाकर दौड़ पड़ा उपन्यास मे मधुर हासिनी मनोरमा का मस्त मकरद चाहिए, कहा है ? कलित कपोलिका कल सभवा उन्नत उरोजा का करुण कीर्तन कहाँ है ? एक लाज की गठरी सिर पर लादे मुख छिपाये स्त्री पर लात बरसा दिए बस हो गया ?

बहुत दिनों तक यह समझा गया कि उपन्यास केवल कहानी सुनाते हैं और प्रेम की कहानी सुनाते है इसलिए उन्हे हलके मनोरजन का साहित्य माना गया तथा काव्य और नाटक की तुलना मे उन्हे कम महत्त्व दिया गया। आलोचक भी, जो प्रौढ पाठक होते है, उन्हे गम्भीर जीवन-दर्शन का वाहक मानने के लिए तैयार नही थे। शिष्ट पाठक लोकप्रिय उपन्यास के प्रति और साधारण पाठक साहित्यक उपन्यास के प्रति उदासीन रहे।

इस प्रकार की धारणा उन्नीसवीं सदी के अत से रोमानी, तिलिस्मी-ऐयारी और जासूसों के उपन्यासो के आगमन के बाद प्रचलित हुई। लोकप्रिय उपन्यास जिस उपेक्षाभाव से देखे गए उससे धीरे-धीरे सभी प्रकार के उपन्यास देखे जाने लगे और उपन्यास मात्र बदनाम हो गया। द्विवेदी-युग मे ललित साहित्य की अपेक्षा उपयोगी साहित्य के सृजन पर विशेष जोर दिया गया। द्विवेदीजी ने अपने सपादन काल मे 'सरस्वती' मे एक भी उपन्यास प्रकाशित नही होने दिया बल्कि व्यग्य चित्रो के माध्यम से उसका तिरस्कार किया। उन्होने १९०३ के फरवरी-मार्च अक मे 'साहित्य-सभा' नामक व्यंगचित्र मे यह दिखाया था कि उपन्यास का पेट सबसे अधिक निकला हुआ है और

जीवन-चरित की कुर्सी खाली है ।

अक्टूबर १९२२ की 'सरस्वती' मे उनका 'उपन्यास-रहस्य' शीर्षक निबन्ध प्रकाशित हुआ, जिसमे उन्होने उपन्यास की सीमा और सम्भावना पर विचार प्रकट किया :

उपन्यासो के द्वारा जितनी सरलता से शिक्षा दी जा सकती है उतनी सरलता से और किसी तरह नही दी जा सकती । काव्यो और नाटकों की भी पहुच जहाँ नही, वहाँ भी उपन्यास वेधडक पहुच सकते है । स्त्रियों और बच्चो के भी वे शिक्षक बन सकते है । मिहनत-मजदूरी करने वालो को भी वे घंटे भर सदुपदेश दे सकते हैं । लोगो को कहानी पढ़ने का जितना चाव होता है उतना और किसी विषय की पुस्तके पढने का नही होता ।

इन पक्तियो से सूचित होता है कि निर्मम साहित्यिक सुधारक भी उपन्यास की महत्ता के कायल हुए। अक्टूबर १९२२ मे ही 'माधुरी' मे प्रेमचद ने 'उपन्यास-रचना' नामक निबन्ध मे लिखा कि "उपन्यास अब हमारे साहित्य का एक अविच्छेद अग हो गया है ।"

इससे स्पष्ट है कि चन्द्रकाता-युग का अत और सेवासदन-युग का आरम्भ होते-होते उपन्यास की उपयोगिता और महिमा स्वीकार की गई और उसे जीवन एव साहित्य मे गौरवमय स्थान मिला ।

टिप्पणियाँ

1- ...."the pleasure of creation is renewed".

—Percy Lubbock : The Craft of fiction, p. 24

2- "Our society is at present divided into four classes viz, 1st the aristocratic, 2nd the middle, 3rd the agriculturist and 4th the serfs."

—Harishchandra Magazine, 15 Oct, 1873, p. 12

३- प्र० हिं० सा० स० कार्य-विरण—२, पृ० ८९

४- गुलाबराय : काव्य के रूप, पृ० १९८

5- "We can not afford to forget that the first—and not one of the least difficult—requirements of either prose or verse is that it should be interesting."

—Selected Essay, p. 432

6- Vol. 12, p. 240

७- "सरस्वती" सितम्बर १९१३, पृ० ५३५

८- "हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास", पृ० ७०५

९- देखिए "नाटक और उपन्यास"

१०-"साहित्य-सदेश", उपन्यास-विशेषांक, पृ० १७३

११-"स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी" की भूमिका

१२-"भारत-भारती" से उद्धृत, "सरस्वती", अप्रैल, १९१३

१३-"समालोचक" नवम्बर १९०३, पृ० ८६

१४-"हिन्दी भाषा मे उपन्यास", सप्तम हिं० सा० स० लेखमाला, १९१७

१५-"समालोचक", १९०३, पृ० ८४

१६-"समालोचक", अक्टूबर, पृ० १९०२

१७-प० विष्णुदत्त शर्मा : "उपन्यास से हानि", तृतीय हि० सा० सम्मेलन लेखमाला

१८-"हिन्दी-साहित्य की वर्तमान दशा", समालोचक, सितम्बर १९०२

१४

विश्व-उपन्यास के आलोक में

विस्तार एवं वैविध्य

आधुनिक युग उपन्यास का युग है। पूर्वकाल मे कविता और नाटक का जो स्थान था वह आज उपन्यास का है। किसी समय कविता साहित्य-जगत की "सामान्य दासी"[1] थी तथा धर्म, दर्शन गणित, व्याकरण, ज्योतिष और चिकित्सा-शास्त्र भी छन्दबद्ध थे। सभ्यता की एक अवस्था में नाटक उस विशाल दर्पण के समान था जो कला, विद्या, समाज, सस्कृति आदि को प्रतिबिंबित करता था। आज उपन्यास एक ऐसा वाहन है जिसमे आचार-शास्त्र से लेकर यौन-विज्ञान तक के लिए स्थान सुरक्षित है।

हिन्दी में उसका जन्म पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध मे हुआ पर वह इस वेग से आगे बढा कि विकास की अनेक अवस्थाओ को पारकर प्रमुख साहित्यिक विधा बन गया। हिन्दी-उपन्यास उस फल की तरह है जो देर से फूलता है और जल्द पक जाता है। यूरोपीय उपन्यास की तुलना में उसकी आयु अधिक नही हुई पर उसने कुछ दशको में ही शताब्दियो की यात्रा पूरी कर ली है। उसके अल्पकालीन इतिहास में यूरोपीय उपन्यास की सुदीर्घ परम्परा की झलक मिल जाती है। उसमें रूसी, फ्रेंच और अंग्रेजी-उपन्यासो की गहराई हो या न हो, विस्तार तो है ही। इस विकास और समृद्धि में आलोच्य-काल का योगदान अमूल्य है।

इस काल की साहित्यिक शक्ति का विशेष उपयोग उपन्यास के

उत्पादन मे हुआ। उसकी अपार सख्या ही उसकी महत्ता घोषित कर देती है। इसके अतिरिक्त उसमे विषय, शिल्प और शैली की अनेकरूपता है। उसके रचयिता सचेतन, अनुभवी और प्रतिभाशाली थे, इसलिए उनसे विविधता की विभूति मिली। उन्होने अपनी मातृभाषा के अभाव की पूर्ति की और अभिव्यक्ति के रूप मे उपन्यास की सम्भावना बढाई। जीवन से सीधा सम्पर्क रखने के कारण वे उसका वास्तविकता एव सम्पूर्णता के साथ चित्रण कर सके। उनके तरुण वशज या तो जीवन से दूर है या उसके किसी कोने मे चक्कर लगाते है, जैसे, अज्ञेयजी विदेशी लेखको का अनुकरण करते है[2] तो जैनेन्द्रजी अपना ही अनुकरण करने मे लीन है। उनकी रुचि कुछ सीमित वस्तुओ मे नही थी। उन्होने वर्जिनिया उल्फ का यह कथन चरितार्थ किया है कि "कथा साहित्य का उचित उपकरण नही होता। उसका उपकरण सब कुछ हो सकता है।"[3] उन्होने वर्तमान और अतीत से अपनी सामग्री ली और समाज के विभिन्न वर्गो का स्पर्श किया। वेश्या से लेकर विद्यार्थी तक उनकी परिधि मे आये। उनके हाथ मे आकर उपन्यास साहित्य का जनतात्रिक रूप बन गया। उन्होने अपनी रचनाओ मे काव्य, नाटक आदि की कला का समावेश कर परम्परा और नवीनता से सम्बन्ध स्थापित किया। उनमे से कुछ ने आधुनिक मनोवैज्ञानिक शिल्प को प्रत्याशित किया, कुछ उसकी कृत्रिम, यात्रिक पद्धतियों का उपयोग किये बिना अपने प्रयोजन की पूर्ति करते रहे। आज के नये लेखक प्रयोग के मोह मे पडकर परम्परा से विमुख हो रहे है। उन्होने साधन को साध्य समझ लिया है। शिल्प के प्रति उनका आग्रह सामाजिक उदासीनता, मानसिक पलायन और साहित्यिक ह्रास का द्योतक है। पुराने उपन्यास-लेखको की शैली मे हिन्दी का व्यक्तित्व झलकता था। उन्होने मुहावरो और कहावतो को सीधे लोक-जीवन से अपनाया था, न कि अपने उत्तराधिकारियो की भाँति पत्र-पत्रिकाओ और पुस्तको से। आज तो बोलचाल और साहित्य की भाषा मे कोई मेल ही नही दिखाई पड़ता।

उनके उपन्यास सामाजिक इतिहास हैं। सामान्यत: सामाजिक उपन्यास मे वर्तमान की, ऐतिहासिक उपन्यास मे अतीत की और तिलिस्मी उपन्यास मे भविष्य की झलक है। प्रथम कोटि के उपन्यास का अध्ययन करने से उन्नीसवी सदी के अतिम और बीसवी सदी के प्रथम चरण के भारतीय समाज का परिचय मिलता है। टाल्सटाय का 'वार ऐंड पीस' उन्नीसवी

शताब्दी उत्तरार्ध के रूस का महाकाव्यात्मक चित्र है तो लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्ध के भारत का। डौस पैसौस के 'यू० एस० ए०' मे वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ का अमेरिकन समाज प्रतिबिम्बित है तो प्रेमचद की 'प्रेमा' मे वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ का भारतीय समाज। थैकरे की भाँति किशोरीलाल गोस्वामी ने नगर के फैशनपरस्त वर्ग का यथार्थ चित्रण किया है। भुवनेश्वर मिश्र ने मिथिला का स्थानीय रग वैसे ही प्रस्तुत किया है जैसे विभूतिभूषण मुखोपाध्याय ने बगाल का, झावरचन्द मेघाणी ने गुजरात का, कृष्णचद्र ने कश्मीर का और तकषी ने केरल का किया है। ऐतिहासिक और अर्व ऐतिहासिक उपन्यास के अवलोकन से मुगलकालीन भारत का विराट दृश्य आँखो मे झूल जाता है मानो हम किसी विशाल पर्वत से हरे-भरे भू-भाग को देख रहे हो। देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी उपन्यास एच० जी० वेल्स के वैज्ञानिक रोमास की तरह कल्पना और सत्य के मिलन-बिन्दु हैं। उन्होने वैज्ञानिक आविष्कारो को प्रत्याशित किया है। इस प्रकार कुछ उपन्यासकार युग के साथ रहकर, कुछ उससे दूर जाकर और कुछ उससे आगे बढ़कर जीवन के विविध दृश्यों और दशाओ का प्रत्यक्षीकरण करते रहे।

मनुष्य के रूप

विशाल जीवन के चित्रण के लिए विशाल आधारफलक चाहिए, जो उपन्यास ही दे सकता है। वह विभिन्न देशो और विभिन्न युगों के विभिन्न प्रकार के मनुष्यो का परिचय दे सकता है। अमेरिकन उपन्यास-लेखक एव आलोचक लाइनल ट्रिलिग का कहना है कि "उससे मानव के वैचित्र्य और उस वैचित्र्य के महत्त्व का जैसा ज्ञान प्राप्त हुआ है वैसा दूसरी साहित्य-विधा से नही।"[4] मनुष्य के लिए मनुष्य ही सबसे बड़ी पहेली है। उसका चरित्र इतना जटिल है कि वह अपने को भी पहचान नही पाता है। उपन्यास मनुष्य को मनुष्य का सच्चा ज्ञान प्रदान कर पारस्परिक सहानुभूति, सद्भावना और सहिष्णुता उत्पन्न करता है। उसकी महानता का रहस्य मानव-चरित्र का रहस्य खोलने मे है। वह नाटक के समान मनुष्य के बहिरग का स्पर्श कर नहीं रह जाता, उसके अन्तरग मे भी प्रवेश करता है और इस तरह उसके व्यक्तित्व को पूर्णता मे प्रस्तुत करता है। आलोच्यकाल का उपन्यास-साहित्य नानाविध पात्रों की आकर्षक चित्रशाला है, जिसमे राजा-रानी से लेकर

दास-दासी तक दिखाई पड़ते है। व्यक्ति की अपेक्षा प्ररूप को विशेष महत्त्व मिला है। नर-नारी के बाहरी रूप-रग पर उपन्यासकार इतने मुग्ध हैं कि वे उसका सूक्ष्म और वास्तविक चित्रण किए बिना रह नही सकते। वे कभी-कभी एक ही वाक्य मे पूरा चित्र उतार देते हैं। वे पात्रो का मनोविश्लेषण भी करते हैं पर उनके भाव-विचार से उनके क्रियाकलाप और वार्तालाप पर अधिक ध्यान रखते हैं। उपचेतन-अचेतन की गुत्थियाँ सुलझाये बिना भी मानव-चरित्र का अध्ययन करना उनकी विशिष्टता है। उन्हे पाखण्डियो की प्रकृति के उद्घाटन मे पूरी सफलता मिली है। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि सकारात्मक पात्रो की सृष्टि है। अपने आदर्श के लिए जीने और मरने वाले उनके ये पात्र सघर्ष के आघात से टूट सकते है पर लचक नही सकते। उनके पात्र सक्रिय, मुखर, सामाजिक, और मानवीय होने के कारण सजीव प्रतीत होते हैं। उनकी कृतियो के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मनुष्य कितना सुन्दर और शक्तिशाली पर कितना दुर्बल है।

उपन्यास के नर-नारी वास्तविक जीवन के नर-नारी से अधिक वास्तविक, प्राणमय और आकर्षक होते हैं। उनसे एक बार परिचय हो जाने के बाद परिचय मित्रता मे परिणत हो जाता है। उनकी भाषा, वेश, रहन-सहन, आचार-विचार की विभिन्नता मित्रता मे बाधा नही डालती। जब वे मित्र बन जाते हैं तब उनकी वाणी, आकृति, मुसकान, यहाँ तक कि उनके पैर की आहट पहचानी जा सकती है। हम कभी उनके पीछे-पीछे चलते हैं, कभी उनके आगे-आगे, कभी उनके साथ हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी गुनगुनाते हैं। वास्तविक जीवन मे ऐयार, जासूस, चोर, डाकू, खूनी, वेश्यागामी के साथ रहना कौन पसन्द करेगा? लेकिन जब देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी और अवधनारायण के उपन्यासो मे उनके दर्शन होते हैं तब इनके कार्य, भाव और विचार हमारे मन को अभिभूत कर लेते है।

इस प्रभावशीलता का कारण यह है कि "कथा के चरित्रो और मन के बीच जड़ता का वह पर्दा नही होता जो एक मनुष्य के हृदय को दूसरे मनुष्य के हृदय से दूर रखता है।"[5] उपन्यास मे मानवजाति की विभिन्नता में एकता का दिग्दर्शन कराया गया है। इससे कृत्रिम भेदभाव के आवरण से मानव का मूल रूप उभर कर आया है। विक्टर ह्यूगो, टाल्सटाय, डिकेंस, फार्स्टर, ग्राहम ग्रीन, रोमा रोलाँ, लाला श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री, ब्रजनन्दन सहाय और प्रेमचन्द

की दृष्टि मे मनुष्य दोपाया पशु न होकर मनुष्य है । उन्हे मनुष्य की अच्छाई मे अटूट आस्था है । मन्नन द्विवेदी, ब्रजनन्दन सहाय और देवकीनन्दन खत्री के नायक रामलाल, लालचीन और भूतनाथ इस सत्य के प्रतीक है कि मनुष्य परिस्थिति मे पडकर भले ही विपन्न, पराजित और पतित हो जाय परन्तु उसकी विपन्नता, पराजय और पतन मे भी महिमा है । इसी प्रकार नोबेल-पुरस्कार विजेता हेमिग्वे ने अजेय मानवता का जयगान किया है, "मनुष्य की सृष्टि पराजय स्वीकार करने के लिए नही हुई है । वह नष्ट किया जा सकता है, पराजित नही किया जा सकता ।"[6] जो पात्र जितने मानवीय होते है वे उतने ही विश्वसनीय, जीवत और प्रभावशाली होते है । उनके साथ ही पाठको का तादात्म्य होता है ।

जीवन की पूर्ण प्रतिलिपि

किसी भी उपन्यास में जीवन और कला के तत्त्व होते हैं । विवेच्य-कालीन उपन्यासो मे कला का उत्कर्ष भले ही न हो, जीवन का यथार्थ अवश्य है । यथार्थ चित्रण के नाम पर विश्व-उपन्यास मे तीन प्रमुख वाद[7] प्रचलित हुए हैं : प्रकृतवादी यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद और मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद । इन वादो से दूर रहते हुए भी प्रारम्भिक उपन्यासकार जीवन की पूर्ण प्रतिलिपि कर सके क्योकि उनमे महान लेखको की सच्चाई, निर्भीकता और शक्ति थी ।

प्रकृतवादी के लिए कला 'अपदार्थ का अन्वेषण'[8] है । उसे अप्रिय जीवन-सत्य का चित्रण प्रिय है । वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने का दावा करता है और एक कैमरे की तरह समान तटस्थता के साथ स्तनपान कराती हुई माता एव अर्धनग्न स्नान करती हुई युवती का रूप अकित करता है । वह मानता है कि मनुष्य मूलतः पशु है । जोला ने 'नाना' मे एक पात्र से कहलाया है कि "सभी स्त्रियाँ स्वच्छद मछलियाँ है" ("आल वीमेन आर लूज फिश") । प्रकृतवाद तुच्छ और नगण्य वस्तुओ का सविस्तर वर्णन करता है । वह अनुभव के कुरूप पक्ष तक सीमित होने के कारण 'यथार्थवाद से पलायन'[9] है । उसकी कुछ विशेषताएँ किशोरीलाल गोस्वामी, चुन्नीलाल ज्योतिषी आदि की रचनाओ मे है । पर ये पाश्चात्य प्रकृतवादियों से प्रभावित[10] प्रतीत नही होते क्योकि उसके समान इनमे वस्तुनिष्ठता एव वातावरण के सूक्ष्म विवरण का आग्रह नहीं है । इन्होने नग्न यथार्थ पर सुधारवादी आदर्श

का झीना आवरण डाल दिया है। इनके उपन्यासो मे कलात्मक तटस्थता न होकर सामाजिक आलोचना है।

प्रकृतवादी बाह्य जगत का सतही चित्रण करता है तो समाजवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आलोक में उसमे निहित मूल तत्त्व की परख करता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार सृष्टि के मूल मे दो परस्पर विरोधी तत्त्व सघर्षरत रहते है। वर्तमान समाज मे दो सघर्षरत शक्तियाँ हैं : पूजीवाद और समाजवाद। समाजवादी यथार्थवादी पूँजीवाद के चिताभस्म पर वर्ग-हीन समाज की स्थापना करना चहता है, अतः वह शोषक वर्ग की धज्जियाँ उडाकर नव-निर्माण करनेवाली जन-शक्ति का जयगान करता है। उसका विषय सामाजिक, दृष्टिकोण राष्ट्रीय और चित्रण यथार्थ होता है। हिन्दी मे समाजवादी यथार्थवाद का प्रचार द्वितीय महायुद्ध के बाद प्रगतिवादी आंदोलन के साथ हुआ। प्रथम महायुद्ध के पूर्व के उपन्यास लाल उपन्यास नही हैं पर उनमे सामाजिक यथार्थ का रग खूब गाढा है। उनके रचयिताओ ने समाजवादी उपन्यासकार की भाँति निम्न वर्ग से बौद्धिक सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की है, न ही समाज की वेदी पर व्यक्ति का बलिदान किया है। वे राहुल सांकृत्यायन की भाँति ऐतिहासिक भौतिकवाद के आधार पर वर्ग-सघर्ष की गाथा प्रस्तुत नही कर सके और न यशपाल तथा अचल के समान राजनीतिक रोमास लिख सके। उन्होने अपनी कला को प्रचार का माध्यम न बनाकर व्यापक मानवतावादी भूमि पर प्रतिष्ठित किया। यही कारण है कि उनके निम्नवर्गीय पात्र निर्जीव खिलौने नही बन सके।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्त्व देते है और उसके मानसिक वातावरण का यथातथ्य चित्रण करते है। किसी विशिष्ट मानसिक दशा या क्षण मे पात्रो की चेतना के प्रवाह मे पड़ने वाले स्फुट प्रभावो को हू-ब-हू लिपिबद्ध कर देने की प्रवृत्ति उनकी कला का अर्थ और इति है। इसलिए आधुनिक युग के एक मनीषी ने उन्हे लक्ष्य कर कहा है कि "मन की अबाध और असम्बद्ध गति स्वप्न के समान है। जो अपने स्वप्न की बातें सुनाते हैं वे समाज की बला है।"[11] वे कामप्रवृत्ति को मनुष्य के क्रियाकलाप की मूल प्रेरक शक्ति मानते हैं। अवैध और अस्वाभाविक यौन-सम्बन्धो का वर्णन करना उन्हे विशेष प्रिय है। वे यथार्थवाद के नाम पर मैथुनवाद का प्रचार करते हैं। उनके उपन्यासो में मानव-तत्त्व का ह्रास हो गया है। उनके पात्र दमित वासना के पुतले, हीनता-ग्रंथि के शिकार,

नपुंसकता के अवतार, तपेदिक के मरीज, नरक के कीडे और मानव-समाज के कोढ होते हैं।[12] वे मनोविश्लेषण-शास्त्र का चर्वित-चर्वण करने के बाद भी मनुष्य का जो रूप प्रस्तुत करते हैं वह सामान्य नहीं होता।[13] उनमे से कुछ तो उपन्यास के रूप मे मकडे की तरह अपने ही खण्डित व्यक्तित्व का गंदा साहित्यिक जाल फैलाते हैं। उनके नायक उनके ही भूत होते हैं।

आलोच्यकाल के उपन्यास "निजी दस्तावेज" न होकर सामाजिक दस्तावेज हैं। उनके पात्र समाज-निरपेक्ष इकाई नही हैं बल्कि एक साथ ही प्ररूप और व्यक्ति हैं। उस काल के जीवन मे सरलता थी, अतः पात्रो मे विशेष जटिलता नही है और यदि है तो सामाजिक सदर्भ मे ही दिखाई गई है। नायक व्यक्तिवादी और निराशावादी न होकर ऐतिहासिक मनुष्य हैं। लाला श्रीनिवासदास, रामजीदास वैश्य, ब्रजनन्दन सहाय, प्रेमचंद, अवध नारायण आदि दास्तवेस्की, जार्ज इलियट, हेनरी जेम्स, शरच्चन्द्र और जैनेन्द्र की भाति चरित्र-चित्रण में स्वाभाविक मनोविज्ञान की मार्मिक व्यजना करते हैं। उनमे मानव-स्वभाव को परखने की सहज शक्ति है। उन्होंने मनोविश्लेषण का चश्मा लगाकर अन्तर्मन मे प्रवेश नही किया। उन्हे मानव-मन का ज्ञान मनोविज्ञान की छोटी-छोटी पोथियो से नही, जीवन के अनुभव से प्राप्त हुआ। यही कारण है कि उनके चरित्र मे सजीवता और स्वाभाविकता है। हिन्दी मे जिन उपन्यासो पर मनोविश्लेषण–प्रणाली के पश्चिमी बिल्ले चिपकाए जाते है वे अचेतन के अन्वेषक फ्रायड, युग, एडलर के सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिए लिखे गए प्रतीत होते हैं। 'जहाज का पछी' का नायक 'ग्रीक पुराण के नरगिस (?) की तरह अपने रूप पर स्वय मुग्ध' है। द्वारकाप्रसाद की 'मौत और जिन्दगी' मे नीलिमा अपने पति के मनचले साथी हेम से प्रेम करने लगती है क्योंकि हेम का रूपरंग उसके पिता के समान है। मनोवैज्ञा–निक सूत्रो के आधार पर मानवीय सम्बन्ध की कल्पना करने वाले फ्रायड के ये चेले अपने पूर्वजों के समान मानव-चरित्र का पूर्ण और यथार्थ चित्र अकित नही कर सके। मनुष्य की सभी क्रियाओ और अभिव्यक्तियो की मनोवैज्ञानिक व्याख्या नही की जा सकती।

प्रकृतवादी, समाजवादी और मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद क्रमशः नग्नवाद, हसिया-हथौड़ावाद और यौनवाद के पर्याय हैं। इनका दृष्टिकोण तटस्थ, सीमित और रुग्ण है। प्रारम्भिक हिन्दी–उपन्यास मानवीय यथार्थ की भूमि

पर स्थापित है। समाज और व्यक्ति वहां समग्रता मे चित्रित हैं। उनका संसार विचित्र और विस्तृत है, जहा साधारण परिस्थिति मे सरल नर-नारी सामान्य जीवन व्यतीत करते हुए दिखाई पडते है। उनमे विश्वजनीन आकर्षण है। उनकी रचना किसी मतवाद के प्रतिपादन के लिए नहीं बल्कि व्यापक जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति के लिए हुई है। उसमे सामाजिक आलोचना भी नैतिक आवेश या सहज उदारता से की गई है न कि सामाजिक या राजनीतिक सिद्धान्त के आग्रह से।

विचार-दर्शन

उपन्यास एक कला है और कला अनुकृति ही नही पुन: सृष्टि भी है। कलाकार की सृजन-प्रक्रिया कोई यान्त्रिक प्रक्रिया नही है कि वह एक कैमरे के समान जीवन का अनुकरण करके रह जाय। वह अपनी कल्पना से जीवन का पुनर्निर्माण करता है और जब पुनर्निर्माण करता है तब उसकी सृजन-प्रक्रिया मे ऐसा तत्त्व भी विद्यमान रहता है जो यथार्थ जीवन में नही है। उस तत्त्व को जीवन दृष्टि, आदर्श या उद्देश्य कहते हैं। हर कलाकृति मे यथार्थ और आदर्श का सयोग अपेक्षित है।

प्रारम्भिक उपन्यासकारो का यथार्थ आदर्श से अभिन्न है। वह प्रेमचन्द के उस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के निकट है जिसमें पाश्चात्य यथार्थवाद और भारतीय आदर्शवाद का समन्वय हो गया है। फ्रेंच यथार्थवादी स्टेण्डल का कहना था कि "उपन्यास एक दर्पण है जो राजमार्ग पर बढा जा रहा है। कभी उसमें आकाश की नीलिमा और कभी मार्ग की कीचड़ और गन्दगी दिखलाई पड़ती है।"[14] इस कथन मे तटस्थ यथार्थवाद की ध्वनि है। प्रेमचन्द के मत से साहित्य समाज का दर्पण ही नही, दीपक भी है।[15]

प्रकृतवादी गदी गलियो मे भटकाकर वेश्यालय ले जाता है, समाजवादी कारखानो का धुआ दिखाता है और अतश्चेतनावादी अचेतन और उपचेतन का अँधेरा कोना दिखाकर अस्पताल की सैर कराता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी आँखें खोलकर मनोरम स्थान मे पहुचा देता है। प्रारम्भिक उपन्यासकारो ने ऐसा ही किया है। उनका उद्देश्य किसी घटना या क्रिया का यथातथ्य वर्णन कर देना ही नही है बल्कि उसके सम्बन्ध मे उनकी जो प्रतिक्रिया है उसे पाठको के पास पहुंचाकर उनमे वैसी ही प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देना है। उसके लिए वे अपनी पुस्तको मे प्रकट होकर कथा और पात्रों

से शिक्षा ग्रहण करने के लिए पाठकों को सम्बोधित करना भी अनुचित नही मानते हैं। उनकी पुस्तकें जीवन के प्रति उनके स्वस्थ एव सजग दृष्टिकोण को व्यक्त करती हैं।

उपन्यासकार जीवन का सरस व्याख्याता है। वह अपने वक्तव्य को ग्राह्य बनाने के लिए विशिष्ट परिस्थिति मे विशिष्ट पात्रो की अवतारणा करता है। सौन्दर्य और नीति, मनोरजन और शिक्षा के परस्पर विरोधी तत्त्वो का जैसा सामजस्य वह करता है वैसा दूसरे कलाकार नहीं कर पाते। जहा उपदेशक, प्रचारक और पर्चेबाज असफल हो जाते है वहा उपन्यासकार सफल होता है। डी० एच० लारेंस की यह गर्वोक्ति अर्थहीन नही है कि "एक उपन्यासकार की हैसियत से मैं अपने को संत, वैज्ञानिक, दार्शनिक और कवि से श्रेष्ठ मानता हू।"[16]

उपन्यासकार अपने विचारो से समाज में क्रांति कर सकता है, रूढ़ियों के जर्जर बन्धन को छिन्न-भिन्न कर नये मान-मूल्यो की सृष्टि कर सकता है और पराधीनता, विषमता तथा शोषण की लपटो से घिरी हुई मानवता को स्वतन्त्रता, समता का सदेश देकर नये मनुष्य की प्रतिष्ठा कर सकता है। आलोच्यकालीन उपन्यासकार अपनी कला की सम्भावनाओ से परिचित थे। उसे उन्होने जीवन-सग्राम का अस्त्र बनाया।

उपन्यास लिखना कोई लड़को का खेल नही है। उपन्यास से समाज, देश व भाषा को बड़ी हानि-लाभ पहुचता है। उपन्यास भी एक तरह पर समाज, देश व भाषा का इतिहास बनाने वाला होता है। इसलिए उपन्यास लिखना बडी जिम्मेदारी का काम है।[17]

उन्हे अपने दायित्व का बोध था। उन्होने क्रान्तिकारी, सुधारक और निर्माता की भूमिका अदा की। उन्होने सामयिक समस्याओ का समाधान प्रस्तुत कर सुधारवादी आंदोलन को आगे बढ़ाया, ऐतिहासिक घटनाओ का वर्णन कर राष्ट्रीयता का भाव उदीप्त किया, उपेक्षितो के प्रति सहानुभूति दिखाकर मानवता का प्रचार किया और व्यक्तिगत जीवन की कथा लिखकर समाज में व्यक्ति की महत्ता बढाई।

विश्व के महान उपन्यासकार महान विचारक रहे है। टाल्सटाय, विक्टर ह्यूगो, डिकेंस, स्टो, रोमारोला, लारेंस, हक्सले के समान श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, मेहता लज्जाराम शर्मा,

ब्रजनन्दन सहाय और प्रेमचन्द ने उपन्यास को अपने विचार-दर्शन का वाहन बनाया है। उनके उच्च विचार उनकी कृतियो को साहित्य के उच्चस्तर पर स्थापित करते है और शिल्पगत दोषो से मुक्त करते हैं। उनके जमाने मे न तो नैतिक पतन चरम सीमा पर पहुचा था और न सकारात्मक मानव-मूल्यो का विघटन हुआ था। अत: उनकी रचनाओ मे वे मूल्य निहित है जो मनुष्य को सभ्य और सुसस्कृत बनाये हुए है और जो भारतीय साहित्यकारों के आदर्श रहे है। उन्होने परम्परा से प्राप्त विचार-सम्पदा की रक्षा की है और उसका उपयोग वर्तमान आवश्यकताओ के लिए किया है।

कथारस

अपने विचार को सहज स्वीकार्य बनाने के लिए ही उन्होने कहानी को रोचक बनाया और पात्रो मे जान भर दी। उनमे कुछ तो ऐसे है जिनके लिए कहानी उपदेश देने का बहाना है और कुछ उसे विशेष महत्त्व देते है। पहली श्रेणी के लेखको का मुख्य उद्देश्य पाठको का सुधार करना है, दूसरी श्रेणी के लेखको का मनोरजन करना। वस्तुत: उपन्यास का प्रथम और प्रधान कार्य मनोरजन करना है। उसकी लोकप्रियता उसकी मनोरजकता पर निर्भर है। उसके अत्यधिक प्रचार का कारण यह है कि उसे गम्भीर अध्ययन का विषय नही माना जाता। उसे कौतूहल शान्त कर दिल बहलाने वाला खिलौना, जीवन का दुख-दर्द भुलाने वाली मदिरा और अधूरी लालसा पूरी करने वाला स्वप्नलोक माना जाता है। उससे प्राप्त मनोरजन साहित्यिक मनोरजन है, जो किसी भी सस्ते मनोरजन से भिन्न है। मनोरंजक होने से उसकी महत्ता कम नही होती बल्कि प्रेमचद के शब्दो मे 'उपन्यास का सबसे बड़ा गुण उसकी मनोरजकता है।"[18] यह गुण कहानी और उसकी कला मे है। कहानी के बल पर ही पाठको के कथा-प्रेम की सहजात प्रवृत्ति को तुष्ट किया जाता है और उन्हे प्रभाव ग्रहण करने की मुग्धावस्था मे लाया जाता है। बढिया उपन्यास मे कुछ न कुछ जासूसी तत्त्व अवश्य होता है। तिलिस्मी-ऐयारी, जासूसी और रोमानी उपन्यास इसलिए अधिक नही पढ़े गये कि पाठकों की रुचि युद्ध, षड्यन्त्र, हत्या, चोरी, बलात्कार आदि की घटनाओं मे थी बल्कि इसलिए कि घटनाओ की नाटकीयता उन्हे उत्तेजित करती थी। आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास मे बाह्य घटना या क्रिया का अभाव-सा है। इसलिए उसमे वह रस और ताजगी नही है जो पुराने उपन्यासों में है। कहानी रोचक नही हो तो कहने का ढंग ही रोचक होना चाहिये। सभी उपन्यासकार

कहानी सुनाते हैं पर सभी कलात्मक ढंग से नही सुनाते क्योंकि कवि की भांति कथाकार भी जन्म लेते हैं। संसार के जाने-माने उपन्यासकार स्टेण्डल, विक्टर ह्यूगो, ड्यूमा, टाल्सटाय, गोर्की, हार्डी और एच० जी० वेल्स, विष्णु शर्मा, गुणाढ्य, ईसप, बोकैशियो, चारस और सहस्रजनीचरित्रकार के समान जन्मजात कथक्कड हैं। इनकी पंक्ति मे श्रद्धाराम फिल्लौरी, देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, प्रेमचद और अवध नारायण निर्विवाद रूप से स्थान पाने के अधिकारी हैं।

इनके समान अन्य उपन्यासकार सफल कहानीकार नही थे बल्कि उनमे अनेक मध्यम कोटि के थे। परन्तु सभी अपने पाठको के प्रति उत्तरदायी और ईमानदार थे तथा अपने कथ्य को रोचक बनाने का यत्न करते थे। यही कारण है कि उनके उपन्यासों मे कथा-कौशल नही है तो वर्णन-कौशल है। जिन दिनो मनोरंजन के विविध साधन—रेडियो, सिनेमा, टेलीवीजन, सचित्र पत्रिका—नहीं थे उन दिनो उनकी कृतियों ने जनता का मनोरजन किया और अन्य साहित्यिक विधाओ मे स्पर्धा करते हुए समाज और साहित्य मे अपना स्थान बनाया। उनका ऐतिहासिक महत्त्व इसमे है कि उन्होने उन्नीसवी सदी की लोकप्रिय कथाओ से पाठको की रुचि उपन्यास की ओर मोड दी और उनकी माँग पूरी की। देवकीनन्दन खत्री ने 'चन्द्रकाता सतति' के अत में यह लिखकर अपनी ही नही बल्कि अपने समकालीन लेखको की भावना प्रकट की थी ·

एक समय था कि लोग सिंहासनबत्तीसी बैतालपचीसी आदि कहानियों को विश्रामकाल मे रुचि से पढ़ते थे, फिर चहारदरवेश और अलिफलैला के किस्सो का समय आया, अब इस ढग के उपन्यासो का समय है। अब भी वह समय दूर है जब लोग बिना किसी प्रकार की न्यूनाधिकता के ऐतिहासिक पुस्तकों को रुचि से पढेंगे। जब वह समय आवेगा उस समय कथा सरित्सागर के समान 'चन्द्रकाता' बतलावेगी कि एक वह भी समय था जब इसी प्रकार के ग्रथों से ही बीरप्रसू भारत भूमि की सतान का मनोविनोद होता था। भगवान उस समय को शीघ्र लावें।

उस समय उपन्यास कैसा लोकप्रिय साहित्य था इसकी कल्पना आज नही की जा सकती है।उसका रसास्वादन सामूहिक रूप से किया जाता था। उस समय जिस प्रकार लोकप्रियता महानता की कसौटी थी उस प्रकार आज

नही है। हिन्दी-उपन्यास के इतिहास मे देवकीनन्दन खत्री की लोकप्रियता एक अविस्मरणीय घटना है। प्रथम पाठको के लिए तो उनके उपन्यास सर्वस्व थे ही, आज भी जो एक बार पढते और दो बार सोचते हैं वे कमरे को बन्द कर या रात मे सिरहाने से निकाल कर उन्हे पढ़ते हैं।

पुराने और नये लेखक

देवकीनन्दन खत्री से लेकर नागार्जुन तक के उपन्यास इस तथ्य का द्योतन करते हैं कि पाठकों ने उन लेखको का हार्दिक स्वागत किया है जो परम्परा से विछिन्न नही हैं। जो परम्परा से कटकर सर्वथा नूतन प्रयोग करते हैं वे अपने इर्द-गिर्द पाठको और लेखकों का दल तैयार करने मे सफल नही होते, भले ही कुछ समय के लिए कुछ पाठकों और लेखकों का ध्यान आकृष्ट कर लें।

आज के लेखक अपने पूर्वजो से प्रेरणा ले सकते है।उन्हे पूर्व परम्परा को पुनरुज्जीवित नहीं करना है पर उसमे जो उत्तम और महान है उसे अपनाकर आगे बढना है। प्रारम्भिक उपन्यास-लेखको मे जो उद्देश्यगत एकता, सजगता और सच्चाई थी उसका आज अभाव लक्षित होता है। उन्होने जिस साहस के साथ युग की चुनौतियो को स्वीकार किया और अपने दायित्व का निर्वाह किया वह स्तुत्य है। आज नवीनता के नाम पर उपन्यास मे कहानी की अपेक्षा की जाती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास मे तो उसकी हत्या ही कर दी गई है। यदि उपन्यास को जीवित रखना है। तो उसमे कहानी को अपेक्षित स्थान देना होगा। साथ ही उसकी योजना पर ध्यान देना होगा क्योंकि उसके बिना उपन्यास प्रभावशाली नही होता है। उसकी पहचान कथातत्त्व से ही होती है। द्वितीय महायुद्ध के बाद आत्मकथा और रिपोतजि उपन्यास का छद्मवेश धारण कर प्रकाश में आए हैं। इसलिए आलोचको ने उन्हें पहचानने मे भूल की है। आकाशवाणी, दिल्ली से १९५७ के हिन्दी साहित्य पर अपनी दृष्टि डालते हुए शिवदानसिंह चौहान ने यह फैसला सुनाया था कि "परती परिकथा सन ५७ में प्रकाशित हिन्दी साहित्य की कृतियों मे सर्वश्रेष्ठ तो है ही, मेरी दृष्टि में अबतक के हिन्दी उपन्यासो मे भी सर्वश्रेष्ठ है।" पर वास्तविकता यह है कि रेणु की यह बहुचर्चित रचना 'उपन्यास न होकर रिपोर्ताज है। इस प्रकार उपन्यास कही जानेवाली कोई रचना असबद्ध घटनाओ का गट्ठर है, कोई अस्वस्थ एव विकृत मन का

प्रलाप है, कोई कूड़े के ढेर है। अस्तु कहानी-कला और निर्माण-कौशल में पुराने लेखक नये लेखकों से बढ़े-चढ़े हैं और उनसे आज भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है, यद्यपि उनके रहस्यमय और कौतूहलवर्धक कथानक को आदर्श मानकर चलना समीचीन नही होगा।

उन्होंने जीवन को निकट से देखा, परखा था। उनकी कला जीवन के सामान्य स्तर पर प्रतिष्ठित थी। नई पीढी के कई उपन्यासकार जीवन से कटकर कला की ओर मुड गए हैं। उनके उपन्यास या तो उनके ही व्यक्तिगत जीवन का विस्तार हैं या उनमे जन-जीवन से विच्छिन्न वर्ग-विशेष का कृत्रिम जीवन प्रतिबिबित है। कला की दृष्टि से उत्कृष्ट होते हुए भी जीवन-हीन उपन्यास दो कौडी के होते हैं।

नये उपन्यासों की एक विशिष्टता यह मानी जाती है कि उनमें पुराने उपन्यासो की भाँति लेखक उपस्थित नही रहता। इस तथ्य को अस्वीकार नही किया जा सकता है। पर पुराने उपन्यासकार समकालीन उपन्यासकारो की तरह अपने पात्रो मे अपने व्यक्तितत्व को आरोपित नहीं करते थे। उनके पाठक उनके पात्रो के मुह की ओर देखते थे, इनके पाठक इनके मुँह की ओर देखते हैं क्योंकि ये अपने अहं को पात्र पर इस तरह लाद देते हैं कि स्वयं एक पात्र बन जाते हैं। ये अपने उपन्यास के आप ही नायक हो जाते हैं। जबतक उपन्यासकार नाटककार की तरह अपने पात्रों से तटस्थ नहीं रहेगा तबतक उनके व्यक्तित्व की रेखाएँ उभर नही पाएँगी। वह किसी पात्र से तादात्म्य स्थापित कर सकता है पर पात्र के गुण-अवगुण पात्र के होंगे, उसके नही होगे। प्रारम्भिक उपन्यास-लेखको में अनुभूति की वह तीव्रता थी जो पात्रो को स्वतत्र व्यक्तित्व प्रदान करती है।

उनके नायक सच्चे अर्थ मे नायक हैं। उनमे महाकाव्य के नायकों की विशेषताएँ हैं। वे परिस्थिति से संघर्ष करते है, उस पर विजय प्राप्त करते हैं और उसे बदलने मे सफल होते है। उनके व्यक्तित्व मे आकर्षण इसलिए है कि उन्हे सामाजिक सदर्भ मे चित्रित किया गया है, उनमे चितन-शीलता की अपेक्षा क्रियाशीलता अधिक है और वे या तो प्रगतिशील शक्तियो के प्रतिनिधि हैं या लेखक के आदर्श के प्रतीक हैं। समकालीन उपन्यास होते हैं। उनमे नायक के नाम पर बहुधा कायर, नपुन्सक, रोगी, शराबी और व्यभिचारी की अवतारण की जाती है।

पुराने उपन्यासकार सकारात्मक सस्कृति मे पले थे और उन्हे मनुष्य की शक्ति एव क्षमता मे विश्वास था, इसलिए वे सकारात्मक पात्रो की सृष्टि करने मे समर्थ हुए । उनके स्त्री-पात्रो का सकारात्मक चरित्र विशेष प्रेरणा-दायक है । निम्न वर्ग के नर-नारी मे भी उन्होने चरित्र की दृढता दिखाई । पू जीपतियो के नौकरो की अपेक्षा सामत वर्ग के नौकरों में उन्हे अधिक ईमान-दारी मिली । सियारामशरण गुप्त, यशपाल, अश्क और नागार्जुन ने निम्न वर्ग से अपने नायक लिए हैं फिर भी आधुनिक उपन्यासकार सकारात्मक पात्रो की सृष्टि मे रुचि नही लेते । यदि वे अपनी कला मे महाकाव्य के गुण का समावेश करना चाहते हैं तो उन्हे अपने पूर्वजो के समान वीर और उदात्त चरित्र की कल्पना करनी चाहिए ।

जहाँ आरम्भिक उपन्यासकारो ने अनुभव की पूर्णता और समृद्धि से उपन्यास को महाकाव्यात्मक गरिमा प्रदान की वहाँ उसे राष्ट्रीय रूप भी दिया । उनका दृष्टिकोण भारतीय, चित्रण यथार्थ एवं सजीव, शैली सहज सरल, और विषय युग की रुचि और आवश्यकता के अनुकूल है । उन्होने रूप से वस्तु को, कला से नीति कोऔर कल्पना से सत्य को अधिक महत्त्व दिया । उनके उत्तराधिकारी उनकी स्वस्थ, सशक्त परम्परा को आगे बढाकर ही अपने सामाजिक दायित्व का पालन कर सकते हैं ।

टिप्पणियाँ

१– काडवेल ने आदिकालीन कविता को maid-of-all-work की सज्ञा दी है।
—Illusion and Reality, p. 14

२– जिन बातो के लिए लारेंस बदनाम है उनकी चर्चा हिन्दी मे कर अज्ञेयजी ने नाम कमा लिया। यदि उनमे लारेंस की प्रखर विचार-शक्ति, अव्यक्त पीडा, गहन अनुभूति, काव्यात्मक आवेश और वर्णन-कला होती तो उनके प्रशंसक सही मानी मे उन पर गर्व कर सकते।

3– "The proper stuff of fiction" does not exist; everything is the proper stuff of fiction.
—The Common Reader, p. 194

4– It taught us, as no other genre ever did, the extent of human variety and the value of this variety.
—Liberal imagination, p. 222

५– प्रेमचद : "साहित्य का उद्देश्य", पृ० ४२

6– 'But man is not made for defeat', he said, 'A man can be destroyed but not defeated'.
—The old man and the sea (1955 Ed), p. 103

७– उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्ध मे फ्लाबेय, जोला, मोपासाँ और गनकर्टबंधु ने प्रकृतवाद का प्रवर्तन किया। उनसे प्रभावित होकर जार्ज मूर, आनल्ड बेनेट, जार्ज गिसिंग ने अग्रेजी मे प्रकृतवादी उपन्यासो की रचना की। अमेरिका में इस परम्परा को स्टीफेन क्रेन, ड्रेजर, फ्रैंक नारिस ने आगे बढाया।

... .

गोर्की की 'माँ' (१९०६) ने जिस यथार्थ को जन्म दिया उसका नाम स्टालिन ने समाजवादी यथार्थवाद रखा। लेनिन, मार्क्स और गोर्की के विचार समाजवादी यथार्थवाद के प्रेरणा-स्रोत हैं। रूस में शोलोखोव, फादयेव, फेदिन, अस्त्रोवस्की और इल्या एहरेनबुर्ग, अमेरिका में हावर्ड फास्ट, भारत में कृशनचंदर, अब्बास, मुल्कराज आनद, गोपाल हलदार, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, अंचल, अमृतराय, नागार्जुन आदि समाजवादी यथार्थवादी हैं।

... ...

आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास का आरम्भ महायुद्ध के आस-पास प्रकाशित प्रस्त, डोरोथी रिचर्डसन और जेम्स ज्वायस की रचनाओं से माना जाता है।

—देखिए, Leon Edel : The psychological Novel, p. 11

8– 'Art is the quest for the useless'

—फ्लावेय

9– '....retreat from realism'.

—Howard Fust : Literature and Reality, p. 20

१०–प्रस्तुत लेखक डा० श्रीकृष्णलाल के इस विचार से सहमत नही है कि "अंग्रेजी के ही प्रभाव से कुछ लेखको ने हिन्दी मे भी प्राकृतवाद का प्रचार किया। चतुरसेन शास्त्री, बेचनशर्मा 'उग्र', इलाचन्द जोशी और चन्द्रशेखर पाठक इस प्रकार के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक हैं।"

—"आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास", पृ० ३१५

11–"The unrestrained movements of the mind are like dreams. People who tell their dreams are public nuisance".

—C.E.M. Joad : Guide to modern thought, p 251

१२–"सुनील-एक असफल आदमी" का सुनील
"पर्दे की रानी" की निरजना
"नदी के द्वीप" का भुवन
"शेखर–एक जीवनी" की शशि
"प्रेत और छाया" का पारसनाथ (जो स्वय कहता है–"किसी गुणवती और शीलवती सुन्दर स्त्री का पातिव्रत खण्डित करने में हम नरक के कीडो की सबसे बड़ी महत्वाकाक्षा की पूर्ति होती है।")

ज्वायस के "फिनिगन्स वेक" का इयरविकर (जो अपने पुत्र और पुत्री को पिता की दृष्टि से नही देखता है।)

१३–"नदी के द्वीप" के भुवन की तरह बात-बात मे इलियट और लारेंस की कविता बघारने वाले कितने वैज्ञानिक डाक्टर हमारे देश मे हैं? अंग्रेज लेखक फार्स्टर के "ए पैसेज टू इण्डिया" का भारतीय पात्र डा० अजीज कवि होने के बावजूद, इतना असामान्य नही है।

14– "A novel is a mirror that goes along a high road. Sometmes it reflects the blue of the sky to your eyes, sometime the mud and filth of the road".

१५–"साहित्य का उद्देश्य", पृ० ३९

16–"Being a novelist I consider myself superior to the saint, the scientist, the philosopher and the poet, who are all great masters of different bits of man alive but never get the whole hog",

—'D.H. Lawrence', p. 105

१७–माधव केसोट : "किरण शशी" की आलोचना, मनोरंजन", एप्रिल १९१३

१८–"मानिक मदिर" (१९२९) का "अनुवचन"

१

परीक्षण, सूची एवं सूचना

विवेच्यकाल के उपन्यासो के सम्बन्ध मे प० अम्बिकादत्त व्यास की 'गद्यकाव्य मीमासा', 'मिश्रबन्धुविनोद', डा० श्यामसुन्दर दास कृत 'हिन्दी के निर्माता', डा० माताप्रसाद गुप्त के 'हिन्दी पुस्तक-साहित्य', बाबू ब्रजरत्नदास के 'हिन्दी-उपन्यास-साहित्य' और डा० राजबली पाण्डेय द्वारा सम्पादित 'हिन्दी मे उच्चतर साहित्य' मे सूचनाएँ मिलती है। पहली पुस्तक में प्रकाशन-काल-सम्बन्धी भ्रान्तियाँ हैं। दूसरी और तीसरी पुस्तको मे प्रकाशनकाल का उल्लेख नही है। 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' की सूची मे विस्तार और प्रामाणिकता होते हुए भी लेखको और रचनाओ के नामों मे यत्र-तत्र अशुद्धियाँ हैं, जैसे, लज्जाराम मेहता के बदले 'लोलाराम मेहता' छप गया है और गहमरीजी की 'सरकटी लाश' 'सरकती लाश' बन गई है। शोधकार्य मे सामग्री क निरीक्षण-परीक्षण अत्यन्त आवश्यक है। आधार-ग्रंथो की प्रामाणिक सूची वे अभाव मे एक भ्रान्ति से दूसरी भ्रान्ति उत्पन्न होती जाती है। 'हिन्दी-पुस्तक साहित्य' की भूले 'हिन्दी मे उच्चतर साहित्य' मे दुहराई गई हैं। दोनों ं नवाबराय की 'प्रेमा' (१२०७) का उल्लेख नवलराम के 'प्रेम' (१९०७) ह रूप मे हुआ है, जो भ्रान्तिमूलक है। शायद इनकी सहायता लेने के कार शिवनारायण लाल श्रीवास्व के 'हिन्दी-उपन्यास' मे गहमरीजी के उपन्यार की अमित सख्या, प्राचीनता और दुर्लभता शोध और सूची-निर्माण में श्र एवं समय की अपेक्षा रखती है। वे जहाँ तक उपलब्ध हो सके और उन सम्बन्ध मे जो सूचनाएँ मिल सकी उनकी जाँच-पड़ताल के बाद सूची प्रस्तु

की गई है, फिर भी यह अंतिम नही कही जा सकती है। इसमे निम्नलिखित बातो का पालन किया गया है।

१– मौलिक उपन्यास मे पहले लेखक का नाम देकर रचना और प्रकाशन के स्थान-काल का उल्लेख किया गया है।

२– अनूदित उपन्यास मे पहले अनुवादक का नाम देकर अनूदित रचना, उसके प्रकाशन के स्थान-काल और मूल लेखक या रचना या दोनो का निर्देश किया गया है।

३– कही-कही प्रकाशन-स्थान के बदले उन पत्र-पत्रिकाओ के नाम है। जिनमे उपन्यास प्रकाशित हुए।

४– साधारणतः प्रकाशनकाल प्रथम सस्करण का काल है और ईस्वी सन् मे अकित है।

५– टिप्पणियाँ कोष्ठको मे दी गई हैं।

६– सकेताक्षर इस प्रकार है :

अ०	अनुल्लिखित (प्रकाशनकाल)
उ० सा०	हिन्दी मे उच्चतर साहित्य
ग० मी०	गद्यकाव्य मीमासा
हिं० नि०	हिन्दी के निर्माता
हि० उ० सा०	हिन्दी-उपन्यास-साहित्य
हिं० पु० सा०	हिन्दी पुस्तक-साहित्य

क—मौलिक उपन्यास

अंबिकादत्त व्यास

आश्चर्य वृत्तांत	भागलपुर	१८९४

(व्यासजी ने 'निज वृत्तांत', पृ० ४९ में 'स्वर्ग सभा', १८९१ नामक अपने 'विलक्षण ब्रजभाषा उपन्यास' का उल्लेख किया है। इसका हिन्दी रूपांतर १९१८ में काशी से निकला। इसे उपन्यास न कहकर कथा कहना उचित होगा। ग० मी० की सूची में 'कथा कुसुम कलिका', 'उपदेश लता' आदि का समावेश किया गया है पर ये कथाएँ हैं।)

अंबिकाप्रसाद गुप्त

सच्चा मित्र (२ भाग)	काशी	१९०६

अखोरी कृष्णप्रकाश सिंह

वीर चूड़ामणि	कलकत्ता	१९१५

अनिरुद्ध चौबे

चंपकवरणी	मुरादाबाद	१९०४

अमृतलाल चक्रवर्ती

चंदा	प्रयाग	१९०३
सती सुखदेई	कलकत्ता	१९०८

(उ० सा० में अमृतलाल चक्रवर्ती के 'उपन्यास कुसुम' और 'चंदा' नाम के दो भिन्न उपन्यासों का उल्लेख है, पर 'उपन्यास कुसुम' पत्र है जिसमें 'चंदा' प्रकाशित हुआ है।)

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

प्रेमकांता	काशी	१८९४
ठेठ हिन्दी का ठाठ	पटना	१८९९
अधखिला फूल	पटना	१९०७

अवध नारायण		
विमाता	दरभंगा	१९१५
आत्माराम देवकर		
त्रैलोक्य सुन्दरी	काशी	१९०९
आदर्श मित्र	खुरई	१९१४
मनमोहिनी	जबलपुर	१९१४
माया मरीचिका	जबलपुर	१९१५
आत्माराम साहब		
धर्म दिवाकर	दिल्ली	१९१३
ईश्वरीप्रसाद शर्मा		
कोकिला	काशी	१९०८
हिरण्मयी	काशी	१९०८
स्वर्णमयी वा जैसी करनी वैसी भरनी	,,	१९१०
मागधी कुसुम वा सरला सुन्दरी	,,	१९११

(उत्तमसिंह 'होनहार', लखनऊ, १८९७, ३३ पृष्ठो की कहानी है। उ० सा० मे उसकी गणना उपन्यास मे की गई है।)

उमराव सिंह गुप्त		
प्रेमलता या आदर्श दम्पत्ति	प्रयाग	१९१२
भाई बहन	,,	१९१३
आदर्श बहू	,,	१९१३ द्वि० सं०
उमराव सिंह गुप्त		
प्रण पालन		

("गृहलक्ष्मी", वर्ष २, दर्शन २, १९१२ से प्रकाशन)

एक उपन्यास का प्रेमी		
पति की स्त्री	लाहौर	अ०
एक बी० ए०		
उर्दू बेगम	प्रयाग	१९०५
एक साध्वी सती पतिप्राणा अबला		
सुहासिनी	काशी	१८९०
एक हिन्दी सेवक		
मेरी सूरत	अमपुर	

एच० एस० गुप्त		
प्रेम का फल	काशी	१९१०
एस० एन० जैनी		
निर्मला	छपरा	१९०५
ओंकारनाथ वाजपेयी		
शांता	प्रयाग	१९१२
लक्ष्मी	प्रयाग	१९१३
कमलाप्रसाद		
भयानक भूल वा कनक कामिनी	पटना सिटी	१९०४
कुलकलंकिनी	काशी	१९०५
कार्तिकप्रसाद खत्री		
दीनानाथ	मथुरा	१८९९
कालीचरण शर्मा		
सेवाजी व रोशनआरा	बरेली	१९१३
काशी प्रसाद		
गौहर जान	काशी	१९११
किशोरीलाल गोस्वामी		
प्रणयिनी परिणय	काशी	१८९०
त्रिवेणी वा सौभाग्य श्रेणी		

(लेखक के कथनानुसार 'प्रणयिनी परिणय' के बाद १८८८ में लिखित और १८९० मे 'बिहार बंधु' मे प्रकाशित। १९०७ मे 'उपन्यास' मासिक मे पुस्तकाकार प्रकाशित।)

स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी

(१८८९ मे लिखित, कुछ अश 'सारसुधानिधि' और कुछ 'विज्ञ वृन्दावन' मे १८८९ मे प्रकाशित, देखिए ग्रथकार की 'दो दो बातें'। 'सारसुधानिधि' मे कब छपना आरम्भ हुआ, यह नही बताया गया है। 'विज्ञ वृन्दावन' मे 'कुसुमकुमारी' का प्रकाशन नवम्बर १८९१ से आरम्भ होकर जनवरी १८९२ मे समाप्त हुआ था, न कि १८८९ मे। १९०१ मे काशी से पुस्तकाकार प्रकाशित 'स्वर्गीय कुसुम

वा कुसुमकुमारी' उसका ही परिवर्द्धित रूप है।)

हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी

(लेखक के अनुसार इसका प्रकाशन १८९० के 'हिन्दोस्थान' मे आरम्भ होकर कई सख्याओ मे समाप्त हुआ। काशी से १९०४ मे पुस्तकाकार प्रकाशित।

कमोदिनी

('विज्ञ वृन्दावन', १८९२–९३ मे प्रकाशित।)

किशोरीलाल गोस्वामी

लीलावती	काशी	१९०१
राजकुमारी	,,	१९०२
तारा व क्षत्रकुल कामिनी	,,	१९०२
लवगलता वा आदर्शबाला	,	१९०३
चपला वा नव्य समाजचित्र	,,	१९०३
कनक कुसुम वा मस्तानी	,,	१९०४
सुलताना रजिया बेगम व रगमहल मे हलाहल	,,	१९०४
चन्द्रावली वा कुलटा कुतूहल	,,	१९०४
चन्द्रिका वा जड़ाऊ चम्पाकली	,,	१९०४
हीराबाई वा बेहयाई का बोरका	,,	१९०४
कटे मूड की दो दो बातें	,,	१९०४
मल्लिकादेवी वा बगसरोजिनी	,,	१९०५
तरुण तपस्विनी वा कुटीरवासिनी	,,	१९०५
लखनऊ की कब्र वा शाही महलसरा	,,	१९०६
जिन्दे की लाश	,,	१९०६
पुनर्जन्म या सौतिया डाह	,,	१९०७
सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई	वृन्दावन	११०९
माधवी माधव वा मदनमोहनी	,,	१९०९
नौलखाहार	'मर्यादा'	१९११
लाल कुवर वा शाही रगमहल	प्रयाग	१९१३

('इदुमती वा वनविहगिनी उपन्यास', १९०६ उपन्यास नही, १५

पृष्ठों की कहानी है। हिं० पु० सा० में उसे उपन्यास की सूची में सम्मिलित किया गया है।

'लावण्यमयी', १८९१ मे 'बिहार रहस्य', 'भोजपुरी की ठगी', 'हास्यपर्णा', 'ठगिनी', 'त्रिवेणी' का विज्ञापन है। प्रथम चार उपन्यास प्रकाशित हुए या नही, इसका पता नही चलता है। 'लीलावती' की पाद टिप्पणियो मे तीन उपन्यासो की सूचना है : 'राजगृह की सुरंग', 'बनारस रहस्य' और 'कुलकलकिनी'। इनके दर्शन नही हुए हैं।

आलोच्यकाल के बाद प्रकाशित उपन्यासो मे 'अंगूठी का नगीना', १९१८, 'खूनी औरत का सात खून', १९१९ और 'गुप्त गोदना', भाग २-३, १९२२-२३, उपलब्ध हैं।

कृष्णलाल वर्मा

चम्पा	गोहाना	१९१६

केदारनाथ शर्मा

तारामती	मथुरा	१९०१

कुँवर लक्ष्मीनारायण

मंजरी	अलीगढ़	१९०६

कुँवर हनमंत सिंह

मेरी दुखगाथा	आगरा	१९१५

('गृहस्थ-चरित्र', १९०९ मे पाँच स्वतन्त्र कहानियाँ हैं। इसे हिं० उ० सा० मे उपन्यास मान लिया गया है।)

गंगाप्रसाद गुप्त

अब्दुल्ला का खून	काशी	१८९३
नूरजहाँ वा ससार सुन्दरी	,,	१९०२
कुँवरसिंह सेनापति (दो भाग)	,,	१९०३

गंगाप्रसाद गुप्त

वीर पत्नी अथवा रानी संयोगिता	काशी	१९०३
वीर जयमल वा कृष्णकांता	,,	,,
लक्ष्मी देवी	,,	१९१०
वीर हम्मीर	,,	१९१३

('रानी भवानी', १९०४ बगाल की एक सती नारी का जीवन-चरित है, उपन्यास नही।)

गगाप्रसाद खत्री

महिला जीवन	भरतपुर	१९१३

(गयाप्रसाद की 'दुनिया', बाँकीपुर, १९०३ हिं० उ० सा० और उ० सा० मे उपन्यास की कोटि मे रखी गई है। वस्तुतः इसमे कहानियो द्वारा स्त्री-धर्म की शिक्षा दी गई है।)

गिरिजानन्दन तिवारी

विद्याधरी	काशी	१९०४
पद्मावती	,,	१९०५
सुलोचना	,,	१९०६

गोकुलनाथ शर्मा 'औदीच्य'

पुष्पवती	काशी	१८९४

गोकुलानन्दप्रसाद वर्मा

पवित्र जीवन	लखनऊ	१९०६
मोती	,,	?

गोपालदास वरैया

सुशीला उपन्यास	बम्बई	१९०८

गोपालराम गहमरी

चतुर चंचला	रीवाँ	१८९३
हेमप्रभा	'भाषा भूषण'	१८९३

(अर्ध मौलिक। बाद मे वैंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित)

नये बाबू	जबलपुर	१८९४

(अर्ध मौलिक, यद्यपि हिं० नि० मे मौलिक कहा गया है।)

सौभद्रा	कलाकाँकर	१८९६

(इसमे छोटे साइज के १९ पृ० हैं। लेखक के अनुसार यह 'क्षुद्र उपन्यास' है।)

संदूक का मुर्दा	'जासूस'	१९००
बेकसूर की फाँसी	,,	,,
सिरकटी लाश	,,	,,
डबल जासूस	,,	,

डबल चोर	'जासूस'	१९००

(ये सभी अर्ध मौलिक है। हिं० नि० मे इन्हें अन्य ग्रन्थ के आधार पर लिखित बताया जाना ठीक ही है। उसमें 'गाड़ी मे खून' और 'खूनी कौन है' को मौलिक उपन्यास की सूची मे रखा गया है। वास्तव मे ये २४ और १९ पृष्ठो की कहानियाँ हैं।)

जमना का खून	'जासूस'	१९०१
भयकर चोरी	,,	,,

('जासूस की भूल' और 'थाना की चोरी' मे क्रमशः ३३ और २० पृष्ठ है।)

इन्द्रजालिक जासूस	'जासूस'	१९०२

गोपालराम गहमरी

('अधे की आँख', 'जालराजा', 'जासूस की चोरी', 'जाली काका', 'मालगोदाम मे चोरी' मे क्रमश. १५, १७, १५, १२, १२, ३७ पृष्ठ हैं।)

जासूस पर जासूस	'जासूस'	१९०३
डाक्टर की कहानी	,,	,,
खूनी की खोज	,,	,,
डाक पर डाका	,,	,,
घर का भेदी	,,	,,

('सती शोभना' और 'ऐयारो की लीला' में क्रमश. २१, १९ पृ० हैं।)

चक्करदार चोरी	'जासूस'	१९०४
केतकी की शादी	,,	,,
रूप सन्यासी	,,	,,

('लडका गायब', ३८ पृ०)

लटकती लाश	'जासूस'	१९०५
हम हवालात मे	,,	,,
खूनी गायब	,,	,,

('कोचवान का खून' कहानी है।)

कटा सिर	,,	१९०७

('ठगों का ठाट', फरवरी १९०७, हिं० नि० मे मौलिक उपन्यास बताया गया है पर यह छोटी-छोटी रोचक कहानियों का संग्रह है।

'विकट खूनी', मार्च १९०७ उनतीस पृष्ठो की कहानी है। जासूस, १९०९ मे प्रकाशित 'विफल प्रयास', 'हीरो का कठा', चिट्ठी की चोरी', 'केंचुए के बिल मे साँप' क्रमश: २४, २०, ३० और ३७ पृष्ठो के है।)

गोपालराम गहमरी

त्रिवेणी	'जासूस'	१९१०
नेमा	"	१९१२
बलिहारी बुद्धि	"	"
मरे हुए की मौत	"	"
अर्थ का अनर्थ	"	१९१२-१३
खूनी की रिहाई	"	१९१३
जोडा जासूस	"	"
बेवादल का बज्र	"	"
मत्तो और पत्तो	"	१९१४
जासूस की बुद्धि	"	"
जासूस की ऐयारी	"	"
तीन जासूस	"	१९१५

('रहस्य विप्लव' के नाम से पुन. प्रकाशित जिसका दूसरा नाम 'जासूसी तिगड्डा' भी है।)

मुहम्मद सरवर की जासूसी	"	"
चक्करदार खून	"	"
घड़े मे थाली	"	"

(लगड़े की सैर' और 'हीरे की धुकधुकी' कहानियाँ है)

ठनठन जासूस	"	१९१६
कुन्दन लाल	"	१९१७
जासूस की डायरी	"	१९१२ ?
अपनी रामकहानी	"	"
देवी सिंह	काशी	१९०४
भोजपुर की ठगी	काशी	अ०
गुप्तभेद	बबई	१९१३

गेरुआ बाबा	काशी	१९१४
गोपाललाल खत्री		
अलबेला रागिया	काशी	१९०५
गोबिन्दराय तैलग		
मदनमोहिनी	गया	१९११
गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य		
भीषण भविष्य	मथुरा	१९०९
गौरचरण गोस्वामी		
ताया का खुन	कलकत्ता	१९१३

(इसमें २० पृष्ठ हैं। "जालीकुजीलाल", "विचित्र जाल" "चोरी है कि दगाबाजी" मे इससे भी कम पृष्ठ हैं पर इन्हे हिं० उ० सा० मे उपन्यास बताया गया है।)

चन्द्रशेखर पाठक		
रमाबाई	चुनार	१९०७
मदालसा	काशी	१९०७
अमीर अली या ठग वृत्तांत	कलकत्ता	१९११
शशिबाला का भयंकर मठ	"	"
विलासिनी विलास		
शैव्या		
रामायण रहस्य या रामराज्य	कलकत्ता	१९१२
चन्द्रशेखर पाठक		
वारांगना रहस्य	कलकत्ता	१९१४–१७
हेमलता	"	१९१५

(चन्द्रसेन जैनी का "विचित्र उपन्यास अर्थात् बुढ़ापे का व्याह",१९०६ कहानी है। इन्होंने एच० एस० जैनी नाम से भी लिखा है।)

चम्पालाल जौहरी		
वियोगिनी	सखवा	अ०
चक्रपाणि त्रिपाठी		
सरला उपन्यास	काशी	१९०५

चतुर्भुजसहाय		
कुमारी चन्द्रकिरण	काशी	१९०८
चाँदकरण शारदा		
कालेज होस्टल	अजमेर	१९१६
चुन्नीलाल खत्री		
मूर्ख और बुद्धिमान	काशी	१९१२
चुन्नीलाल ज्योतिषी		
मिस्ट्रीज आफ शेखावाटी	महेन्द्रगढ (पटियाला)	१९०९
चुन्नीलाल तिवारी		
प्रेमी महात्म्य	कलकत्ता	१९०८
छबीलेलाल गोस्वामी		
जावित्री	वृंदावन	१९१६
("पहले" स्त्री-दर्पण", १९१३—१४ मे प्रकाशित।)		
जंगबहादुर सिंह		
विचित्र खूनी	काशी	१९०९
शेरसिंह	काशी	१९११
जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी		
वसंत मालती	कलकत्ता	१८९९
जगन्नाथ मिश्र		
लतिका मधुप	काशी	१९१५
जगन्नाथ शरण		
आनन्द सुन्दरी	छपरा	१८९५
नीलमणि	छपरा	१८९६
जमुनाप्रसाद		
दुर्भाग्य परिवर्तन	नरसिंहपुर	१९१३
जयरामदास गुप्त		
बिना सवार का घोड़ा	काशी	१९०४
चम्पा	,,	१९०४
लंगड़ा खूनी	,,	१९०७
भूतों का डेरा	,,	

जयरामदास गुप्त

किशोरी वा वीरबाला	काशी	१९०७
नवाबी परिस्तान वा वाजिद अलीशाह	,,	१९०७
काश्मीर पतन	,,	१९०७
मायारानी	,,	१९०८
कलावती	,,	१९०९
देवी या दानवी	,,	१९०९
वीर वरांगना वा आदर्श ललना	,,	१९०९
रानी पन्ना वा राजललना	,,	१९१०
कनकलता	,,	१९१३
राजदुलारी	,,	१९१५ के पूर्व
चन्द्रशाला वा युवती चोरी	,,	१९२१ द्वि० स०
जहर का प्याला वा राजराजेश्वरी	,,	
रोशनआरा वा चांदनी और अंधेरा	,,	अ०

('कहकहे दीवार', १९१३ चुटकुलो का सग्रह है। 'तिलिस्मी बुर्ज' के पृष्ठ पर एक मनोरजक उपन्यास लिखा है पर वह १०॥ पृष्ठों की कहानी है।)

जयरामलाल रस्तोगी

सौतेली माँ या अन्तिम युवराज	काशी	१९०६
ताजमहल या फतहपुरी बेगम	किशनगढ	१९०७

(ज्वालादत्त शर्मा कृत 'कनकरेखा', १९१६ उ० सा० मे उपन्यास की श्रेणी मे है लेकिन है कहानी सग्रह।)

जालिम सिंह

रामप्रताप उपन्यास	लखनऊ	१९१६
ब्रह्मदर्पण	,,	१९१७

जैनेन्द्र किशोर

कमलिनी	काशी	१८९४
सुकुमाल	काशी	१९०५
गुलेनार	,,	१९०७
मनोरमा	बम्बई	१९०८

जैनेन्द्र किशोर

वीरेन्द्र कुमार अथवा चाँदी का तिलस्म	काशी	१९०७
सत्यवती	बिठूर	

झाबरमल दास का

चन्द्रकुमारी	बम्बई	१९०९
केशर	,,	१९१४

ठाकुर इच्छचद शाहपुरीय

लीलावती	लाहौर	
कलावती	,,	
कृष्णाकुमारी	,,	

(प्रकाशन काल का उल्लेख नही है पर ये आलोच्यकाल के उपन्यास लगते हैं।)

ठाकुर जगमोहनसिंह

श्यामास्वप्न	बम्बई	१८८८

(नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से १९५४ मे पुन. प्रकाशित : सम्पादक—डा० श्रीकृष्णलाल।)

(ठाकुर प्रसाद खत्री की 'लखनऊ की नवाबी', १९०६ इतिहास है।)

ठाकुर युगलकिशोर नारायणसिंह

राजपूत रमणी	औरगाबाद (गया)	१९१६

ठाकुर हनुमन्त सिह

चन्द्रकला	काशी	१८९६

दयाराम

सती चरित्र	मुरादाबाद	१९१०

दादू विनायक लाल

चन्द्रभागा	काशी	१९०४

दुर्गादत्त मिश्र

सरस्वती	काशी	१८९८

दुर्गाप्रसाद खत्री

श्यामा		१९१४
रामरखा का खून		,,

दुर्गाप्रसाद खत्री

अद्‌भुत भूत		१९१६
अनगपाल		"

('उपन्यास कुसुम' छोटी-छोटी कहानियो का सग्रह है ।)

देवकीनन्दन खत्री

चन्द्रकान्ता (४ भाग)	काशी	१८९१-९२
पहला हिस्सा	हरिप्रकाश यत्रालय, काशी	स० १९४८
दूसरा हिस्सा	'	अ०
तीसरा हिस्सा	"	"
चौथा हिस्सा	"	"

(भारत जीवन, ३ मई, १८९२ मे 'चन्द्रकान्ता' के सम्बन्ध मे रामकृष्ण वर्मा ने लिखा था— "यह एक निहायत उम्दा दिलचस्प किस्सा हाल ही मे तैयार हुआ है । तीन भाग तो इसके छप गये है और चौथा भाग भी दस या बारह दिन मे छप जायेगा ।" इससे स्पष्ट है कि चौथा भाग १८९२ तक छप गया होगा ।)

नरेन्द्र मोहिनी (२ भाग)	काशी	१८९३
कुसुमकुमारी (४ भाग)	"	१८९४

(पहला-दूसरा भाग क्रमशः 'साहित्य-सुधानिधि' मे १८९३-९४ मे प्रकाशित ।)

चन्द्रकान्ता सन्तति (२४ भाग)	काशी	१८९४-१९०५

(अक्टूबर १८९४ से 'उपन्यास लहरी' मे प्रकाशन आरम्भ । अठारहवें हिस्से में लेखक का चित्र ।)

वीरेन्द्र वीर अथवा कटोरा भरा खून	काशी	१८९५

(दूसरा भाग बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री द्वारा लिखित)

काजर की कोठरी	काशी	१९०२
भूतनाथ	"	१९०८-१२

देवकी नन्दन खत्री

(६ हिस्से तक स्वय खत्रीजी द्वारा लिखित, शेष २२ हिस्से उनके सुपुत्र दु० प्र० ख० द्वारा लिखित ।)

गुप्त गोदना

(पहला हिस्सा खत्रीजी द्वारा रचित और १९१० मे प्रकाशित । दूसरा-तीसरा हिस्सा किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा रचित और १९२२-२३ मे लहरी प्रेस द्वारा प्रकाशित ।)

सौदागर

(अपूर्ण, कुछ अश प्रकाशित, अप्राप्य ।)

(हि० उ० सा०, पृ० १५२ मे "नौलखाहार" और उ० सा० मे "अनूठी बेगम" खत्री जी के उपन्यासो मे परिगणित हैं। हि० पु० सा० मे भी इनका इसी रूप मे उल्लेख है। पर ये उनकी रचानाएँ नही हैं, इनके लेखको का यथास्थान परिचय मिलेगा ।)

देवकीनन्दन सिंह

नौलखाहार	काशी	१९०९

देवीप्रसाद शर्मा

सुन्दर सरोजिनी	रामनगर (चम्पारण)	१८९३

(देवी प्रसाद तिवारी: "लालू और कालू", १९१२ कहानी है ।)

धन्नालाल जैन

दो काता	बीना	१९१६

नन्दलाल वर्मा

स्वर्णकांता (दो भाग)	काशी	१९१५

नवाब राय

प्रेमा	प्रयाग	१९०७

(हिं० उ० सा० में नाथूराम प्रेमी का "फूलो का गुच्छा" उपन्यास बताया गया है किन्तु वह गल्प सग्रह है ।)

नारायणपति तिवारी

वसंतलता	काशी	१९०९

निहालचन्द वर्मा

प्रेम का फल	कलकत्ता	१९९२
मोतीमहल	कलकत्ता	१९१३

परमेश्वर मिश्र

ललना बुद्धि प्रकाशिनी	काशी	१९०४

प्रतिपाल सिंह

बीरबाला		१९०७

प्रसू सरस्वती प्रिय :

सोमलता	जबलपुर	१९१४

प्राणनाथ

सौभाग्यवाती	प्रयाग	१९२२ सप्तम सस्करण

पाडेय नवलकिशोर सहाय

रोहिणी	पटना	१९१६

पाडेय लोचनप्रसाद

दो मित्र	मुरादाबाद	१९०५

पारसनाथ त्रिपाठी

हमारी दाई	काशी	१९१४

प्रियवदा देवी

लक्ष्मी	बरेली	१९०५
धर्मात्मा चाचा और अभागा भतीजा		१९१५
कलियुगी परिवार का एक दृश्य		१९१५

पुत्तनलाल सारस्वत

स्वतत्र बाला	कन्नौज	१९०३

पूर्णमल सारस्वत ओझा

चपला	बंबई	१९११

फूलचन्द

उदयप्रकाश	देहरादून	१९१५

बलदेवप्रसाद मिश्र

अद्भुत लाश	मेरठ	१८९६
पानीपत	कलकत्ता	१९०२

पृथ्वीराज चौहान	कलकत्ता	१९०२
संसार वा महास्वप्न	बंबई	१९०६

(हिं० उ० सा०, हिं० प्र० सा० और उ० सा० मे "अनारकली", मुरादाबाद, १९००, उपन्यास की कोटि मे परिगणित है पर वह १३ पृष्ठो की कहानी है।)

बलभद्र सिंह

सौंदर्य कुसुम वा महाराष्ट्र उदय	कलकत्ता	१९१०
सौंदर्यप्रभा वा अद्भुत अंगूठी	,,	१९११
वीरबाला वा जयश्री	काशी	१९११

बसंतलाल शर्मा

नामी अय्यार	आगरा	१९१२

ब्रजनन्दन सहाय

अद्भुत प्रायश्चित	बाँकीपुर	१९०५
राजेन्द्र मालती	बाँकीपुर	१९०६

(खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित 'राधारानी', १८९७ के अंतिम पृष्ठ के विज्ञापन पर इसे स्काट के 'राकेबी' के आधार पर लिखित बताया गया है।)

सौंदर्योपासक	बाँकीपुर	१९११
राधाकांत	कलकत्ता	१९१२

(प्रथम खण्ड का कथाभाग गिरीशचन्द्र घोष की एक कहानी के आधार पर लिखित किंतु 'वर्णन भाव और विचार सब स्वतन्त्र', दूसरे खण्ड मे कहीं से सहायता नही ली गई।—ग्रन्थकर्ता)

आरण्यबाला	काशी	१९१५
लालचीन	,,	१९१६

(बंगला 'प्रवासी' मार्गशीर्ष—पौष स० १९५८ के हरिदास भट्टाचार्य ने एक अंग्रेजी आख्यान के आधार पर एक ऐतिहासिक आख्यान 'दास नन्दिनी' शीर्षक से लिखा। 'मौजी', बनारस, १९२४ मे 'साहित्य शारदूल' के छद्मनाम से बाबू ब्रजरत्नदास ने 'दासनन्दिनी' और 'लालचीन' में तुलना करते हुए साम्य दिखाया है। अत' 'लालचीन' 'दासनन्दिनी' के आधार पर लिखा गया कहा जा सकता है।)

ब्रजबिहारी सिंह
  कोटारानी बम्बई १९०२
ब्रह्मकुमारी भगवान देवी
  सौंदर्य कुमारी प्रयाग १९१४
ब्रह्मदत्त शर्मा
  प्रेमा का खून आगरा १९११
  किशोरी नरेन्द्र आगरा १९११
बाँकेलाल चतुर्वेदी
  धूलभरा हीरा आगरा १९१२
बालकृष्ण दामोदर शास्त्री
  महेन्द्रमोहिनी काशी १९१४
बालकृष्ण भट्ट
  रहस्यकथा उपन्यास
  ('हिन्दी प्रदीप' मे नवम्बर १८७९ से मई १८८० तक प्रकाशित अपूर्ण।)
  गुप्त बैरी
  ('हिन्दी प्रदीप' के मई, जून, अगस्त १८८२ के अकों मे प्रकाशित। अपूर्ण।)
  उचित दक्षिणा
  ('हिन्दी प्रदीप', दिसम्बर १८८४ मे प्रकाशित। अपूर्ण।)
  नूतन ब्रह्मचारी प्रयाग १८८६
  (एक ही वर्ष मे पहले 'हिन्दी प्रदीप' मे फिर पुस्तक के रूप मे प्रकाशित। आरम्भ फरवरी १८८६ से।)
  सद्भाव का अभाव
  ('हिन्दी प्रदीप', के फरवरी, मार्च, मई, जुलाई–अगस्त, १८८९ के अको मे केवल पाँचवें प्रस्ताव तक प्रकाशित।)
  सौ अजान एक सुजान
  ('हिन्दी प्रदीप', अगस्त १८९० मे प्रकाशित होना आरम्भ। प्रयाग से प्रथम बार १९०६ मे पुस्तकाकार प्रकाशित।)
बालमुकुंद खत्री
  सूर्यकांता काशी १९१२
  (चार भाग)
  ('प्रेम कटारी' १६ पृष्ठो की कहानी है।)

बालमुकुंद वर्मा		
सुन्दरी (दो भाग)	काशी	१९००
राजेन्द्रमोहिनी	बम्बई	१९००
कामिनी	काशी	१९००
('मालती' सामाजिक उपन्यास नही है, जैसा कि उसके मुखपृष्ठ पर लिखा है। उममे १३ पृष्ठ हैं।)		
बृजमोहनलाल		
चद्रवती	कानपुर	१९१०
बृजलाल महाजन		
चारुदत्त	लाहौर	१९१७
भगवतीप्रसाद दारुका		
एक मारवाडी की घटना	बम्बई	१९१५
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र		
एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती		
(केवल 'प्रथम खेल' उपलब्ध। 'कविवचनसुधा', भाग ८, सख्या १२, वैशाख सवत् १९३२)		
हमारी हठ		
(केवल प्रथम परिच्छेद लिखित। अप्राप्य।)		
भुवनेश्वर मिश्र		
घराऊ घटना	लखनऊ	१८९३
बलवन्त भूमिहार	काशी	१९०१
मथुराप्रसाद		
नूरजहाँ बेगम व जहागीर	काशी	१९९५
मथुराप्रसाद शर्मा		
उपन्यास प्रभावती	आगरा	१९१५
मदनमोहन पाठक		
मायाविलास अथवा सत्यजित प्रकाश (६ भाग)	काशी	१७९९
आनन्द सुन्दरी	,,	१९०२

मन्नन द्विवेदी		
रामलाल	प्रयाग	१९१४
मनोहरलाल गुजराती		
कांतिमाला	काशी	१९०४
मणिशंकर शर्मा		
आदर्श परिवार	प्रयाग	१९१४
मणिराम शर्मा		
सुकुमारी	,,	१९१८ द्वि० सं०
सरला	,,	१९१६
महादेवप्रसाद मिश्र		
साहूलाल की करतूत	कलकत्ता	१९०८
माधव केसोट		
अद्भुत रहस्य वा चित्रित वारांगना	मथुरा	१९१७
मिट्ठूलाल मिश्र		
रणधीर सिंह	शाहजहाँनगर	१९०४
मुंशी देवीप्रसाद		
रूठी रानी	कलकत्ता	१९०६

(इनका 'बहराम बहरोज', १९१५ भी उपन्यास मान लिया जाता है, यद्यपि यह पंचतंत्र-शैली में लिखित कथा-ग्रंथ है ।)

मुरलीधर शर्मा		
सत्कुलाचरण	बम्बई	१९००
प्रभात सुन्दरी	काशी	१९०५
मुरारीलाल गुप्त		
विचित्र वीर	चंदौसी	१९१६
मिस्ट्रीज आफ अलीगढ़		१९१५
मेहता लज्जाराम शर्मा		
धूर्त रसिकलाल	बम्बई	१८९९
स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी	,,	१८९९
हिन्दू गृहस्थ	,,	१९०३

(१९०१ में लिखित, १९०३ में 'वेंकटेश्वर समाचार' में पुस्तक रूप में प्रकाशित ।)

मेहता लज्जाराम शर्मा

आदर्श दम्पति	बम्बई	१९०४
(१९०२ में लिखित)		
सुशीला विधवा	,,	१९०७
बिगड़े का सुधार	,,	,,
आदर्श हिन्दू	काशी	१९१४–१५
विपत्ति की कसौटी		

(रचनाकाल–१९०६–१२, प्रकाशनकाल–१९२५, बम्बई।)

यशोदा देवी

नववधू रहस्य	प्रयाग	१९१५

रतनचद

नूतन चरित्र	प्रयाग	१८९३

('हिन्दी प्रदीप', मार्च १८८३ से प्रकाशन आरम्भ, १८८७ मे समाप्त।)

राधाकृष्ण दास

निःसहाय हिन्दू	काशी	१८९०

(१८८१ मे लिखित, १८८५ मे 'भारतोदय' में प्रकाशित।)

राधाचरण गोस्वामी

सर्वनाश	'भारतेन्दु'	१८८३–८४
वीरबाला	,,	,,
बाल विधवा	,,	१८८३–८६
कल्पलता	,,	१८८४–८५
जावित्री	,,	१८८५–८६
विधवा विपत्ति	दिल्ली	१८८८
सोदामिनी	मथुरा	१९०२

('भारतेन्दु' में अनुमानतः १८८८ मे प्रकाशित।)

राधिकारमण प्रसाद सिंह

नवजीवन वा प्रेमलहरी	पटना	१९१६

राधेलाल अग्रवाल

ससारोपबाटिका	कानपुर	अ०

(चार खण्ड। भक्ति-शृ गार की कविताओं से पूर्ण। तृतीय खण्ड में ३० पृष्ठों तक रामायण के सात कांडो की संक्षिप्त पद्य-कथा। इसे

उपन्यास की कोटि मे रखना निरर्थक है।)

रामगुलाम राम

सुदामा	बम्बई	१८९६

रामचीज सिह

कुलवन्ती	चक्रधरपुर	१९०४
वनविहगिनी	काशी	१९०९

रामजीदास वैश्य

फूल मे काँटा		१९०६
धोखे की टट्टी		१९०७

(उ० सा० मे प्रथम उपन्यास के लेखक रामजीदास वैश्य और दूसरे के लेखक रामजीदास वैद्य हैं पर दोनों के वास्तविक लेखक रामजीदास वैश्य हैं।)

रामजीलाल शर्मा

सीता चरित	प्रयाग	१९१०

रामदास वर्मा

राजकुमारी चन्द्रमुखी	बम्बई	१८९८

रामनरेश त्रिपाठी

वीरांगना	जयपुर	१९११

('पद्मावती' नाम से १९१७ मे प्रयाग से दूसरी बार प्रकाशित।)

वीरबाला		१९११
मारवाड़ी और पिशाचिनी	कलकत्ता	१९१२

रामनाथ पाण्डे

प्रेम वा प्राण समर्पण	कलकत्ता	१९११

रामनारायण दीक्षित

रम्भा (४ भाग)	काशी	१९०५
चन्द्रप्रभा	काशी	अ०

रामप्रताप गुप्त

महाराष्ट्र वीर वा वीर वनिता	कलकत्ता	१९१३

रामप्रताप शर्मा

नरदेव	बम्बई	१९०२

रामप्रसाद लाल		
हम्माम का मुर्दा	काशी	१९०३
हसीना	मथुरा	१९१२-१५
रामप्रसाद सन्याल		
अनन्त उपन्यास	काशी	१९०९
किरण शशि	,,	,,
प्रेम लता	,,	,,
रामफेरन सिंह		
चम्पा दुर्दशा	मोतिहारी	१९०४
रामलाल वर्मा		
बनारसी दुपट्टा वा गुलरु जारीना	काशी	१९०८
पुतली महल या गुलाब कुँवरि	कलकत्ता	,,
सरदार तारा सिंह	,,	१९०९
सिर की चोरी	,,	१९०९
अनाथ बालिका	,,	१९१२
खूनी खंजर	,,	१९१२
गोपाल के गहने	,,	,,
मोहिनी	,,	१९१४
मेहदी का बाग	दारोगा दफ्तर	१९११
नकाबदार कलकी	,,	१९११
दारोगा का खून		
नकली रानी		
रामानन्द शर्मा		
डाली	कलकत्ता	१९१४
रामेश्वर प्रसाद खत्री		
मदन किशोरी	छपरा	१९०४
रुद्रदत्त शर्मा		
अपूर्व सन्यासी	दानापुर	१८९८
वीरसिंह दारोगा उपन्यास	,,	१९००

रूपकिशोर जैन

रत्नप्रभाकर	मथुरा	अ०
माधवी	,,	अ०
सूर्यकुमार संभव	,,	अ०
श्रीदेवी	,,	१९१२

रूपनारायण दर

श्यामकुमारी	काशी	१८९६

रूपनारायण शर्मा

पतित पति वा भयकर भूल	काशी	अ०

रोशनलाल

बुद्धिवती	प्रयाग	१८९४

लक्ष्मीदत्त जोशी

जपा कुसुम	मुरादाबाद	१९१३

लक्ष्मीनाथ शर्मा

सावित्री सत्यवान	पटना	१८९०
महाश्वेता	,,	१८९५
नल दमयती	,,	१८९८

लक्ष्मीनारायण गुप्त

धूर्त ऐयारा	अलीगढ़	१९०६
नलिनी वा चितचोर	,,	१९०७

("नर्क की सैर" और "चन्द्रमुखी" पन्द्रह-पन्द्रह पृष्ठो की कहानियाँ है, जिन्हे उपन्यास क ज्ञा दे दी गई है।)

लक्ष्मीनारायण गर्दे

मियाँ की करतूत	कलकत्ता	१९११
नकली प्रोफेसर	,,	१९१२

लालजी सिंह

चन्द्रावली	काशी	१९०२
वीरबाला	बबई	१९०६

लाला कृष्णलाल

माधवी	काशी	अ०

लाला देवराज

कर्कशा सास	जालंधर	१९०४

लाला प्यारेलाले वृष्णी

लक्ष्मीकांता	अलीगढ	अ०

लाला भगवान दीन

अघट घटना	काशी	१९१४

लाला श्रीनिवासदास

परीक्षागुरु	दिल्ली	१८८१

(द्वि० स०-दिल्ली, १८८४। तृ० स०-कलकत्ता, प्रकाशनकाल का उल्लेख नहीं। डा० श्रीकृष्णलाल द्वारा सम्पादित "श्रीनिवास-ग्रथावली", नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सवत् २०१०, मे सम्मिलित।)

वल्लभदास वर्मा

सच्चा उपन्यास	बंबई	१९०७

विठ्ठलदास नागर

किस्मत का खेल		१९०५
पद्माकुमारी		१९०५

(वासुदेवप्रसाद विद्यार्थी के "भीषण अत्याचार" कानपुर, १९१५ पर "इतिहासिक उपन्यास" लिखा है पर वह २३ पृष्ठो की कहानी है।)

विश्वनाथ समाधिया

प्रत्यक्ष दर्पण	कलकत्ता	अ०

विश्वेश्वरानन्द

चतुरा की चतुराई	प्रयाग	१९०४

बिष्णुचरण साहु

पद्मावती	काशी	१९०७

वृंदावनबिहारी शर्मा

दो नकाबपोश (४ भाग)	काशी	१९०९–१०

शकरदयाल श्रीवास्तव

महेन्द्रकुमार वा मदनमजरी	काशी	१९०३

(इसमे 'महेन्द्रकुमार सन्तति' का विज्ञापन है, शायद वह प्रकाशित नही हुआ।)

शिरोमणि	काशी	१९१६
शकरप्रसाद मिश्र		
श्यामाश्याम	लखनऊ	१९१५
(पहले 'नागरीप्रचारक', फरवरी १९१३ मे प्रकाशित होना आरम्भ)		
शकरलाल अग्रवाल		
कल्यानी	कानपुर	१९१२
शालिग्राम गुप्त		
आदर्श रमणी	इटावा	१९११
शिवदत्त राम		
खून मिश्रित चोरी	काशी	१९०८
शिवनाथ शर्मा		
स्वाहा सर्वस्व		
('रसिकपच' फाल्गुन—चैत्र स० १९४२ से प्रकाशित होकर कई सख्याओ मे समाप्त।)		
चण्डूलदास	लखनऊ	अ०
शभुप्रसाद उपाध्याय		
प्रेमकांता	काशी	१९२६ द्वि० स०
शारदाप्रसाद वर्मा		
प्रेमपथ	प्रयाग	१९०३
शिवचन्द्र भरतिया		
कनक सुन्दर	कलकत्ता	१९०४
शिवनारायण द्विवेदी		
चम्पा	बम्बई	१९१२
कुमारी	दिल्ली	१९१५
अमरदत्त	,,	,,
प्रतिभा	,,	१९१६
शिवशकर पाडेय		
ज्ञानवती	नागपुर	१९०१
शिवशकर भट्ट		
चन्द्रकला	जबलपुर	१८९७

शीतल प्रसाद

मनमोहिनी	लखनऊ	१९०५

शेरसिंह काश्यप

आदर्श वीरागना दुर्गा	अजमेर	१९२२ द्वि० स०

श्यामकिशोर वर्मा

काशी यात्रा	लाहौर	१९१६

श्यामजी शर्मा

प्रियावल्लभ	आरा	१९०२

श्यामबिहारी मिश्र, और
शुकदेव बिहारी मिश्र

वीरमणि	काशी	१९१७

(बकिमचन्द्र के 'चन्द्रशेखर' का अनुकरण होने के कारण यह अर्ध-मौलिक है।)

श्यामलाल गुप्त

रानी दुर्गावती

श्यामसुन्दर वैश्य

पजाब पतन	लखनऊ	१९०४
नूरजहाँ	"	
बुढ़ापे का व्याह		

(लखनऊ से प्रकाशित 'भारत का अधपतन' और 'राजपूत कीर्ति' मे क्रमशः २४ और ३२ पृष्ठ है। ये उपन्यास नही कहे जा सकते।)

श्रद्धाराम फिल्लौरी

भाग्यवती

(१८७७ मे लिखित। लेखक के देहान्त के बाद १८७७ मे विधवा-विवाह प्रसंग को निकाल कर रामकृष्ण वर्मा ने काशी से प्रकाशित किया। बाद मे लेखक की पत्नी महताब कौर द्वारा प्रकाशित। पचम संस्करण लाहौर, १९१२, की प्रति नागरी प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय मे उपलब्ध, जिसकी भूमिका हिन्दी-अंग्रेजी मे। प्रो० विजयशकर मल्ल द्वारा सम्पादित प्रचारक पाकेट बुक का सस्करण १९६० मे प्रकाशित।)

श्रीकृष्ण मिश्र		
प्रेमा	भागलपुर	१९१७
श्रीकृष्ण हसरत		
एक औरत की लाश	काशी	१९०८
वीरसिंह	,,	१९०९
देवी जालिया	,,	१९१०
लखनऊ रहस्य	,,	अ०
सोने की कठी	,,	अ०
मुन्ना जान		
सकलनारायण शर्मा		
राजरानी	काशी	१९१२
सरस्वती गुप्ता		
राजकुमार	कलकत्ता	१८९८
सिद्धनाथ सिंह		
प्रणपालन	कलकत्ता	१९१५
सिद्धिनाथ दीक्षित		
आदर्श विद्यार्थी	प्रयाग	१९१८ द्वि० सं०
सोमेश्वरदत्त शुक्ल		
अपूर्ण शिक्षा का अधम फल (अर्ध मौलिक)	सीतापुर	१९१४
हजारीलाल		
तीन बहन	पटना	१९०५
दो स्त्री का पति	,,	१९०७
आफत की बुढिया		

(हजारीलाल शिवनारायण प्रसाद का 'ठगो का बाजार', मथुरा, १९१५ के मुखपृष्ठ पर "नये ढग का अपूर्व उपन्यास" लिखा है पर वह सात स्वतत्र कहानियो का सग्रह है ।)

हनुमान प्रसाद		
अपना यथार्थ हक	मिर्जापुर	१९००
हरिकृष्ण जौहर		
कुसुमलता (४ भाग)	काशी	१८९८-१९००
कमलकुमारी	काशी	१९०१

हरिकृष्ण जौहर		
मयकमोहिनी वा मायामहल	काशी	१९०१
जादूगर	,,	१९०२
निराला नकाबपोश	,,	१९०२
भयानक खून	बम्बई	१९०२
डाकू	काशी	१९०४

("छाती का छुरा" १९०१ पन्द्रह पृष्ठों की कहानी है।)

हरदेवप्रसाद मुदर्रिस		
सूरजमुखी	मथुरा	१९१३
चम्पावती	,,	१९१५
कामकौतुक	,,	
हरस्वरूप पाठक		
भारतमाता	देहरादून	१९१५
हरप्रसाद गुप्त		
जगतमाया	बिजनौर	१९१५
हरिचरण सिंह		
वीर नारायण	मथुरा	१८९५
हरिदास माणिक		
महाराणा प्रताप सिंह की वीरता	काशी	१९०७
हल्दीघाटी की लड़ाई	,,	१९१२
संयोगिताहरण	,,	१९१५

("मेवाड का उद्धारकर्ता" उपन्यास नहीं है।)

हरिनारायण टण्डन		
जासूसी आखेट	लखनऊ	१९०५
चाचा का खून	लखनऊ	
हरिप्रसाद जिजल		
शीला	गया	१९०१
कामोदकला	,,	१९०३
हरिहरप्रसाद गुप्त		
जानकी वा आदर्श सुन्दरी	मथुरा	१९१४

ज्ञानचन्द वातिल

वीरांगना	दिल्ली	१९१५

ख—अनूदित उपन्यास

अंग्रेजी और उसके माध्यम से यूरोपीय उपन्यास

कन्हैयालाल अग्रवाल

श्री या अवश्यमाननीय	प्रयाग	१९०२	हैगर्ड: "शी"

कन्हैयालाल शर्मा

सत्यवीर	मुरादाबाद	१९०२	रेनाल्ड : 'राई हाउस प्लाट'

कार्तिकप्रसाद खत्री

सतीत्व रक्षणी	लाहौर	१८८३	

गंगाप्रसाद गुप्त

हवाई नाव	काशी	१९०३	'द एलेक्ट्रिक एयन केनो'
रंगमहल	,,	१९०४	रेनाल्ड: 'लब्ज आव द हेमर'

गिरिजाकुमार घोष

रियज्जी	ग्वालियर	१९१५ द्वि०स०	लार्ड लिटन
रसातल यात्रा	प्रयाग	१९१२	

गोपालराम गहमरी

गुप्तचर	कलकत्ता	१८९९

(हिं० नि० मे मौलिक माना गया है पर उपन्यास की भूमिका के अनुसार यह 'विलायती कहानी का निचोड' है।)

मेरी और मेरीना	'जासूस'	१९०५

(किसी अग्रेजी उपन्यास पर आधारित प्रतीत होता है। इसकी कहानी 'जादूगरनी' की कहानी से मिलती है।

गोविन्दराम 'जासूस' १९०५ कानन डायल : 'ए स्टडी इन स्कारलेट'

विलायती जासूस 'जासूस' १९०८

(पात्र विदेशी हैं। प्रारम्भ में ही पेरिस की ठढी रात का वर्णन है। निश्चय ही अनुवाद है।)

अद्‌भुत खून 'जासूस' १९०६

(इसमे फ्रेंच जासूसी उपन्यासकार गेबोरियो का प्रसिद्ध जासूस लीकाक आया है।)

खूनी का भेद 'जासूस' १९०९

(पात्र अग्रेज किन्तु पृष्ठभूमि भारतीय)

चतुर्भुज औदीच्य

विलायती डाकू कलकत्ता १९१४ 'डिस्टरपिन'

चन्द्रशेखर पाठक

अर्थ मे अनर्थ या प्रवाल द्वीप काशी १९०९–१६

(वेलेन्टाइन के "कोरल आइलैण्ड" का अनुवाद तो नही है ?)

चुन्नीलाल खत्री

सच्चा बहादुर	काशी	१८९८–१९०३	
अनग रग	,,	१९०४	रेनाल्ड
रणवीर	,,		रेनाल्ड: 'उमर पाशा'
कौशल किशोर (दूसरा भाग)	मथुरा	१९०९	"अर्नेष्ट माल ट्रेवर्स"
जबर्दस्त की लाठी	काशी		
मोतियों का खजाना	,,	१९१४	

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'

राबिन्सन क्रूसो	प्रयाग	१९१३	डिफो

जयराम दास गुप्त

रंग मे भग	काशी	१९०७
मल्का चाँदबीबी	काशी	१९०७
शूर शिरोमणि	,,	अ०
दिल का कांटा	,,	९११४

(इन्हे अनूदित नही कहा गया है पर ये अनुवाद या रूपान्तर है। पहला उपन्यास लार्ड लिप्न के "लास्ट डेज आफ पाम्पेइ", दूसरा किसी भारत स्थित अग्रेज की ऐतिहासिक पुस्तक, तीसरा किसी अग्रेजी उपन्यास और चौथा रूसी उपन्यास पर आधारित है।)

जी० पी० श्रीवास्तव

प्राणनाथ   रमेशचन्द्र दत्त

("स्त्री दर्पण", सितम्बर १९१२ से छपना आरम्भ। फिर पुस्तकाकार प्रकाशित।

जैनेन्द्र किशोर

दुर्जन   १९०८   काशी   रेनाल्ड

ठाकुर प्रसाद खत्री

मिस्ट्रीज आफ दि कोर्ट १९०६   काशी   रेनाल्ड
आफ लन्दन (प्रथम खड)

("लखनऊ की नवाबी" अग्रेजी मे उपन्यास के ढग पर लिखित ऐतिहासिक वृत्तांत का अनुवाद है।)

द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी

राबिन्सन क्रूसो   १९१३   प्रयाग   डिफो

देवकीनन्दन सिह

कौशल किशोर   १९०४   काशी   "अर्नेष्ट माल ट्रेवर्स"
(प्रथम भाग)

देवनाथ पाठक

कालग्रास   १९१६ काशी   'द ग्रीन टीथ'

देवीप्रसाद

प्रवीण पथिक अथवा अलादीन और लैला   रेनाल्ड : 'लायला दि स्टार आफ मिंग्रेलिया'

दुर्गाप्रसाद खत्री

साहसी डाकू   १९१३   ,,   विक्टरपिन
अभागे का भाग्य   १९१४–१५   ,,   विक्टर ह्यूगो : 'ला मिजरेबुल'

पुरोहित गोपीनाथ

वीरेन्द्र | १८९६ बम्बई

(लेखक के अनुसार 'एक विख्यात उपन्यासान्तर्गत कहानी के आधार पर रचा गया'। पृ० २१)

महावीरप्रसाद पोद्दार

टाम काका की कुटिया | १९१६ प्रयाग | स्टो

यशोदानन्द अखौरी और चतुर्भुज औदीच्य

जोजेफ विल्मोट (५ भाग) | १९१५–१७ कलकत्ता | रेनाल्ड

राधाविनोद

बेचारी माँ | १८९८ काशी | ग्रेजिया डेलेडा : 'मदर'

रामकृष्ण वर्मा

ठग वृत्तान्तमाला | १८८९ काशी | मेडोज लेटर : 'कनफेसंस आफ ए ठग'

अकबर | १८९१ ,, | डा० वान लिम्बर्ग : ब्राउअर

रामकृष्ण वर्मा

(प्रथम बार १८७२ मे डच भाषा मे प्रकाशित। अंग्रेजी अनुवाद से अनूदित।)

अमलावृत्तान्तमाला | १८९४ काशी | अजीजुद्दीन अहमद : 'फ्रूट्स आफ आनेस्टी'

रामचन्द्र वर्मा

काली नागिन (दो भाग) | १९०८ काशी | 'मेरी कारेली: वेंडेटा'

रामलाल वर्मा

पीतल की मूर्ति | १९१७ कलकत्ता | रेनाल्ड: ब्रौंज स्टैच्यू'

काला कुत्ता | | कानन डायल : 'द हाउन्ड आफ द बास्करविला'

जासूसी कुत्ता कलकत्ता
विलायती डाकू ,, 'डिक्टरपिन'
रामेश्वरदत्त शर्मा
हृदयकटक १९१४ काशी
रूपनारायण शर्मा
गुप्त रहस्य अ० काशी रेनाल्ड : 'वर्जीना'
लक्ष्मीनाथ शर्मा
रामेलास १८८९ बाकीपुर डा० जानसन
लक्ष्मीनारायण शर्मा
समुद्र मे गिरीन्द्र १८९४ बाँकीपुर
लाला चन्द्रलाल
रानी मेरी १९१६ प्रयाग स्काट : 'द एबट'
सदानन्द शुक्ल
लंदन रहस्य
(अट्ठाइस भाग का अनुवाद किया था। छब्बीस भाग इनके सामने, १९१७ तक, प्रकाशित हो चुके थे।)
सूर्यनारायण विद्यार्थी
मनहरण उपन्यास १८९९ बम्बई
(सूर्यनारायण सिंह का 'मरहठा सरदार', १८९८ पादरी ह्यूबर्ट कान्टर के ऐतिहासिक ग्रन्थ का अनुवाद है।)
हरिकृष्ण जौहर
भयानक भ्रमण १९०० काशी विलियम मरे ग्रेडन : 'ओवर अफ्रिका इन बैलून'
नरपिशाच १९०१–५ ,, रेनाल्ड : 'फास्ट'
सागर साम्राज्य अ० ,,

अंग्रेजी उपन्यास अन्य भाषाओं से

(उर्दू)

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
रिप वान विंकल १८९९ बाँकीपुर वाशिंगटन इर्विंग

वशीधर

मैडफोर्ड और मरटन (बगला)	१८५५		थामस डे

अनाम

यात्रा स्वप्नोदय	१८८५	काशी	बनयन : पिलग्रिम्स प्रोग्रेस

बद्रीलाल

राबिन्सन क्रूसो का इतिहास	१८६०	काशी	डिफो

(गुजराती)

मेहता लज्जाराम शर्मा

विचित्र स्त्री चरित्र		बम्बई	

बगला उपन्यास

अनाम

जयन्ती	कलकत्ता	१९०३	
कैसा अधेर	१९१६	आरा	अनादिधन बधोपाध्याय
खुदीराम या गरीबदास	१९०९	कलकत्ता	इन्द्रनाथ बधोपाध्याय
चम्पा फूल	१९१४	प्रयाग	अनादिधन बधोपाध्याय
पैशाचिक काड	,,	काशी	पचकौड़ी दे
सती लक्ष्मी	,,	प्रयाग	अर्जुनचन्द्र बसु

अयोध्यासिह उपाध्याय "हरिऔध"

कृष्णकात का दानपत्र	१८९८	बाकीपुर	बंकिमचन्द्र

अक्षयवट मिश्र

देवी चौधरानी	१९१३	पटना	बंकिमचन्द्र

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

मृण्मयी	१९११	बाकीपुर	दामोदर मुखोपाध्याय
नवाबनन्दिनी	१९१२	काशी	दामोदर मुखोपाध्याय
स्वणकमल	१९१३	कलकत्ता	दामोदर मुखोपाध्याय
दो बहन		काशी	दामोदर मुखोपाध्याय
नलिनी बाबू	१९११	कलकत्ता	प्रभातकुमार मुखोपाध्याय
मानसिह वा कमला देवी	१९१२	कलकत्ता	हरिमोहन मुखोपाध्याय

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

अन्नपूर्णा का मंदिर	१९१५	बम्बई	निरुपमा देवी
नवाबी महल	१९१७	काशी	
विलासकुमारी वा कोहेनूर	१९१८	कलकत्ता	ननिलाल मुकर्जी

(पहले "मनोरंजन" मे दिसम्बर १९१२ से धारावाहिक प्रकाशन।)

एक प्रतिप्राणा अबला

राधारानी	१८८३	काशी	बंकिमचन्द्र

उदित नारायण लाल

दीप निर्वाण	१८९१	काशी	स्वर्णकुमारी देवी
जीवन संध्या	१९०३	काशी	रमेशचन्द्र दत्त

कमलानन्द सिंह

आनन्द मठ	१९०७		बंकिमचन्द्र

कात्यायनी त्रिवेदी

अनाथ बालक	१९१६	प्रयाग	चन्द्रशेखर कर

कार्तिकप्रसाद खत्री

इला	१८९५	काशी	
प्रमीला	१८९६	,,	
जया	,,	,,	
मधुमालती	१८९७	,,	
दलितकुसुम	१८९८	,,	
कुलटा	१९००	,,	

किशोरीलाल गोस्वामी

लावण्यमयी	१८९१	काशी	बंकिमचन्द्र
सुख शर्वरी	१८९२	,,	
प्रेममयी	१९०१	,,	योगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय
याकूती तख्ती	१९०६	,,	दीनेन्द्रकुमार राय
इन्दिरा	१९०८	बांकीपुर	बंकिमचन्द्र
राजसिंह	१९१०	बांकीपुर	बंकिमचन्द्र
सोने की राख			

कृष्णकांत मालवीय

कर्मवीर	प्रयाग	१९०९	यदुनाथ भट्टाचार्य
प्राणघातक माला	प्रयाग	अ०	स्वर्णकुमारी देवी

("फूलो का हार" अनूदित कहानी-संग्रह है । हि० उ० सा० मे उपन्यास है ।)

कृष्णकुमारदेव शर्मा

चोर की बहादुरी		१९११	प्रियानाथ मुकर्जी
चोर की तीर्थयात्रा		,,	
चोर सुलतान		१९१२	
आसमानी लाश		१९१५	
वनमालीदास की हत्या			

कृष्णलाल वर्मा

अपूर्व आत्मत्याग	बम्बई	अ०	सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्य

कृष्णानन्द शर्मा

कालरात्रि	पटना	१९१५	

गंगाप्रसाद गुप्त

कुली की कहानी	काशी	१९०४	योगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय
वन कन्या	,	,,	,,
अवध की बेगम	काशी	१९०५	चण्डीचरण सेन

गदाधर सिंह

दुर्गेशनन्दिनी	काशी	१८८२—८४	बंकिमचन्द्र
बंगविजेता	,,	१८८६	

गयाचरण त्रिपाठी

सती उपन्यास	बम्बई	१९०४	

गिरिजाकुमार घोष

छोटी बहू	प्रयाग	१९११	

गुलजारीलाल चतुर्वेदी

सोने की राख	काशी	१९१२ द्वि० सं०	

विषवृक्ष	,,	१९१५	बंकिमचन्द्र
कृष्णकात का बिल	,,	१९१६	,,
सावित्री	,,	,,	शारदाप्रसाद चक्रवर्ती

(सिराजुद्दौला, कलकत्ता, १९१२ जीवनचरित है।)

गोपाल देवी

लक्ष्मीबहू	प्रयाग	१९१२	वामनदास बसु

गोपालराम गहमरी

भानमती	जबलपुर	१८९४	
माधवी ककण	प्रयाग	अ०	रमेशचन्द्र दत्त

(इसका उल्लेख ग० मी० (१८९७) मे है, अतः यह १८९७ तक प्रकाशित हो गया होगा। यह बम्बई से भी १९१२ मे निकला।)

हीरे का मोल	बम्बई	१८९८	नगेन्द्रनाथ गुप्त
अजीब लाश	,,	,,	
सास पतोहू	,,	,,	
घटना घटाटोप	मथुरा	१९००	
बड़ा भाई	बम्बई	१९००	
देवरानी जेठानी	,,	१९०१	
दो बहिन	,,	१९०२	
डबल बीबी	,,	१९०२	

(बम्बई से १९१२ मे "गृहलक्ष्मी" नाम से भी प्रकाशित।)

मायावी	काशी	१९०२	पचकौडी दे
तीन पतोहू	बम्बई	१९०४	
जीवन्मृत रहस्य	कलकत्ता	१९०४	पचकोडी दे
मनोरमा	काशी	१९०७	,,
मायाविनी	,,	१९१०	,,
जादूगरनी	बम्बई	१९१२	,,

"जासूस" मे प्रकाशित

बेगुनाह का खून		१९००	

लडकी की चोरी			१९०१	
बाहरे जासूस (दो भाग)			,,	

(उपर्युक्त तीन उपन्यासो के पात्र और घटनास्थल बगाल के है, अतः वे बगला के रूपान्तर हैं।)

काशी की गोलकधधारी			१९०१	

("डबल जासूस" नाम से बनारस से १९३४ मे "काशी की घटना" और "उडन खटोला" प्रकाशित। "काशी की घटना" और "काशी की गोलकधधारी" मे नाम मात्र का अन्तर। "भानमती" का कथा-भाग "काशी की गोलकधधारी" से मिलता है।

"जासूस" में प्रकाशित

फिरोजा बीबी			१९०१	
हरिदास की गिरफ्तारी			१९०२	
किले मे खून			१९०३	

(इसमे पात्र और स्थल बगला के है तथा "अजीब लाश" की कथा का अश है।)

कपटरूपवाला	२	१	१९०५	
जासूस चक्कर मे			१९०६–७	
वजीरन बीबी	कीपुर	१८	१९०७	
जय-पराजय			,,	पचकौडी दे
प्रतिज्ञा पालन			१९०७–८	,,
लाख रुपया			१९०८	,,
आंखो देखी घटना			,,	,,
लाश किसकी है			,,	
मरियम			१९०९	
तांतिया की बहादुरी			,,	मणीन्द्रनाथ बसु

(डाकू की पहुनाई के नाम से भी प्रकाशित।)

रमणी रहस्य			१९०९	

(यह और राधाचरण गोस्वामी द्वारा अनूदित 'बिन्दो चतुरा' एक ही है।)

बिंदु		१९०९	
लाइन पर लाश		१९१०	पचकौडी दे
मृत्यु विभीषिका		,,	,,
हत्याकृष्ण		,,	,,
भयंकर भूल		,,	,,
सूम का मन्त्र		,,	,,
विकट बदलोवल		१९१०	,,
विद्यासागर विद्रोह		१९१२	,,
हत्या रहस्य		,,	,,
योग महिमा		,,	,,
नीलवसना सुन्दरी		१९१३	,,
पान का नहला		,,	शरच्चन्द्र सरकार
परिचय		१९१७	
साहब की गिरफ्तारी		,,	
गौरीदत्त			
गिरिजा	काशी	१९०४	
चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा	,,		
लावण्य और अनग	,,	१९१३	योगीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय
चन्द्रशेखर पाठक	,,		
किशोरी	कलकत्ता	अ०	विजयरत्न मजुमदार
शोणित चक्र	,,	१९१५	
भीमसिंह	,,	१९१६	
शोणित तर्पण	,,		पचकौड़ी दे
चन्द्रिका प्रसाद			
अभागिनी	कलकत्ता	१९१२	भवानीचरण
जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी			
संसार चक्र	बनारस	१८९९	प्रफुल्लचन्द्र चक्रवर्ती
जगमोहन 'विकसित'			
शरदकुमारी		१९१५	दामोदरदेव शर्मा

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'			
मुकुट	प्रयाग	१९१०	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
विचित्र वधू रहस्य	,,	१९१२	,,
नौका डूबी या आश्चर्य घटना		१९१३	,,
माधवी कंकण	,,	१९१२	रमेशचन्द्र दत्त
समाज	,,	१९१३	,,
राजपूत जीवन सन्ध्या	,,	,,	,,
जगरामदास गुप्त			
मृणालिनी	काशी	१९१२	बकिमचन्द्र

(गुप्त द्वारा रचित 'फूलकुमारी' बंकिम की 'देवीचौधरानी' का रूपान्तर है, यद्यपि यह बताया नहीं गया है।)

देवनारायण प्रसाद सिंह			
अलका मन्दिर	कलकत्ता	१९१७	
नरोत्तम व्यास			
पाप परिणाम	,,	१९१५	मणीन्द्रमोहन वसु
विमला	,,	,,	चन्द्रशेखर चटर्जी
नाथूराम प्रेमी			
प्रतिमा	बम्बई	१९१३	अविनाशचन्द्र दास
प्रतापनारायण मिश्र			
राजसिंह	बाँकीपुर	१८९४	बकिमचन्द्र
इंदिरा	,,	,,	,,
राधारानी	,,	,,	,,
युगलागुरीय	,,	,,	,,
प्रतापनारायण मिश्र			
कपाल कुंडला	बाँकीपुर	अ०	बकिमचद्र
अमर सिंह	,,	१९०७	नगेन्द्रनाथ गुप्त
पारसनाथ त्रिपाठी			
मझली बहू	कलकत्ता	१९१५	
सयोगिता	,,	,,	सतीशचन्द्र
अनाथ बालक		,,	चन्द्रशेखर कर

चन्द्रशेखर		१९१५	बकिमचन्द्र
सेलिमा बेगम		१९१६	
छोटी बहू	पटना	,,	फणीन्द्रनाथ पाल
उमा	काशी	१९१७	पचकौडी वद्योपाध्याय

बनवारी लाल तिवारी

वीर व्रतपालन	ग्वालियर	१९०५	

बलदेवप्रसाद मिश्र

देवी   बकिमचद्र : 'देवीचौधरानी'

(१८८७–८८ मे अनूदित किन्तु १९०८ मे बम्बई से प्रकाशित। 'प्रफुल्ल' नाम से भी प्रकाशित।)

कुदनन्दिनी विषवृक्ष	बम्बई		बकिमचन्द्र
शिवाजी विजय	बम्बई	१९०१	रमेशचन्द्र दत्त

ब्रजचंद्र

मानकुमारी	काशी	१९१५	चडीचरण सेन

ब्रजनन्दन प्रसाद मिश्र

अश्रुधारा	अलीगढ	१९१६	अनकूलचन्द्र मुखोपाध्याय
दामिनी	इटावा	१९१७	संजीवचद्र मुखोपाध्याय

ब्रजनन्दन सहाय

चन्द्रशेखर	बाँकीपुर	१९०७	बकिमचन्द्र
बूढा वर		१९०९	
रजनी	कलकत्ता	१९१५	बकिमचन्द्र

बालमुकुंद गुप्त

मडेल भगिनी	कलकत्ता	१८८८	योगेन्द्र चन्द्र बसु

('हिन्दी बगबासी' मे 'शिक्षित हिन्दू बाला' नाम से प्रकाशित।)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

राजसिंह

(खड्गविलास प्रेस से भारतेन्दु के नाम से १८९४ मे प्रकाशित। भारतेन्दु ने पूरा अनुवाद नही किया था। शिवनन्दन सहाय के अनुसार उनके अधूरे अनुवाद को राधाकृष्णदास ने पूरा कर उक्त प्रेस से मुद्रित कराया। दे० 'हरिश्चन्द्र', पृ० ३७५।)

मनोहरलाल वर्मा

परिमल काशी १९०४ सजीवचन्द्र

मुरलीधर शर्मा

अमृत पुलिन काशी १९०६ ननीगोपाल बंद्योपाध्याय

यशोदा देवी

आदर्श बालिका प्रयाग अ० विधुभूषण बसु

राधाकृष्ण दास

रामेश्वर का अदृष्ट सजीवनचन्द्र

(पहले "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका", १८८१ मे प्रकाशित । "मरता क्या न करता" अर्थात् रामेश्वर का अदृष्ट नाम से काशी से १८८४ मे प्रकाशित ।)

स्वर्णलता तारकनाथ गांगुली

(१८८४ मे लिखित और उसी वर्ष "नवोदिता हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" मे प्रकाशित । पुस्तकाकार काशी से १८९३ मे प्रकाशित ।)

दुर्गेशनन्दिनी बाकीपुर १९०१

राधाचरण गोस्वामी

बिंदो चतुरा

("हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका" मे १८८१ मे प्रकाशित)

विरजा काशी १८९१

राधिकानाथ बंद्योपाध्याय

स्वर्णबाई काशी १८९१

रामकृष्ण वर्मा

चितौर चातकी काशी १८९५

भूतो का मकान ,, १९०१

स्वर्णबाई ,, १९०३ नवकुमार दत्त

रामचन्द्र वर्मा

राजराजेश्वरी काशी १९१४

रामलाल वर्मा

राजा साहब कलकत्ता १९०६

खूनी औरत ,, १९१६ द्वि० स०

हत्याकारी है या माँ	कलकत्ता	१९११	पचकौडी दे
जासूसी पिटारा	,,	१९१४	
टिकेंद्रजीत सिंह	,,	१९१७	प्रियानाथ मुकर्जी
योगिनी या जादूगरनी	,,	१९२३ द्वि० स०	
रामशंकर व्यास			
मधुमती	बाकीपुर	१८८६	
रामस्वरूप शर्मा			
सुधामुखी	मुरादाबाद	१८९९	
मन्त्रसाधन	,,	अ०	
काला पहाड	,,	अ०	

(इन्हे सम्पादित कहा गया है, अत: अनुवादित माना गया है।)

रामानन्द द्विवेदी			
चाची	कलकत्ता	१९११	
रमाबाई	,,	१९१२	
राजसिंह	,,	,,	बंकिमचन्द्र
रंगमहल रहस्य	,,	१९१५	हरिसाधन मुखोपाध्याय
जापान रहस्य	मिर्जापुर	१९१६	
रामेश्वर प्रसाद शर्मा			
सीताराम	काशी	१९१७	बंकिमचन्द्र
रुद्र नारायण			
युगलांगुरीय	प्रयाग	१९१२	बंकिमचन्द्र
महाराष्ट्र जीवनप्रभात	,,	१९१३	रमेशचन्द्र
रूप नारायण पांडेय			
रमा या पिशाचपुरी	लखनऊ	१९०५	
भयानक भूल	लखनऊ	१९०६	
आँख की किरकिरी	बम्बई	१९१३	रवीन्द्रनाथ
शांति कुटीर	बम्बई	१९१४	अविनाशचन्द्र दास

("चौबे का चिट्ठा" निबन्ध संग्रह है और "हरिसिंह नलवा" ऐतिहासिक वृत्त है, यद्यपि इनका उल्लेख कहीं-कहीं उपन्यास के रूप में हुआ है।)

वामनाचार्यगिरि

वीर बालिका	काशी	१९०५	

विजयानन्द त्रिपाठी

सच्चा सपना		१८९०	भूदेव मुखोपाध्याय

विट्ठलदास कोठारी

खूनी मामला	कलकत्ता	१९१२	

विश्वम्भरनाथ शर्मा

मिलन मन्दिर	कानपुर	१९१६	सुरेन्द्रनाथ भट्टाचा·

वेणी प्रसाद

ससार	काशी	१९११	रमेशचन्द्र दत्त

शिवनारायण द्विवेदी

कुमारी	दिल्ली	१९१५	"पाषाणमयी"

शिवसहाय चतुर्वेदी

शारदा	देवरी (सागर)	१९१६	शिवनाथ शास्त्री

(सकलनारायण पाडेय लिखित "अपराजिता" रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना के आधार पर लिखित गल्प है। हिं० पु० सा० में मौलिक उपन्यास के रूप मे उल्लिखित है।)

सदानन्द शुक्ल

गजा गोपाल	कलकत्ता	१९०२	"नेडा हरिदास"
शीशमहल	,,		
डबल जासूस	,,		

मराठी

काशीनाथ शर्मा

शिवाजी का आत्मदमन	फर्रुखाबाद	१९१२	"सूभे कल्याण"

गगाप्रसाद गुप्त

पूना मे हलचल	काशी	१९०३	

(हिं० पु० सा० मे मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास के अन्तर्गत है।)

झाँसी की रानी	काशी	अ०	दत्तात्रेय . बलवंत पारसनीस

प्यारेलाल गुप्त

लवंगलता	कलकत्ता	१९१४	मनोरमा बाई
सरस्वती	लश्कर	,,	

ब्रजनाथ शर्मा

असभ्य रमणी	आगरा	१९१०	"मनोरजन" मासिक की एक कथा।

बाबूराम सर्वटे व दुर्गाप्रसाद खेवरिया

सेलिमा बेगम	सागर	१९१३	

रामजीवन नागर

वीर मालोजी भोसले	बम्बई	१९०७	

स्वरूपचन्द जैन

रमा और माधव	बम्बई	१९०३	

गुजराती

अनाम

कला-विलास	बम्ब	१८९४	इच्छाराम सूर्यराम देसाई

उदयलाल काशलीवाल

वनवासिनी	बम्बई	१९१४	वाडीलाल मोतीलाल शाह
मणिभद्र	बम्बई	१९१६	सुशील

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

प्रणयि माधव	बम्बई	१९०१	

(भवभूति के प्रसिद्ध नाटक 'मालती माधव' के आधार पर लिखित उपन्यास का अनुवाद। हिं० पु० सा० में इसे मौलिक रसप्रधान उपन्यास की कोटि मे रखा जाना उचित नही है।)

मेहता लज्जाराम शर्मा

कपटी मित्र	बम्बई	१९००	'लीव जान नो दोस्त'

रामजीवन नागर

जगदेव परमार	बम्बई	१९१२	'रसमाला'

वल्लभदास वर्मा

सरस्वतीचन्द्र	मुल्लतान	१९१६	गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी

गुजराती उपन्यास बंगला से

मोतीलाल नागर

गृहलक्ष्मी काशी १९१७

(गुजराती मे लिखित छगनलाल नारायण भाई की 'गृहलक्ष्मी' का अनुवाद सतीशचन्द्र चक्रवर्ती ने 'राय परिवार' नाम से किया था ।)

उड़िया

कामताप्रसाद गुरु

पार्वती और यशोदा प्रयाग १९११ 'मालती ओ भाग्यवती'

पाडेय मुरलीधर और मुकुटधर

लच्छमा कलकत्ता १९१५ फकीरमोहन सेनापति

समाजकटक या मामा ,,

शैलबाला ,, १९१६ जनार्दन पुजारी

उर्दू

जगन्नाथप्रसा

बदरुनिन्सा की मुसीबत काशी १९०३ अब्दुल हलीम 'शरर'

देवकीनन्दन सिंह

खोई हुई दुलहिन काशी १९०४

अनूठी बेगम मथुरा १९०५

महाराजदीन दीक्षित

एक अजीब किस्सा काशी १९०७

रामकृष्ण वर्मा

ससार दर्पण ,, १८९५ काजी अजीजुद्दीन अहमद

("पुलिस वृत्तांतमाला" कथा-सग्रह है, उपन्यास नही ।)

रामलाल वर्मा

गुलबदन कलकत्ता १९०८

(डा० श्रीकृष्णलाल ने "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास" मे इसे मौलिक मानकर प्रथम रंगमचीय नाटक होने का श्रेय दिया है पर इसके मुखपृष्ठ पर लिखा है कि यह यवनभाषा से अनूदित है । हिं० पु० सा० में भी इसे मौलिक माना गया है ।)

रामलाल वर्मा

खूनी औरत	कलकत्ता	१९१६ द्वि० स०	
अदल बदल	,,	,,	

सूर्यनारायण सिंह

हास्य उपन्यास	बम्बई	१९०१	रतननाथ "सरशार"

ग—वे उपन्यास जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं किन्तु अपूर्ण या अनुपलब्ध हैं और जिनका समावेश मुख्य सूची में नहीं किया गया है।

गृहलक्ष्मी

लीला, वर्ष २, दर्शन ११, सवत १९६८ से आरम्भ
(गिरिजाकुमार घोष द्वारा बगला से अनूदित)

ढाकन डाकू, वर्ष ३, दर्शन ११, सवत १९६९ से आरम्भ
(अनादिधन वधोपाध्याय के उपन्यास का अनुवाद)

सुकुमारी, वर्ष ६ दर्शन १, संवत १९७२ से आरम्भ
(लेखिका का नाम बावली बहू है। मौलिक है)

पत्नी का पति प्रेम, वर्ष ८, दर्शन ४, स० १९७४ से आरम्भ
(रमण लिखित मौलिक उपन्यास)

प्रतिभा, भाग १, अंक २, मई १९१७

अभागी,
(जलधर सेन के उपन्यास का सम्पादक ज्वालादत्त शर्मा द्वारा अनुवाद)

भारतमित्र

नवीन उपन्यास

प्रतापसिंह

(२५ अगस्त १८८९ से आरम्भ। अनुवादक और मूल लेखक का उल्लेख नही है ? किन्तु यह बंकिमचन्द्र के 'आनन्दमठ'का रूपांतर है।)

भारतेन्दु, १८८५–८६

पश्चिमोत्तर की गुप्तकथा

(केवल दो अको तक प्राप्य। मूल लेखक का उल्लेख नही है। मौलिक सामाजिक उपन्यास है। अधेरी गलियो का यथार्थ वर्णन है।)

मुनि

बूढे बाबा का व्याह (लेखक–कृष्णलाल वर्मा) — वर्ष ३, अक ५, वी० वि० संवत २४४५ से आरभ होकर कई अको मे समाप्त

विज्ञ वृन्दावन, फरवरी १८९३

कलिकौतुक

(लेखक–श्रीकांत ओझा। इसे "प्रहसनोपन्यास" की सज्ञा दी है। केवल दो अको मे प्राप्त)

सत्यवादी

विष विवाह, — सवत १९६९

(बंकुविहारी धर के इसी नाम के उपन्यास का रूपान्तर। रूपान्तर-कार शायद पत्र के सम्पादक उदयलाल काशलीवाल है। बालिका पत्नी और बूढे पति के सम्बन्ध का मार्मिक वर्णन है।)

व्रजकुमार, — नवम्बर–दिसम्बर १९१५

सनातन धर्म पताका, १९१७–१८

लीला उपन्यास

(लीला-सरस्वती के सवाद के रूप मे आध्यात्मिक चर्चा। इसे उपन्यास की संज्ञा देना उचित नही प्रतीत होता है।)

सरस्वती

रोशनआरा

(कार्तिकप्रसाद खत्री द्वारा नगेन्द्रनाथ गुप्त के उपन्यास का अनुवाद। जुलाई १९०१ से प्रकाशन।)

सारसुधानिधि

तपस्विनी, — २८ अप्रैल १८७९ से आरम्भ

स्वदेश बांधव, १९१२

भाग्य का फेर

(लघु उपन्यास)

स्त्री-धर्म-शिक्षक, वर्ष ५, सं० १९७०

वीर पुत्री जया

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, फरवरी, मार्च १८७५

मालती (उपन्यास)

(यह मौलिक मालूम पडता है पर अपूर्ण है।)

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका

रासेलास

प्रेषक—बाबू दीपनारायण सिंह वर्मा

(एप्रिल १८८० से प्रकाशित होना आरम्भ। डा० जानसन के उपन्यास का अनुवाद है।

हिन्दी प्रदीप

हरदेवप्रसाद द्वारा सम्पादित

रणधीर सुन्दरी — मार्च, जुलाई अगस्त १८८७

(केवल तीन परिच्छेद।)

परसन

परस्पर ठग उपन्यास — एप्रिल १८८९

(एक ही सख्या तक प्रकाशित। अपूर्ण।)

रामप्रसाद तिवारी

छलदर्पण उपन्यास — अक्टूबर-दिसम्बर १८८९

(तफरीहुल उकला की छाया लेकर लिखित। पूर्ण।)

बालकृष्ण भट्ट

हमारी घड़ी
रसातल यात्रा — एप्रिल, जून १८०२

(दोनों अपूर्ण। प्रथम की नायिका घडी है। द्वितीय आत्मचरित-शैली में लिखित। दोनों अंग्रेजी से अनूदित लगते हैं।)

रामप्रकाश लाल

ललित लता एप्रिल-मे-जून, १८९५

(साहसिक उपन्यास। बगला का अनुवाद लगता है। अपूर्ण।)

अनाम

भाग्य की परख जुलाई-नवम्बर १८९५

(एक जमीदार द्वारा प्रतिपालित युवक का उसकी पुत्री से प्रेम-सम्बन्ध। अपूर्ण।)

पुरुषोत्तमदास टण्डन

भाग्य का फेर जनवरी-जून १९००

(पूर्ण। सेक्सपियर के एक नाटक का विलक्षण और औपन्यासिक रूपान्तर। पुस्तकाकार प्रयाग से भी प्रकाशित।)

अनाम

सुशीला सौदामिनी अथवा स्नेहविजय—मार्च, एप्रिल १९०६

(बगला के किसी गार्हस्थ उपन्यास का छायानुवाद है। पति द्वारा परित्यक्ता पत्नी के प्रति सौत की सहानुभूति दिखाई गई है।)

घ–वे उपन्यास जिनकी सूचना मिलती है पर जो प्राप्त नहीं हो सके।

गणेशदत्त शास्त्री वाजपेयी 'मिश्रबन्धु विनोद', (तृतीय भाग) पृ० १४०७

इन्दुमती उपन्यास

चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' ,, पृ० १३०८

कान्ती कामिनी उपन्यास

छेदाशाह सैयद ,, पृ० १४५२

जान पाड़े उपन्यास

भगवानदीन द्विवेदी ,, पृ० १४४५

अनूठी भगतिन उपन्यास

वीरेश्वर उपाध्याय पृ० १४७४

मदनमोहिनी उपन्यास		
आत्माराम देवकर	'मिश्रबन्धु विनोद' (चतुर्थ भाग)	पृ० ३४२
भयकर दुर्दशा		
चतुर्भुज सहाय	'मिश्रबन्धु विनोद' (चतुर्थ भाग)	पृ० ३०८
बीबी हमीदा		
हरिपाल सिंह	"	पृ० २५९
इन्दुमती उपन्यास		
जैनेन्द्र किशोर	सकलनारायण पाण्डेय :	
मनोवती उपन्यास	'बाबू जैनेन्द्र किशोर की जीवनी' पृ० ८-९	
सयोगिनी उपन्यास		
दुराचारी उपन्यास		
शरत कुमारी उपन्यास		
(ये शायद प्रकाशित नही हुए।)		
राधाकृष्ण दास	रामचन्द्र शुक्ल :	
चोर के घर ढढोर	'श्री राधाकृष्णदास का जीवनचरित'	
आसमानी लाश		
आनन्द मठ		
राई हाउस प्लाट		
(ये अपूर्ण-अप्रकाशित अनुवाद हैं।)		
अनाम	'विधवा विपत्ति' (१८८५) के अंतिम पृष्ठ का विज्ञापन	
विद्या अविद्या उपन्यास		
ब्रजनन्दन मिश्र	'अश्रुधारा' (१९१६) का 'निवेदन'	
आदर्श प्रेम		
वामनाचार्य गिरि	'वीरेन्द्र बाजीराव' (१९०७) का 'कृतज्ञता प्रकाश'	
प्रभावती प्रवाह		
राजकुमारी		

ङ—उपन्यास-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ

उपन्यास	काशी	१८९८	किशोरीलाल गोस्वामी

उपन्यास कुसुम	प्रयाग	१९०३	अमृतलाल चक्रवर्ती
	(एक अक निकलने के बाद बद)		
उपन्यास कुसुमाजलि	गया	१९०४	
उपन्यास-दर्पण	काशी	१९०१	विश्वेश्वर प्रसाद वर्मा
उपन्यास-बहार	,,	१९०७	जयरामदास गुप्त
उपन्यास-बाटिका	,,	१९०२	
उपन्यास-माला	,,	१८९९	चुन्नीलाल खत्री
उपन्यास-लहरी	,,	१८९४	देवकीनन्दन खत्री
उपन्यास-सागर	,,	१९०३	रामलाल वर्मा
जासूस	गहमर	१९००	गोपालराम गहमरी
गुप्तकथा	माडला	१८९४	,,
गुप्तचर	काशी	१९०६	किशोरीलाल गोस्वामी
दारोगा दफ्तर	कलकत्ता	१९१०	रामलाल वर्मा
मित्र	काशी	१९०१	हरिकृष्ण जौहर

२

पत्र और मुलाकात

श्री महावीर प्रसाद पोद्दार का पत्र

जसीडीह (संथाल परगना)
८-२-६०

प्रिय महाशय,

उत्तर निम्नलिखित है—

(१) सेवासदन पहले कलकत्ता से निकला था। १९१९-२० के करीब निकला होगा।

(२) कलकत्ता की किसी पुरानी लाइब्रेरी मे उसका पहला सस्करण मिल सकता है और शायद हिन्दी पुस्तक एजेंसी वालो के पास भी कोई कापी हो।

(३) मुझे यह याद नही कि वह पहले उर्दू मे लिखा गया था या सीधे हिन्दी मे। मेरे पास तो हिन्दी मे ही लिखा आया था और शायद हिन्दी मे ही लिखा भी गया हो। उर्दू के प्रकाशन का पता नही। उर्दू में उसका नाम "बाजारे हुस्न" रखा था, शायद हिन्दी मे "रूप की हाट", मैंने सेवासदन कराया।

(४) उसमे क्या विशेषता थी यह मैं नही कह सकता।

(५) प्रेमा के बारे में मुझे पता नही।

(६) टाम काका की कुटिया १९१६ मे प्रकाशित हुई थी, पहली बार।

(७) सेवासदन के लिखने मे किसी की प्रेरणा प्रेमचदजी को नही मिली थी। अपनी इच्छा से ही लिखा था। बीच-बीच मे मुझे सुनाते रहते थे, लिखते समय।

(८) खत्री, गोस्वामी, गहमरी को पढ तो गया लेकिन उनमे प्रिय लगने वाली कोई बात नही मिली। ५५ साल पहले पढे थे, आज उनके बारे मे क्या कह सकता हूँ।

(९) प्रेमचंदजी को हिन्दी लिखने के लिए उत्साहित करने वालो में श्री गणेशशकर जी विद्यार्थी का नाम लिया जा सकता है। मुझे तो उन्होने ही लिखा था कि इन्हे हिन्दी मे खीचना चाहिए।

शु० चि०
महावीर प्रसाद पोद्दार

श्री दुर्गाप्रसाद खत्री से मुलाकात

(स्थान—लहरी प्रेस, वाराणसी
काल— मार्च, १९५८
विषय— श्री देवकीनन्दन खत्री और उनकी रचनाएँ)

प्रश्न— क्या खत्रीजी का कोई अपूर्ण उपन्यास भी है ?

उत्तर— "सौदागर" है। कुछ फर्मे छपे भी थे। अब प्राप्य नही हैं।

प्र०— क्या उन्होंने किसी दूसरी भाषा मे भी उपन्यास लिखा ?

उ०— नही।

प्र०— डा० वार्ष्णेय के इतिहास मे "नरेन्द्रमोहिनी" को सरकारी रेकर्ड के आधार पर अनूदित बताया गया है ? क्या यह सही है ?

उ०— "नरेन्द्रमोहिनी" मौलिक है। उसे पिताजी ने एक ही दिन मे लिखा था, जब वे चचेरे भाई बाबू देवीप्रसाद के विवाह मे मुजफ्फरपुर गये थे। वह मुजफ्फरपुर में ही नारायण प्रेस में छपा भी।

प्र०— "चन्द्रकाता" के कितने संस्करण हो चुके हैं ? एक बार कितनी प्रतियाँ छपती रही है ? एक वर्ष में अधिक से अधिक कितने संस्करण हुए ?

उ०— उनके (खत्रीजी) सामने ३३ संस्करण निकल चुके थे। एक बार मे ८००० तक प्रतियाँ छपी हैं। एक साल मे तीन संस्करण तक निकल चुके हैं।

प्र०— वे किस समय लिखते थे? उनके लिखने का ढग कैसा था?

उ०— अक्सर दोपहर मे लिखते थे। एक बार लिखते थे, दुहराते नहीं थे, काट-छाँट नही करते थे। उनकी स्मरण-शक्ति बडी तेज थी। उन्हे बोलकर लिखाने की भी आदत थी।

प्र०— उन्हे तिलस्म और ऐयारी का बीज कहाँ से मिला?

उ०— "तिलस्म होशरुबा", "बोस्तान ख्याल" वगैरह।

प्र०— उपन्यास लिखने की प्रेरणा कैसे मिली?

उ०— जगलो की सैर से।

प्र०— उनके उपन्यास में वर्णित स्थान काल्पनिक हैं या वास्तविक?

उ०— तिलस्म छोडकर सब सत्य है। मैंने खुद यात्रा कर देखा है। किले, सुरगें, पहाड, जगल सभी मिले।

प्र०— क्या "चन्द्रकाता" और "चन्द्रकांता संतति" का कोई ऐतिहासिक आधार है?

उ०— नही। वह उनकी कल्पना की उपज है।

प्र०— उन्हे अपने पात्रों के माडेल क्या वास्तविक जीवन में मिले थे?

उ०— कहते हैं, चन्द्रकांना एक वेश्या का नाम था। "चन्द्रकांता" के कुछ पात्रो के नाम वास्तविक है। रामनारायण नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक रामनारायण मिश्र थे। बद्रीनाथ काशी-नरेश के कर्म-चारी थे। चुन्नीलाल उनके मित्र और पन्नालाल प्रतिपालित पुत्र थे।

प्र०— "चन्द्रकांता" का अनुवाद किन भाषाओं में हुआ?

उ०— उर्दू, मराठी, गुजराती, बगला, सिंधी, पश्तो, गुरुमुखी, बर्मी, अग्रेजी वगैरह। उर्दू रूपातर लहरी प्रेस से निकल चुका है।

प्र०— खत्रीजी कितनी भाषाओ के जानकार थे? कैसी पुस्तको के पाठक थे?

उ०— अंग्रेजी, बंगला, फारसी, अरबी, उर्दू, गुजराती, गुरुमुखी आदि। पुस्तको के बड़े प्रेमी थे। अपना पुस्तकालय था, जिसमे छः-सात

हजार पुस्तकें थी। चिकित्सा-शास्त्र की पुस्तको मे विशेष रुचि थी।

प्र०— उनके वैयक्तिक जीवन की कुछ बातें बतायें।

उ०— मौजी, शौकीन और विनोदी थे। शतरज खूब खेलते थे। पाच हजार रुपये पतग उडाने मे खर्च कर दिये। कहते थे कि एक लाख बाप का फूँका, तीन लाख कमा के फूँका।

प्र०— उपन्यास के सम्बन्ध मे उनकी निजी धारणाएँ क्या थी ?

उ०— कहते थे कि उपन्यास ऐसा हो कि पुत्री भी पिता के सामने पढ सके।

आनुषंगिक सहायक सामग्री

सैद्धान्तिक आलोचना

हिन्दी

अम्बिका दत्त व्यास	गद्धकाव्य-मीमासा, १८९७
गुलाब राय	काव्य के रूप, १९५० द्वि० स०
प्रेमचन्द	साहित्य का उद्देश्य, १९५४
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वाङमय विमर्श, स० २००७ तृ० स०
श्याम सुन्दर दास	साहित्यालोचन, स० १९९५ प० स०

अंग्रेजी

एच० डब्ल्यू लेगेट	द आइडिया इन फिक्शन, १९३४
एडविन म्यूर	द स्ट्रक्चर आफ नोवेल, १९२८
एलिजाबेथ बोवेन	नोट्स आन राइटिग ए नोवेल ('कलेक्टेड इम्प्रेसन्स')
इ० एफ० फार्स्टर	आस्पेक्ट्स आफ द नोवेल,
पर्सी लुब्बौक	द क्राफ्ट आफ फिक्शन
राबर्ट लिडेल	ए ट्रिटाइज आन द नोवेल
	सम प्रिंसपुल्स आफ फिक्शन, १९५३
लिडन इडेल	द हाउस आफ फिक्शन, १९५७
हेनरी जेम्स	द आर्ट आफ द नोवेल, १९५३

सामान्य आलोचना और जीवनी

हिन्दी

अम्बिका दत्त व्याम	निज वृत्तान्त १९९१

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा झाबर मल शर्मा	माधव मिश्र निबन्धमाला, सं० १९९२
जयशंकर 'प्रसाद'	काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, स० २००१ द्वि० स०
झाबरमल शर्मा बनारसी प्रसाद चतुर्वेदी	बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली
नन्ददुलारे वाजपेयी	नया साहित्य : नये प्रश्न, १९५५
प्रभाकरेश्वर उपाध्याय दिनेश नारायण उपाध्याय	प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, स० २००७
ब्रजरत्न दास	भारतेन्दु मण्डल
	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, १९४ ", द्वि० स०
	हिन्दी-उपन्यास साहित्य, स० २०१३
बाबूराम सक्सेना	दक्खिनी हिन्दी
मोतीलाल मेनारिया	राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, १९३९
राधाकृष्णदास	भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र का जीवनचरित्र, १९०४
रामकुमार वर्मा	साहित्य-शास्त्र, १९५६
रामचन्द्र शुक्ल	बाबू राधाकृष्णदास की जीवनी
रामलोचन शरण (स)	बिहार का साहित्य, १९२६
रामविलास शर्मा	भारतेंदु हरिश्चंद्र, १९५३
रूप नारायण पांडेय (अ०)	बंकिम निबधावली
श्यामसुन्दर दास	हिन्दी के निर्माता, दो भाग
सकल नारायण पाण्डेय	बाबू जैनेन्द्र किशोर की जीवनी
हजारी प्रसाद द्विवेदी	साहित्य का मर्म

अंग्रेजी

एन्थोनी वील	डी० एच० लारेंस, १९५५
क्यू० डी० लीविस	फिक्शन ऐंड द रीडिंग पब्लिक, १९३२
क्रिस्टोफर काडवेल	इल्यूशन ऐंड रियलिटी
जार्ज लुकाच	स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म, १९५०
टी० एस० इलियट	सेलेक्टेड एसेज, १९३२
	प्वाइंट्स आफ व्यू
मार्क्स ऐंड एंगल्स	लिटरेचर ऐंड आर्ट, १९४७

राल्फ फाक्स	द नोवेल ऐंड द पिपुल, १९५४
हावर्ड फास्ट	लिटरेचर ऐंड रियलिटी, १९५५ दिल्ली

हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी

अयोध्यासिंह उपाध्याय	हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, द्वि० स०
कृष्ण शकर शुक्ल	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, १९३४
मिश्रबधु	मिश्रबधु विनोद, तृतीय भाग, १९१२ चतुर्थ भाग, १९३४
रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास, स० १९९९ सस्करण
रामनरेश त्रिपाठी	कविता-कौमुदी, दूसरा भाग स० १९७७
रामविलास शर्मा	भारतेंदु-युग
राम शकर शुक्ल 'रसाल'	हिन्दी साहित्य का इतिहास, १९३१
श्यामसुन्दर दास	हिन्दी साहित्य, १९५३ नवम सस्करण
हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य, १९५२

अंग्रेजी

जे० ए० ग्रियर्सन	द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान, १८८९

भारतीय उपन्यास

हिन्दी

एजाज हुसेन	उर्दू साहित्य का इतिहास, १९५७
कृष्णलाल शरसोंदे 'हस'	मराठी साहित्य का इतिहास, स० २००५
डा० नगेन्द्र	भारतीय इतिहास
ब्रज रत्न दास	उर्दू साहित्य का इतिहास, १९३५

राम बाबू सक्सेना — उर्दू साहित्य का इतिहास, भाग २, १९५१ (अनुवाद)

सुकुमार सेन — बगला साहित्य की कथा (अनुवाद)

के० भास्करन नायर — मलयालम साहित्य का इतिहास, १९६०

चतुर्दश भाषा निबधावली (राष्ट्रभाषा-परिषद)

अंग्रेजी

कन्टेम्पोरेरी इण्डियन लिटरेचर, १९५७ (साहित्य अकादमी)

लिटरेचर इन मार्डन इण्डियन लैग्वेजेज, १९५७ (पब्लिकेशन्स डिवीजन)

भारतीय इतिहास

हिन्दी

रामधारी सिंह 'दिनकर' — सस्कृति के चार अध्याय, १९५६, द्वि० सस्करण

अग्रेजी

आर० पामदत्त — इडिया टू डे, १९४७ स०

एच० एच० डाडवेल — इडिया, पार्ट २, १९३६

ए० ए० मैकडोनल — इडियाज पास्ट, १९२७

जवाहरलाल नेहरू — ग्लिम्पसेज आफ वर्ल्ड हिस्ट्री, १९३९ स०

डिस्कवरी आफ इडिया, १९४६

डब्ल्यू० एच० मोरलैड — ए शार्ट हिस्ट्री आफ इडिया

वी० ए० स्मिथ — आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इडिया, १९१९

विविध

हिन्दी

गौरीशकर हीराचंदा ओझा — मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

श्रीराम शर्मा	दक्खिनी का पद्य और गद्य
	हिन्दी-साहित्य सम्मेलन-लेखमाला
	कलकत्ता गजट

अंग्रेजी

मार्क्स ऐंड एंग्लस	आन ब्रिटेन, १९५३
शिपले	डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर
	इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका

पत्र-पत्रिकाएँ

आनन्द कादम्बिनी, आलोचना (उपन्यास-विशेषाक), इन्दु, कवि-वचनसुधा, गृहलक्ष्मी, चाँद, प्रतिभा—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, प्रभा, भारत जीवन, भारत मित्र, भारत सुदशा प्रवर्तक, भारतेन्दु, भाषाभूषण, मर्यादा, मनोरंजन, माधुरी, मुनि, मौजी, ब्राह्मण, विशाल भारत, विज्ञ वृन्दावन, सरस्वती, सत्यवादी, स्त्री-दर्पण, स्त्री धर्म शिक्षक, स्वदेश बान्धव, सन्मार्ग, सनातन धर्म पताका, सम्मेलन पत्रिका, साहित्य सुधानिधि, साहित्य पत्रिका, साहित्य-सन्देश (उपन्यास-विशेषाक) साहित्य समालोचक, हिन्दी-प्रदीप, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका, क्षत्रिय पत्रिका आदि ।